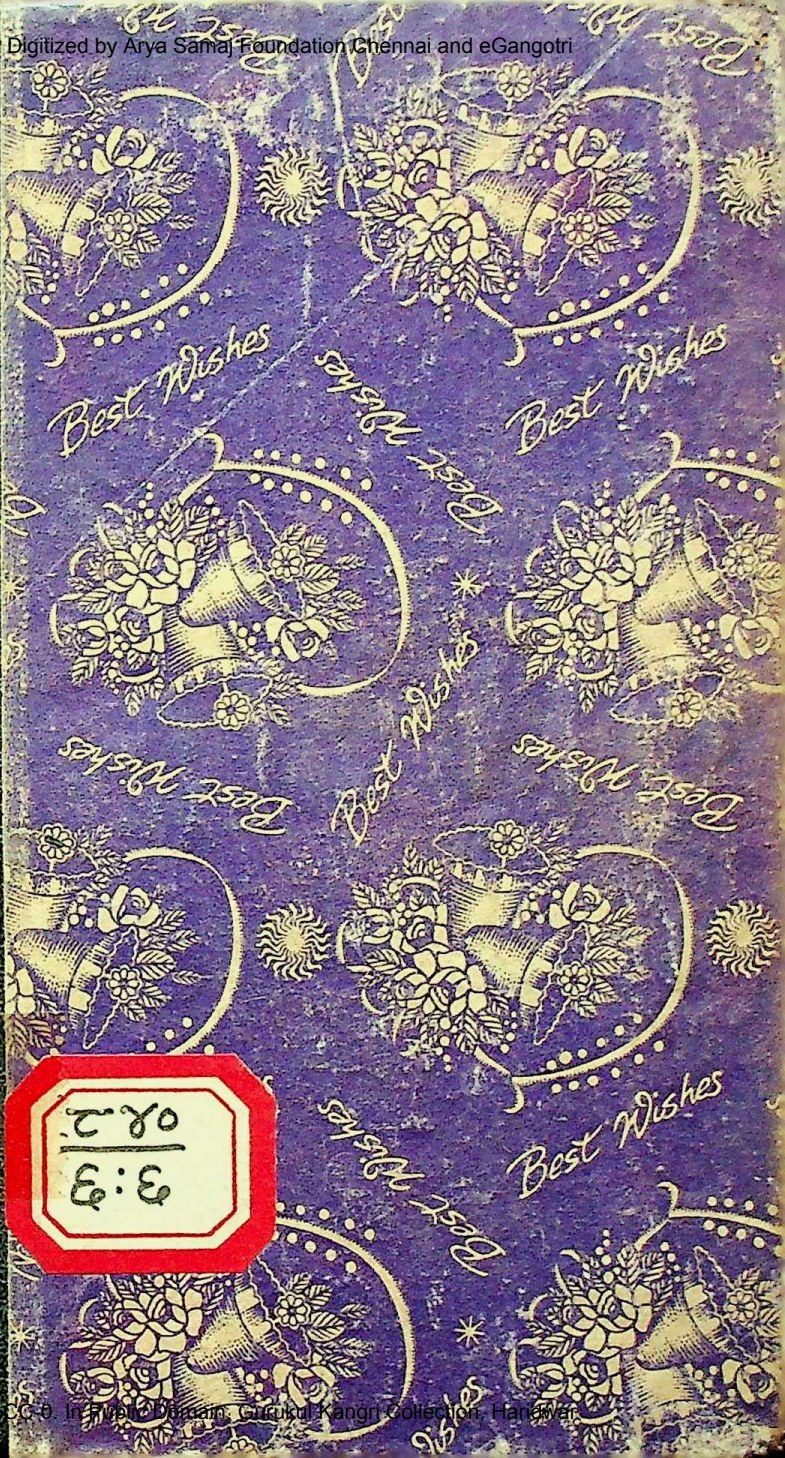




3:3
08.2

पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय

विषय संख्या ८४० आगत नं०

लेखक ६:६
रमाशंकर विपाठीशीर्षक
'वैष्णोसंहार'

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या
28 NOV 1988			
28	26		

व भेदोऽपि निरस्तः । न च जीवस्य वस्तुतः ईश्वरत्वे कथं जीव-
संसार-शोकाविति वाच्यं तयोर्मोह कृतत्वात् । तस्मात् वस्तुत-
व, भेदस्तु मोहकृत् इति प्रसिद्धम् । अनुभवदशायां लौकिकबुद्ध्या
युपेत्योच्यते तयोरन्य" इति ।

तस्मादवास्तव भेदमुपजीव्य "तयोरन्य" इत्युक्तम् ।

अर्थात् इस मन्त्र में औपाधिक भेद किन्तु वस्तुतः अभेद को मानकर
अन्यः" इत्यादि कहा है । यदि जीव वास्तव में ईश्वर है तो संसार
क आदि क्यों दिखाई देते हैं । इस प्रश्न का उत्तर यह है कि यह सब
परण होता है । वास्तव में जीव-ईश्वर में कोई भेद नहीं । कल्पित-
मानकर "तयोरन्यः" ऐसा मन्त्र में कहा है ।

यद् के उपर्युक्त मन्त्र को उद्धृत करके इसकी व्याख्यारूप में
ह भी इस प्रसंग में उल्लेखनीय है—

गोऽनीशया शोचति मुह्यमानः । मु० ३।२

अपने समान प्रकृतिरूप वृक्ष में फँसा
अपने स्वामित्व को खोकर मोह
अपने से भिन्न (अन्यम्
के दर्शन करता है और
हो जाता है ।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपा पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि
न लगायें।

शंकराचार्य जी

साधु ही "युष्माकं अन्तरं बभूव" तुम्हारे अन्दर विद्यमान है। तुम्हारे अन्तर से आवृत्त, स्वार्थी तथा कपटी-दम्भी होने के कारण उस सर्वव्यापी नहीं जानते, ऐसा मन्त्र के उत्तरार्ध में कहा गया है। इस प्रकार पृथ्वी जीवों से और सांसारिक पदार्थों से (जिनका वह परमेश्वर उत्पादक होना वेद मंत्र में स्पष्टतया निरूपित किया गया है। यही मंत्र यजुर्वेद में भी पाया जाता है।

वृहदारण्यक के—

य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनो यमात्मा न वेद यस्यात्मा शरी

इत्यादि वचन इस मंत्र के व्याख्यान रूप में प्रतीत होते कहा गया है कि जो परमात्मा आत्मा के अन्दर रहता हुआ भी भिन्न है जिसको अज्ञानी आत्मा नहीं जानता, आत्मा जिसके निवास शरीर रूप है, जो आत्मा में स्थित होकर सबको वश में रखता है वह तुम्हारा अन्तर्यामी अविनाशी परम-आत्मा है। इस मंत्र के अर्थ चाय-उब्वट-महीधरादि अद्वैतवादी आचार्यों को जो खेँचातानी कर वह केवल इसे जैसे-तैसे करके अद्वैतवाद समर्थक बताने के लिये।

ऋ० ८।१६।६ का निम्न मन्त्र भी जीव, ईश्वर और प्रकृति तथा उत्पन्न जगत् के भेद को स्पष्टतया प्रतिपादित करता है—

तमुष्टुवाम य इमा जजान विश्वा जातान्यवराण्यस्मात्
इन्द्रेण मितं दिधिषेम गीभिरुणे नमोभिवृषभं विशेष

स्पष्ट है कि हम (तम् उ स्तुवाम) उस ईश्वर की स्तुति करें (जजान) जिसने इन सब सूर्यादि पदार्थों को बनाया है (विश्वा जातान्यवराणि अस्मात्) ये उत्पन्न सब पदार्थ इस परमेश्वर की अपेक्षा बहुत (इन्द्रेण) आत्मा के द्वारा हम (मित्रेण दिधिषेम) सबके सच्चे मित्र का ध्यान करें। [नमोभिः गीभिः] नमस्कार युक्त वाणियों से सुखों के वर्षक परमात्मा के (उपविशेम) समीप बैठ जायें, उस उपासना करें। इस मन्त्र द्वारा ब्रह्म, जीव और जगत् का भेद अत्यन्त

त्वं हि शश्वतीनां पति राजा विशामसि ॥

हे परमेश्वर! [त्वं हि] तू ही निश्चय से [शश्वतीनां प्रजानाम्]
आओं का (पति असि) स्वामी है।

७।३२।३६, सामवेद-मं० २५६ ऐन्द्रपर्व—

त आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा शिक्षाणोऽस्मिन् पुरुहूत यामनि
इतिरशीमहि ॥

इस प्रकार पिता पुत्रों को उत्तम ज्ञान प्रदान करता है इसी प्रकार तू
होतान प्रदान कर। हे प्रभो! इस संसार मार्ग में हमें शिक्षा दे। जिससे
सकौतिस्वरूप तुझको प्राप्त करें।

यणाचार्य ने साम० में मंत्र २५६ के भाष्य में इतना उत्तम व्या-
है। निरुक्त के प्रमाण से इन्द्र का अर्थ परमात्मा करते हुए लिखा

एष विशिष्ट परमात्मन्! त्वं (ऋतुम्) कर्मस्वविषय ज्ञानं वा
माकं (आभर) आहर, तत्र दृष्टान्तः पिता पुत्रेभ्यो यथा लोके
वा प्रयच्छति तथा (नः) अस्मभ्यं विद्या धनं वा प्रयच्छ। हे
ऐन्द्रः [यामनि] सर्वैः प्राप्तव्येऽस्मिन् प्रकृते ब्रह्मणि जीवा
ज्योतिः [अशीमहि] सेवेमहि।

ध्रुव ने अपने सामवेद भाष्य में भी इसी प्रकार कहा है—

या च प्रज्ञया (जीवाः) जीवन्तो वयं (ज्योतिः) ज्ञानं (अशीमहि)
इत्यर्थः (साम० भाष्य, ऐडचार, पृ० १६०)

इस प्रकार जीवों का परमेश्वर से भेद इतना व्यक्त है, जिससे मना नहीं

पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या ८४० आगत संख्या ८३७८५
६:६

पुस्तक-वितरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित २० वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानो चाहिए। अन्यथा १० पैसे के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

28 NOV 1988

528129114

समर्पण

मेरी शैशवावस्था में ही
स्वर्ग के लिये विदा होती हुई
ममतामयी माँ ने जिनके हाथों में
साग्रह सौंपा था,
उन्हीं
अग्रज

पं० रामरूप त्रिपाठी
को
श्रद्धासहित
समर्पित

840.6.6



83785H

‘वे
ना ते
हामार
न नि
रूप
मेको
भी
तार
स
कोई
धम
याप
त्त्र
करण
शा
करण
मे
इ
वश्य
। पि
नता
पा
नुम
र
मे
स
शि
स
व

प्राक्कथन

‘वेणीसंहार’ का यह नवीन संस्करण सरस्वती के सेवकों की सेवा में प्रस्तुत होने जा रहा है। ना तो निर्विवाद है कि ‘वेणीसंहार’ के भावों को तब तक नहीं समझा जा सकता जब तक कि महामारत की सारी घटनायें सामने न हों। महामारत के ज्ञान के बिना ‘वेणीसंहार’ के मर्म का न निश्चय ही असम्भव है। ‘मट्टनारायण’ ने महामारत की कतिपय बड़ी-बड़ी घटनाओं को स्वरूप में प्रस्तुत किया है। हिन्दी या अँग्रेजी में अब तक ऐसा एक भी संस्करण नहीं था, जो लोगों या गद्यों के साथ अर्थ देते हुए, उसके मूल में वर्तमान महामारत की अत्यावश्यक, कथाओं भी साथ साथ देता चले। वस, इसी अपरिहार्य उद्देश्य की पूर्ति के लिये इस संस्करण को तैयारणा हुई है। मेरे इस साधिकार कथन में किसी को अभिमान मले ही झलके किन्तु यह है कि—इस संस्करण के बिना वेणीसंहार में अभिव्यक्त महाकवि मट्टनारायण के गम्भीर भावों कोई भी विद्यार्थी या अध्यापक नहीं समझ सकता, नहीं हृदयङ्गम कर सकता। इस संस्करण के अर्थ से व्यक्ति, बिना किसी की सहायता लिए हुये भी, इसके गम्भीर रहस्यों को जान सकता है। आपको तथा नयी और पुरानी विचारधाराओं के विद्वानों के लिए भी इस संस्करण का उतना ही उत्तम हो जितना कि छात्रों के लिए, एतदर्थ भी प्रयास किया गया है। अपने कतिपय अन्य नाट्य-कारणों की भाँति इसे भी तमाम आवश्यक सामग्रियों से सजाने का भरपूर प्रयास किया गया है। ज्ञा है, मेरे ‘मृच्छकटिक’ ‘मुद्राराक्षस’ ‘प्रसन्नराघव’ ‘रत्नावली’ एवं ‘सांख्यकारिका’ आदि के अन्यान्य संस्करणों की भाँति ‘वेणीसंहार’ का यह संस्करण भी पाठकों की शत-प्रतिशत सफल विनम्र सेवा में पूर्ण योग्य सिद्ध होगा।

इस संस्करण को तैयार करने में यथासम्भव हिन्दी संस्कृत एवं अँग्रेजी के ४-५ संस्करणों की आवश्यकतानुसार सहायता ली गयी है। ‘निर्णयसागर’ से प्रकाशित पाठ को निर्णायक माना गया। फिर भी उसमें प्रदत्त पाठान्तर की भी सहायता ली गयी है। मैं इन सबका हृदय से आभार करता हूँ।

पाठकों के प्रति भी मैं हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना कर्तव्य समझता हूँ, क्योंकि यदि उन कुमारों ने अपनी गुणग्राहिता न प्रदर्शित की होती तो इतने स्वल्प काल में ही इसका यह द्वितीय संस्करण न निकल पाता।

मोतीलाल बनारसीदास की वाराणसी शाखा के व्यवस्थापक श्रीसुन्दरलाल जैन तथा उनके सहयोगी कुमार जैन भी अपने सहयोगात्मक कृत्यों के लिये धन्यवाद के पात्र हैं।

शिवरात्रि

सं० २०३२

वरी १९७५ ई०

840.6:6



83785H

—रमाशङ्कर त्रिपाठी

विषय-सूची

कि—
कालि
ध्यान
से घेर
ये। य
घात-प्र
संहार
अनुम

प्रस्ता
अल्प
कृति
के वि

राजा
कारि
अनु
बंगा
कन्ने
उन्हे
नार

बंगा
१.

विषय-सूची

प्रस्तावना

भट्टनारायण के विषय में उपलब्ध जानकारी

महाकवि 'जयदेव' के विषय में विचार करते हुए मैंने 'प्रसन्नरायण' की प्रस्तावना में लिखा है कि—'अपनी प्रतिभा के प्रकाश से विश्व को आलोकित करनेवाले महाकवियों ने अपनी दैशिक तथा कालिक परिधि के उल्लेख की कोई आवश्यकता ही न समझी। इस अकिञ्चन बात की ओर उनका ध्यान ही न गया। वे सार्वदेशिक तथा सार्वकालिक कवि थे। उनकी महत्ता की श्रुति देश तथा काल से घेरी नहीं जा सकती। अपने स्थान एवं काल की बात को लिखना वे अधिक महत्त्वपूर्ण न समझते थे। यह सत्य एवं स्वामात्रिक विचार 'वेणीसंहार' के रचयिता कवि 'भट्टनारायण' के विषय में भी शत-प्रतिशत सही है। उन्होंने अपने देश, काल एवं जीवन-विषयक जानकारी को अपने नाटक 'वेणीसंहार' में कहीं भी स्पष्टतः प्रयोजन नहीं होने दिया है। उनके जीवन-विषयक जानकारी के लिए अनुमान के अतिरिक्त अन्य अवलम्बन नहीं है।

(क) भट्टनारायण के विषय में प्रस्तावना से प्राप्त जानकारी—'वेणीसंहार' की प्रस्तावना में इसके रचयिता कवि के विषय में जो कुछ कहा गया है वह अत्यन्त ही क्षीण है, बहुत अल्प है। उससे केवल इतना ही मर शत होता है कि नाटक 'मृगराजलक्ष्मी' किसी भट्टनारायण की कृति है। उसने सपरिश्रम इसकी रचना की है^१। बस, इसके अतिरिक्त नाटक अपने सृष्टिकर्ता कवि के विषय में एकदम मौन है।

(ख) भट्टनारायण के विषय में राजवंशावलियों से उपलब्ध जानकारी—बंगाल के राजाओं के सम्बन्ध में 'क्षितिशवंशावलीचरित' 'बंगराजघटक' 'राजावली' तथा 'दक्षिणाराधीयघटकाकारिका' आदि संस्कृत में कतिपय ऐतिहासिक लेख (Chronicles) उपलब्ध होते हैं। इनके अनुसार भट्टनारायण कान्यकुब्ज (कन्नौज) का रहने वाला शाण्डिल्यगोत्रीय ब्राह्मण था। वह बंगाल में सेन-वंश के प्रवर्तक गौड़ाधिपति 'आदिशूर' के निमन्त्रण पर अन्य चार ब्राह्मणों के साथ कन्नौज से जाकर बंगाल में बस गया था। वहाँ 'आदिशूर' ने काई वैदिक अनुष्ठान कराने के लिये उन्हें दक्षिणा में पाँच गाँव दिया था। शनैः-शनैः यह सम्पत्ति विशाल होती गई और बाद में 'भट्टनारायण' एक राजवंश के प्रवर्तक हुए।

गौड़ाधिपति 'आदिशूर' ने भट्टनारायण को किस लिये बुलाया था? अथवा यह कन्नौज छोड़ कर बंगाल में क्यों जा बसे? इस प्रश्न का उत्तर राजवंशावलियों (Chronicles) में विभिन्नरूप से

१. 'तदिदं कवेर्मृगराजलक्ष्मणो भट्टनारायणस्य कृति वेणीसंहारं नाम नाटकं प्रयोक्तुमुद्यता वयम्। तदत्र कविपरिश्रमानुरोधाद्वा (प्रस्तावना)।

वेणीसंहारे

दिया गया है। 'क्षितोशवंशावलीचरित' के अनुसार 'आदिसूर' शूद्र राजा था। वह कोई वैदिक यम करना चाहता था। बंगवासी विद्वानों ने एक शूद्र को यश कराने से इन्कार कर दिया। फलस्वरूप 'आदिसूर' ने कन्नौजाधिपति से योग्य वैदिक ब्राह्मणों को भेजने की प्रार्थना की थी। एक दूसरी कथा रच के अनुसार एक समय बंगदेश में अकाल पड़ा। उस समय वहाँ के राजा 'आदिसूर' ने यश द्वारा ब्रह्मा हो कराने के लिये कान्यकुब्ज (कन्नौज) से पाँच ब्राह्मणों को आमन्त्रित किया था। भट्टनारायण उनमें प्रधान थे। 'बंगराजघटक' के अनुसार 'आदिसूर' ऐसा यश करना चाहता था जिससे भगवान् प्रसन्न हो जायें। जब उसके राज्य के ब्राह्मण ऐसा कोई उपाय न बतला सके तब उसने कान्यकुब्ज से पाँच ब्राह्मणों को बुलावाया। एक अन्य कथा के अनुसार बंगालदेश पर आनेवाली विपत्तियों के लक्षण देख कर 'आदिसूर' ने उनके निवारणार्थ कान्यकुब्ज से पाँच ब्राह्मणों को बुलाया था। पाँचवीं कथा के अनुसार इन ब्राह्मणों ने धार्मिक उत्पीडन के कारण कान्यकुब्ज का त्याग किया था।

उपर्युक्त इन कारणों में अन्तिम कारण को ५० बी० गजेन्द्रगडकर जैसे प्रख्यात विद्वानों ने अधिक विश्वसनीय माना है।^२ उनका कहना है कि तात्कालीन वातावरण को देखते हुए यह निश्चय किया जा सकता है कि बुद्धधर्मप्रधान कान्यकुब्ज में अवश्य ही वैदिकधर्मानुयायी ब्राह्मणों का उस समय धार्मिक उत्पीडन होता रहा होगा और भट्टनारायण जैसे वैदिक परम्परानुयायी ब्राह्मण कान्यकुब्ज का परित्याग कर बंगाल चले गये होंगे। यही भट्टनारायण 'वेणीसंहार' के रचयिता कवि हैं। इस बात की पुष्टि इससे भी होती है कि हम अन्य प्रमाणों के आधार पर भी वेणीसंहार का वही काल निर्धारण कर पाते हैं, जो कि 'आदिसूर' का है। ऐतिहासिकों ने 'आदिसूर' का काल सातवीं शताब्दी का उत्तर भाग माना है।

'वेणीसंहार' का रचयिता कवि भट्टनारायण वही व्यक्ति है जो कान्यकुब्ज से बंगाल गया और जिसकी चर्चा बंगाल के 'क्षितोशवंशावलीचरित' आदि में है—यह मत विचार करने पर वस्तुतः एकदम निःसार प्रतीत होता है। इसका कारण यह है—

(१) भारतीय राज्याश्रयी कवियों की नाटक कृतियाँ सर्वप्रथम राजदरबारों में ही अभिनीत हुई करती थीं। यही कारण है कि इस तरह के नाटकों की प्रस्तावना में आश्रयदाता राजा उसको परिषद् की विशिष्ट चर्चा पाई जाती है। 'वेणीसंहार' की प्रस्तावना में इस तरह का कुछ भी निर्देश नहीं है। वहाँ न किसी राजा की चर्चा है और न उसको परिषद् की ही। इसकी प्रस्तावना से ऐसा प्रतीत होता है कि यह नाटक सामान्य जनता के बीच खेला जा रहा है। प्रस्तावना 'परिषदप्रवेशान्' में बहुवचन की विभक्ति भी इसी तथ्य की ओर संकेत करती है। यदि गौडाधिपति 'आदिसूर' ने कन्नौज से बुलाकर या धार्मिक उत्पीडन के कारण वहाँ से भाग कर अपने यहाँ आ पर भट्टनारायण आदि का सम्मान किया होता, उनको पूजा की होती, प्रचुर सम्पत्ति देकर उनको लौकिक दृष्टि से सुखी बनाया होता तो निश्चय की भट्टनारायण ने अपनी कृति वेणीसंहार में उन

१. केन यशेन भगवत्प्रतीतिर्भवति निश्चितम्।—बंगराजघटक।

२. देखिये, उनके द्वारा सम्पादित 'वेणीसंहार' की भूमिका।

कथम आदि की चर्चा कर अपनी कृतशता व्यक्त की होती। आखिर कृतशता को व्यक्त करने के फलस्वरूप उनके पास इसके अतिरिक्त दूसरा क्या साधन था? अतः कहा जा सकता है कि वेणीसंहार की रचयिता मट्टनारायण का 'आदिसूर' से कोई सम्बन्ध न था। वह कोई दूसरा ही 'मट्टनारायण' होगा जिस पर की गौडाधिपति आदिसूर की कृपा-वृष्टि हुई थी।

(२) यदि यह कहा जाय कि मट्टनारायण ने बंगाल जाने के पूर्व ही वेणीसंहार की रचना कर ली थी। अतः नाटक में वहाँ के आश्रयदाता राजा की चर्चा का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। भी बात जमती नहीं है। यहाँ सर्वप्रथम यही प्रश्न उठता है कि मट्टनारायण ने वहाँ के बौद्ध जा के उत्पीडन से कान्यकुब्ज छोड़ा या अथवा स्वयं उसके भेजने पर 'आदिसूर' की सेवा में बंगाल चले गये। यदि वे बौद्धों के उत्पीडन से अपनी मातृ-भूमि को छोड़ने के लिये विवश हुये होते तो वश्य ही उनकी कृति में इस अत्याचार की भर्त्सना या बौद्ध धर्म की कुत्सा या खण्डन देखने की शक्यता। कवि के मानस को व्यथ बनाने वाली बात उसके काव्य में किसी न किसी बहाने से अवश्य प्रकट होगी। प्रतिक्रिया या प्रतिबिम्बित हो उठती। किन्तु 'वेणीसंहार' में ऐसा एक भी स्थल नहीं है जिससे बौद्ध राजा या बौद्ध-धर्म के विषय में किसी भी तरह की भावना को खोज निकाला जाय। यदि यह कहा जाय कि कान्यकुब्जाधिपति के देने पर ही ये लोग बंगाल गये थे। कान्यकुब्ज के शासक इन लोगों को बहुत सम्मान करते थे। वे इन्हें रत्न समझते थे। अतः गौडाधिपति के मांगने पर अपने राज्य के कालसम्मान का विस्तार करने के लिये उन्होंने इन लोगों को वहाँ भेजा था। तो भी वही बात कही जा सकती है कि यदि ये कान्यकुब्जाधिपति के कृपा पात्र थे, वे इनका सम्मान करते थे, तो इन्होंने अपने नाटक में अपने उस राजा की चर्चा क्यों नहीं की जिसके दिये गये रोटी के टुकड़े पर ये अपनी गणिका का निर्वाह किया करते थे।

(३) यदि वेणीसंहार का रचयिता कवि मट्टनारायण वही मट्टनारायण होता जिसकी चर्चा बंगाल के 'झितीशवंशावलीचरितम्' आदि में की गई है, तो निश्चय ही उसमें उनके कवित्व की भी प्रामाणिक चर्चा की गई होती। उनमें निश्चय ही यह निर्देश किया गया होता कि यह मट्टनारायण कवि भी थे। राजा किन्तु उनमें इसकी कुछ भी चर्चा नहीं की गई है। उनमें उन्हें वैभवसम्पन्न अवश्य बतलाया गया कुछ है किन्तु उनके कवित्व की चर्चा तक नहीं आने दी गई है। अतः कैसे कहा जा सकता है कि दोनों मट्टनारायण एक ही हैं?

(४) इनके अतिरिक्त चौथी बात यह है कि इतिहास के भव्य भवन का निर्माण विरुदावलियों के बिना इस तरह के राजवंश-वर्णनों की कच्ची ईंटों से कम नहीं होता है। उसके लिये तो पत्थर जैसा ही अपेक्षित है। इतिहास के लिये इसका भी कोई मूल्य नहीं है कि इन राजवंशों में मट्टनारायण का जो काल निर्धारित होता है प्रायः वही काल, अन्य प्रमाणों के आधार पर, वेणीसंहार के रचयिता का भी निश्चित होता है। काल एवं देश की असोमित परिधि में इस तरह के संयोगों का होना कोई आश्चर्य नहीं है। अतः इन किसी बात के लिये तथ्यरूप में नहीं स्वीकार किया जा सकता है।

उपर्युक्त तथ्यों पर ध्यान देते हुए यह निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि वेणीसंहार भट्टनारायण बंगाल के लेखों में वर्णित भट्टनारायण से सर्वथा भिन्न हैं।

प्रथम अङ्क के पच्चीसवें श्लोक के रण-यज्ञ को चर्चा में किसी भट्टनारायण के द्वारा सम- कराये गये 'आदिमुर' के यज्ञ को झलक देखकर दोनों भट्टनारायणों को एकता को स्थापित करने प्रयास प्रमाणों के अभाव में बालवापत्य से अधिक महत्त्व नहीं रखता है। इस तरह के क्वा- मासङ्गिक अवसरों के बल पर किसी महान् निर्णय को करना हँसी-खेल जैसा कार्य होगा।

वस्तुतः यदि हम भट्टनारायण के मानसिक धरातल पर उतर कर वेणीसंहार के भरतवाक्य उस अंश पर ध्यान दें, जिसमें राजा को विद्वानां का सहायक तथा गुणों में न्यूनाधिक्य का रखनेवाला (Recogniser of speciality in merits) होने को प्रार्थना की गई है, हमारे उसी सिद्धान्त की पुष्टि होती है कि भट्टनारायण का कभी भी राजाश्रय नहीं प्राप्त था, उन गुणों का समुचित मूल्याङ्कन राजा के द्वारा नहीं किया गया था। एतदर्थ उनका मन कदाचित् प्र- न था। फलतः उन्होंने राजा को गुणों का सही मूल्याङ्कन कर्ता होने को प्रार्थना की है।

भट्टनारायण की जाति

भट्टनारायण जाति के ब्राह्मण थे। उनके नाम के साथ लगा 'भट्ट' शब्द पूरो दृढता के साथ व- वात का समर्थन कर रहा है। आज की भाँति प्राचीन काल में भी ब्राह्मणों के नाम के साथ 'भट्ट' उपाधि जोड़ी जाती थी। कभी भी इस उपाधि का संयोग किसी ब्राह्मणेतर जाति के व्यक्ति नाम के साथ नहीं उपलब्ध होता। अतः इतना निश्चित है कि भट्टनारायण जाति के भट्ट थे, ब्राह्म- थे। वेणीसंहार के आन्तरिक प्रमाण भी इसी तथ्य का समर्थन करते हैं। (१) कर्ण एवं अश्वत्थाम के विवाद में अश्वत्थामा के प्रति कवि ने बराबर पक्षपात प्रदर्शित किया है, उन्होंने उसको बरा- भर्षादा-रक्षा की है। (२) 'रत्नावली' आदि नाटिकाओं में किसी ब्राह्मण को ही विदूषक का र- देकर उसकी दुर्दशा तथा मूर्खता प्रदर्शित करने की प्रथा का वेणीसंहार में पूर्ण अभाव है। वेणीसंहार के ब्राह्मण कवि ने किसी ब्राह्मण की दुरवस्था प्रदर्शित करना कदाचित् उचित नहीं माना है। (३) तृतीय अङ्क के राजस-राजसो सम्वाद में 'ब्राह्मण-शोणितं खल्वेतत्। गलं दहदहद् प्रविशति' (५० १०४) यह कथन भी उक्त तथ्य का ही समर्थन करता है। यदि किन्हीं कारणों से ह- अन्तिम दो युक्तियों को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण न मानें तो भी प्रथम युक्ति ही इतनी प्रबल है कि उस- बल पर हम कवि को ब्राह्मण मान सकते हैं।

महाकवि भट्टनारायण ब्राह्मण हैं अथवा क्षत्रिय इस खुराफात की जड़ है नाटक की प्रस्तावना कवि के लिए प्रयुक्त 'मृगराजलक्ष्मणः' विशेषण। यदि वहाँ 'कवेर्मृगराजलक्ष्मणः' पाठ के स्थान 'कविमृगराजलक्ष्मणः' यह पाठ रहा होता तो सन्देह के लिए अवकाश ही न मिलता। किन्तु दुर्भाग्य से या तो कवि ने ही वैसा पाठ लिखा या कालान्तर में पाठपरिवर्तन की महिमा से 'कवेर्मृगराज

लक्ष्मणः' शब्द प्रयुक्त हुआ। जो भी कुछ हो किन्तु सन्देह के लिए स्थान तो बन हो गया है। लोग 'मृगराज' शब्द का अर्थ सिंह तथा 'लक्ष्मणः' का उपाधि धारण करने वाला करते हैं। उनके अनुसार 'मृगराजलक्ष्मणः' का अर्थ हुआ—सिंह उपाधिधारी अर्थात् क्षत्रिय। किन्तु विचार करने पर यह मत निःसार प्रतीत होता है। 'कवेर्मृगराजलक्ष्मणः' शब्द का अर्थ 'सिंह उपाधिधारी कवि' नहीं बल्कि 'कवि सिंह की उपाधि धारण करने वाला' है। वारस का प्रतिपादन करनेवाला वेणोसंहार नाटक वस्तुतः संस्कृत के प्रायः शृङ्गारादिप्रधान नाटकों में वेजोड़ है। केवल मानुसवी आर दुर्योधन के प्रसङ्ग को छोड़कर इस नाटक का रगरग वीरता से लवालब मरा हुआ है। प्रथम अङ्क में 'मथनामि कौरवशतम्' इत्यादि (श्लोक १५) भीम की तथा तृतीय अङ्क में अश्वत्थामा की उक्तियाँ मृतप्राय व्यक्ति में भी ओज का सञ्चार करानेवाली हैं। इस तरह संस्कृत नाटकों में अनूतपूर्व वीरता-सरित को बहानेवाला कवि 'कविसिंह' नहीं तो और क्या कहा जायगा? निश्चय ही भट्टनारायण भी शरीर तथा वाणी आदि से वीरता का प्रतिनिधित्व करते रहे होंगे, नहीं तो भला सृष्टिकर्ता में अप्राप्य गुणों की उपलब्धि सृष्टि में कैसे हो सकती है? इस तरह 'मृगराजलक्ष्मणः' शब्द की अनुचित एवं असामयिक व्याख्या प्रस्तुत कर भ्रम फैलाने की चेष्टा बालिश-कार्य है, अविचारित विवरण है। इसके अतिरिक्त दूसरी बात यह भी है कि प्राचीन समय में क्षत्रियों के नाम के सामने 'सिंह' शब्द का प्रयोग भी नहीं होता था। इस शब्द का प्रयोग काफी बाद में प्रचलित हुआ है।

भट्टनारायण के धार्मिक विश्वास

भट्टनारायण ने वेणोसंहार की प्रस्तावना में क्रमशः हरि (कृष्ण) एवं शिव की स्तुति की है। इससे प्रतीत होता है कि वे इन दोनों सर्वप्रधान देवताओं में विश्वास रखते थे। किन्तु नान्दो के इन श्लोकों के क्रम तथा नाटक के अन्य स्थलों एवं 'आत्मरामा विहितरतयो' (१।२३) इत्यादि स्थलों को देखने से प्रतीत होता है कि कवि शिव में विश्वास रखते हुए वैष्णव या। उसकी दृष्टि में विष्णु (कृष्ण) ही पर—ब्रह्मा, पुराण देव तथा निर्विकल्पक समाधि के द्वारा ज्ञेय वस्तु हैं। जो लोग नाटक में व्यास वैष्णव-विचारों को इसके उपजोव्य महाभारत का प्रभाव बतलाते हैं, वे कदाचित् कवि की स्वच्छन्दता से परिचित नहीं हैं। उपजोव्य काव्य के विचारों को कवि, अपने विचारों से प्रतिकूल होने पर, छोड़ देता है या अपने विचारों का रङ्ग उन पर चढ़ा देता है। यदि भट्टनारायण वैष्णव न होते तो निश्चित ही उनके इस तरह के विचार नाटक में व्यक्त न हो पाते।

महाकवि भट्टनारायण स्वप्न आदि में विश्वास रखने वाले, देवी-देवताओं के पूजक तथा परम्परा के पक्षपाती व्यक्ति थे^१। लोक एवं परलोक-दोनों में उनका विश्वास था^२। वे भाग्यवादी अवश्य थे, किन्तु भाग्य की अपेक्षा पुरुषार्थ पर उन्हें अधिक भरोसा था^३। उनके धार्मिक विश्वास के बारे में, कुछ मिलाकर कहा जा सकता है कि वे परम्परा के पोषक थे, सम्बर्धक थे, विच्छेदक न थे।

१. देखिये, पृ० ६८।

२. देखिये, पृ० १२०-१२२।

३. 'दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम् ॥' (३।३७)

भट्टनारायण का पाण्डित्य

प्राचीन परिपाटी के अनुसार वेणीसंहार नाटक के कर्ता कवि भट्टनारायण ने शास्त्रों का बहुविध ज्ञान प्राप्त किया था। निश्चय ही अपने से प्राचीन कवियों के ग्रन्थों का सपरिश्रम अध्ययन किया था। सखियों के साथ भानुमती के विश्रव्य वार्तालाप को लता-निकुञ्जों में छिपकर दुर्योधन के द्वारा सुनने वाली बात में हम स्पष्ट हो अभिज्ञान शाकुन्तल के प्रभाव को देख सकते हैं, जबकि इसी तरह दुष्यन्त भी शकुन्तला तथा उसकी सखियों की बात सुनता है। समग्र महामारत को अपने नाटक का उपजीव्य बनाने के पूर्व कवि ने उसका खूब सूक्ष्म अध्ययन किया होगा। योग-सांख्य तथा वैष्णव दर्शनों का भट्टनारायण को उत्तम ज्ञान था।^१ वैदिक यज्ञ-यागादि तथा लौकिक कर्मकाण्डों से भी वे भली-भाँति परिचित थे।^२ अर्थशास्त्र, कामशास्त्र तथा नीतिशास्त्रों का भी उनका ज्ञान प्रशंसनीय है।^३ नाटक में विविध छन्दों तथा अलंकारों के प्रयोग में कवि का छन्द तथा अलंकार के ग्रन्थों का पाण्डित्य झलकता है। भट्टनारायण ने नाट्यशास्त्र का गहन अध्ययन कर अपने नाटक 'वेणीसंहार' की रचना उसी के निर्देश पर की है। यही कारण है कि परवर्ती नाट्यशास्त्रकारों ने नाट्याङ्गों के उदाहरणों को प्रायः वेणीसंहार तथा रत्नावली से ही दिया है।

२. भट्टनारायण का काल

किसी कवि के काल को निर्धारित करने के लिए प्रायः दो तरीकों का आश्रय लिया जाता है—अन्तःसाक्ष्य तथा बाह्यसाक्ष्य। अन्तःसाक्ष्य से कवि का निश्चित समय या उसकी पूर्ववर्ती सीमा निर्धारित की जाती है। बाह्यसाक्ष्य से कवि की उत्तर एवं पूर्व सीमा दृढ़ की जाती है। कवि की कृति में वर्णित तत्त्वों को अन्तःसाक्ष्य तथा ग्रन्थों की कृतियों में उस कवि के विषय में वर्णित तत्त्वों को बाह्यसाक्ष्य कहते हैं।

वेणीसंहार में अन्तःसाक्ष्य का अभाव—दुर्भाग्य से वेणीसंहार नाटक के कर्ता ने अपने समसामयिक किसी राजा अथवा अपने पूर्ववर्ती किसी कवि या महान् घटना का उल्लेख नहीं किया है, जो उसके समय या उसके समय की पूर्ववर्ती सीमा को निर्धारित करने में सहायता करे। संस्कृत के तमाम नाटककारों एवं कवियों ने अपने पूर्ववर्ती नाटककारों एवं कवियों का उल्लेख किया है, किन्तु भट्टनारायण ने ऐसा कुछ भी नहीं किया है।

बाह्यसाक्ष्य के लिए प्रभूत सामग्री—विश्वप्रसिद्ध आलङ्कारिक आचार्य मम्मट ने अपने काव्यप्रकाश नामक ग्रन्थ में दर्जनों उदाहरणों को वेणीसंहार से उद्धृत किया है। मम्मट का काल ११०० ईस्वी के आस-पास माना गया है। अमरकोश के प्रसिद्ध टीकाकार क्षीरस्वामी ने भी अपनी टीका में वेणीसंहार के प्रयोगों को उद्धृत किया है। क्षीरस्वामी ११०० ईस्वी के पूर्वार्द्ध में उपस्थित

१. देखिये, १-२३, ४५, ४६ ॥

२. देखिये, १-२५।

३. देखिये, ३-२. ३; द्वितीय अङ्क तथा ५-३, ७ ॥

प्रस्तावना

१३

माने जाते हैं। भोजराज ने भी अपने 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में वेणीसंहार के कतिपय पद्यों को उद्धृत किया है। मोटे तौर पर इनका काल १०७० ईस्वी माना गया है। दशरूपक के रचयिता धनञ्जय ने भी अपने दशरूपक में 'वेणीसंहार' से उद्धरणों को प्रस्तुत किया है। धनञ्जय का काल १०वीं ईस्वी का उत्तर भाग माना जाता है। नवीं ईस्वी के उत्तरार्द्ध में वर्तमान ध्वन्यालोक के कर्ता प्रसिद्ध आलंकारिक आनन्दवर्धन ने भी अपने ग्रन्थ में इस नाटक से उदाहरण दिया है। वेणीसंहार से उद्धरण प्रस्तुत करनेवाले आलंकारिकों में सर्वाधिक प्राचीन हैं, 'काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति' के रचयिता वामन। वामन का काल ८०० ईस्वी का उत्तरार्द्ध निश्चित किया गया है। इन्होंने वेणीसंहार के 'पतितं वेत्स्यति स्त्रितां' (३।४१) वाक्य में 'वेत्स्यति' को 'व्याकरणानुकूलता सिद्ध की है। 'वेत्स्यति' में पदभंग करने से दो पद तैयार होते हैं—वेत्सि + अस्मि, और ये दोनों ही शुद्ध प्रयोग हैं। इससे कवि के प्रति वामन की श्रद्धा भी प्रतीत होती है।

अब यदि हम वेणीसंहार की प्रसिद्धि के लिए ५० वर्ष की अवधि रखें तो भट्टनारायण का काल ईसा की सप्तम शताब्दी का अन्त तथा अष्टम शताब्दी का प्रारम्भ निश्चित होता है। इस तथ्य का समर्थन इससे भी होता है कि महाकवि बाण ने हर्षचरित में अनेक कवियों का उल्लेख किया है, किन्तु इन्होंने भट्टनारायण की चर्चा नहीं की है। बाण हर्ष के समापण्डित थे। हर्ष का काल सातवीं ईस्वी का पूर्वार्द्ध है। अतः बाण के बाद ही भट्टनारायण का काल निश्चित किया जा सकता है। इस तरह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भट्टनारायण सातवीं ईस्वी की समाप्ति तथा आठवीं ईस्वी के प्रारम्भ में अवश्य उपस्थित थे।

३. भट्टनारायण की रचनाएँ

भट्टनारायण की अब तक हमें एक ही कृति 'वेणीसंहार' उपलब्ध है। सुमापितसंग्रहों में उनके नाम से जो-जो श्लोक उद्धृत हैं, वे सभी वेणीसंहार में नहीं मिलते। इससे प्रतीत होता है कि इनके और ग्रन्थ थे। यह भी सम्भव है कि वे सभी श्लोक इन भट्टनारायण के न होकर किसी अन्य भट्टनारायण के हों।

४. वेणीसंहार का नायक कौन है ?

बहुत दिनों से यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ है कि वेणीसंहार नाटक का नायक कौन है ? भोमसेन अथवा युधिष्ठिर। कुछ लोग इस उपाधि के लिए दुर्ध्वन की भी पीठ ठोकते हैं। यह एक बड़ी ही विचित्र बात है। यदि यह नाटक अंग्रेजी में होता तो सम्भवतः यह प्रश्न न उठता, क्योंकि वहाँ झूठी परम्परा के स्थान पर वास्तविकता को प्रथम स्थान दिया जाता है। किन्तु लकीर के फकीर बने हुए, भारतीय परम्परा तथा आलङ्कारिकों की मेढ़ियानकल करनेवाले भारतीय आलोचक पण्डितों की प्रतिभा का यह परिणाम है कि वे सत्य और यथार्थ को भी सीधे-सीधे न देखने के आदी हैं और न ही उसे प्रस्तुत करने के प्रति श्रद्धावान् हैं। अन्यथा इस प्रश्न को उठने का अवसर ही न मिलता—भोम सर्वसम्मत नायक होते। किसी नाटक का नायक निश्चित करने के लिए निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक है—

(क) नाटक का नाम (Title), (ख) प्रतिनायक, (ग) मुख्य कथावस्तु के साथ व्यक्ति का सम्बन्ध, (घ) नायिका, (ङ) प्रधान रस, (च) ग्रन्थ का आदि-अन्त भाग। यहाँ अब हम एक-एक तथ्य को लेकर नायक के निर्णय का प्रयास करेंगे।

(क) नाटक का नाम—किसी भी नाटक का नाम निरपेक्ष न होकर सापेक्ष हुआ करता है। यह नायक, नायिका तथा कथावस्तु पर आश्रित रहता है। उदाहरण के लिए 'अभिषानशाकुन्तलम्', 'मृच्छकटिकम्', 'मालविकाग्निमित्रम्', 'सुद्राक्षसम्' आदि नामों को देखा जा सकता है। इनमें प्रत्येक नाम नायक, नायिका तथा कथावस्तु से अविभाज्य सम्बन्ध रखता है। सभी नायक आदि के साथ ही सार्थक हैं। यही बात 'वेणीसंहार' के विषय में भी है। वेणीसंहार का अर्थ है—(खुली हुई) चोटो का सँवारना। जिस नाटक में (खुली हुई) चोटो सँवारी जाय उसका नाम है—'वेणीसंहारम्'। चोटो सँवारने के इस महान् कार्य को पूर्ण करने की प्रतिज्ञा कर उसे अन्त तक पूरी सफलता के साथ निवाहने वाला व्यक्ति भीम के अतिरिक्त कौन दूसरा थोड़ा है? किसने नाटक की नायिका, प्रेयसी के सामने प्रतिज्ञा की है—चञ्चल भुजाओं के द्वारा घुमाई गई अपनी गदा के प्रहार से दुर्योधन की जाँघों को तोड़कर तथा उसके गाढ़े रक्त से लिये अपने हाथों से यह भीम तुम्हारे केशों को बाँधेगा।^१ नाटक की समाप्ति पर युधिष्ठिर से यह किसने कहा है कि—'अभी महान् कर्तव्य बाकी है। सर्वप्रथम दुःशासन के द्वारा खींचे गये, द्रौपदी के केशपाश को दुर्योधन के रक्त से भीगे हुए इस हाथ से बाँधूँगा।^२ उत्तर स्पष्ट है—भीम ने। भीम ही एक ऐसे थोड़ा हैं जिन्होंने नाटक के आरम्भ से अन्त तक अपने आपको इस महान् कार्य में सौंप दिया है। अतः स्पष्ट है कि भीम ही नाटक के नायक हैं।

(ख) प्रतिनायक—नाटक के नायक और प्रतिनायक में स्वामाविक वैर होता है। वे परस्पर एक दूसरे का अपकार एवं बध भी करने के लिये सर्वदा तत्पर रहा करते हैं। कोई किसी को एक क्षण के लिये भी सहन करने के लिये तैयार नहीं दिखलाई पड़ता। बीच-बीच में प्रतिनायक का अपकार भी नायक के हाथों होता रहता है तथा अन्त में नायक प्रतिनायक का बध कर डालता है या सर्वदा के लिये उसे अपने वश में कर लेता है। इन सब दृष्टियों से विचार करने पर भी भीम ही नाटक के नायक सिद्ध होते हैं। यह श्रेय युधिष्ठिर या दुर्योधन को नहीं मिल पाता है। ये सारी घटनाएँ जहाँ एक ओर भीम को नायक सिद्ध करती हैं, वहीं दूसरी ओर दुर्योधन को प्रतिनायक भी प्रमाणित करती हैं।

१. 'चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघात—

सञ्चणितोर्युगलस्य सुयोधनस्य ।

स्थानापविद्धघनशोणितशोणपाणि—

रुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि भीमः' ॥१२१॥

२. 'भीमसेनः—सुमहदवशिष्टम् । संयच्छामि तावदनेन सुयोधनशोषितोक्षितेन पाणिना पाञ्चाल्या दुःशासनावकृष्टं केशहस्तम्' (पृ० ३१०)

(ग) मुख्य कथावस्तु के साथ व्यक्ति का सम्बन्ध—नाटक की समूची कथावस्तु नायक के इर्द-गिर्द घूमती रहती है। नायक नाटक के आदि से लेकर अन्त तक समय कथावस्तु पर छाया रहता है। वह सर्वदा दर्शकों की आँखों के सामने या तो वर्तमान रहता है या उसकी कृतियों उनके मानस में सञ्चरण करती रहती हैं। वह नाटक के प्रारम्भ होते ही अपने पूरे व्यक्तित्व के साथ रङ्गमञ्च पर विराजमान हो जाता है। उदाहरणार्थ 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' एवं 'मुद्राराक्षसम्' को देखा जा सकता है। इस तरह जब हम कथावस्तु के साथ व्यक्ति के सम्बन्ध पर विचार करते हैं तो युधिष्ठिर इस कसौटी पर बिलकुल दो टूक हो जाते हैं। उनका दर्शन केवल नाटक के षष्ठ अङ्क में ही होता है 'क्रोधज्योतिरिदं महत्कुरुवने यौधिष्ठिरं जृम्भते ॥ (१२४)' के अतिरिक्त उनका व्यक्तित्व कहीं भी दर्शकों के मानस को अपनी स्थिति का क्षेत्र नहीं बना पाता। दुर्योधन समूची कथावस्तु की दृष्टि से केवल प्रतिनायक ही सिद्ध किया जा सकता है। अतः कहना पड़ेगा कि भीम ही नाटक के नायक हैं।

(घ) नायिका—नाटक में नायक एवं नायिका का स्त्री-पुरुष-भाव सम्बन्ध होता है। एक पत्नी होती है, दूसरा उसका प्राणप्रिय पति। यद्यपि द्रौपदी युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव—इन पाँच व्यक्तियों की एक साथ पत्नी है। किन्तु नायिका का नायक के साथ जो स्पृहणीय स्त्री-पुरुष-भाव सम्बन्ध होता है, वह तो उसका एक मात्र भीम के ही साथ है। वह एकमात्र उन्हें ही 'नाथ' एवं 'आर्यपुत्र' इन आदरणीय शब्दों से अभिहित करती है^१। नायिका अपने पति नायक को ही इन शब्दों से सम्बोधित करती है, अन्यो को नहीं। नाटक के छठे अङ्क में द्रौपदी युधिष्ठिर के साथ मञ्च पर आती है। उन दोनों में परस्पर बात-चीत भी काफी देर तक चलती है। युधिष्ठिर द्रौपदी के प्रति पर्याप्त चाटुकारिता एवं जनखागिरी का प्रदर्शन करते हैं। किन्तु द्रौपदी मूलकर एक बार भी उन्हें एक 'नाथ' नहीं कहती है। 'आर्यपुत्र' कह कर नहीं पुकारती है। वेणोसंहार—चोटी सँवारना—रूप इस कार्य में आदि अङ्क से लेकर अन्त तक भीम के ही साथ द्रौपदी का सम्बन्ध है। द्रौपदी भीम के ही हाथों नायिका का सच्चा दुलार पाती है। ऐसी अवस्था में भीम के अतिरिक्त दूसरा कौन नाटक में भी नायक हो सकता है ?

(ङ) प्रधान रस—नाटक में शृंगार अथवा वीर में से कोई एक रस प्रधान रूप से रहता है।^२ वेणोसंहार वीर रस प्रधान नाटक है। इसके रंग-रंग में वीरता की नदी हिलोरे ले रही है। वीर रस प्रधान नाटक के नायक तथा प्रतिनायक—दोनों—ही वीर होने चाहिए। हाँ यह बात दूसरी है कि प्रतिनायक को अपेक्षा नायक कुछ प्रबल अवश्य होता है। इस दृष्टि से विचार करने पर कायरता, विलासिता तथा स्त्रीचाटुकारिता के प्रतिनिधि युधिष्ठिर कथमपि नाटक के नायक नहीं हो सकते। ऐसी अवस्था में दुर्योधन को प्रतिनायक तथा भीम को नाटक का नायक मानना ही

१. नाथ, न लज्जन्ते पते। त्वमपि तावन्मा त्रिस्माभिः। (पृ० ३०) तथा षष्ठ अङ्क भी देखिये।

२. एक एक मवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा (साहित्यदर्पण ६।१०)

पड़ेगा। वेणीसंहार जैसे नाटक के लिये वीरता की साक्षात् मूर्ति भीम के अतिरिक्त दूसरा कौन ना समीचीन हो सकता है ?

(च) ग्रन्थ का आदि-अन्त भाग—‘मुद्राराक्षसम्’ में चाणक्य की भाँति प्रस्तावना के साथ होते ही गरजते हुए भीम प्रथम अङ्क में ही मंच पर प्रवेश करते हैं। वे द्रौपदी को सान्त्वना देते प्रतिज्ञा करते हैं कि—‘दुर्योधन को जोंघों को तोड़ कर उसके रक्त से तुम्हारी चोटो सँवारूँगा।’ अङ्क में इस प्रतिज्ञा को पूर्ण करके उन्होंने कहा भी है—‘स्मरति भवती यन्मयोक्तम् (‘चञ्चुज-१।२१ इत्यादि पठति)।’ वे नाटक में आदि से अन्त तक या तो दर्शकों की आँखों के सामने अकर्तव्य को पूर्ण करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं, अथवा वे उनके (दर्शकों) के मानस में बराबर छा रहते हैं। युधिष्ठिर केवल अतिशायन चर्चा के अतिरिक्त छठे अङ्क में ही मंच पर अपना नपुंसक दर्श देते हैं। अतः निश्चित है कि भीम ही नाटक के नायक हैं, युधिष्ठिर नहीं।

यद्यपि भरतवाक्य को लेकर कुछ लोग युधिष्ठिर को नाटक का नायक सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। किन्तु यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि एकमात्र ‘भरतवाक्य’ के भरोसे ही नायक का निर्णय उत्तम निर्णय न होगा। इसके अतिरिक्त दूसरी बात यह है कि सभी नाटकों में केवल नायक ‘भरतवाक्य’ कहता हा ऐसी बात नहीं है। नाटक के अन्त में भरतवाक्य होता है किन्तु उसे केवल नायक ही कहता है, यह ऐकान्तिक निर्णय नहीं है।

नाटककार भीम को ही नाटक का नायक मानता है। यही कारण है कि उसने आदि अन्ततक भीम के चरित का वीरता से मण्डित किया है। हमारे इस कथन की प्रामाणिकता नाटककार के द्वारा महाभारत की मूल कथा में किये गये उस परिवर्तन से भी होता है जिसके अनुसार भीम जल के भीतर छिपे हुए दुर्योधन का युद्धार्थ ललकारते हैं। महाभारत में यह कार्य युधिष्ठिर के द्वारा किया गया है। यदि नाटककार युधिष्ठिर को ही नायक बनाना चाहता तो वह मूल कथा में इस तरह का परिवर्तन कदापि न करता। अतः निश्चय है कि भट्टनारायण का भी यहाँ सुस्पष्ट अभिमत कि भीम ही नाटक के नायक हैं।

इतने विवेचन से कदाचित् अब किसी भी विचारक को यह सन्देह करने का अवसर नहीं पड़ा होगा कि नाटक का नायक कौन है ?

५. कवि के द्वारा महाभारत की मूल कथा में परिवर्तन, परिवर्धन और उसका नाटकीय प्रभाव

महाकवि भट्टनारायण ने अपने नाटक का उज्जीव्य महाभारत को बनया है। उन्होंने महाभारत की समग्र कथा को छः अङ्कों के इस नाटक में पूरी सफलता के साथ समेटने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। इस नाटक में दुर्योधन की पत्नी भानुमती को छोड़कर बाकी सभी प्रधान पात्र महाभारत से लिये गये हैं। नाटक की सारी प्रधान घटनाएँ महाभारत की ही हैं। हाँ यत्र-तत्र नाटकीयता की दृष्टि से कवि ने उनमें परिवर्तन परिवर्धन अवश्य किया है। किन्तु यह परिवर्तन अतिमहान् परिवर्तन न

प्रस्तावना

१७

कहा जा सकता है। महाभारत की अति प्रसिद्ध घटना को उपजीव्य बनाने के बाद भट्टनारायण न तो मूल कथा में महान् परिवर्तन कर सकते थे और न किसी पात्र के जीवन को ही अपूर्वता से मण्डित कर सकते थे। उन्हें एक परिधि के अन्दर ही कथानक में नाटकीयता भरनी थी। ऐसा करने में कवि को कभी-कभी न चाहते हुए भी, कुछ अनावश्यक घटनाओं का वर्णन करना पड़ा है, जिससे कथावस्तु बोझिल अतः शिथिल हो गया है। किन्तु महाभारत की उदात्त कथा वस्तु के कारण नाटक को कुछ सीमा तक सफलता भी मिली है।

कथानक में किये गये परिवर्तन—(क) वेणोसंहार के प्रथम अंक में पाँच गावों की शर्त पर सन्धि का प्रस्ताव लेकर भगवान् श्रीकृष्ण दुर्योधन के पास जाते हैं। दुर्योधन उनकी बात न मानकर उन्हें गिरफ्तार कर लेने का प्रयास करता है, परन्तु वह अपने विश्वरूप को दिखाकर उसे अभिभूत कर देते हैं। महाभारत में प्रथमतः पाँच गावों की शर्त पर सन्धि का प्रस्ताव सञ्जय के माध्यम से किया गया है। उसके विफल होने पर भगवान् श्रीकृष्ण सन्धि कराने का प्रयास करते हैं। दुर्योधन श्रीकृष्ण को पकड़ने का षड्यन्त्र करता है, किन्तु पता चलने पर धृतराष्ट्र उसे डाटते हैं, महाभारत में भगवान् श्रीकृष्ण ने विश्वरूप का प्रदर्शन दुर्योधन पर अपना रोव जमाने के ख्याल से किया है, न कि उसके पकड़ने के प्रयास को विफल करने के लिये। सम्भवतः भट्टनारायण ने इस परिवर्तन को कथावस्तु को सज्जित करने के साथ ही साथ दुर्योधन की दुष्टता को उग्रता प्रदान करने के लिये ही किया है।

(ख) नाटक के तृतीय अंक में आचार्य द्रोण की मृत्यु के पश्चात् कर्ण के द्वारा आचार्य की निन्दा करने पर अश्वत्थामा एवं कर्ण के बीच कलह होता है। किन्तु महाभारत में यह कलह, आचार्य कृप एवं कर्ण के बीच प्रारम्भ होता है जिसे बाद में अश्वत्थामा अपने ऊपर ले लेता है। महाभारत में यह कलह द्रोणाचार्य की मृत्यु के पूर्व ही होता है।

(ग) महाभारत में चार्वाक राजस उस समय युधिष्ठिर की समा में प्रवेश करता है, जबकि युधिष्ठिर हस्तिनापुर में प्रवेश कर चुके हैं। यहाँ चार्वाक का उद्देश्य युधिष्ठिर की निन्दा करना है। परन्तु नाटक में मुनिवैषधारी चार्वाक के साथ युधिष्ठिर की भेंट पहले ही दिखाई गई है। नाटक में चार्वाक की पहले ही अवतारणा नाटक के घटना-क्रम को एक नवीन मोड़ देने के लिये की गई है।

(घ) महाभारत में जल के अन्दर छिपे हुए दुर्योधन को युद्ध के लिये ललकारने तथा पाँच पाण्डवों में किसी एक से युद्ध करने की बात युधिष्ठिर के द्वारा कराई गई है, किन्तु नाटक में यह दोनों ही कार्य भीम के द्वारा सम्पन्न कराया गया है, जबकि युधिष्ठिर अन्य स्थान पर हैं। यह कहना इस बात की स्पष्टता के लिये है कि नाटक का नायक युधिष्ठिर नहीं भीम हैं। इसका दूसरा कारण चार्वाक को अपना अमोक्षित पूरा करने का मौका देना भी है, जो नाटक में एक गति ला देता है, दशक की उत्सुकता तथा हृदय की धड़कन को बढ़ा देता है।

कथावस्तु में कवि की नवीन कल्पनाएँ—भट्टनारायण ने अपने नाटक में नाटकीयता को इष्टि से मूल कथानक में कुछ हेर फेर ही नहीं किया है, अपितु उन्होंने कतिपय नूतन कल्पनाएँ भी

की हैं। सर्वप्रथम द्रौपदी के वेणीसंहार की घटना, जिस पर नाटक का नाम पड़ा है, कवि की अप्रत्याशित नवीन कल्पना है, महाभारत में दुर्योधन की जाँघों को तोड़ने की प्रतिज्ञा भीम ने अवश्य की है किन्तु उसके रक्त से द्रौपदी के बालों को सँवारने की बात वहाँ नहीं है। प्रथम अङ्क में दुर्योधन युवक स्त्री भानुमती के द्वारा द्रौपदी से केश बाँधने के विषय में किये गये प्रश्न की घटना भी कवि के कथनों के काल्पनिक उद्भावना है। भानुमतो, पाञ्चालक, सुन्दरक, रुधिरप्रिय राक्षस तथा उसकी पत्नी, कञ्चुकी के काल्पनिक चोटी एवं सखी आदि अन्य छोटे पात्र कवि की अपनी मौलिक रचना हैं।

नाटकीय दृष्टि से परिवर्तनों का प्रभाव

महाकवि भट्टनारायण ने महाभारत के विशाल कलेवर को, कुछ परिवर्तनों एवं परिवर्धनों के साथ, एक मध्यमकाय नाटक में सजाने का जो प्रयास किया है, वह स्तुत्य है। मूल कथानक के नाटकीय व्यापार प्रदान करने के लिए, उसे प्रभावपूर्ण बनाने के लिए, कवि को नूतन उद्भावना वस्तुतः नाटक में रोचकता तथा गति प्रदान करती हैं। उनसे पात्रों के चरित्र में वैशिष्ट्य आ जाता है।

महाभारत में अलग-अलग वर्णित संजय और कृष्ण के सन्धि प्रयास को संक्षिप्त करके जहाँ एक ओर कवि ने मूल कथानक को स्वल्पाकार किया है, वहीं उन्होंने नाटक के नामकरण तथा उसके व्युत्पत्ति की भूमिका भी तैयार कर ली है। इससे भीम, युधिष्ठिर, दुर्योधन तथा द्रौपदी के चरित्र की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त अवसर भी मिल गया है। दुर्योधन की पत्नी भानुमती के द्वारा द्रौपदी के प्रति उपालम्भ पूर्वक चोटी न बाँधने के विषय में किया गया प्रश्न, जो कवि की अपनी कल्पना है, भीम के क्रोधरूपी बारूद को भड़काने में भाग का कार्य करता है। यही प्रश्न शत्रु-संहार द्वारा 'वेणीसंहार' रूप फल का बीज सिद्ध हुआ है।

दूसरे अङ्क में भानुमती के स्वप्न-दर्शन तथा वात्या द्वारा रथ की पताका के टूटने से भाव घटनाओं की सूचना मिलती है। इस अंक में बालोद्यान की घटना जहाँ एक ओर कर्कश परिस्थितियों में कोमलता की सृष्टि कर दर्शकों की मानसिक स्थिति को बदलकर रोचकता प्रदान करने की चेष्टा 'वहाँ उससे दुर्योधन के कमजोर व्यावहारिक दृष्टि से हीन चरित्र को दर्शकों के सामने लाकर उसकी विलासिता प्रकट की जाती है। इस अङ्क में कञ्चुकी के द्वारा 'भग्नं भग्नम्' आदि कथनों 'पताकास्थानक' की योजना ने नाटकीय स्थिति उत्पन्न कर दी है।

तृतीय अङ्क के प्रवेशक में राक्षस और राक्षसी की अवतारणाकर कवि ने महाभारत-युद्ध की अति मीषणता^१ प्रदर्शित करते हुए द्रोणाचार्य, घटोत्कच तथा जयद्रथ आदि वीरों के वध की सूचना दे दी है। वहीं पर उसने भीम के शरीर में प्रविष्ट राक्षसों के द्वारा दुःशासन के रक्तपान की बात बतलाकर भीम के चरित्र की रक्षा भी की है, उसे जघन्य होने से बचाया है।

१. 'यदि सिन्धुराजवधदिवस इव दिवसे दिवसे समरकर्म पतिपथतेऽर्जुनस्ततः...' ॥' (पृ० ९८

आचार्य द्रोण का शिर अनाथ के शिर की तरह, काट लिया गया। उस पर उनके तेजस्वी वीर युवक पुत्र अश्वत्थामा ने शत्रुओं का सफाया क्यों नहीं किया? उसने भीम से दुःशासन की रक्षा क्यों नहीं की? पाठकों एवं दर्शकों की इस जिज्ञासा का समाधान करने के लिए कर्ण एवं अश्वत्थामा के कलह तथा दुर्योधन को कर्ण के प्रति पञ्चातपूर्ण व्यवहार, अश्वत्थामा के शस्त्र त्याग तथा आकाश-वाणी के द्वारा अश्वत्थामा के पुनः शस्त्र-ग्रहण की इच्छा को रोकने की बात दिखलाकर कवि ने अश्वत्थामा के चरित्र को बहुत ही अधिक उदात्त एवं अनुकरणीय बना दिया है। वह सच्चा पुत्र तथा अनुकरणीय स्वामिमत्त भी है।

नाटक का चतुर्थ अंक नाटकीय दृष्टि से नीरस तथा बोझिल हो गया है। लम्बे-लम्बे समास तथा बड़े-बड़े वाक्य पाठक एवं दर्शक को ऊँचा देने वाले हैं। कवि ने इस अङ्क में महाभारत के अंश को समेटने का सफल प्रयास किया है।

पञ्चम अंक कवि की अपनी नवीन उद्भावना है। इस अंक से न तो कथा आगे बढ़ती है और न नाटकीय व्यापार को ही गति मिलती है, किन्तु इसे धृतराष्ट्र तथा गान्धारी की वात्सल्य-भावना, दुर्योधन का स्वामिमान एवं मित्र कर्ण के प्रति प्रेमभावना एवं अश्वत्थामा के आत्मामिमान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है।

कवि ने छठे अंक में भीम के द्वारा दुर्योधन का तर्जन तथा द्रुपद-युद्ध का प्रस्ताव कराकर बिलकुल उचित किया है। वस्तुतः नाटक में भीम और युधिष्ठिर ही समग्र नाटकीय-व्यापार के केन्द्रबिन्दु हैं। उधर भीम को युद्ध में फँसाकर इधर चर्चा और युधिष्ठिर का सन्वाद कराकर कवि ने बहुत ही उचित किया है। इससे जहाँ एक ओर युधिष्ठिर के भ्रातृ प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए अवसर मिला है। वहीं भीम को नाटक का निर्विवाद नायक होने का सुयोग भी प्राप्त हुआ है। वीररस में करुण की यह अपत्याशित योजना सचमुच इस नाटक के मूल्य को बढ़ा देती है। दर्शक उतावला हो उठता है नाटक का अन्त देखने के लिए। यही तो आखिर नाटक की उपयोगिता है।

६. पात्रों का चरित्र-चित्रण

पात्रों के चरित्र का समुचित चित्रण नाटक का यदि प्राण नहीं तो हृदय अवश्य है। समुचित चरित्र-चित्रण के बिना नाटक सर्वाङ्गपूर्ण होने पर भी दर्शक या पाठक के लिए या तो बिलकुल उपादेय नहीं रह जाता है या उसकी उपादेयता नाममात्र की होती है। चरित्रचित्रण की दृष्टि से इस नाटक के समक्ष केवल 'मुद्राराक्षस' की ही रक्वा जा सकता है। विशाखदत्त की तरह मट्टनारायण ने भी पात्रों के चरित्रों के विकास को एक नवीन ढङ्ग से चित्रित करने का सफल प्रयास किया है। इस नाटक में सभी प्रमुख पात्र द्रुपद-रूप से चित्रित हुए हैं। पात्रों के चरित्र का विकास प्रतिद्वन्द्वी के विरोध और संघर्ष में हुआ है। भीम और दुर्योधन, कर्ण और अश्वत्थामा, द्रौपदी और मानुमती एक-दूसरे के द्वन्द्व के रूप में चित्रित हैं। धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर भी चारित्रिक दृष्टि से परस्पर एकदम मित्र हैं, पूर्व और पश्चिम हैं।

भीमसेन

नाटक के नायक भीमसेन शारीरिक शक्ति तथा आन्तरिक दृढता के मूर्तस्वरूप हैं। उनके जीवन का आदर्श है—‘ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्’ (गीता) जो मेरे साथ जैसा व्यवहार करेगा मैं भी उसका प्रतिकार उसी रूप से करूँगा (Tit for tat) अपने बल एवं पौरुष का इतना महान् हिमायती संसार के इतिहास में विरला व्यक्ति ही होगा। वे सागर के सदृश विशाल शत्रुवाहनी को केले मयने को हिम्मत रखते हैं। शत्रुओं के साथ वैर उन्होंने माश्यों के बल पर नहीं अपने बल पर किया है।^१

नाटक के प्रथम अंक के आरम्भ में ही वे मञ्च पर दर्शकों के सामने आते हैं। उनकी दृष्टि दुर्योधन और उसके भाइयों के अत्याचार अपनी चरमसीमा पर पहुँच चुके हैं। दुर्योधन के द्वारा लाक्षागृह में आग लगवाना, विषमिश्रित भोजन दिलाना, द्यूत में कपटपूर्वक हराना तथा द्रौपदी के केश और वस्त्र को खिचवाना—आदि बातें उनके हृदय में कोटे की तरह कसक रही हैं। उन्होंने यह दृढ़ निश्चय कर लिया है कि—धृतराष्ट्र के पुत्र मेरे जीते जी सकुशल नहीं रह सकते। युधिष्ठिर ने सन्धि के प्रस्ताव के साथ श्रीकृष्ण को दुर्योधन के पास भेजा है। यह बात भीम के लिए एकदम असह्य है। इसे सुनते ही भीम क्रोध के मारे धधकने लगते हैं। उनकी आँखें चढ़ जाती हैं, भृकुटियाँ तन जाती हैं। सामान्य व्यक्ति उनके इस क्रुद्ध रूप को देखने का साहस भी नहीं कर सकता।^३ युधिष्ठिर शान्ति चाहते हैं। अन्य सभी भाई उनके इस शान्ति-प्रस्ताव के समक्ष शान्त हैं, मौन हैं। किन्तु यह बात भीम को अच्छी नहीं लगती। वे सश्रद्ध से साफ साफ कह देते हैं—‘आज से मैं आप लोगों से अलग हो गया। आप लोग सन्धि करें मैं उसे नहीं मानता।’^५ दृष्ट शत्रुओं के प्रति शान्ति की बात वे क्षत्रिय धर्म के विपरीत मानते हैं, नपुंसकता का प्रतीक समझते हैं।^६ यही कारण है कि वे युधिष्ठिर के लिए स्पष्ट रूप से कहलवा देते हैं—‘आपके आदेश को न मानने के कारण मुझे भले ही पातक लगे, छोटे भाइयों की गोछी में भले ही मेरी निन्दा की जाय, किन्तु पूर्वक गदा उठाकर शत्रुओं का विनाश करते हुए आज एक दिन के लिये न तो आप मेरे बड़े भैया और न मैं ही आपका आशाकारी लघु बन्धु हूँ।’^७ कौरवों तथा भीम के बीच जो सौप-नेवले का सम्बन्ध है, वह सर्वजन विदित है।^८ वे अर्धर हैं—युद्ध में कौरवों का विनाश करने के लिए,

१. प्रवृद्धं यद्वरं मम खलु शिशोरेव कुरुभिर्न तत्रायौ हेतुर्न भवति किरीटो न च युवाम् ॥११२०॥
२. स्वस्था भवन्ति मयि जीवति धार्तराष्ट्राः ॥१-८॥
३. देखिये, पृष्ठ।
४. ‘अत एवाहमद्यप्रभृति भिन्नो भवद्भ्यः।’ (५०)
५. ‘क्रुधा सन्धि भीमो विषटयति यूयं वटयत ॥’ १-१०॥
६. देखिये, १-१३ ॥
७. देखिये, १-१२ ॥
८. ‘अपनेष्यति ते मन्युं नित्यानुबद्धकुरुवैरः कुमारो भीमसेनः।’ (५०)

२४०
च. ६

प्रस्तावना

८८८७५

२१

शासन की छाती फाड़ कर उसका रक्त पीने के लिए तथा गदा के प्रहार से दुर्योधन की जानों को बचाने के लिए।^१

प्रथम अंक में ही भीम क्रोध से आगबबुला हुए बैठे हैं। द्रौपदी उनके सामने आती है। उसकी ओर एवं दुःखी अवस्था को देखकर भीम का वीर हृदय तिलमिला उठता है। वे प्रिया द्रौपदी को डाँटते देते हुए प्रतिष्ठा करते हैं—‘हे देवि, अति शीघ्र ही, अपनी चञ्चल भुजाओं के द्वारा दुमाई गयी गदा के प्रहार से टूटी जानों वाले दुर्योधन के गाढ़े रक्त से सने हुये अपने हाथों से भीम तुम्हारे दुश्मनों को सँवारेगा, दुलारेगा, संहृत करेगा।’^२ नाटक के प्रथम अंक में की गयी अपनी इस प्रतिष्ठा को उन्होंने जब तक पूरी न कर लिया, दम न लिया, शान्ति न धारण की। वेणीसंहार नाटक का नामकरण उनकी इसी प्रतिष्ठा से आद्योपान्त सम्बन्ध रखता है।

भीम वीर हैं, वृककर्मा हैं (With deedes like those of a wolf) शत्रुनिहन्ता हैं। अतः भीम भी शालीन हैं। प्रथम अंक में द्रौपदी आकर भीम के बगल में खड़ी है। क्रोध के आवेश में उन्होंने उसे नहीं देखा। पता चलने पर वे पश्चात्ताप करते हैं।^३ युधिष्ठिर के कारण उन्हें बड़े-बड़े क्षय उठाने पड़ते हैं, जुएँ में हार दिये जाने पर विराट् की चमकी करते हैं, किन्तु अपने धर्म को नहीं छोड़ते। जब तक मानव-प्रकृति सहन कर सकती है, वे भी सहते हैं, युधिष्ठिर का पूरे हृदय से अनुवर्तन करते हैं। किन्तु युधिष्ठिर जब चारों तरफ से आग्नि नृपसकता प्रदर्शित करते हैं तो उनकी प्रकृति बर्दाश्त करने से इन्कार कर देती है। युधिष्ठिर ने पश्चम अंक में धृतराष्ट्र तथा गान्धारी के अपि ऐसा व्यवहार करते हैं, जो कुछ खटकने वाला प्रतीत होता है। किन्तु यह तो उनकी ‘जैसे मैंने को तैसा’ करने की प्रकृति का परिणाम है।

श्रीकृष्ण को वे पूर्ण ब्रह्म के रूप में देखते हैं। उनके प्रति सम्मान एवं श्रद्धाभाव रखते हैं।^४ बड़ी से बड़ी विपत्तियों को झेलते हुये अरण्य में माँ कुन्ती तथा द्रौपदी एवं चारों मास्यों की दुष्टों से रक्षा करना भीम के अतिरिक्त मला किस दूसरे व्यक्ति के वश की बात हो सकती है? डुल मिठाकर वे इस नाटक के एक ऐसे धीरोद्धत नायक हैं, जो वस्तुतः मानव-समाज में खप जाते हैं, कमी-कमी ले मिलते हैं और मानवों के अपने सच्चरित्र व्यक्ति प्रतीत होते हैं।

दुर्योधन

नाटक का प्रतिनायक दुर्योधन महान् दम्मी, अद्वितीय विलासी, विलक्षण स्वार्थी तथा विवेक में वामन व्यक्ति है। जिनके सहारे उसने त्रिलोकी को तुच्छ समझ रक्खा था, वे द्रोण और भीम समग्राम में शत्रुओं के द्वारा मारे जा चुके हैं। उसकी विशाल वाहिनियों को अजुन एवं भीम ने मथ

१. देखिये, १-१५ ॥

२. देखिये, १-२१ ॥

३. ‘देवि समुद्धनामपैरस्माभिरागतापि भवतो नोपलक्षिता। अतो न मन्युं कर्तुमर्हसि (५० ३८)

४. देखिये, १-२३ ॥

हाला है ।^१ फिर भी दुःशासन को पकड़ कर धर दबोचे हैं । कौरव-सेना किर्तव्यविमूढ़, स्तब्ध खड़ी है । भीम का छोटा भाई वीर अर्जुन धनुष पर बाण चढ़ाये खड़ा है कि कहीं से कोई व्यक्ति बड़े भैया भीम की प्रतिज्ञा पूरी करने में विघ्न न करे ।^२ फिर दुर्योधन की ललकार है कि—
 मैं शस्त्र लिये हुए मेरे जीते जी दुष्ट वायु पुत्र भीम अथवा किनी अन्य को क्या शक्ति है कि दुर्योधन वत्स दुःशासन को छाया भी छू सके । उसका यह दम्भ खोखला है, असत्य है, निष्प्रयोजन भूमि उसके सामने उसके लघु भाई दुःशासन की छाती जीवित अवस्था में ही फाड़ी जातो है, किन्तु कुछ बिगाड़ नहीं पाता । उसका यह अभिमान द्वितीय अङ्क में जयद्रथ के वध की चर्चा के प्रसंग में तथा अन्यत्र भी बहुत देखने को मिलता है ।

महाभारत अपने पूरे वेग से चल रहा है । महारथी भीष्म मारे जा चुके हैं । अर्जुन ने जयद्रथ के वध की प्रतिज्ञा की है । शत्रुओं के द्वारा प्रतिदिन कौरव सैन्य विनष्ट किया जा रहा है । फिर दुर्योधन निश्चिन्त है । विलास-मग्न है । वाटिका में अपनी प्रेयसी के साथ आमोद-प्रमोद प्रसङ्ग भूमिका तैयार कर रहा है । उसको हार्दिक अभिष्टा है कि वह प्रिया के साथ स्वेच्छ विहार व रास रचाये, अपनी जाँघों पर प्यारों के अधखुले जघनस्थल को बैठाये ।^४ वस्तुतः नाटककार ने मित्र प्रसङ्ग की कल्पना कर दुर्योधन के सच्चे एवं दूषित व्यक्तित्व को पूर्णतया खोलकर पाठकों एवं दर्शकों के समक्ष रखने का प्रयास किया है । आचार्य मम्मट भले ही इसे 'अकण्डे प्रथनम्' कहें किन्तु समा में द्रौपदी को नग्न कर अपनी जाँघों पर बैठाने का प्रयास करने वाले दुर्योधन के सच्चे चित्त को खोलने का यह अवसर उचित भी है ।

स्वार्थ तो दुर्योधन में कूट कूटकर भरा है । अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये समूचे विश्व को बलिदान करने में भी शायद उसे हिचक नहीं हो सकती है । युद्धकला के परम विशारद भीष्मपितामह को मारकर बाणों पर सुला दिये गये । किन्तु दुर्योधन को कोई चिन्ता नहीं है, अपनी बाण-विद्या घटाने के लिये त्रिलोकी को वशीभूत करने वाले आचार्य द्रौण मर चुके हैं, फिर भी दुर्योधन का मन जरा भी सन्न नहीं हुआ है । उनके लिये शोक करने के स्थान पर वह उनकी निन्दा कर रहा है । और तो उसकी छोटी बहन दुःशला ने युवा पति जयद्रथ को कल सूर्यास्त के पहले मारने की प्रतिज्ञा अर्जुन की है—यह सुनकर भी वह चिन्तित तथा कुछ खास तथ्य नहीं दिखलाई पड़ता है ।

शासक स्वतः विवेक के अन्धे व्यक्ति होते हैं । उन्हें योग्य तथा अयोग्य का ज्ञान ठीक ठीक नहीं हो पाता । ठीक यही बात दुर्योधन के विषय में भी लागू होती है । विवेक तो जैसे उसके पल्ले पर ही नहीं है । दुष्ट एवं मलिनाशय कर्ण तथा शकुनि आदि जो कुछ उसे सलाह दे देते हैं, वही वह

१. "राजन् कौरवनाय, अभीष्मद्रोणं सम्पत्तिं कौरवबलमालोडयन्तौ भीमार्जुनौ..." (५० २०२)

२. "एव भ्रातुः प्रतिज्ञाङ्गभीरुः किरीटी समं दुर्योधनराधेयी शरवर्षैरभिद्रवति ।" (५० २०२)

३. देखिये, ५० २०२ ।

४. देखिये, ५० १००, ११० ।

५. आ शस्त्रप्रवृत्त्यादकुण्ठरशोस्तस्यापि जेता मुने—

स्तापायास्य न पाण्डुमुनुमिरयं भीष्मः शरैः शायितः ॥ २ । २ ॥

प्रस्तावना

२३

मरता है, सही मानता है, गुरु-मन्त्र समझता है। यही कारण है कि वह एक के बाद दूसरा अनर्थ करता है। द्रोण मर चुके हैं। उनका सुयोग्य पुत्र अश्वत्थामा पिता के उत्तरदायित्व को समालने के लिये तत्पर है। किन्तु कर्ण के लिये दुर्योधन उसको ठुकरा देता है। फल सामने है। कर्ण मरता है। दुर्योधन विनष्ट होता है। दुर्योधन की यह विवेक-शून्यता ही उसके स्वर्णिम कल्पनिक प्रासाद को भिन्नासित करा देती है, मिट्टी में मिला देती है।

यद्यपि दुर्योधन में दोषों की ही मात्रा अधिक है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उसमें कुछ अच्छे गुण हैं ही नहीं। वह युधिष्ठिर की तरह अपने भाइयों का रनेही अग्रज है। कृष्ण की तरह एककी मित्रतावाला व्यक्ति है। भाइयों तथा मित्रों के अभाव में वह न तो राज्य चाहता है, न उसे जीवित रहने की ही अमिलाषा है। कर्ण एवं दुःशासन के मारे जाने पर उसके इन दृढ़ भावों को फिस्पष्टतः देखा जा सकता है। पञ्चम अङ्क में धृतराष्ट्र, गान्धारी तथा सञ्जय के साथ हुये वार्तालाप के प्रसंग में उसकी वीरता तथा राजनीतिज्ञता देखी जा सकती है।

वस्तुतः दुर्योधन उतना बुरा व्यक्ति नहीं है, जितना कि उसे समझा जाता है। यदि उसे अच्छे मित्र एवं बन्धु मिले होते तो कदाचित् वह एक अच्छा राजा बन सका होता।

युधिष्ठिर

‘वेणीसंहार’ में युधिष्ठिर का जो चरित्र-चित्रित हुआ है, उसे कुछ प्रशस्त नहीं कहा जा सकता। जिस रूप में वे दर्शकों के सामने या बुद्धि में आते हैं, वह रूप किसी वीर क्षत्रिय का नहीं कहा जा सकता। नाटक के अन्तिम अङ्क में वे द्रौपदी के साथ मञ्च पर आते हैं। अङ्क के आरम्भ में उनका जो व्यक्तित्व उभरा है। वह अवश्य सामान्य व्यक्ति के व्यक्तित्व जैसा है। किन्तु जैसे-जैसे अङ्क का घटनाचक्र आगे बढ़ता जाता है वैसे वैसे उनका जोकरी एवं नपुंसक रूप दर्शकों के सामने खुलने लगता है और एक स्थान ऐसा भी आता है जब वे कहते हैं—‘श्री पाञ्चालराज की पुत्री.....जैसे ही अग्नि प्रज्ज्वलित होता है वैसे ही हम आग में जलकर बन्धु-जनों का सम्मान करेंगे।’^१ इस प्रसङ्ग को देखकर सचमुच लज्जा से शिर झुक जाता है।^२ केवल इस अंश की ही तुलना करने पर दुर्योधन युधिष्ठिर से योग्य एवं आदरणीय व्यक्ति मिलता है। जो भी कुछ हो, युधिष्ठिर के चरित्र में आदरणीय एवं सुयोग्य बातें बहुत ही कम मिलेंगी। नाटक की दृष्टि से उनके चरित्र में कोई वैशिष्ट्य नहीं है।

अश्वत्थामा

अश्वत्थामा आचार्य द्रोण का पुत्र है। वह धनुर्धर पिता का धनुर्धर सुत है। पिता ने अपनी सुयोग्य विद्या का उसे अच्छा दान दिया है। आचार्य द्रोण की सारी विद्या उसे पाकर सफल है। वह अपने पिता का भक्त पुत्र तथा श्रद्धालु छात्र है। उसे अपने पिता के अतुल पौरुष पर अविचल विश्वास

१. ‘अयि पाञ्चालराजतनये, ...यथा सन्दीप्यते पावकस्तथा सहितौ एव बन्धुजनं संभावयावः।’

(पृ०)।

२. देखिये, ३-७, ८ ॥

है। उसकी यह दृढ़ धारणा है कि संसार की कोई भी शक्ति शौच के खजाने उसके पिता का भी नहीं बिगाड़ सकती है। वे सभी धनुर्धारियों के गुरु हैं। उनके रहते किसी तरह का भय उपस्थित हो सकता। मृत्यु भी उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकती। महाप्रलय के अतिरिक्त अन्य भी भौति उनकी मृत्यु नहीं सम्भव है।

वह अपने पिता के प्रति इतना बड़ा श्रद्धालु है कि उसे उनके बिना एक क्षण भी जीवित सम्भव नहीं है। वह अति शीघ्र शरीर छोड़ कर स्वर्ग में पिता से मिलने के लिये तत्पर हो है।^१ आचार्य रूप उसे समझाते-बुझाते हैं। वह एकमात्र इसी कारण से जीवित रहना पसन्द है कि उसे अपने पिता के शत्रुओं का इस भूतल से सफाया करना है। किन्तु दुर्योधन के अति तथा मूर्खता एवं अपने पिता के निन्दक कर्ण के प्रति उसके पक्षपात को देखकर वह अस्व-त्याग देता है।^२

अश्वत्थामा का स्वर्ग एवं शास्त्रों में विश्वास है। वह धर्मभीरु भी है। वह अपने आश्रयदाता अन्न का उपभोग, निष्ठापूर्वक अपने कर्तव्य का निर्वाह कर करना चाहता है। भीम ने दुःशासन धर दबोचा है। वे अब उसकी छाती फाड़ना ही चाहते हैं। कौरवदल में ऐसा कोई योद्धा नहीं अर्जुन के बाणों को निष्फल कर भीम से दुःशासन की रक्षा कर सके। अश्वत्थामा से यह सहन होता। उसे झूठा बनना सख्त है। नरक में गिरना अभीष्ट है। वह प्रतिष्ठापूर्वक छोड़े गये शस्त्र पुनः उठा लेना चाहता है। आकाशवाणी उसे इस धर्मविरति से रोकती है। विवश होकर कृपाचार्य को दुर्योधन को सहायता के लिये भेजता है।

अश्वत्थामा की कर्तव्य-निष्ठा आश्चर्यजनक है। दुर्योधन कर्ण के समक्ष उसका सभ्य अपमान चुका है। फिर भी वह दुर्योधन का हित चाहता है। कर्ण मर चुका है। अतः अश्वत्थामा एक पुनः अपने शौर्य की सेवा दुर्योधन के हाथों में सौंपना चाहता है। धृतराष्ट्र एवं गान्धारी उसे प्रसन्न होते हैं। किन्तु धिक्कार है दुर्योधन की दुष्टता एवं हठता को। वह उसको स्वीकार से पुनः इन्कार कर देता है।^३ यहीं से फिर अश्वत्थामा हमेशा के लिये कहीं अज्ञात स्थान चला जाता है।

अश्वत्थामा पूर्ण युवा है। शक्ति तो उसके शिर से पैर तक रोम-रोम में भरी पड़ी है। वह आपमें वह कार्य कर दिखलाने की क्षमता रखता है, जिसे भगवान् परशुराम ने कर दिखलाया था अपने यौवन के प्रारम्भ में ही उसने शूरता के क्षेत्र में इतनी ख्याति अर्जित कर ली थी कि उसे भीष्म तथा द्रोण की श्रेणी का योद्धा समझते थे।^४ स्वयं दुर्योधन भी उसे अद्वितीय

१. देखिये, ३-१७ ॥

२. देखिये, ३-१९ ॥

३. देखिये, ५-३९।

४. 'यद्रामेण कृतं तदेव कुरुते द्रौणायनिः क्रोधनः ॥३॥३॥'

५. भवेदभीष्ममद्रोणं धार्तराष्ट्रवल् कथम्।

यदि तत्तल्यकसोऽत्र भवान् धुरि न युज्यते ॥३॥२६॥

प्रस्तावना

२५

समझता है^१, किन्तु दुःख है कि उसकी वीरता का समुचित उपयोग दुर्योधन के दुर्भाग्य ने न करने दिया।

वेणीसंहार में अश्वत्थामा का आगमन एक झंझावात की तरह होता है। वह तूफान की तरह आता और जाता है। यदि इस नाटक से अश्वत्थामा का चरित निकाल दिया जाय तो यह बूझा लगता है, खाली प्रतीत होता है। वीरता-लक्ष्मी खिसकती-सी दृष्टिगोचर होती है। वस्तुतः अश्वत्थामा का चरित वेणीसंहार का प्राण है। वह इसमें जीवनाधायक तथा गत्याधायक तत्त्व सिद्ध होता है।

कर्ण

कर्ण वीर है, उत्साही है, पर है अभिमानी एवं प्रकृति से दुष्ट व्यक्ति। परोत्कर्ष सहिष्णुता तो कर्ण में है ही नहीं। उसके शरीर में जितनी ताकत नहीं है, उससे अधिक उसमें अभिमान तथा मिथ्या-विश्वास भरा हुआ है। वस्तुतः दुर्योधन को अनुचित सलाह दे-देकर उसके चमकते व्यक्तित्व एवं भाग्य को धूलिसात करा देने का श्रेय कर्ण को ही अधिक है। दुर्योधन इसे अपना प्रिय-मित्र, उत्कृष्ट मन्त्री तथा सर्वोत्कृष्ट सहायक मानता है। यही कारण है कि उसने कर्ण की सलाह पर अश्वत्थामा जैसे सिंह का तिरस्कार कर मृत्यु का वरण किया है।

कर्ण भाग्यवादी होने के साथ ही साथ पौरुषवादी भी है। नीच से नीच वंश में जन्मने की बात को वह दैवाधीन बतलाता है, किन्तु वह पौरुष का बड़ा हिमायती व्यक्ति है। वह पौरुष को अजित करने एवं बढ़ाने की विलक्षण हिम्मत रखता है^२।

सब कुछ हाते हुये भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि कर्ण जैसे व्यक्ति मानव-समाज के लिए हितकर नहीं। इस तरह के व्यक्ति नीचाशय एवं कलुषित चरित के हुआ करते हैं।

द्रौपदी

द्रौपदी के अपमान की कहानी इस नाटक का आलम्बन है। वह 'वेणीसंहार' की नायिका है। द्रौपदी की अवतारणा नाटक के प्रथम अङ्क में ही होती है। युधिष्ठिर दुर्योधन से पाँच गावों की शर्त पर सन्धि करना चाहते हैं। यह उसे बर्दास्त नहीं है। वह आँखों में अश्रु भरे हुई भीम से अपने असन्तोष को अभिव्यक्त करती है। उनके उबलते हुए क्रोध में घृताहुति का काम करती है। दुर्योधन को मरी सभा में उसका अपमान किया या। फलतः उसने प्रतिज्ञा की—जब तक दुर्योधन एवं दुःशासन के रक्त से मेरे बाल नहीं सवारे जायेंगे तब तब तक चोटों न बाँधूँगी, शृंगार न करूँगी। इस प्रतिज्ञा को वह अन्ततक निभाती है।

द्रौपदी पितृ-पक्ष एवं स्वशुर-पक्ष दोनों से ही उत्तम झत्राणी है। उसके मुखमण्डल पर सर्वदा झत्राणी का तेज ताण्डव किया करता है। दुर्योधन एवं उसकी पत्नी भानुमती ने उसका अपमान किया

• देखिये, पृ० १८२।

• सुतो वा सुतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम्।

दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम् ॥३॥३७॥

है। इस पर वह जल-भुन गयी है। उसको अवस्था ताड़ित उस नागिन की भाँति है जो प्रहारकर्ता के समूचे वंश को ढसने के लिए सर्वदा विह्वल एवं फूत्कार करती रहती है।

एक ऊँचे दर्जे की क्षत्राणी की तरह उसे वीरता ही एकमात्र प्रिय है। यही कारण है कि वह सर्वदा उफनते हुए भीम को ही अपना वास्तविक पति मानती है, उन्हें ही 'नाथ' इस सम्बोधन से पुकारती है। अन्त में जब उसे भीम एवं अर्जुन के मारे जाने की खबर मिलती है तब वह इस विचार से अति शीघ्र जल कर राख हो जाना चाहती है कि कहीं शत्रु उसका अपमान न करे। वस्तुतः उसका समूचा चरित्र एक वीर क्षत्राणी के अनुरूप ही अङ्कित हुआ है।

भानुमती

भानुमती नाटक के प्रतिनायक दुर्योधन की पत्नी है। यदि किसी को भारतीय साध्वी अर्द्धाङ्गी का सच्चा हृदय एवं रूप देखना हो तो वह भानुमती को देखे, उसके चरित्र का चिन्तन करे वह नाटक के केवल द्वितीय अङ्क में ही दर्शकों के सामने आती है। उसने कुछ अशुभ स्वप्न देखा है। वह स्वप्न के अनिष्ट निवारणार्थ तथा पति की कल्याण-कामना से व्रत में संलग्न दिखती है।

भानुमती साध्वी एवं धर्मभोर स्त्री है। जहाँ तक एक क्षत्राणी के तेज का प्रश्न है वह नाटक की नायिका द्रौपदी से कम नहीं है।

नाटक के पात्र

पुरुष-पात्र

भीम—	मझला पाण्डव, नाटक का नायक ।
युधिष्ठिर—	ज्येष्ठ पाण्डव ।
अर्जुन—	युधिष्ठिर का अनुच, कुन्ती-पुत्र ।
नकुल, सहदेव—	युधिष्ठिर के तृतीय एवं चतुर्थ माई, माद्री-पुत्र ।
कृष्ण—	अर्जुन के सारथि और सखा, विष्णु के अवतार ।
धृतराष्ट्र—	कौरव राजकुमारों का पिता, पाण्डवों का चाचा ।
दुर्योधन—	कौरवों में ज्येष्ठ, कौरव-राज, प्रतिनायक ।
कर्ण—	दुर्योधन का मित्र, अङ्ग, देश का राजा ।
कृप—	दुर्योधन आदि के गुरु, अश्वत्थामा के मामा ।
अश्वत्थामा—	द्रोणाचार्य का पुत्र, कृप का भगिनीपुत्र ।
संजय—	धृतराष्ट्र का सारथी ।
सुन्दरक—	अङ्गराज कर्ण का सेवक ।
जयन्धर—	युधिष्ठिर का कञ्चुकी ।
विनयन्धर—	दुर्योधन का कञ्चुकी ।
चार्वाक—	मुनिवेषधारी राजस, दुर्योधन का मित्र ।
अश्वसेन—	द्रोणाचार्य का सारथि ।
रुधिरप्रिय—	पाण्डवों का पञ्चपाती एक राजस ।
सूत—	दुर्योधन का सारथि ।
बुधक, पान्चालक—	युधिष्ठिर के सन्देशहर ।

स्त्री-पात्र

द्रौपदी—(कृष्णा, याज्ञसेनी)—	पाण्डववधू, नायिका ।
बुद्धिमत्तिका—	द्रौपदी की सखी ।
चैटी—	द्रौपदी की दासी ।
मानुमती—	दुर्योधन की पत्नी ।
सुवदना—	मानुमती की सखी ।

वेणीसंहारे

सरलिका—
गान्धारी—
माता—
दुःशला—
वसागन्धा—
विहङ्गिका—

मानुमती की दासी ।
दुर्योधन की माता ।
जयद्रथ की माता ।
जयद्रथ की पत्नी, दुर्योधन की बहन ।
राक्षसी, रुधिरप्रिय की पत्नी ।
कौरव पक्ष की दासी ।

कुछ अन्य संकेतित पात्र

भीष्म, द्रोण, अभिमन्यु, बलराम, धृष्टद्युम्न, दुःशासन, जयद्रथ, विदुर, शल्य आदि ।

वेणीसंहारम्

प्रथमोऽङ्कः

निषिद्धैरप्येभिर्लुलितमकरन्दो मधुकरैः

करैरिन्दोरन्तश्छुरित इव सम्भिन्नमुकुलः ।

विधत्तां सिद्धिं नो नयनसुभगामस्य सदसः

प्रकीर्णः पुष्पाणां हरिचरणयोरञ्जलिरयम् ॥ १ ॥

अपि च

कलिन्द्याः पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रसं

गच्छन्तीमनुगच्छतोऽश्रुकलुषां कंसद्विषो राधिकाम् ।

तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्योद्भूतरोमोदगते-

रक्षुण्णोऽनुनयः प्रसन्नदयितादृष्टस्य पुष्पाणु वः ॥ २ ॥

श्रीविश्वेशांघ्रिपद्मद्वयमभलतरं हृद्युपानोय भक्त्या,

भट्टाचार्यश्च सिद्धेश्वरविदितगुरुं सन्नमन् तत्प्रसादात् ।

वेणोसंहारनाम्नि प्रयित इह शुभे नाटके रम्यरूपां,

टीकां रम्यां रमाख्यां विरचयति रमाशङ्करो गूढबुद्धयै ॥

अन्वयः—(मुहुर्मुहुः), निषिद्धैः, अपि, एभिः, मधुकरैः, लुलितमकरन्दः, इन्दोः, करैः, अन्तःसम्भिन्नमुकुलः, इव, (अतः), सम्भिन्नमुकुलः; हरिचरणयोः, प्रकीर्णः, अयम्, पुष्पाणाम्, अञ्जलिः, अस्यः, हृद्युपानोय, सदसः, नयनसुभगाम्, सिद्धिम्, नः, विधत्ताम् ॥ १ ॥

शब्दार्थः—(मुहुर्मुहुः = बार-बार), निषिद्धैः = हटाये गये, अपि = भी, एभिः = इत्येतेषां, मधुकरैः = भौरों के द्वारा, लुलितमकरन्दः = बिखेरी गई मधुवाली; इन्दोः = चन्द्रमा की, करैः = चन्द्रमा की किरणों के द्वारा, अन्तः = मध्यभाग में, लुरितः = व्याप्त, इव = सी, (अतः = इसलिये), सम्भिन्नमुकुलः = खिली हुई कलियों वाली; हरिचरणयोः = विष्णु के चरणों पर, प्रकीर्णः = बिखेरी मधु, अयम् = यह, पुष्पाणाम् = फूलों की, अञ्जलिः = अंजुली, अस्य = इस, सदसः = सभा, नयनसुभगाम् = नेत्रों की अच्छी लगनेवाली, सिद्धिम् = सफलता की, नः = हमें, विधत्ताम् = प्रदान करे ॥ १ ॥

टीका—इह तावत् निर्विघ्नं प्रारिप्सितसिद्धिमनुबध्य महाकविर्भट्टनारायणः स्वेष्टदेवताकांतं तन्मङ्गलं नान्योपस्थापयन् नाटकीयं वस्तु ध्वनयति—निषिद्धैरिति । (मुहुर्मुहुः = बारम्बारम्), निषिद्धैः निवारितैः, करादिचालनेन दूरीकृतैरिति यावत् । अपिना तेषां दुर्निवारता सूचिता, एभिः = पुरःस्थाधिकारिभिरिति, चतुर्भिर्दिग्भिः पतन्तैरित्यर्थः, मधुकरैः = भ्रमरैः, मधुकरपदोपादानेन तेषां रसलोलुपता सूचिता, लुलितमकरन्दः—लुलितः = इतस्ततो विकीर्णः, सम्भ्रमे सम्पतनात् कराणां सञ्चालने पलायनं

प्रथम अङ्क

अर्थः—(बार-बार) हटाये गये भी इन मौलों के द्वारा बिखेरी गई मधुवाली (with honey set dripping), चन्द्रमा को किरणों के द्वारा मधुभाग में व्याप्त-सी, (अतः) खिली हुई कलियोंवाली, विष्णु के चरणों पर बिखेरी गई, यह फूलों की अञ्जलि (Palmful), इस समा के नेत्रों की अच्छी लगनेवाली सफरता हमें प्रदान करे ॥ १ ॥

और भी —

यमुना के जल से निकले हुए तटों पर कोड़ा में कुपित हुई (अतः रवाये गये) रास के आनन्द को छोड़ कर जाती हुई, आँसुओं के कारण मलिन (आववाली) अर्थात् रोती हुई, राधा के पीछे-पीछे (उन्हें मनाने के लिये) जाने हुए तथा उनके (अर्थात् राधा के) पैरों के चिह्नों पर पड़े हुए पैरवाले (अतः) उत्पन्न हुए रोमाञ्च से युक्त (अर्थात् कनकना कर खड़े हुए रोंवे वाले) कृष्ण का सफल अनुनय सबकी पुष्टि (अर्थात् वृद्धि) करे ॥ २ ॥

विकीर्णः इत्यर्थः, मकरन्दः=पुष्परसः ('मकरन्दः पुष्परसः' इत्यमरः) यस्य स तादृशः, इन्द्रोः=चन्द्रमसः, करैः=किरणैः ('किरणोऽस्य यूक्षांशुगमस्ति घृणरश्मयः । भानुः करो मरीचिः' इत्यमरः), अन्तः=मध्ये, ह्युरितः=व्याप्तः, इवेत्युत्प्रेक्षाभिव्यञ्जकः शब्दः, (अतः=अस्मात् कारणात्) सन्तःसम्भिन्नमुकुलः—सम्भिन्नाः=प्रस्फुटिताः, विकसिताः इति यावत्, मुकुलाः=कुङ्कुमलाः यस्य यत्र वा अस्य, हरिचरणयोः—हरेः=विष्णोः, कृष्णस्येति यावत्, चरणौ=पादौ तयोः, प्रकीर्णः=विस्तीर्णः, समर्पित इति यावत्, अयम्=एषः, पुष्पाणाम्=प्रसूनानाम्, अञ्जलिः=हस्तसम्पुटः ('अञ्जलिस्तु पुमान् हस्तसम्पुटे' इति मेदिनी), हस्तसम्पुटपरिमितः समवाय इत्यर्थः, अस्य=एतस्य, पुरो=वर्तमानस्येति यावत्, सदसः=सभायाः, सदःपदस्य तत्त्वजने लक्षणया सभास्यजनस्येत्यर्थः, नयन-सुभगाम्—नयनयोः=लोचनयोः सुभगाम्=आह्लादिकाम्, प्रीतिजननीमिति यावत्, सिद्धिम्=सफलताम्, अभिनये पूर्णतामिति यावत्, नः=अस्माकम्, नटानामिति भावः, विधत्ताम्=करोतु । अत्र मधुकरपदेन दुर्योधनपरिवारः, सम्भिन्नमुकुलपदेन युधिष्ठिरादीनां वनवासादिदुःखान्तरं मुखप्रकाशो हरिचरणयोरञ्जलिरिति पदाभ्यां तेषां केशवशरणावाप्तिश्च सूचिता । शङ्कोऽस्मिन् उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । शिखिरिणी छन्दः । छन्दोलक्षणं यथा—'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसमला गः शिखिरिणी' ॥ १ ॥

अन्वयः—कालिन्ध्याः, पुलिनेषु, केलिकुपिताम्, रासे, रसम्, उत्सृज्य, गच्छन्तीम्, अश्रुकलुषाम्, सिद्धिप्रदाम्, अनुगच्छतः, तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्य, उद्भूतरोमोद्गतेः, प्रसन्नदयितादृष्टस्य, कंसद्विषः, विषसुष्णः, अनुनयः, वः, पुष्पातु ॥ २ ॥

शब्दार्थः—कालिन्ध्याः=यमुना के, पुलिनेषु=जल से निकले हुए तटों पर, केलिकुपिताम्=

अपि च

दृष्टः सप्रेम देव्या किमिदमिति भयात्संभ्रमाच्चासुरीभिः

शान्तान्तस्तत्त्वसारैः सकरुणमृषिभिर्विष्णुना सस्मितेन ।

आकृष्यास्त्रं सगर्वैरुपशमितवधूसंभ्रमैर्देव्यवोरैः

सानन्दं देवताभिर्मयपुरदहने धूर्जटिः पातु युष्मान् ॥ ३ ॥

क्रीडा में कुपित, (अतः) रासे = रास में, रसम् = अभिरुचि या आनन्द को, उत्सृज्य = छोड़कर, गच्छन्तीम् = जाती हुई, अश्रुकलुषाम् = आँसुओं के कारण मलिन (आँखवाली), राधिकाम् = राधा का, अनुगच्छतः = पीछा करते हुए, तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्य = उनके (राधा के) चरण के चिह्न पर रक्खा है पैर जिनका ऐसे, उद्भूतरोमोदगतेः = उत्पन्न हो गया है रोमाञ्च जिनको ऐसे, प्रसन्न दयितादृष्टस्य = खुश हुई प्रिया (राधा) के द्वारा देखे गये, कंसद्विषः = कंसारि (श्रीकृष्ण) का, अक्षुण्णः = सफल, अनुनयः = अनुनय, मनाना, वः = सब को, पुष्पातु = पुष्टि करे, वृद्धि करे ॥ २ ॥

बहुविधशङ्कया तन्नाशार्थं पुनर्मङ्गलमाचरन्नान्दीनिर्वाहार्यमाह—कालिन्ध्या इति । कालिन्ध्याः = यमुनयाः, पुलिनेषु = तोयोरित्येतेषु, जलनिर्गतेष्वेत्यर्थः ('तोयोत्थितं तत्पुलिनम्' इत्यमरः) तटेपु, अनेन स्थानशैत्यं निर्दिष्टम्, केलिकुपिताम् = केल्याम् = खेलायाम्, कुपिताम् = क्रुद्धाम्, (अतः) रासे = गोपक्रीडाविशेषे, ('रासो विदग्धगोष्ठ्यां च क्रीडायामपि गोदुहाम्' इति विश्वः), रसम् = अनुरागम् ('रसः स्वादे जले...रागे' इति हैमः), उत्सृज्य = त्यक्त्वा, गच्छन्तीम् = अन्यत्र गमनतत्पराम् अश्रुकलुषाम्—अश्रुभिः = नेत्रजलैः कलुषाम् = मलिनाम्, रुदतीमित्यर्थः, राधिकाम् = वृषभात् कन्यकाम्, अनुगच्छतः = चाटुपद्धत्याऽनुसरतः, तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्य—तस्याः = प्रेयस्य राधिकायाः, पादौ = चरणौ, तयोः प्रतिमासु = चिह्नेषु, निवेशिते = स्थापिते, पदे = चरणौ येन तस्य राधिकाचरणचिह्नेषु दत्तचरणस्येत्यर्थः, उद्भूतरोमोदगतेः—उद्भूता = उत्पन्ना रोम्णाम् = तनूरूहाणाम् ('तनूरूहं रोम लोम' इत्यमरः) उदगतिः = ऊर्ध्वावस्थानम् यस्य स तस्य, सञ्जातरोमाञ्चस्येत्यर्थः उत्पन्नतात्त्विकभावस्येति भावः, अनेनानुरागातिशयो दर्शितः, अतः प्रसन्नदयितादृष्टस्य—प्रसन्ना = कृपसादा या दयिता = प्रेयसी तथा दृष्टस्य = अवलोकितस्य, सात्त्विकभावेन स्वविषयिणीमनुरागभावान्मुद्भाव्य कृतप्रसादया प्रेयस्या सकटाक्षमवलोकितस्येति भावः, कंसद्विषः—कंसस्य द्विष्टः = शत्रुः त कंसद्विषः = कृष्णस्येत्यर्थः, अक्षुण्णः = सफलः, प्रियाप्रसादात् सफलः इत्यर्थः, अनुनयः = प्रार्थनं समाराधनमिति यावत्, वः = युष्मान् अस्मान् अन्यांश्च, सर्वानित्यर्थः, व इति 'त्यदादीनि सर्वानित्य' इत्येकशेषः, पुष्पातु = पुष्टान् करोतु, संवर्धयत्वित्यर्थः । अत्र प्रथमाद्धेन द्रौपद्याः कोपरोदने निर्दिष्ट उत्तराद्धेन च कौरववधानन्तरं भीमेन विहितस्य तस्याः अनुनयस्तस्याश्च प्रसादभावना सूचिता । प्रेयोऽलङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः । छन्दोलक्षणं यथा—'सूर्याश्वैर्वदि मः सजौ सततगाः शाश्विक्रीडितम्' ॥ २ ॥

अन्वयः—मयपुरदहने, देव्या, सप्रेम, दृष्टः, आसुरीभिः, इदम्, किम्, इति, (उक्त्वा), भयं च, सम्भ्रमात्, (दृष्टः), शान्तान्तस्तत्त्वसारैः, ऋषिभिः, सकरुणम्, (दृष्टः), विष्णुना, सस्मितेन

प्रथमोऽङ्कः

विशेष—रासे—रास एक प्रकार का नाच है, जिसका अभ्यास कृष्ण और वृन्दावन की गोपिकाएँ किया करती थीं।

रसमुत्सृज्य—राधिका श्रीकृष्ण की अत्यन्त प्यारी सखी थी। वह कृष्ण पर अपना पूरा अधिकार समझती थी। रास के समय राधिका ने देखा कि कृष्ण एक दूसरी गोपी के साथ मस्ती से क्रीड़ा कर रहे हैं। यह देख कर रास में आनन्द मिलने की जगह उन्हें जलन होने लगी। अतः रोती हुई, नाराज होकर वे वहाँ से चल दीं।

तत्पादप्रतिमा—अश्रुयणः—जब प्रेम अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है तब प्रेमिका की प्रत्येक चीज के केवल स्पर्श से ही प्रेमी को एक विलक्षण आनन्द का अनुभव होता है। उसके रोवे खड़े हो जाते हैं। कृष्ण राधा के पीछे-पीछे उन्हें मनाते हुए जा रहे थे। वह मान नहीं रही थी। अचानक एक स्थान पर राधा के पैर-चिह्न (Footsteps) पर कृष्ण के पैर पड़ गये। उनके रोवे खड़े हो गये। राधा ने कृष्ण को यह दशा देखी। वे जान गईं कि ये सबने अधिक मुझे ही प्यार करते हैं। अतः वे प्रसन्न हो गईं और प्रेम के साथ कृष्ण पर कटाक्ष फेंकीं। कृष्ण का अनुनय सफल हो गया। राधा मान गईं ॥ २ ॥

और भी—

मय (दानव के द्वारा निर्मित, त्रिपुरासुर) के नगरों को भस्म करने के समय देवी (पार्वती) के द्वारा प्रेमपूर्वक देखे गये, असुरों की स्त्रियों के द्वारा यह क्या (हुआ)?—ऐसा (कह कर) मय और ध्वराहट के साथ (देखे गये), शान्त (अर्थात् विषय-वासना से निवृत्त) अन्तःकरण (अर्थात् मन, बुद्धि और अहङ्कार) रूप धनवाले ऋषियों के द्वारा करुणापूर्वक (देखे गये), विष्णु के द्वारा मुस्कराहट के साथ (अर्थात् मुस्कराते हुए विष्णु के द्वारा देखे गये), शान्त किया है अपनी स्त्रियों की ध्वराहट को जिन्होंने ऐसे गवाँले दैत्यवीरों के द्वारा अस्त्र खींच कर देखे गये), देवताओं के द्वारा आनन्दपूर्वक (देखे गये) शङ्कर आप सब की रक्षा करें ॥ ३ ॥

विशेष—मयपुरदहने—‘मय’ दानवों का एक शिल्पा था। इसने त्रिपुरासुर के लिये तीन ऐसे नगरों का निर्माण किया था जो आकाश में उड़ते रहते थे। ये कभी-कभी मूलतः पर भी उतरते थे। इनके उतरने से गाँव के गाँव विनष्ट हो जाते थे। भगवान् शङ्कर ने इनका विनाश किया था ॥ ३ ॥

(दृष्टः), उपशमितवधूसम्भ्रमैः, सगर्वैः, दैत्यवीरैः, अजम्, आकृष्य, (दृष्टः), देवताभिः, सानन्दम्, (दृष्टः), धूर्जटिः, युष्मान्, पातु ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—मयपुरदहने=मय (दानव के द्वारा निर्मित, त्रिपुरासुर) के नगरों को भस्म करने के समय, देव्या=महारानी (पार्वती) के द्वारा, सप्रेम=प्रेमपूर्वक, दृष्टः=देखे गये, आसुरीभिः=असुरों की स्त्रियों के द्वारा, ‘इदम्=यह, किम्=क्या (हुआ)’?, इति=ऐसा, (उक्त्वा=कह कर), भयात्=भय, च=और, सम्भ्रमात्=ध्वराहट के साथ, (दृष्टः=देखे गये), शान्तान्तस्तत्त्वसारैः=शान्त अन्तःकरण (मन, बुद्धि तथा अहङ्कार) रूप धन से सम्पन्न, ऋषिभिः=ऋषियों के द्वारा, सकरुणम्=करुणापूर्वक, (दृष्टः=देखे गये), विष्णुना=विष्णु के द्वारा, सस्मितेन=मुस्कराहट के

वेणीसंहारे

(नान्द्यन्ते)

सूत्रधारः—अलमतिप्रसङ्गेन ।

श्रवणाञ्जलिपुटपेयं विरचितवान्भारताख्यममृतं यः ।

तमहमरागमकृष्णं कृष्णद्वैपायनं वन्दे ॥ ४ ॥

(समन्तादवलोक्य) तत्रभवतः परिपदप्रेसरान् विज्ञाप्य नः किञ्चिदस्ति ।

कुसुमाञ्जलिरपर इव प्रकीर्यते काव्यबन्ध एषोऽत्र ।

मधुलिह इव मधुबिन्दून्विरलानपि भजत गुणलेशान् ॥ ५ ॥

साय, (दृष्टः = देखे गये), उपशमितवधूसम्भ्रमैः = शान्त की है (अपनी) स्त्रियों के धवराहट को जिन्होंने ऐसे, सगर्वैः = गर्वले, दैत्यवीरैः = दैत्यवीरों के द्वारा, अस्त्रम् = अस्त्र, आकृष्य = खींच कर, (दृष्टः = देखे गये), देवताभिः = देवताओं के द्वारा, सानन्दम् = आनन्दपूर्वक, (दृष्टः = देखे गये), धूर्जटिः = शङ्कर, युष्मान् = आप सब की, पातु = रक्षा करें ॥ ३ ॥

द्वादशपदनान्यभिप्रायेण तृतीयं नान्दीपद्यमवतारयति—दृष्ट इति । मयपुरदहने—मयेन = मयनाम. केन दानवेन निमित्तानि पुराणि = नगराणि मयपुराणि (मध्यमपदलोपी समासः) तेषां दहनम् = दाहः तस्मिन्, देव्या = वल्लभया पार्वत्येत्यर्थः, सप्रेम = प्रीतिपूर्वकं यथा स्यात्तथा, दृष्टः = अवलोकितः, सानुरागं बोधितः इत्यर्थः, पत्युः पराक्रमं विलोक्य प्रियायाः सानुरागं बोधनं स्वभाविकं रतिवृद्धिः सूचकञ्च, आसुरोभिः = असुरस्त्रीभिः, इदम् = एतत्, किम् = किमभूत् ? इति = इत्थम्, उक्तेति शेषः, भयात् = भीते, च = तथा, सम्भ्रमात् = उद्वेगात्, (दृष्टः), शान्तान्तस्तत्त्वसारैः—शान्तम् = उपशमितम्, विषयवासनानिवृत्तमित्यर्थः, अन्तस्तत्त्वम् = अन्तःकरणम्, मनोबुद्धयहङ्काराणां समवायः इत्यर्थः, सारः = धनं येषां तैः, वीतरागैरिति यावत्, ऋषिभिः = मुनिभिः, सकरुणम्—करुणया = दयया सहितं यथा तथा, (दृष्टः), विष्णुना = नारायणेन, सस्मितेन = ईषद्धास्यसहितेन, वस्तुतस्तु सस्मितमिति पाठ एव न्याय्यः, (दृष्टः), शत्रुविनाश एवासुरारेर्हासहेतुः, उपशमितवधूसम्भ्रमैः—उपशमितः = दूरीकृतः वधूनाम् = स्वपत्नीनाम् सम्भ्रमः = उद्वेगो यैस्तादृशैः, सगर्वैः = साभिमानैः, वस्तुतः सगर्वमिति शोभनः पाठः, दैत्यवीरैः = दानवशूरैः, अस्त्रम् = प्रहरणम्, आकृष्य = उद्यम्य, (दृष्टः), देवताभिः = दानवारिभिः, द्वैरित्यर्थः, सानन्दम् = सहर्षं यथा तथा, (दृष्टः), धूर्जटिः = शङ्करः ('धूर्जटि...हरः' इत्यमरः), युष्मान् = सम्भ्यान् सर्वान्, पातु = रक्षतु । अत्र कृतदुर्योधनादिनाशो विहितपाण्डवकृष्णादि-हासो महाभारतसंग्रामोऽपि कटाक्षितः । अत्र शृङ्गारभयानकशान्तयुद्धवीररसानां धूर्जटिविषयकरता-वङ्गत्वादसवदलङ्कारः । स्रग्धरा छन्दः । छन्दोलक्षणं यथा—'अस्मैर्नानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्' ॥ ३ ॥

नान्द्यन्त इति । नन्दयति = आनन्दयति जनानिति नान्दी, नन्दन्ति देवताः अनेन वा 'नान्दी' = नाटकादौ प्रथमं मङ्गलार्थं विहितं पद्यं नान्दीत्युच्यते । उक्तञ्चापि साहित्यदर्पणे—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।

देव-द्विज-नृपादीनां तस्मान्नान्दीति संशिता ॥

(मङ्गलाचरण को समाप्ति पर)

सूत्रधार—(मङ्गलाचरण का) अधिक विस्तार बन्द किया जाय ।**विशेष**—**सूत्रधार**—रङ्गमञ्च का प्रबन्धक (Stage-manager) सूत्रधार कहा जाता है ।

जिसने कान रूपी अञ्जलि-पुट (अर्थात् बंधी हुई अजुडी) से पीने के योग्य भारत (महाभारत) नामक अमृत को बनाया है, उस निःस्पृह (अर्थात् विषय-वासना से विहीन), निष्पाप व्यास को मैं प्रणाम कर रहा हूँ ॥ ४ ॥

(चारों ओर देख कर) माननीय सभा-प्रमुखों से हमें कुछ निवेदन करना है ।

यह काव्य-रचना दूसरी, फूलों की अञ्जलि की तरह यहाँ बिखेरी जा रही है (अर्थात् प्रदर्शित की जा रही है), मौर मधु की बूँदों को जैसे (सेवित करते हैं, उसी तरह आप लोग इस रचना के) स्वल्प भी गुण के कणों को सेवित करें (अर्थात् ग्रहण करें) ॥ ५ ॥

अत्र पदशब्दस्तु पादवनतः । एतस्मिन् नाटके पद्यत्रितयेन द्वादशपदात्मिका नान्दी प्रतिपादिता ॥

सूत्रधार इति । सूत्रधारः = रङ्गशालायाः व्यवस्थापकः प्रधानो नटः । अत्र लक्षणया सूत्रशब्दः नाट्योपकरणादिवाचकः अभिनयनिर्देशनपरो वा । तल्लक्षणञ्चोक्तं यथा—साहित्यदर्पणे—

नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।

सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते ॥

अन्वयः—यः, श्रवणाञ्जलिपुटपेयम्, भारताख्यम्, अमृतम्, विरचितवान्, तम्, अरागम्, अकृष्णम्, कृष्णद्वैपायनम्, अहम्, वन्दे ॥ ४ ॥**शब्दार्थः**—यः = जिसने, श्रवणाञ्जलिपुटपेयम् = कान रूपी अञ्जलि-पुट से पीने योग्य, भारता-ख्यम् = भारत (महाभारत) नामक, अमृतम् = अमृत को, विरचितवान् = बनाया है; तम् = उस, अरागम् = निःस्पृह (विषयासक्ति से रहित), अकृष्णम् = निष्पाप या तमोगुणविहीन, कृष्णद्वैपायनम् = व्यास को, अहम् = मैं, वन्दे = प्रणाम कर रहा हूँ ॥ ४ ॥

सम्प्रति व्यासप्रशंसामाह—श्रवणेति । यः = कृष्णद्वैपायनः, व्यास इत्यर्थः, श्रवणाञ्जलिपुटपेयम्—श्रवणम् = श्रोत्रम् एव अञ्जलिपुटम् = हस्तसम्पुटम् (‘अञ्जलिस्तु पुमान् हस्तसम्पुटे’ इति मेदिनी) तेन पेयम् = पातुं योग्यम्, प्रेम्णा श्राव्यमिति यावत्, भारताख्यम्—भारतम् = महाभारतम् इति आख्या = संज्ञा यस्य तत् भारताख्यम् = महाभारतसंज्ञकम्, अमृतम् = पीयूषम्, सन्तर्पकत्वादमृतत्वं भारतस्य बोध्यम्, विरचितवान् = कृतवान्, तम् = तादृशम्, अरागम्—न विद्यते रागः = विषयासक्तिः यस्य तम्, विषयासक्तिविहीनमित्यर्थः, अत एव अकृष्णम् = निष्कलुषम्, रागाभावे कृष्णत्वाभावे च तस्मिन् सत्त्वगुणस्थैव प्राधान्यं सूचितमित्यपि बोध्यम्, द्वोपन अयनम् = न्यासस्थानं यस्य स द्वोपायनः द्वोपायन एव द्वैपायनः कृष्णश्चासौ द्वैपायनश्च कृष्णद्वैपायनस्तं कृष्णद्वैपायनम् = व्यासम्, अहम् = सूत्रधारः, वन्दे = प्रणमामि । इह भारतकर्तृव्यासस्य भारतस्य च गुणकीर्तनात् प्रतिपाद्यकथायाः तस्यैव चाधारत्वं, शेषम् । अत्र परम्परितरूपकालङ्कारः । आर्याछन्दः । तस्य लक्षणम्—यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रा-स्तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ॥ ४ ॥

वेणीसंहारे

तदिदं कवेर्मृगराजलक्ष्मणो मृगनारायणस्य कृतिं वेणीसंहारं नाम नाटकं प्रयोक्तुमुद्यता वयम् । तदत्र कविपरिश्रमानुरोधाद्वा उदात्तकथावस्तुगौरवाद्वा नवनाटक-दर्शनकुतूहलाद्वा भवद्भिरवधानं दीयमानमभ्यर्थये ।

(नेपथ्ये)

भाव, त्वर्थतां त्वर्थताम् । एते खल्वार्थविदुराजया पुरुषाः सकलमेव दौलूपजनं व्याहरन्ति—प्रवर्त्यन्तामपरिहीयमानमातोद्यविन्यासादिका विधयः । प्रवेशकालः किल तत्रभवतः पाराशर्यनारदतुम्बरुजामदग्न्यप्रभृतिभिर्मुनिवृन्दारकैरनुगम्यमानस्य भरत-कुलहितकाम्यया स्वयं प्रतिपन्नदौत्यस्य देवकीसूनोश्चक्रपाणेर्महाराजदुर्योधनशिविर-सन्निवेशं प्रति प्रस्थातुकामस्य इति ।

समन्तादिति । तत्रभवतः=पूज्यामित्यर्थः, परिपदग्रेसरान्—परिपदः=सभायाः अग्रेसरान्=पुरःसरान्, सभ्यश्रेष्ठानिति यावत्, विशाप्यम्=सम्बोध्यम्, सूचनोयमिति यावत्, नः=अस्माकम् ॥

अन्वयः—एषः, काव्यबन्धः, अपरः, कुसुमाञ्जलिः, इव, अत्र, प्रकीर्यते; मधुलिहः, मधुविन्दून्, इव, विरलान्, अपि, गुणलेशान्, भजत ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—एषः=यह, काव्यबन्धः=काव्य-रचना, अपरः=दूसरी, कुसुमाञ्जलिः=फूलों की अञ्जली, इव=जैसी, अत्र=इस सभा में, यहाँ, प्रकीर्यते=बिखेरी जा रही है, प्रदर्शित की जा रही है; मधुलिहः=भौरे, मधुविन्दून्=मधुकी बूँदों को, इव=जैसे (सेवित करते हैं उसी तरह), विरलान्=विरल, स्वल्प, अपि=भी, गुणलेशान्=गुण के कणों को (स्वल्प भी गुणों को), भजत=सेवित करें ॥ ५ ॥

कुसुमाञ्जलिरिति । एषः=अयम्, प्रयुज्यमानः इत्यर्थः, काव्यबन्धः—बध्यते=निबध्यते इति बन्धः=रचना, काव्यमेव=कविकृतिरेव बन्धः काव्यबन्धः=कविकृतप्रबन्धः, वेणीसंहारं नाम नाटक-मित्यर्थः, अपरः=द्वितीयः, हरिचरणयोरपितात् पुष्पाञ्जल्येव्यतिरिक्त इत्यर्थः, कुसुमाञ्जलिः—कुसुमा-नाम्=प्रसूतानाम् अञ्जलिः=समवायः, इव=यथा, अत्र=अस्यां सभायामित्यर्थः, प्रकीर्यते=विस्तार्यते, प्रयुज्यते इति यावत् । मधुलिहः=मधुकराः, मधुविन्दून्—मधुनः=पुष्परसस्य विन्दून्=कणान्, इव=यथा, यथा मधुकराः पुष्परसकणान् भजन्ते तथैव अत्रत्याः सभ्याः अपि, विरलान्=स्वल्पान्, अपि=च, गुणलेशान्=प्रशस्तताकणान्, काव्यसौन्दर्यविन्दूनि यावत्, भजत=गृह्णीत । अनेन सभ्यपद्धत्या स्वकीयं काव्यनेगुणं ध्वनितम् । अत्रोत्प्रेक्षोपमयोः संसृष्टिरलङ्कारः । आर्यालन्दः ॥ ५ ॥

तदिदमिति । मृगराजलक्ष्मणः—मृगराजः=सिंहः, कविसिंह इति यावत्, इति लक्ष्म=लक्षणं चिह्नम्, उपाधिरित्यर्थः, यस्य तस्य, वीररसाश्रयिकाव्यनिर्माणात् कविसिंहोपाधिधारणं श्रेयम्, कृतिम्=रचनाम्, वेणीसंहारम्—वेण्याः=लोके 'चोटी' इति ख्यातायाः केशरचनायाः संहारः=संयमनम्, बन्धनमित्यर्थः, (वर्ण्यते) यस्मिन् तत् वेणीसंहारम्, अथवा वेण्याः संहारः वेणीसंहारः, तमधिकृत्य कृतं नाटकमिति वेणीसंहारम् । दुश्शासनेन कर्षणात्परं द्रौपदीकेशकलापो मुक्तः

तो हम लोग 'मृगराज' उपाधिवारी भट्टनारायण की रचना इस वेणीसंहार नामक नाटक को अभिनीत करने के लिये (खेलने के लिये) उद्यत हैं। अतः (नाटकनिर्माण में होनेवाले) कवि के परिश्रम के विचार से अथवा (नाटक की) उत्तम कथावस्तु की महत्ता के कारण अथवा नवीन नाटक देखने की उत्कण्ठा से आप लोगों के द्वारा एकाग्रचित्त होकर ध्यान दिये जाने की प्रार्थना करता हूँ।

विशेष-मृगराजलक्ष्मणः—महाकवि भट्टनारायण वार रस से पूर्ण काव्यों के रचयिता थे। निःसन्देह वेणीसंहार के पूर्व इन्होंने कुछ और वीररस के काव्यों का निर्माण किया होगा। इसी के परिणाम स्वरूप इनको 'मृगराज' (सिंह या 'कविसिंह') की उपाधि प्रदान की गई होगी।

(पदों के पीछे)

आदरणीय, शोभता कीजिये, शोभता कीजिये। श्रद्धेय विदुर की आज्ञा से ये (अधिकारी) पुनः सभी नदों से कह रहे हैं—बारों प्रकार के वाद्य (वाजों) के बजाने की विधियाँ बिना किसी श्रुति के प्रारम्भ कर दो जाँय। क्योंकि सम्प्रति व्यास नारद तुम्बर परशुराम आदि श्रेष्ठ मुनियों के द्वारा अनुसरण किये जाते हुए, मत्तकुल (कौरवों एवं पाण्डवों के वंश) के कल्याण की कामना से स्वयं दूत के कार्य को स्वीकार करनेवाले (अर्थात् स्वयं दूत बनने वाले), महाराज दुर्योधन के शिविर-स्थान (Military camp) के लिये प्रस्थान करने वाले, देवकी के पुत्र चक्रपाणि (भगवान् श्रीकृष्ण) के प्रवेश का समय है (अर्थात् दुर्योधन के शिविर में श्रीकृष्ण के प्रवेश का समय है)।

विशेष—नेपथ्ये—नेपथ्य उस स्थान को कहते हैं जहाँ पदों के पीछे नाटक करनेवाले सजते-धजते हैं।

आतोद्यविन्यासादिकाः—“आतोद्य” चार प्रकार के वाजों के समूह का नाम है। ये चार प्रकार के वाजे इस तरह हैं—(१) रगड़ कर बजाया जाने वाला, चमड़े की डोरी से आनद बांधा आदि, (२) पीटकर बजाया जानेवाला, मृदङ्ग आदि, (३) फूँक कर बजाई जाने वाली वंशी आदि, (४) परस्पर लड़ा कर बजाई जाने वाली झाँझ, मजीरा आदि।

आसीत्, तस्यैव मुक्तस्य केशगाशस्य वेणीरूपेण बन्धनं यस्मिन् नाटकं तत् वेणीसंहारमत्यर्थः। अन्यद् आख्यानं ग्रन्थोपसंहारविरोधि अतो हेयमिति। नाटकम् = रूपकविशेषम्, प्रयोक्तुम् = अभिनेतुम्, उद्यताः = तत्पराः। तत् = तस्मात्, अत्र = अस्मिन् अभिनये इत्यर्थः, कविः परिश्रमानुरोधात्—कवेः परिश्रमस्य = नाटकनिर्माणे कृतस्यायासस्य अनुरोधात् = आदरात्, कारणादिति यावत्। अनेन भट्टनारायणस्यास्य नाटकस्य निर्माणे महान् श्रमः सूचितः। वा = अथवा, उदात्तवस्तुकथागौरवात्—उदात्तम् = प्रशस्तं यद्वास्तु आख्यानम् तस्य कथा = कथनम्, वर्णनमिति भावः, तस्य गौरवात् = आदरात् आह्लादादिति यावत्, नवनाटकदर्शनकुतूहलात्—नवीनम् = नूतनम् यत् नाटकम् = रूपकविशेषः तस्य दर्शनम् = रङ्गमञ्चे अवलोकनम् तस्मिन् यत् कुतूहलम् = उत्कण्ठा तस्मात्, भवद्भिः = सन्धैः अवधानम् = एकचित्तताम्, दीयमानम् = विधीयमानम्, अभ्यर्थये = प्रार्थये ॥

नेपथ्य इति। नेपथ्ये = रङ्गभूमौ ('नेपथ्यं रङ्गभूमौ स्यान्नेपथ्यं तु प्रसाधने' इति विश्वः) ॥

भावेति। भाव = मान्य ('मान्यो भावेति वक्तव्यः' इत्यमरः)। खल्विति वाक्यालङ्कारे, आर्थ-

सूत्रधारः--(आकर्ष्य सानन्दम्) अहो नु खलु भो भगवता जगत्प्रभवस्थिति-
निरोधप्रभविष्णुना विष्णुनाद्यानुगृहीतमिदं भरतकुलं सकलं च राजचक्रमनयोः
कुरुपाण्डवराजपुत्रयोराहवकल्पान्तानलप्रशमहेतुना स्वयं सन्धिकारिणा कसारिणा
दूतेन । तत्किमिति पारिपाश्विक नारम्भयसि कुशीलवैः सह संगीतकम् ।

(प्रविश्य)

पारिपाश्विकः--भवतु । आरम्भयामि । कं समयमाश्रित्य गीयताम् ।

सूत्रधारः--नन्वमुमेव तावच्चन्द्रातपनक्षत्रक्रौञ्चहसकुलसप्तच्छदकुसुदुण्डरीक-
काशकुसुमपरागधवलितगगनदिङ्मण्डलं स्वादुजलजलाशयं शरत्समयमाश्रित्य प्रवर्त्यतां
संगीतकम् । तथा ह्यस्यां शरदि--

विदुराशया—आर्यः=आदरणीयश्चासौ विदुरश्चेति, विशेषणसमासः, तस्य आशया=आदेशेन (अ
पुरुषाः=अधिकारिणो जनाः, शैलूषजनम्=नटसमूहम्, व्याहरन्ति=वक्ष्यन्ति, किं व्याहरन्ति, तदेव
विवृणोति—आतोद्यविन्यासादिकाः—आतोद्यस्य=चतुर्विधवाद्यस्य विन्यासः=प्रयोगः आदौ=आरम्भे तथा
येषान्ते । आतोद्यपरिभाषा यथा—('ततं वीणादिकं वाद्यमानदं सुरजादिकम् । वंशादिकं तु सुपिरं
कास्यं तालादिकं घनम् ॥ चतुर्विधमिदं वाद्यवादित्रातोद्यनामकम् ।' इत्यमरः) विधयः=विधानानि,
अपरिहोयमानम्—परिहोयमानम्=वृष्टिसंवलितम् न भवतीति यथा तथा, निर्दोषमिति यावत्,
प्रवर्त्यन्ताम्=क्रियन्ताम् । किलेति निश्चये । तत्रभवतः=परमपूज्यस्य, पाराशर्येत्यादिः--पाराशर्यश्च
व्यासश्च नारदश्च=देवर्षिनारदश्चेत्यर्थः तुम्बरश्च=मुनिविशेषश्च जामदग्न्यश्च=परशुरामश्चेति
पाराशर्यनारदतुम्बरजामदग्न्याः प्रभृती=आदौ येषां तादृशः, मुनिवृन्दारकैः=ऋषिश्रेष्ठैः,
अनुगम्यमानस्य=अनुयातस्य, भरतकुलहितकाम्यया=भरतकुलम्=युधिष्ठिरादिवंशः तस्य
हितस्य=कल्याणस्य काम्या=इच्छा तथा, प्रतिपन्नदौत्यस्य--प्रतिपन्नम्=स्वीकृतम् दौत्यम्=
दूतकर्म येन तस्य, देवक्रांस्तुताः--देवक्रयाः स्तुतौः=स्तुतस्य, महाराजदुर्योधनशिविरसन्निवेश प्रति=
महांश्चासौ राजा च महाराजः स चासौ दुर्योधनश्च तस्य शिविरम्=वस्त्रनिर्मितं गृहं तस्य सान्नि-
वेशः=स्थितिः तं प्रातः, प्रस्थातुकामस्य=प्रस्थातुम्=गन्तुम् कामः=इच्छा यस्य तस्य 'तु काममन-
सोरपि' इति मकारलोपः, चक्रपाणेः--चक्रम्=सुदर्शनाख्य चक्रम् पाणौ=हस्ते यस्य तस्य, श्रीकृष्ण-
स्येत्यर्थः, प्रवेशकालः किलेति सम्बन्धः ॥

सूत्रधार इति । जगत्प्रभवस्थितिनिरोधप्रभविष्णुना-जगत्=संसारः तस्य प्रभवः=उत्पत्ति स्थितिः
=रक्षणम् निराधः=विनाशः तत्प्रभविष्णुना=तत्समर्थेन, प्रभविष्णुरिति प्रयागः साहित्ये चिन्त्यः,
'निरङ्कुशाः हि कवयः' इति रोत्या वा समाधेयः, राजचक्रम्=पञ्चद्वयमवलम्ब्योपस्थितो राजसमूहः,
आहवकल्पान्तानलप्रशमहेतुना-आहवः=युद्धम् एव कल्पान्तानलः=प्रलयाग्निः तस्य प्रशमः=
शान्तिः तस्य हेतुना=कारणेन, सन्धिकारिणा-सन्धिम्=वैरं निराकृत्य समुचितं मैत्रीं करोतीति
तेन, कसारिणा=कृष्णेन । पारिपाश्विकः-पारिपाश्वम्=सूत्रधारस्य समीपे चरतीति कार्यं करोतीति

सूत्रधार—(सुनकर आनन्दपूर्वक) आ...हा ! अरे, निश्चय ही, संसार का सर्जन पाठन और संहार (करने) में समर्थ, इन कौरव और पाण्डव राजपुत्रों के युद्ध-रूपी प्रलयग्निको शान्त करने के निमित्त सन्धि कराने वाले, स्वयं दूत (बने हुए), कंस-शत्रु, कृष्ण के द्वारा यह भरतकुल तथा सम्पूर्ण राजसमूह असुगृहीत किया गया है। अतः, पारिपाश्विक, नटों के साथ (मिल कर) क्यों नहीं संगीत प्रारम्भ करते ?

विशेष--पारिपाश्विक--सूत्रधार (stage-manager) के पास रह कर उसकी सहायता करने वाले नट (Actor) को पारिपाश्विक कहते हैं। इसे सहायक मैनेजर भी कह सकते हैं।

कुशीलवैः--कुशीलव भी नट को कहते हैं। किन्तु यह नट प्रधानतया गाना गाने का कार्य करता है।

(प्रवेश करके)

पारिपाश्विक--अच्छा आरम्भ करता हूँ। किस ऋतु का अवलम्बन करके गाया जाय ? (अर्थात् किस ऋतु का गाना गाया जाय) ?

सूत्रधार--अरे, इसी चौदनी, तारे, कौञ्च, हंस, सप्तच्छद, कुमुद (कोइनी), श्वेत कमल तथा काश के फूलों के पराग से दिङ्मण्डल को श्वेत बनाने वाले, स्वादिष्ट जल से पूर्ण जलाशय वाले, शरद् ऋतु का अवलम्बन कर सङ्गीत प्रारम्भ किया जाय। क्योंकि इस शरत् (ऋतु) में—

विशेष--चन्द्रातप--सामान्यतया 'आतप' उष्ण होता है। अतः शीतल चन्द्रमा के साथ 'आतप' का सम्बन्ध ठीक बैठता नहीं है। किन्तु यहाँ 'आतप' प्रकाश के अर्थ में प्रयुक्त है। देखिये--टोका।

कौञ्चहंससप्तच्छद--कौञ्च एवं हंस श्वेत वर्ण के पक्षी हैं तथा सप्तच्छद सफेद फूलों वाला वृक्ष है। शरद् ऋतु में ये बहुतायत से देखे जाते हैं।

पारिपाश्विकः = सूत्रधारसहायकः नटः--सूत्रधारस्य पार्श्वे यः प्रकरोत्यमुना सह। काव्यार्थसूत्रनालापं स भवेत् पारिपाश्विकः ॥ इति भरतः। कुशीलवैः = गानविद्याविशारदैर्नटैः ॥

सूत्रधार इति। चन्द्रातपनक्षत्रेत्यादिः--चन्द्रस्य = चन्द्रमसः आतपेन = प्रकाशेन, अत्र आतप-शब्दः प्रकाशपरा न तु धर्माद्यः ('प्रकाशो धात आतपः' इत्यमरः) नक्षत्रग्रहैः = अश्विनीपूर्वादिभिः, कौञ्चहंसैः = कुङ्कुमरालैः, ('कुङ्कु कौञ्चः' इत्यमरः) सप्तच्छन्द-कुमुद-पुण्डरीक-काशकुसुमानाम् = सप्त-पर्णः--कौरव-कमल-काश-पुष्पाणाम्, परागंश्च, = रजोमिश्र, ('परागः सुमनारज' इत्यमरः) धवलितम् = शुभ्रोद्धतम् दिशाम् = काष्ठानाम् ('दिशस्तु ककुम्भः काष्ठाः' इत्यमरः) मण्डलम् = चक्रम् यस्मिन् तम्, वाक्येऽस्मिन् सर्वत्र द्वन्द्वः, अत्र सर्वे च पदार्थाः शुभ्रा इति ध्वेयम्, स्वादुजलजलाशयम्--स्वादु = मधुरम् जलम् = सलिलम् येषां ते तथामूलाः जलाशयाः = सलिलाकाराः यस्मिन् तम्, शरत्समयम् = शरत्कालम्, आश्रित्य = अधिष्ठित्य, प्रवर्त्यताम् = विधीयताम्, सङ्गीतकम् = नृत्य-गीत-वाद्यादिकम् ॥

३६

सत्पक्षा मधुरगिरः प्रसाधिताशा मदोद्धतारम्भाः ।

निपतन्ति धार्तराष्ट्राः कालवशान्मेदिनीपृष्ठे ॥ ६ ॥

पारिपाश्विकः—(ससंभ्रमम्) भाव शान्तं पापम् । प्रतिहतममङ्गलम् ।

सूत्रधारः—(सर्वैलक्ष्यस्मितम्) मारिष, शरत्समयवर्णनाशंसया हंसा धार्तराष्ट्रा इति व्यपदिश्यन्ते । तत्किं शान्तं पापं प्रतिहतममङ्गलम् ।

पारिपाश्विकः—न खलु न जाने । किन्त्वमङ्गलाशसयास्य वो वचनस्य यत्सत्यं कम्पितामिव मे हृदयम् ।

सूत्रधारः—मारिष, ननु सर्वमेवेदानीं प्रतिहतममङ्गलं स्वयं प्रतिपन्नदौत्येन सन्धिकारिणा कंसारिणा । तथा हि—

निर्वाणवैरदहनाः प्रशमादरीणां

नन्दन्तु पाण्डुतनयाः सह माधवेन ।

रक्तप्रसाधितभुवः क्षतविग्रहाश्च

स्वस्था भवन्तु कुरुराजसुताः सभृत्याः ॥ ७ ॥

अन्वयः—सत्पक्षाः, मधुरगिरः, प्रसाधिताशाः, मदोद्धतारम्भाः, धार्तराष्ट्राः, कालवशात्, मेदिनीपृष्ठे, निपतन्ति ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—१—सत्पक्षाः=सुन्दर पंखवाले, मधुरगिरः=मीठी बोली वाले, प्रसाधिताशाः=दिशाओं को सुशोभित करनेवाले, मदोद्धतारम्भाः=हर्ष के कारण उदाम व्यापार (क्रीडा) करनेवाले, धार्तराष्ट्राः=हंस, कालवशात्=समय के कारण, मेदिनीपृष्ठे=भूतल पर, निपतन्ति=उतर रहे हैं ॥ ६ ॥

२—सत्पक्षाः=श्रेष्ठ सेना वाले अथवा उत्तम व्यक्तियों की सहायता से सम्पन्न, मधुरगिरः=मधुरभाषी, प्रसाधिताशाः=दिशाओं को वश में करनेवाले मदोद्धतारम्भाः=अहङ्कार के कारण धृष्टतापूर्ण कार्य करनेवाले, धार्तराष्ट्राः=धृतराष्ट्र के पुत्र, कालवशात्=मृत्यु के कारण, मेदिनीपृष्ठे=भूतल पर, निपतन्ति=गिर रहे हैं ॥ ६ ॥

श्लेषेण बीजमाह—सत्पक्षा इति । सत्पक्षाः—सन्तः=रुचिराः पक्षाः=पतत्राणि येषां ते दुर्योधनादिपक्षे—सन्=श्रेष्ठः पक्षः=सैन्यम् अथवा सन्तः=भीष्मद्रोणादयः सत्पुरुषाः पक्षाः=सहाय-सखायः वा येषां ते, मधुरगिरः—मधुरा=श्रवणप्रिया गोः=वाणी येषां ते, उभयत्र समानम्, प्रसाधिताशाः—प्रसाधिताः=भूषिताः आशाः=दिशः यैस्ते, पक्षे—प्रसाधिताः=प्रकर्षेण साधिताः=जिताः, आयत्तीकृताः इत्यर्थः, आशाः=दिशः यैस्ते, मदोद्धतारम्भाः—मदेन=हर्षेण ('मदो रेतसि कस्तूर्यां गे हर्षेमदानयोः' इति विश्वः) उद्धताः=अतिशययुक्ताः आरम्भाः=व्यापाराः येषां ते, पक्षे—मदेन=गर्वेण उद्धताः=उद्दण्डतापूर्णाः आरम्भाः=कार्याणि येषां ते, धृतराष्ट्रे भवाः धार्तराष्ट्राः=हंसाः पक्षे—धृतराष्ट्राज्जाताः धार्तराष्ट्राः=धृतराष्ट्रपुत्राः ('धार्तराष्ट्राः सितेतरैः' इत्यमरः), कालवशात्—

१—सुन्दर पंखवाले, मीठी बोलीवाले, दिशाओं को सुशोभित करने वाले, हर्ष के कारण उदाम व्यापार (क्रीडा) करनेवाले हंस (शरद् ऋतु के) समय के कारण मृतल पर उतर रहे हैं ॥ ६ ॥

२—श्रेष्ठ सेनावाले श्रवण उत्तम व्यक्तियों को सहायता से सम्पन्न, मधुरभाषी, दिशाओं को वन में करने वाले, अहङ्कार के कारण धृष्टतापूर्ण कार्य करने वाले, धृतराष्ट्र के पुत्र (दुर्योधनादि) मृत्यु के कारण मृतल पर (मरकर) गिर रहे हैं ॥ ६ ॥

पारिपाश्विक—(धवराहट के साथ) आर्य, पाप शान्त हो, अमङ्गल विनष्ट हो ।

सूत्रधार—(लज्जा और सुस्कराहट के साथ) मारिष (आदरणीय), शरद् ऋतु के वर्णन के अभिप्राय से हंस धार्तराष्ट्र—पेसा कहे जा रहे हैं (अर्थात् हंसों को धार्तराष्ट्र कहा जा रहा है) । तब 'पाप शान्त हो' 'अमङ्गल विनष्ट हो।' यह क्या ?

पारिपाश्विक—(मैं आपके अभिप्राय को) नहीं जानता हूँ, ऐसी बात नहीं है । फिर भी, आप के वचन के अमङ्गलसूचक होने से मेरा हृदय सचमुच काँप-सा गया है ।

सूत्रधार—मारिष (आदरणीय), अब तो दूत के कार्य को स्वयं सम्पन्न करनेवाले, सन्धि करानेवाले, कंसनिशूदन (श्री कृष्ण) के द्वारा सम्पूर्ण अमङ्गल विनष्ट कर दिया गया है । इसलिये—

१—शत्रुओं के शांत हो जाने के कारण शत्रुतारूपी आग को शांत कर लेनेवाले पाण्डु के पुत्र (युधिष्ठिर आदि) कृष्ण के साथ आनन्द करें । चाहने वाले (पाण्डवों) को भूमि प्रदान करने वाले, शांत-युद्धवाले कौरव (दुर्योधन आदि) भी सेवकों के सहित स्वयं हों ॥ ७ ॥

२—शत्रुओं के विनष्ट हो जाने के कारण शत्रुतारूपी आग को शांत कर लेनेवाले, पाण्डव (युधिष्ठिर आदि) कृष्ण के साथ आनन्द करें । (अपने) लून से पृथ्वी को अलंकृत करनेवाले, क्षत-विक्षत शरीरवाले कौरव भी सेवकों के सहित स्वर्गवासी हों ॥ ७ ॥

कालस्य = शरदतोंः वशात् = कारणात्, पक्षे—कालस्य = मृत्योः वशात् = कारणात् अधिकाराद्वा, मेदिनीपृष्ठे—मेदिन्याः = पृथिव्याः पृष्ठे = तले, निपतन्ति = अवतरन्ति, शरत्काले एव हंस मानसरो-वरात् पतस्मिन् प्रदेशे अवतरन्तीति शेषम्, पक्षे—निपतन्ति = मृत्युं प्राप्य पतन्ति । अत्र श्लेषोऽ-लङ्कारः । आर्या छन्दः ॥ ६ ॥

अन्वयः—अरीणाम्, प्रशमात्, निर्वाणवैरदहनाः, पाण्डुर्नतयाः, माधवेन, सह, नन्दन्तुः रक्तप्रसाधितमुवः, क्षतविप्रहाः, कुरुराजमुताः, च, सभृत्याः, स्वस्थाः, भवन्तु ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—१-अरीणाम् = शत्रुओं के, प्रशमात् = शान्त हो जाने के कारण, निर्वाणवैरदहनाः = शत्रुतारूपी आग को शान्त करलेनेवाले, पाण्डुर्नतयाः = पाण्डु के पुत्र, माधवेन = कृष्ण के, सह = साथ, नन्दन्तु = आनन्द करें; रक्तप्रसाधितमुवः = चाहनेवाले (पाण्डवों) को भूमि प्रदान करने वाले, क्षतविप्रहाः = शान्त युद्धवाले, कुरुराजमुताः = कौरव, च = भी, सभृत्याः = सेवकों के सहित स्वस्थाः = स्वस्थ, भवन्तु = हों ॥ ७ ॥

२-अरीणाम् = शत्रुओं के, प्रशमात् = विनष्ट हो जाने के कारण, निर्वाणवैरदहनाः = शत्रुतारूपी आग को शान्त कर लेने वाले, पाण्डुर्नतयाः = पाण्डु के पुत्र, माधवेन = कृष्ण के, सह = साथ,

(नेपथ्ये साधिक्षेपम्)

आः दुरात्मन्वृथा मङ्गलपाठक शैलूषापसद,

लाक्षागृहानलविषान्नसमाप्रवेशैः

प्राणेषु वित्तनिचयेषु च नः प्रहृत्य ।

आकृष्टपाण्डवधूपरिधानकेशाः

स्वस्था भवन्ति मयि जीवति धार्तराष्ट्राः ॥ ८ ॥

(सूत्रधारपरिपाशिकावाकर्णयतः)

पारिपाशिकः—भावं कुत एतत् ।

सूत्रधारः—(पृष्ठतो विलोक्य) अये एष खलु वासुदेवगमनात्कुरुपन्धानसमृद्धि-
माणः पृथुललाटतटघटितविकटशृङ्गुडिना दृष्टिपातेन पिबन्निव नः सर्वान् सहदेवेनानु-
गम्यमानः क्रुद्धो भीमसेन इत एवाभिवर्तते । तन्न युक्तमस्य पुरतः स्थातुम् । तदित
अवामन्यत्र शच्छावः ।

(इति निष्क्रान्ती)

॥ इति प्रस्तावना ॥

नन्दतु=आनन्द करें; रक्तप्रसाधितमुवः=(अपने) खून से पृथ्वी को अलंकृत करने वाले,
क्षतविग्रहाः=क्षत-विश्रत शरीर वाले, कुरुराजसुताः=कौरव, च=भो, समृद्ध्याः=सेवकों के सहित,
स्वस्थाः=स्वर्गस्थ, स्वर्गवासी, भवन्तु=हों ॥ ७ ॥

निर्वाणेति । अरीणाम्=शत्रूणाम्, प्रशमात्,=उपशमात्, विनाशादित्यपि पक्षे, निर्वाणवैर-
दहनाः—निर्वाणः=शान्तिमापन्नः वैरम्=शत्रुता एव दहनः=अग्निः येषां तादृशाः, पाण्डुतनयाः=
पाण्डवाः युधिष्ठिरादयः, माधवेन=श्रीकृष्णेन, सह=साकम्, नन्दन्तु=सुखमधिगच्छन्तु । रक्तप्रसा-
धितमुवः—रक्ता=अनुरागवती कृता प्रसाधिता=अधीनीकृता अथवा रक्तेन = अनुरागेण, भावे क्तः,
प्रसाधिता=पालिता भूः=पृथिवी यैस्ते, पक्षे—रक्तेन=रुधिरेण प्रसाधिता=अलंकृता, व्याप्तेति,
यावत्, भूः=पृथिवी यैस्ते, क्षतविग्रहाः—अतः=विनष्टः, दूरीकृत इति यावत्, विग्रहः=कलहः युद्धं
वा येषां ते, पक्षे—क्षताः=जातव्रणाः विग्रहाः=शरीराणि येषां ते, शस्त्राहत इत्यर्थः, कुरुराजसुताः=
कौरवाः, च=अपि, समृद्ध्याः=सपरिजनाः, स्वस्थाः—स्वः=स्वर्गे तिष्ठन्तीति स्वर्गस्थाः=मृत्युं प्राप्य
स्वर्गङ्गता इत्यर्थः, 'खपरे शरि वा विसर्गलोपो वक्तव्यः' इति वार्तिकेन विसर्गलोपः, भवन्तु=सन्तु ।
अत्र द्वितीयं पताकास्थानं श्लिष्टैः पदैरर्थसूचनात् । अत्र श्लेषालङ्कारः । वसन्ततिलका छन्दः ।
तल्लक्षणम्—'उक्ता वसन्ततिलका तमजा जगौ गः' ॥ ७ ॥

अन्वयः—लाक्षागृहानलविषान्नसमाप्रवेशैः, नः, प्राणेषु, च, वित्तनिचयेषु, च, प्रहृत्य, पाण्डव-
धूपरिधानकेशान्, आकृष्य, धार्तराष्ट्राः, मयि, जीवति, स्वस्थाः, भवन्ति ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—लाक्षागृहानलविषान्नसमाप्रवेशैः—लाक्षा (लाह) के घर में आग, विषाक्त अन्न
तथा समा में प्रवेश के द्वारा, नः=हमलोगों के, प्राणेषु=प्राणों पर, च=तथा, वित्तनिचयेषु=धन-

(पदों के पीछे तिरस्कारपूर्ण डाट के साथ)

आः दुष्ट, झूठी स्तुति करने वाले, अधम नट—

लाक्षा (लाह) के घर में आग, विषमिश्रित भोजन तथा सभा में प्रवेश के द्वारा हम लोगों के प्राणों तथा धन-संग्रहों पर प्रहार करके (और) पाण्डवों की वधू (द्रौपदी) के वस्त्र तथा बालों को खींच कर धृतराष्ट्र के पुत्र मेरे जीते जी, स्वस्थ होंगे ? (अर्थात् नहीं स्वस्थ होंगे) ॥ ८ ॥

(सूत्रधार और पारिपाश्विक दोनों सुनते हैं)

पारिपाश्विक—श्रीमान्, यह (आवाज) कहाँ से (आरही है) ?

सूत्रधार—(पीछे की ओर देख कर) अरे; (सन्धि के लिये) कृष्ण के (दुर्योधन के पास) जाने से कुरुओं के साथ होने वाली सन्धि को सहन न करते हुए, सहदेव से अनुगमन किये जाते हुए यह क्रुद्ध भीमसेन, विशाल मस्तकतट पर तनी हुई मोषण सृकृष्टि वाली दृष्टि के पात से हम सब को पीते हुए—से इधर हो आ रहे हैं । अतः इनके सामने खड़ा होना ठीक नहीं है । तो हम दोनों यहाँ से अन्यत्र चले ।

(ऐसा कह कर निकल गये)

॥ प्रस्तावना समाप्त ॥

विशेष—प्रस्तावना = परिचय, भूमिका, आमुख । प्रस्तावना का लक्ष्य दर्शकों को नाटककार तथा नाटक से परिचय कराना है । इनके साथ ही पात्रों को रङ्गमञ्च पर लाना भी प्रस्तावना का उद्देश्य है ।

संग्रहों पर, प्रहृत्य = प्रहार करके, पाण्डववधूपरिधानकेशान् = पाण्डवों की वधू के वस्त्र तथा बालों की, आकृष्य = खींच कर, धार्तराष्ट्राः = धृतराष्ट्र के पुत्र, मयि = मेरे, जीवति = जीवित रहने पर, स्वस्थाः = स्वस्थ, भवन्ति = होंगे ॥ ८ ॥

सूत्रधारवचनेन कौरवाणां मङ्गलकामनामुपश्रुत्य भीमो गर्जन्नाह—लाक्षागृहेति । लाक्षागृहानल-विप्राजसभाप्रवेशैः—लाक्षया रचितं गृहं लाक्षागृहम् = जतुनिर्मितं भवनम्, विषेण सम्पृक्तम् अन्नं विषान्नम् = गरलमिश्रितभोज्यम्, सभायां प्रवेशः सभाप्रवेशः = समितिप्रवेशः, समितौ कपटचूखेलन-मिति यावत्, लाक्षागृहानलश्च विषान्नञ्च सभाप्रवेशश्चेति तैः, नः = अस्मान्, प्राणेषु = जीवेषु, च = तथा, वित्तिनिचयेषु = धनसंग्रहेषु, उभयावच्छेदार्थं सप्तमी, प्राणावच्छेदेन धनावच्छेदेनेत्यर्थः, प्रहृत्य = प्रहारं कृत्वा, धातराष्ट्राः = धृतराष्ट्रपुत्राः दुर्योधनादयः, मयि = भीमे, जीवति = प्राणान् धारयति सति, स्वस्थाः = कुशलिनः, भवन्ति = भावस्थन्तीत्यर्थः, मयि जीवति तेषां स्वस्थता सुदुर्लभेति काक्वा व्यज्यते । वसन्ततिलका छन्दः ॥ ८ ॥

प्रस्तावनेति । प्रस्तावनालक्षणं दर्पणे यथा—“नटी विदूषको वापि पारिपाश्विक एव वा । सूत्र-धारेण सहिताः संलाप यत्र कुर्वते ॥ आमुखं तत्तु विशेषं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा ॥” प्रस्तावना परिचयभूमिकाऽऽमुखादिशब्दैरपि निगद्यते ॥

सूत्रधार इति । कुरुसन्धानम्—कुरुभिः = कौरवैः सह सन्धानम् = सन्धिम्, असृश्यामाणः =

(ततः प्रविशति सहदेवेनानुगम्यमानः क्रुद्धो भीमसेनः)

भीमसेनः—आः दुरात्मन् वृथामङ्गलपाठः शैलूपासद । ('लाभागृहानल'-इत्यादि पुनः पठति) ।

सहदेवः—(सानुनयम्) आर्यं मर्षय मर्षय । अनुमतमेव नो भरतपुत्रस्यास्य वचनम् पश्य—('निर्वाणवैरदहनाः' १ ७ इति पठित्वाऽन्यथाऽभिनयति ।)

भीमसेनः—(सोपालम्भम्) न खलु न खल्वमङ्गलानि चिन्तयितुमर्हन्ति भवन्तः कौरवाणाम् । सन्धेयास्ते आतरो युष्माकम् ।

सहदेवः—(सरोषम्) आर्य—

धृतराष्ट्रस्य तनयान्कृतवैरान्पदे पदे ।

राजा न चेन्निषेद्धा स्यात्कः क्षमेत तवानुजः ॥ ९ ॥ ४

भीमसेनः—(सरोषम्) एवमिदम् । अत एवाहमद्यप्रभृति भिक्षोः सवद्भयः । पश्य ।

प्रवृद्धं यद्वैरं मम खलु शिशोरेव कुरुभिर्न

तत्रार्यो हेतुर्न भवति किरीटी न च युवाम् ।

जरासन्धस्योरःस्थलमिव विरूढं पुनरपि

क्रुधा सन्धि भीमो विघटयति यूयं घटयत ॥ १० ॥

धृतराष्ट्रः
१०

असहमानः, पृथुललाटतटवदितविकटभ्रुकुटिना—पृथु = विस्तीर्णं यत् ललाटतटम् = मस्तकम् तटवदिता = रचिता या विकटा = भीषणा भ्रुकुटिः = कुटिलो भ्रूभागः यस्मिन् तेन, दृष्टिपातेन = अलोकेन, नः = अस्मान्, सर्वान् = निखिलान्, आपिबन्धित = पानं कुर्वन्निव, अनुगम्यमानः = अनुयातः, अभिवर्तते = आगच्छति ॥

अन्वयः—चेत्, राजा, निषेद्धा, न, स्यात्, (तदा), पदे, पदे, कृतवैरान्, धृतराष्ट्रस्य, तनयान्, कः, तवानुजः, क्षमेत ॥ ९ ॥

शब्दार्थः—चेत् = यदि, राजा = महाराज (युधिष्ठिर), निषेद्धा = रोकने वाले, मना करनेवाले न = नहीं, स्यात् = हो, (तदा = तो), पदे-पदे = पग-पग पर, कृतवैरान् = वैर करने वाले, धृतराष्ट्रस्य = धृतराष्ट्रके, तनयान् = पुत्रों को, कः = कौन, तवानुजः = आपका लघुभ्राता, क्षमेत = सहन करे ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्रस्येति । चेत् = यदि, राजा = महाराजो युधिष्ठिरः, निषेद्धा = निषेधकः, न स्यात् = न भवेत्, तदेति शेषः, पदे-पदे = प्रतिस्थानमित्यर्थः, कृतवैरान्-कृतम् = शास्त्रा सम्पादितम्, वैरम् = विद्वेषो येस्ते तान्, धृतराष्ट्रस्य = कुरुराजस्य, तनयान् = पुत्रान्, कः तव = भवतः, अनुजः = लघुभ्राता, क्षमेत = सहते, न कोऽपि सहतेति भावः । अत्र काव्यलिङ्गमलङ्कारः । पथ्यावकत्रं छन्दः । छन्दो लक्षणं यथा = 'युजोश्चतुर्यतो येन पथ्यावकत्रं प्रकीर्तितम्' ॥ ९ ॥

अन्वयः—शिशोः, एव, मम, कुरुभिः, यत्, वैरम्, प्रवृद्धम्, खलु, तत्र, आर्यः, हेतुः, न भवति किरीटी, (न भवति), युवाम्, च, (न, भवतः), जरासन्धस्य, उरःस्थलम्, इव, पुनरपि, विरूढम्

(तदनन्तर सहदेव के द्वारा अनुसरण किये जाते हुए भीमसेन प्रवेश करते हैं)

भीमसेन—आह, दुष्ट, झूठी स्तुति करनेवाले, नदों में नोच । ('लाक्षागृहानल' इत्यादि ९।८ फिर पढ़ते हैं) ।

सहदेव—(नम्रता के साथ मनाते हुए) आर्य, क्षमा कोजिय, क्षमा कोजिये । नट का वचन हमारे अनुकूल ही है । देखिये—

('निर्वाणवैरदहनाः' १।७ को पढ़ कर दूसरे तरह से अभिनय करते हैं, जिससे दूसरा अर्थ प्रतीत होता है) ।

विशेष—आर्य—छोटे व्यक्ति अपने से बड़े या पूज्य व्यक्तियों को आर्य कहा करते हैं ।

भरतपुत्रस्य—भरत नाट्य के प्रवर्तक माने गये हैं । यही कारण है कि अभिनय करनेवाले भरत-पुत्र कहे जाते हैं ।

भीमसेन—(उलाहना देते हुए) नहीं-नहीं आप लोग कौरवों का अमङ्गल नहीं सोच सकते हैं । आपके वे (दुर्बोधन आदि) भाई सन्धि करने के योग्य हैं । (अर्थात् आपके तो वे भाई हैं । अतः वे सन्धि करने के योग्य हैं) ।

सहदेव—(क्रोधपूर्वक) आर्य,

यदि महाराज (युधिष्ठिर) रोकनेवाले न हों तो (अर्थात् यदि महाराज युधिष्ठिर न रोकें तो) पग-पग पर वैर करनेवाले धृतराष्ट्र के पुत्रों को कौन-सा आपका छोटा भाई सहन करे ? (अर्थात् कोई भी सहन न करे) ॥९॥

भीमसेन—(क्रोध के साथ) यह ऐसा ही है (जैसा कि तुम कह रहे हो) । इसीलिये आज से हम आप लोगों से अलग हो गये । देखो—

बालक (की अवस्था से) ही मेरा (अर्थात् बचपन से ही मेरा) कौरवों के साथ जो वैर बढ़ा है, निश्चय ही उसमें आर्य (महाराज युधिष्ठिर) कारण नहीं हैं, अर्जुन (कारण) नहीं (हैं), तुम दोनों भी (कारण) नहीं (हो) । जरासन्ध के वस्त्रस्थल की तरह फिर से जुड़ी हुई सन्धि को भीम क्रोध के कारण तोड़ रहा है, तुम लोग जोड़ो ॥ १० ॥

विशेष—न तत्रार्यो हेतुः—भीम के कहने का भाव यह है कि बचपन से ही कौरवों के साथ जो मैंने शत्रुता का है, वह आप लोगों के भरोसे नहीं अपितु अपनी ताकत के बल पर ।

सन्धिम्, भीमः, क्रुधा, विघटयति, यूयम्, घटयत ॥ १० ॥

शब्दार्थः—शिशोः=बालक, एव=ही, मम=मेरा, कुरुभिः=कौरवों के साथ, यत्=जो, वैरम्=वैर, प्रवृद्धम्=बढ़ा है, खलु=निश्चय ही, तत्र=उसमें, आयः=महाराज (युधिष्ठिर), हेतुः=कारण, न=नहीं, भवति=होते हैं, किरौटी=अर्जुन, (न=नहीं, भवति=होते हैं), युताम्=तुम दोनों (अर्थात् नकुल और सहदेव), च=भी, (न=नहीं हैं), जरासन्धस्य=जरासन्ध के, उरःस्थलम्=वस्त्रस्थल की, इव=तरह, पुनरपि=फिर से, विरुद्धम्=जुड़ी हुई, सन्धिम्=सन्धि को, भीमः=भीम, क्रुधा=क्रोध के कारण, विघटयति=तोड़ रहा है, यूयम्=तुम लोग, घटयत=जोड़ो ॥ १० ॥

सहदेवः—(सानुनयम्) आर्यं, एवमतिसंभृतक्रोधेषु युष्मासु कदाचिस्त्विद्यते गुरुः ।

भीमसेनः—किं नाम त्विद्यते गुरुः । गुरुः खेदमपि जानाति । पश्य—

तथाभूतां दृष्ट्वा नृपसदसि पाञ्चालतनयां

वने व्याधैः सार्धं सुचिरमुषितं वल्कलधरैः ।

विराटस्यावासे स्थितमनुचितारम्भनिभृतं

गुरुः खेदं त्विन्ने मयि भजति नाद्यापि कुरुषु ॥ ११ ॥

प्रवृद्धमिति । शिशोः=बालकस्य, एव=हि, शैशवादारभ्येति यावत्, मम=भीमस्य, कुरुभिः=कौरवैर्दुर्योधनादिभिरित्यर्थः, यत्=यादृशम्, वैरम्=शत्रुत्वम्, प्रवृद्धम्=सम्भूय वृद्धिङ्गत्म्, खल्विति निश्चये, तत्र=वैरे, आर्यः=आदरणीयो महाराजो युधिष्ठिरः, हेतुः=कारणम्, न भवति=न जायते, किरीटी=अर्जुनः, (न भवति), युवान्=नकुलसहदेवौ इत्यर्थः, च=अपि, न भवतः । स्वपौरुषवलेनैवैतद्वैरं मया कृतं न तु युष्माकं बलेनेति गर्वगर्भितं वाक्यमिदं भीमस्य । जरासन्धस्य=एतन्नामकस्य राज्ञः, उरःस्थलमिव=वक्षःस्थलमिव पुनरपि=भुदुरपि, विरूढम्=सम्पन्नम्, सन्धिम्=संयोजनम्, भीमः=अहमिति भावः, भीमपदोपादानेनाहङ्कारो द्योतितः, क्रुधा=कोपेन, विषटयति=वियोजयति, यूयम्=युधिष्ठिरादयः, षटयत=योजयत । जन्मकाले जरासन्धस्य शरीरं द्विधा विभक्तमासीत् । जरानाम्न्या राक्षस्या तत् पुनर्युक्तं कृतम् । युद्धकाले कृष्णेनेक्षितमासाद्य भीमो तदेव सन्धिस्थलं भङ्गत्वा तं जघानेति पुराणप्रसिद्धिः । अत्रोपमालङ्कारः । शिखरिणी छन्दः ॥ १० ॥

अन्वयः—नृपसदसि, तथाभूताम्, पाञ्चालतनयाम्, वल्कलधरैः, (अस्माभिः), व्याधैः, सार्धम्, वने, सुचिरम्, उषितम्, विराटस्य, आवासे, अनुचितारम्भनिभृतम्, स्थितम्, दृष्ट्वा, मयि, त्विन्ने, (सति), अद्य, अपि, गुरुः, कुरुषु, खेदम्, न, भजति, (अद्यवा-अद्य, अपि, गुरुः, त्विन्ने, मयि, खेदम्, भजति, न, (तु), कुरुषु) ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—नृपसदसि=राजसभा में, तथाभूताम्=उस प्रकार की हुई (अर्थात् दुर्दशा में पड़ी हुई), पाञ्चालतनयाम्=द्रौपदी को, वल्कलधरैः=पेड़ की छाल पहन कर, अस्माभिः=(हम लोगों के द्वारा), व्याधैः=बहेलियों के, सार्धम्=साथ, वने=जङ्गल में, सुचिरम्=बहुत दिनों तक, उषितम्=निवास को, विराटस्य=विराट (राजा) के, आवासे=महल में, अनुचितारम्भनिभृतम्=अनुचित कार्यों के द्वारा चुपचाप (अर्थात् छिप कर), स्थितम्=किये गये निवास को, दृष्ट्वा=देख कर, मयि=मेरे, त्विन्ने सति=क्रुद्ध होने पर, अद्य=आज, अपि=भी, गुरुः=बड़े भैया, कुरुषु=कौरवों पर, खेदम्=क्रोध, न=नहीं, भजति=कर रहे हैं, (अद्यवा-अद्य=आज, अपि=भी, गुरुः=बड़े भैया, त्विन्ने=क्रुद्ध, मयि=मेरे ऊपर, खेदम्=क्रोध, भजति=कर रहे हैं, न=नहीं, (तु=कि), कुरुषु=कौरवों पर) ॥ ११ ॥

सत्यपि खेदकारणे युधिष्ठिरे खेदाभावमुपपादयन्नाह—तथाभूतामिति । नृपसदसि=राजसभायाम्, तथाभूताम्=तादृशीम्, ऋतुकालेऽपि आकृष्टकेशामाकृष्टवस्त्राञ्च, पाञ्चालतनयाम्=पञ्चालानां राजा पाञ्चालः तस्य तनयाम्=पुत्रीम्, दृष्ट्वा=अवलोक्य, वल्कलधरैः=वृक्षत्वग्धरैः, अस्माभिरिति

जरासन्धस्योरःस्थलमिव—जन्म के समय जरासन्ध का शरीर दो टुकड़ों में विभक्त था। उसे इस हालत में देख कर 'जरा' नामक एक राक्षसी ने जोड़ दिया था। यही कारण है कि इसका नाम 'जरासन्ध' पड़ा। इसके साथ भीम का भीषण संग्राम हुआ था। युद्ध में भीम इसे परास्त न कर पाते थे। तब भगवान् कृष्ण ने इशारा किया कि इसका पैर पकड़ कर बीचो-बीच इसे फाड़ दो, इसकी सन्धि—जोड़ अलग कर दो। भीम ने यही किया भी था। उसी बात की ओर यहाँ निर्देश है।

सन्धि घटयत—भीम के कहने का भाव यह है कि आप लोग कौरवों के साथ सन्धि कीजिये। मैं उसे तोड़ता हूँ। देखिये फिर किसका पक्ष प्रबल पड़ता है ॥ १० ॥

सहदेव—(विनती के साथ) आर्य, आप के इस तरह अत्यधिक क्रोध होने पर बड़े भाई (युधिष्ठिर) कदाचित् दुःखी होंगेंगे।

भीमसेन—क्या बड़े भैया दुःखी होते हैं। बड़े भाई खेद करना भी जानते हैं ? देखो—

राजसभा में उस प्रकार की हुई (अर्थात् दुर्दशा में पड़ी हुई) द्रौपदी को, वत्सल-वस्त्र को धारण करते हुए (हम लोगोंके द्वारा) वहेलियों के साथ जङ्गल में बहुत दिनों तक किये गये निवास को, विराट (राजा के) महल में अनुचित कार्यों के द्वारा चुपचाप (अर्थात् छिप कर किये गये) निवास को देखकर, मेरे क्रोध होने पर आज भी बड़े भैया क्रोध नहीं कर रहे हैं (अथवा—आज भी बड़े भैया मेरे ऊपर क्रोध कर रहे हैं न कि कौरवों पर) ॥११॥

विशेष-तथाभूताम्—जिस समय भरी राजसभा में दुर्योधन की आज्ञा से दुःशासन द्रौपदी का वस्त्र तथा केश खींच रहा था, उस समय द्रौपदी को मासिक धर्म (Monthly-course) हुआ था। 'तथाभूताम्' इस शब्द के द्वारा मासिक धर्म हुई द्रौपदी का वस्त्र तथा केश खींच कर किये गये अपमान की ओर संकेत किया गया है।

वने...उषितम्—जुएँ में हारने के बाद पाण्डवों ने १२ वर्ष तक सुनियों की तरह जङ्गल में निवास किया था।

विराटस्य...स्थितम्—जुआ खेलने के समय यह शर्त थी कि जो पाटीं जुआ में हारेगी वह १२ वर्ष जङ्गल में निवास करेगी तथा तेरहवें वर्ष अगाध वास करेगी। अपने अगाध वास के समय युधिष्ठिर आदि अपना-अपना असली नाम बदल कर विराट राजा के यहाँ ब्राह्मण, रसोइया, नृत्य-शिक्षक, अश्वपति तथा चरवाहा आदि के वेष में नौकरी करते थे। इसी बात की ओर यहाँ संकेत किया गया है। वहाँ, कङ्क, सूद, बृहन्नला, ग्रन्थिक तथा अरिष्टनेमि—ये युधिष्ठिर आदि के क्रमशः नाम थे ॥ ११ ॥

शेषः, व्याधैः=मृगयुभिः, सार्धम्=साकम्, वने=अरण्ये, सुचिरम्=बहुकालम्, यावद्वादश-वर्षाण्येत्यर्थः, उषितम्=निवसितम्, 'नपुंसके भावे क्तः' (अ० ३।३।११४) इति क्तः, दृष्ट्वेति शेषः, विराटस्य=तन्नाम्नो राज्ञः, आवासे=भवने, अनुचितारम्भनिमृत्तम्-अनुचितैः=अयोग्यैः, धूतसाहाय्यपाचकाद्यनुष्ठानैरित्यर्थः, कङ्कति नाम्ना युधिष्ठिरो धूतसाहाय्यं सूदेति-

तत्सहदेव निवर्तस्व । एवं चातिचिरप्रवृद्धामर्षोद्दीपितस्य भीमस्य वचनाद्विज्ञापय राजनम् ।

सहदेवः—आर्य किमिति ।

भीमसेनः—एवं विज्ञापय ।

युष्मच्छासनलङ्घनाहंसि मया मग्नेन नाम स्थितं

प्राप्ता नाम विगर्हणा स्थितिमतां मध्येऽनुजानामपि ।

क्रोधोल्लासितशोणितारुणगदस्योच्छिन्दतः कौरवा-

नद्यैकं दिवसं ममासि न गुरुर्नाहं विधेयस्तव ॥ १२ ॥

(इत्युद्धतं परिक्रामति)

सहदेवः—(तमेवानुगच्छन्नात्मगतम्) अये कथमार्यः पाञ्चाल्याश्चतुःशालं प्रति प्रस्थितः । भवतु, तावदहमत्रैव तिष्ठामि । (इति स्थितः) ।

(प्रतिनिवृत्त्यावलोक्य च) सहदेव, गच्छ त्वं गुरुमनुवर्तस्व । अहमप्यायुधागारं प्रविश्या-
युधसहायो भवामि ।

सहदेवः—आर्य, नेदमायुधागारं पाञ्चाल्याश्चतुःशालमिदम् ।

नाम्ना भीमः पावनं बृहन्नलेतिनाम्नाऽर्जुनो गीतादिशिक्षणं ग्रन्थिकेति संशया नकुलोऽश्वपालनम्
अरिष्टनेमीति नाम्ना सहदेवो गोरक्षणं तथा सैरन्ध्रीति संशया द्रौपदी सुदेष्णायाः विराटपत्न्याः सेवन-
ञ्चाकरोदिति निर्देशः, आरम्भः=कार्यैः निश्चितम्=गुप्तं यथा तथा, स्थितम्=निवसनम्, दृष्ट्वा,
मयि=स्वानुजे भीमे, खिन्ने=क्रुद्धे सति, अद्यापि=अधुनाऽपि, गुरुः=ज्येष्ठो भ्राता युधिष्ठिरः, कुरु-
=कौरवेषु, खेदम्=क्रोधम्, न भजति=न करोति । अतो शायते स खेदमपि न जानाति । अथवा—
अद्यापि गुरुः खिन्ने मयि खेदं भजति, न (तु) कुरु—इति काकुः । अत्र मयि, न योग्यः खेदः कुरु-
तु योग्यः इति काक्वा प्रकाश्यते । अत्र समुच्चयालङ्कारः । शिखरिणी छन्दः ॥ ११ ॥

अन्वयः—मया, युष्मच्छासनलङ्घनाहंसि, मग्नेन, स्थितम्, नाम; स्थितिमताम्, अनुजानाम्,
अपि, मध्ये, विगर्हणा, प्राप्ता, नाम; क्रोधोल्लासितशोणितारुणगदस्य, कौरवान्, उच्छिन्दतः, मम,
(त्वम्), अथ, एकम्, दिवसम्, गुरुः, न, असि, न, (वा), अहम्, तव, विधेयः, (अस्मि) ॥ १२ ॥

शब्दार्थः—मया=मेरे द्वारा, युष्मच्छासनलङ्घनाहंसि=आप की आशा के उलङ्घन रूप पाप
में, मग्नेन स्थितं नाम=भले ही डूब जाया गया, स्थितिमताम्=मर्यादा का पालन करने वाले, अनुजा-
नाम्=छोटे भाइयों के, अपि=भी, मध्ये=मध्य में, विगर्हणा=निन्दा, प्राप्ता नाम=भले ही प्राप्त
की गई, क्रोधोल्लासितशोणितारुणगदस्य=क्रोध से उठाई गई तथा रक्त से लाल गदा वाले, कौरवों
को, उच्छिन्दतः=विनष्ट करते हुये, मम=मेरे, (त्वम्=आप), अथ=आज, एकम्=एक, दिवसम्
=दिन के लिये, गुरुः=बड़े भाई, न=नहीं, असि=हैं, न=न, (वा=तो), अहम्=मैं तव=
आपका, विधेयः=आज्ञाकारी, (अस्मि=हूँ) ॥ १२ ॥

कौरवाणां नाशं प्रति स्वकीयां दृढां प्रतिज्ञां सन्दिशन्नाह-युष्मदिति । या=भीमसेन, युष्म-

इसलिये, सहदेव (तुम) लौट जाओ। (जाकर) बहुत दिनों से बड़े हुए क्रोध से उबलते हुए भीम की ओर से राजा (युधिष्ठिर) से ऐसा कहो—

सहदेव—आर्य, क्या (कहूँ)?

भीमसेन—ऐसा कहो—

मेरे द्वारा आप की आज्ञा के उल्लङ्घनरूप पाप में भले ही डूब जाया गया (अर्थात् मैं भले ही आप की आज्ञा का पालन न करने के कारण पाप का भागी बनूँ), मर्यादा का पालन करनेवाले छोटे भाइयों के भी मध्य में निन्दा भले ही प्राप्त का गई (अर्थात् छोटे भाइयों की सोसाइटी में भले ही मुझे धिक्कारा जाय)। (किन्तु) क्रोध से उठाई गई तथा रक्त से लाल गदावाले, कौरवों को विनष्ट करते हुए मेरे (आप) आज एक दिन के लिये बड़े भाई नहीं हैं, (और) न (तो) मैं आपका आज्ञाकारी (हूँ) ॥ १२ ॥

(ऐसा कहकर अभिनय के साथ घूमता है)

सहदेव—(उन्हीं के पीछे-पीछे चलते हुए अपने आप) अरे, क्या आर्य द्रौपदी के चौसाल (चार कमरेवाले भीतरी घर) में जा रहे हैं? अच्छा, तब तक मैं यहीं रुक जाता हूँ। (ऐसा कह कर रुक जाता है)।

भीमसेन—(मुड़ कर और देख कर) सहदेव, जाओ तुम बड़े भैया (युधिष्ठिर) का अनुवर्तन (आज्ञा-पालन) करो। मैं भी शस्त्रगृह में (In to the armoury) जाकर शस्त्रों से सज्जित होता हूँ।

सहदेव—आर्य, यह शस्त्रागार नहीं है, यह द्रौपदी का चौसाल है।

च्छासनलङ्घनाहसि-युष्माकम्=भवताम् शासनम्=आज्ञा तस्य उल्लङ्घनम्=अतिक्रमणम् तदेव अंहः=पापम् तस्मिन्, गुरुणामाज्ञाऽविचारणीया भवतीति तदुल्लङ्घने पापं श्रुतिपुराणादि-प्रसिद्धमेवेति, मर्गेन=बुद्धितेन, स्थितम्=अवस्थितम्, नामेति घोषणायाम्, स्थितिमताम्-स्थितिः=मर्यादा, कर्तव्यपालनरूपा मर्यादैत्यर्थः, अस्ति येषां ते स्थितिमन्तः तेषाम्, गुरुणामाज्ञामविचार्य कर्तव्यामित्यर्थः, अनुजानाम्=लघुभ्रातृणाम्, अपि=च, मध्ये=समवाये, त्रिगर्हणा=निन्दा, प्राप्ता=अधिगता, नामेति घोषणे स्वीकरणे वा, क्रोधोल्लासितशोणितारुणगदस्य-क्रोधेन=कोपेन, अपमानजनितेन कोपेनेत्यर्थः, उल्लासिता=कौरवान् प्रहर्तुमुच्छ्रिता शोणितेन=रक्तेन अरुणा=रक्तवर्णा च गदा येन स तस्य, कौरवान्=कुरुपुत्रान् दुर्योधनादीन्, उच्छिन्दतः=नाशयतः, मम्=भीमस्य, त्वमिति शेषः, अथ=सम्प्रति, एकम्=केवलम्, दिवसम्=दिनम्, गुरुः=मान्यो ज्येष्ठो भ्राता, न असि=न भवसि, न=नहि, (वा=अथवा), अहम्=तवाशोल्लङ्घनकर्ता भीमः, तव=पूज्यस्य राज्ञो भवतः, विषेयः=अनुशासनीयः, अस्मीति शेषः। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ १२ ॥

भीमसेन इति। गुरुम्=ज्यायांसं भ्रातरम्, अनुवर्तस्व=सेवस्व, आयुधसहायः=प्रहरण-द्वितीयः, गृहीतायुध इत्यर्थः ॥

सहदेव इति। आयुधागारम्=आयुधानाम्=प्रहरणानाम् आगारम्=गृहम्, पाञ्चाल्याः=पञ्चालस्य

भीमसेनः—(सवितर्कम्) किं नाम नेदमायुधागारं पाञ्चाल्याश्चतुःशालमिदम् ।
(किञ्चिद्विहस्य सहर्षम्) आमन्त्रयितव्या मया पाञ्चाली । (सप्रणयं सहदेवं हस्ते गृहीत्वा)
वत्स, आगम्यताम् । यदार्यः कुरुभिः सन्धानमिच्छन्स्मान्पीडयति तद्भवानपि
पश्यतु ।

(उभौ प्रवेशं नाटयतः)

सहदेवः—आर्य, इदमासनमास्तीर्णम् । अत्रोपविश्य प्रतिपालयत्वार्थः कृष्णा-
गमनम् ।

भीमसेनः—(उपविश्य) वत्स, कृष्णागमनमित्यनेनोपोद्घातेन स्मृतम् । अथ
भगवान्कृष्णः केन पणेन सन्धिं कर्तुं सुयोधनं प्रति प्रहितः ।

सहदेवः—आर्य पञ्चभिर्ग्रामैः ।

भीमसेनः—(कर्णोपिधाय) अहह ! हन्त देवस्याजातशत्रोरप्ययमीदृशस्तेजोऽपकर्ष
इति यत्सत्यं कम्पितमिव मे हृदयम् । (परिवर्त्य स्थित्वा) तद्वत्स, न त्वया कथितं न
मया श्रुतम् ।

यत्तदूर्जितमत्युग्रं क्षात्रं तेजोऽस्य भूपतेः ।

दीव्यताक्षैस्तदानेन नूनं तदपि हारितम् ॥१३॥

(नेपथ्ये)

समाश्वसितु समाश्वसितु भट्टिनी । (समस्तसदु समस्तसदु भट्टिणी ।)

अपत्यं स्त्री पाञ्चाली तस्याः द्रौपद्या इत्यर्थः, चतुःशालम्—चतसृणां शालानाम् = प्रकोष्ठकानां समाहारः
चतुःशालम् ॥

भीमसेन इति । सवितर्कम्—वितर्केण = चिन्तनेन सहितं सवितर्कम् = सविचारम् । आमन्त्र-
यितव्या = संवदनीया, युद्धात् पूर्वं प्रष्टुं योग्येति भावः । सन्धानम् = सन्धिम् ॥

सहदेव इति । आस्तीर्णम् = विस्तृतम् । प्रतिपालयतु = प्रतीक्षां करोतु, कृष्णागमनम्—
कृष्णायाः = द्रौपद्याः ('कृष्णा स्याद्रौपदी नीली' इति मेदिनी) आगमनम् = अत्र प्राप्तिम्, अत्र
द्वितीयोऽर्थो ध्वनितः—कृष्णस्य = हरेः आगमनम् = दुर्योधनशिविरात् निवर्तनम् ॥

भीमसेन इति । उपोद्घातेन = उदाहारेण, कथनेनेति यावत् ('उपोद्घात उदाहारः' इत्यमरः),
स्मृतम् = बुद्धावारुढम् । पणेन = मूल्यान ('पणो वराटमाने स्यान्मूल्या कार्षापणे ग्रहे' इति विश्व-
मेदिन्यौ) प्रहितः = प्रेषितः ॥

भीमसेन इति । 'अहह' इति खेदे । अजातशत्रोः—अजातः = अनुत्पन्नः शत्रुः = रिपुः यस्य
स तस्य, युधिष्ठिरस्येत्यर्थः, तेजोपकर्षः—तेजसः = प्रतापस्य अपकर्षः = होनता, पञ्च ग्रामान् प्राप्य
युधिष्ठिरस्य सन्धितत्परतामुपश्रुत्य तत्तेजोऽपकर्षमनुमिनोतीति ॥

अन्वयः—अस्य, भूपतेः, यत्, ऊर्जितम्, अत्युग्रम्, तत्, क्षात्रम्, तेजः, (आसीत्) तत्

भीमसेन—(सोच-विचार पूर्वक) क्या यह शस्त्रागार नहीं है, यह द्रौपदी का चौसाल है ? (कुछ हँस कर, हर्षपूर्वक) मुझे द्रौपदी से (भी) विदा लेनी है । (प्रेमपूर्वक सहदेव का हाथ पकड़ कर) प्रिय बन्धु, आओ । कौरवों के साथ सन्धि को चाहते हुए आर्य (युधिष्ठिर) हमें जो पीड़ा दे रहे हैं, उसे आप भी देखो ।

(दोनों अन्दर जाने का अभिनय करते हैं)

सहदेव—आर्य, यह आसन विछा है । यहाँ बैठ कर प्रतीक्षा करें आप द्रौपदी के आने की ।

विशेष—कृष्णागमनम्—‘कृष्णायाः=द्रौपद्याः आगमनम्’—ऐसा समास करने पर इस पद का अर्थ होता है—‘द्रौपदी का आना’ । सहदेव के कहने का भाव भी यही है । किन्तु इसका एक दूसरा अर्थ भी होता है—‘कृष्णस्य=हरेः आगमनम्’—कृष्ण का (दुर्योधन के यहाँ से) लौटना । इस दूसरे अर्थ के भी निकलने के कारण ही भीम का आगे का कथन सङ्गन बैठता है ।

भीमसेन—(बैठ कर) वत्स, ‘कृष्णागमन’ इस कथन से स्मरण हो आया है । (अतः, यह बतलाओ कि) भगवान् कृष्ण किस शर्त पर सन्धि करने के लिये दुर्योधन के पास भेजे गये हैं ?

सहदेव—आर्य, पाँच ग्रामों (की शर्त) के साथ ।

भीमसेन—(कानों को ढँक कर) अहह ! महान् कष्ट है, महाराज अजातशत्रु (युधिष्ठिर) का भी यह ऐसा तेज का क्षय (हो गया है)—इन बात को देख कर वस्तुतः मेरा हृदय कांप-सा गया है । (दूसरी ओर मुँह कर खड़े होकर) तो वत्स, (इस बात को मानो) न तुमने कहा है, न मैंने सुना है ।

इस राजा का वह (जगत्प्रसिद्ध), शक्तिशाली, अति प्रचण्ड जो क्षत्रिय-तेज (या) वह भी पाशों से खेलते हुए इसके द्वारा निश्चय ही उस समय (जब कि यह जुआ खेल रहा था) गतों दिया गया ॥ १३ ॥

(पदों के पीछे)

धैर्य धारण करें, धैर्य धारण करें स्वामिनी ।

अपि, अक्षैः, दीव्यता, अनेन, नूतम्, तदा, हारितम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—अस्य=इस, भूपतेः=राजा का, यत्=जो, तत्=वह (जगत्प्रसिद्ध), ऊर्जितम्=शक्तिशाली, भव्य, अत्युग्रम्=अति प्रचण्ड, क्षात्रम्=क्षत्रिय का, तेजः=तेज, (आसीत्=था), तत्=वह, अपि=भी, अक्षैः=पाशों से, दीव्यता=खेलते हुए, अनेन=इसके द्वारा, नूतम्=निश्चय ही, तदा=उस समय, हारितम्=गँवा दिया गया ॥ १३ ॥

यत्प्रदिति । अस्य=पञ्चभिर्ग्रामैः सन्धि कुर्वाणस्य चर्चाविषयभूतस्य युधिष्ठिरस्येत्यर्थः, भूपतेः=राजा, तत्=जगद्धितम्, ऊर्जितम्=बलसम्पन्नम्, अत्युग्रम्=अतिप्रचण्डम्, यत्=यादृशम्, क्षात्रम्=क्षत्रस्य सम्बन्धि, क्षत्रियस्येति यावत्, तेजः=प्रतापः, आसीदिति क्रियाशेषः, तत्=क्षात्रं तेज इत्यर्थः, अपिना सम्प्रतिष्ठानं सूचितम्, अक्षैः=पाशकैः (‘अज्ञोशानात्मशक्तद्वयवहारेण पाशकै’ इत्यमर-टीका), दीव्यता=कीडता, अनेन=एतेन राज्ञा, नूतम्=निश्चितम्, तदा=तस्मिन् काले, धृतकीडनसमये इत्यर्थः, हारितम्=पराजितम् । अन्यथा कथमेवं तेजोभङ्ग इति भावः । पथ्यावक्त्रं छन्दः । तल्लक्षणं यथा—‘युजोश्चतुर्यतो येन पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम्’ ॥ १३ ॥

सहदेवः— (नेपथ्यामिमुखमवलोक्यात्मगतम्) अये कथं याज्ञसेनी मुहुरूपचीयमानवाष्प-
पटलस्थगितनयना आर्यसमीपमुपसर्पति । तत्कष्टतरमापतितम् ।

यद्वैद्युतमिव ज्योतिरार्यं क्रुद्धेऽद्य संभृतम् ।

तत्प्रावृडिव कृष्णेयं नूनं संवर्धयिष्यति ॥१४॥

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टा द्रौपदी चेटी च)

(द्रौपदी साध्वं निश्वासति)

चेटी—समाश्वसितु समाश्वसितु भट्टिनी । अपनेष्यति ते मन्युं नित्यानुबद्धकुरुवैरः
कुमारो भीमसेनः । [समस्तसदु समस्तसदु भट्टिणी । अवणश्स्तदि दे मणुं णिच्चाणुवद्धकुरुवैर
कुमालो भीमसेणो ।]

द्रौपदी—हज्जे बुद्धिमतिके, भवत्येद्यदि महाराजः प्रतिकूलो न भवेत् ।

[हज्जे बुद्धिमदिप, होदि एवं जइ महाराओ पडिऊलो न भवे ।]

चेटी—(विलोक्य) एष कुमारस्तिष्ठति । तदेनमुपसर्पतु भट्टिनी ।

[एसो कुमारो चिट्ठदि । ता णं उवसप्पदु भट्टिणी ।]

द्रौपदी—हज्जे एवं कुर्व इति । (इति परिक्रामतः) [हज्जे एवं करेम्ह ।]

चेटी—(उपसृत्य) जयतु जयतु कुमारः । [जअदु जअदु कुमालो ।]

(भीमसेनोऽश्रुण्वन् 'यत्तदूर्जितम्' इति पुनः पठति)

चेटी—(परिवृत्य) भट्टिनि, परिकुपत इव कुमारः लक्ष्यते ।

[भट्टिणी, परिकुविदो विअ कुमालो लक्खीअदि ।]

द्रौपदी—हज्जे, यद्येवं तदवधीरणाप्येषा मामाशवासयति । तदेकान्त उपविष्टा
भूत्वा शृणोमि तादन्नाथस्य व्यवसितम् । [हज्जे जइ एव्वं ता अवहीरणावि एसा मं आसासअदि
ता एत्थ उवविट्ठा भविअ सुणोमि दाव णाडस्स ववसिदं ।]

सहदेव इति । याज्ञसेनी = याज्ञसेनस्य = द्रुपस्य अपत्यं स्त्री याज्ञसेनी = द्रौपदी, उपचीयमान-
वाष्पपटलस्थगितनयना-उपचीयमानेन = वृद्धि गच्छता वाष्पपटलेन = अश्रुसमूहेन रथगते = आच्छादिते
नयने = नेत्रे यस्याः सा ॥

अन्वयः—अद्य, क्रुद्धे, आर्ये, वैद्युतम्, इव, यत्, ज्योतिः, सम्भृतम्, तत्, प्रावृट्, इव, इयम्,
कृष्णा, नूनम्, सम्बर्धयिष्यति १४ ॥

शब्दार्थः—अद्य = आज, क्रुद्धे = कुपित हुए, आर्ये = आर्य (भीमसेन) में, वैद्युतम् = बिजली के,
इव = जैसा, यत् = जो, ज्योतिः = तेज, सम्भृतम् = सञ्चित हुआ है, तत् = उसको, प्रावृट् = वर्षा,
इव = जैसी, इयम् = यह, कृष्णा = द्रौपदी, नूनम् = निश्चय ही, सम्बर्धयिष्यति = बढ़ा देगी,
भड़का देगी ॥ १४ ॥

किं कष्टतरमापतितमित्येव प्रतिपादयन्नाह—यद्वैद्युतमिव । अद्य = सम्प्रति, क्रुद्धे = कुपिते, आर्ये =
पूज्ये भीमे इत्यर्थः, वैद्युतः = तडितः भवं वैद्युतम् = तडितसम्बन्धीत्यर्थः, इव = यथा, यत् ज्योतिः =

सहदेव—(पदों की ओर देख कर अपने आप) अरे ! बार-बार बढ़ते हुए अश्रु-समूह से भरे नेत्रोंवाली द्रौपदी क्या आर्य (भीमसेन) के पास आ रहा है । तब तो महान् अनर्थ आ पड़ा ।

विशेष—कष्टतरमापतितम्—सहदेव के कष्टने का भाव यह है कि भीम इस समय स्वयं क्रुद्ध हैं । युधिष्ठिर की आज्ञा भङ्ग करने पर उतारू हैं । ऐसी दशा में जब ये दुःखित द्रौपदी को लट छिटकाए देखेंगे तब तो एकदम क्रोध में पागल हो जायेंगे और न जाने क्या-क्या अनर्थ कर डालेंगे ।

आज कुपित हुए आर्य (भीमसेन) में बिजली के जैसा जो तेज सञ्चित हुआ है, उसको वर्षा जैसी यह द्रौपदी निश्चय ही बढ़ादेगी (अर्थात् जैसे वर्षा के आजाने से बादलों में सञ्चित बिजली भड़क उठती है; उसी तरह दुःखित, अश्रुवर्षाती हुई द्रौपदी के आजाने से भीम का क्रोध भड़क उठेगा) ॥ १४ ॥

(तदनन्तर पूर्ववर्णित अवस्थावाली द्रौपदी तथा चेटी प्रवेश करती है)

(द्रौपदी आँसू बहाती हुई उसाँसे लेती है)

चेटी—आश्वस्त हों, आश्वस्त हों स्वामिनी । सर्वदा कौरवों से वैर बांधने वाले कुमार भीमसेन आप के शोक को दूर करेंगे ।

द्रौपदी—हज्जे बुद्धिमतिके, यह (ऐसा ही) होता यदि महाराज (युधिष्ठिर) प्रतिकूल न होते (अर्थात् सद्यः शत्रु-विनाश से भाइयों को न रोकते) ।

विशेष—हज्जे—यह सम्बोधन पद महारानी आदि अपनी चोटियों (दासियों) तथा सखियों के लिये प्रयुक्त करती हैं ।

चेटी—(देख कर) यह कुमार भीमसेन स्थित हैं । तो स्वामिनी इनके पास चले ।

द्रौपदी—चेटी, ऐसा ही (हमलोग) करें । (ऐसा कह कर दोनों धूमती हैं)

(भीमसेन न सुनते हुए 'यत्तदूर्जितम्' १।१३ इत्यादि श्लोक फिर पढ़ते हैं)

चेटी—(सुड़ कर) स्वामिनी, कुमार क्रुद्ध से दिखलाई पड़ रहे हैं ।

द्रौपदी—चेटी, यदि ऐसी बात है तो यह अपमान भी मुझे सान्त्वना (ही) प्रदान कर रहा है । तो एक किनारे बैठ कर स्वामी के निश्चय को सुनूँगी ।

तेजः, सम्भृतम् = सञ्चितम्, तत् = तज्ज्योतिः, प्रावृट्ठिव = वर्षाविलेव, श्यम् = एषा, कृष्णा = द्रौपदी, नूनम् = निश्चितम्, सम्बर्धयिष्यति = पथयिष्यति । यथा वर्षाविला मेघे सञ्चितं वधुतं तेजो वर्धयति तथैव वाष्पमरितनयना द्रौपदी अपि भोमे भवं क्रोधरूपं तेजो वर्धयिष्यतीति भावः । अत्रोपमालङ्कारः । पथ्यावक्त्रं छन्दः ॥ १४ ॥

चेटीति । नित्यानुबद्धकुरुवैरः—नित्यम् = सर्वदा अनुबद्धम् = कृतम् कुरुभिः = दुर्बोधनादिभिः वैरम् = शत्रुत्वम् येन तादृशः, भीमसेनः, ते = तव, मन्युम् = शोकम् ('वैरं विराधो विद्रेषो मन्युशोकी' इत्यमरः) ॥

द्रौपदीति । हज्जे = चेटी, ('हण्डे हज्जे हलाह्वाने नोचां चेटीं सखीं प्रति' इत्यमरः) । महाराजः = युधिष्ठिर इत्यर्थः, प्रतिकूलः = सद्यः शत्रुप्रतिकारादिप्रतीति इति भावः ॥

(उभे तथा कुरुतः)

भीमसेनः—(सक्रोधम् । सहदेवमधिकृत्य) किं नाम पञ्चभिर्ग्रामैः सन्धिः ?

मथ्नामि कौरवशतं समरे न कोपाद्

दुःशासनस्य रुधिरं न पिबाम्युरस्तः

सञ्चूर्णयामि गदया न सुयोधनोरु

सन्धिं करोतु भवतां नृपतिः पणेन ॥१५॥

द्रौपदी—(सहर्षम्, जनान्तिकम्) नाथ, अश्रुतपूर्वं खलु ते ईदृशं वचनम् । तत्पुनः पुनस्तावद् भण । [णाह, अस्मदपूर्वं क्व दे एदिसं वञ्चणं । ता पुनो पुनो दाव भणाहि]

(भीमसेनोऽश्रुष्वन्नेव 'मथ्नामि कौरवशतं' इति पुनः पठति)

सहदेवः—आर्यं किं महाराजस्य सन्देशोऽव्युत्पन्न इव गृहीतः ।

भीमसेनः—का पुनरत्र व्युत्पत्तिः ।

सहदेवः—आर्य एवं गुरुणा सन्दिष्टम् ।

भीमसेनः—कस्य ।

सहदेवः—सुयोधनस्य ।

भीमसेनः—किमिति ?

द्रौपदीति । एवम् = इत्थम्, क्रुद्धो भीम इति भावः । तत् = तदा, श्रवधीरणा = तिरस्कारः, सम्प्राप्ते सत्काराभावरूपाऽवधीरणा इति भावः । व्यवसितम् = निश्चयम् ॥

अन्वयः—(अहम्), समरे, कोपात्, कौरवशतम्, न, मथ्नामि ? दुःशासनस्य, उरस्तः, रुधिरम्, न, पिबामि ? गदया, सुयोधनोरु, न सञ्चूर्णयामि, भवताम्, नृपतिः, पणेन, सन्धिम् करोतु ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—(अहम् = मैं), समरे = संग्राम में, कोपात् = क्रोध से, कौरवशतम् = सौ कौरवों के समूह को, न = नहीं, मथ्नामि = मय ढालूंगा, विनष्ट कर ढालूंगा ? दुःशासनस्य = दुःशासन के, उरस्तः = वक्षःस्थल से, रुधिरम् = रक्त को, न पिबामि = नहीं पी जाऊंगा ? गदया = गदा से, सुयोधनोरु = दुर्योधन की जांघों को, न = नहीं, सञ्चूर्णयामि = चूर्ण कर ढालूंगा ? भवताम् = आप का, नृपतिः = राजा (युधिष्ठिर), पणेन = शर्त से, सन्धिम् = सन्धि को, करोतु = करे ॥ १५ ॥

काव्वा स्वकीयं सामर्थ्यं व्यजयन्नाह—मथ्नामीति । अहमिति शेषः, समरे = संग्रामे, कोपात् = क्रोधात्, कौरवशतम् = कौरवाणाम् = दुर्योधनादीनाम् शतम् = शतसंख्यकं समवायम्, न मथ्नामि = न विलोडयामि ? अपितु मथिष्याम्येवेति काकुव्यञ्जनम्, 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' इति भविष्यदर्थे लट् । दुःशासनस्य = दुःखेन शासितुं योग्यस्य, द्रौपदीवस्त्राहतुर्दुर्योधनानुजस्येत्यर्थः, उरस्तः = वक्षःस्थलात्, उरो विदार्येत्यर्थः, पञ्चम्यां सप्तम्यां वा तसिः, रुधिरम् = रक्तम्, न पिबामि = न पास्यामि ? अपितु पास्याम्येवेति । गदया = स्वकीयायुधविशेषेण, सुयोधनोरु = सुयोधनस्य = सुष्ठु योधयतीति तस्य, दुर्योधनस्येत्यर्थः ऊरु = जङ्घे, न सञ्चूर्णयामि = न त्रोटयिष्यामि ? अपि तु त्रोटयिष्याम्येव । सत्यप्ये-

प्रथमोऽङ्कः

(दोनों बैसा ही करती हैं)

विशेष-अवधीरणा—अपमान । द्रौपदी के पहुँचने पर भीम ने उन्हें देखा नहीं, प्यार से बुलाया नहीं तथा दुलार से बैठाया नहीं । यही उन्होंने द्रौपदी का अपमान किया । अपना यह अपमान द्रौपदी को इस लिये नहीं खल रहा है कि भीम उनके बैरी कौरवों पर क्रुद्ध हैं ।

भीमसेन—(क्रोध के साथ सहदेव को लक्ष्य करके) क्या (कहा) ? पाँच गावों से सन्धि ?

(मैं) संग्राम में क्रोधवश सौ कौरवों के समूह को नहीं तहस-नहस (बिनष्ट) कर डालूँगा ? दुःशासन के वक्षःस्थल से रक्त को नहीं पी जाऊँगा ? गदा से दुर्योधन की जाँघों को नहीं चूर्ण कर डालूँगा ? आपका राजा (युधिष्ठिर मले हो) शर्त से सन्धि कर ले (अर्थात् मैं कौरवों के पूरे समूह को नष्ट कर डालूँगा । दुःशासन को छाती फाड़ कर उसका खून भी पी जाऊँगा । गदा से दुर्योधन की जाँघें भी तोड़ डालूँगा । अब ऐसी अवस्था में भी यदि आपका राजा सन्धि कर लेना चाहता है तो कर ले) ॥१५॥

द्रौपदी—(बड़ी प्रसन्नता के साथ, एक ओर) स्वामिन्, आपका ऐसा वचन पहले कभी नहीं सुना गया था । अतः सम्प्रति फिर से (इसे) कहिये ।

विशेष-जनान्तिकम्—अपवारितकम् । जब एक पात्र अपने हाथ की तीन अँगुलियाँ उठाकर तथा अनामिका अँगुली को टेढ़ी किये हुए अन्य लोगों को बचाकर किसी एक पात्र से कुछ कहता है तो वह जनान्तिक कहा जाता है । और जब मुँह फेर कर दूसरे से गुप्त बात कही जाती है तब वह संवाद अपवारित कहलाता है ।

(भीमसेन न सुनते हुए ही 'मथ्नामि कौरवशतं' १।१५ यह श्लोक फिर से पढ़ता है)

सहदेव—आर्य, क्या (आपने) महाराज के (सन्धि के लिये भेजे गये । सन्देश को स्पष्टरूप से नहीं समझा है ?

भीमसेन—अच्छा, इसमें क्या गूढ़ रहस्य है ?

सहदेव—आर्य, आदरणीय बड़े भाई के द्वारा ऐसा सन्देश भेजा गया है ।

भीमसेन—कैसे (भेजा गया है) ?

सहदेव—दुर्योधन के लिए ।

भीमसेन—कैसा (सन्देश भेजा गया है) ?

तादृशे मदीये सामर्थ्ये याद भवताम्=युष्माकम्, न तु ममेति ध्वनिः, नृपतिः=राजा, युधिष्ठिरः, पणेन=मूलेन, पञ्चग्राममूलेनेत्यर्थः, सन्धिम्=मेलनम्, इच्छति तर्होति शेषः, करोतु=विदधातु । कौरवान् विनाशयितुं समर्थोऽहं तथापि यदि भवतां नृपतिर्भोतिवशात्सन्धिमिच्छति तर्हि करोतिवत्सन्धिः । वसन्ततिलकाच्छन्दः । तल्लक्षणं यथा—'उक्ता वसन्ततिलका तमजा जगौ गः' ॥१५॥

जनान्तिकम्—एतस्य परिभाषा दशरूपके इत्यमास्ते—'त्रिपताककरोणान्यामपत्रायान्तरा कवाम् । अण्योन्यामन्त्रणं यत्स्याज्जनान्ते तज्जनान्तिकम् ।' अश्रुतपूर्वम्=पूर्व कदाचिदपि न श्रुतम् । शत्रुविनाशप्रतिज्ञया पुनरपि शत्रुणेच्छेति शेषम् ॥

सहदेवः—

इन्द्रप्रस्थं वृकप्रस्थं जयन्तं वारणावतम् ।

प्रयच्छ चतुरो ग्रामान् कञ्चिदेकं तु पञ्चमम् ॥१६॥

भीमसेनः—ततः किम् ?

सहदेवः—तदेवमनया प्रतिनामग्रामप्रार्थनया पञ्चमस्य चाकीर्तनाद्विषभोजन-
जनुगृहदाहघ्नूतसमाद्यपकारस्थानोद्घाटनमेवेदं मन्ये ।

भीमसेनः—(साटोपम्) वत्स, एवं कृते किं कृतं भवति ?

सहदेवः—आर्य एवं कृते लोके तावत्स्वगोत्रक्षयाशङ्कि हृदयमाविष्कृतं भवति
कुरुराजस्य तावदसन्धेयता च तदैव प्रतिपादिता भवति ।

भीमसेनः—सर्वमप्येतदनर्थकम् । कुरुराजस्य तावदसन्धेयता तदैव प्रतिपादिता
यदैवास्मामिरितो वनं गच्छद्भिः सर्वैरेव कुरुकुलस्य निधनं प्रतिज्ञातम् । लोकेऽपि च
धार्तराष्ट्रकुलक्षयः किं लज्जाकरो भवताम् ! अपि च रे मूर्ख—

युष्मान् ह्येपति क्रोधाल्लोके शत्रुकुलक्षयः ।

न लज्जयति दाराणां सभायां केशकर्षणम् ॥१७॥

सहदेव इति । महाराजस्य = युधिष्ठिरस्येत्यर्थः, सन्देशः = दुर्योधनाय प्रेषितः पञ्चग्रामप्रदानरूपः
इत्यर्थः, अव्युत्पन्नः = अविस्पष्टः, अभिप्रायमगृहीत्वेत्यर्थः ॥

भीमसेन इति । का = कीदृशी, व्युत्पत्तिः = गूढाऽभिप्रायः ॥

श्रवणः—इन्द्रप्रस्थम्, वृकप्रस्थम्, जयन्तम्, वारणावतम्, (इति), चतुरः, ग्रामान्, च
पञ्चमम्, कञ्चित्, एकम्, (ग्रामम्), प्रयच्छ ॥१६॥

शब्दार्थः—इन्द्रप्रस्थम् = इन्द्रप्रस्थ, वृकप्रस्थम् = वृकप्रस्थ, जयन्तम् = जयन्त, वारणावतम् =
वारणावत, (इति = इति तरह इन), चतुरः = चार, ग्रामान् = गाँवों को, च = तथा, पञ्चमम् =
पाँचवें, कञ्चित् = किसी, एकम् = एक, (ग्रामम् = ग्राम को), प्रयच्छ = प्रदान करो ॥१६॥

इन्द्रप्रस्थमिति । इन्द्रप्रस्थादिग्रामैः तत्र तत्र भवानपकारान् निर्दिशति; यथा—इन्द्रप्रस्थमिति
कथनेन हस्तिनापुरनिर्वासनानन्तरं युधिष्ठिरेण स्वनिवासाय कृतादिन्द्रप्रस्थनगरादपि स्वकीय निर्वासनं
निर्दिष्टम् । एतेन निर्वासनरूपोऽपकारः सूचितः । वृकप्रस्थेन तत्र दुर्योधनेन भीमाय विहितं विषदानं
स्मारितम् । एतेन विषदानरूपोऽपकारः सूचितः । जयन्तेन कपटघ्नस्य निर्देशः । तत्रैव दुर्योधनः छद्मेन
घ्नूतं कृत्वा युधिष्ठिरस्य राज्यं जहार । एतेन कपटेन राज्यापहरणरूपोऽपकारः सूचितः । वारणावतेन
लाक्षागृहे अग्निदानं निर्दिष्टम् । लाक्षागृहे युधिष्ठिरे निवसति सति दुर्योधनाज्ञया पुरोचनो तत्राग्निदानं
चकार । अनेन प्राणापहारचेष्टारूपोऽपकारः सूचितः । (इति = इत्यमेतानिति वा) चतुरः = चतुः
संख्याकान्, ग्रामान् = संवसयान्, ('समी संवसयग्रामौ' इत्यमरः), च = तथा, पञ्चमं कञ्चित् =
स्वेच्छानुरूपमित्यर्थः एकं ग्राममिति शेषः, प्रयच्छ = देहि । यत् पञ्चममिति भावप्रधाननिर्देशं स्वीकृत्य
पञ्च = पञ्चमहामृतात्मकं देहमित्यर्थः माति = नाशयतीति पञ्चममिति व्याख्यानं कुर्वन्ति तत्र समीचीनं

सहदेव—इन्द्रप्रस्थ, वृकप्रस्थ, जयन्त तथा वारणावत (इस तरह इन) चार गाँवों को तथा पाँचवें किसी एक (ग्राम) को (हमें) प्रदान करो ॥ १६ ॥

भीमसेन—उससे क्या (हुआ) ?

सहदेव—तो इस तरह अत्येक ग्राम का नाम लेकर याचना करने से तथा पाँचवें का नाम न लेने से विषमिश्रित भोजन, लाहवर (लाक्षागृह) को जलाने, द्यूत-सभा आदि अपकार का उद्घाटन ही इसे समझता हूँ ।

भीमसेन—(घमण्ड के साथ) वत्स, ऐसा करने से क्या हुआ ?

सहदेव—आर्य, ऐसा करने से जगत् में सर्वप्रथम (आर्य का) हृदय अपने कुल के नाश की आशङ्का से युक्त परिश्रित होता है (अर्थात् इससे सर्वप्रथम तो यही प्रकट होगा कि युधिष्ठिर युद्ध करके अपने कुल का नाश नहीं करना चाहते, वे शान्ति चाहते हैं) और दूसरी बात यह है कि कौरवाधिपति (दुर्योधन) के साथ सन्धि न करने की इच्छा (भी) प्रदर्शित हो जाती है ।

विशेष-कुरुराजस्यासन्धेयता—युधिष्ठिर ने जिन गाँवों की माँग की है, उनमें चारों ऐसे ग्राम हैं जहाँ कि दुर्योधन ने युधिष्ठिर आदि का महान् अपकार किया था । इन गाँवों के माँगने में दो बातें हैं । एक तो यह कि दुर्योधन स्वभावतः इन्हें देना न चाहेगा । वे उसके षड्यन्त्र के स्थल रहे हैं । दूसरी बात यह है कि इन्हें माँगकर युधिष्ठिर ने यह निर्देश किया है कि हम अब तक तुम्हारे अपकारों को भूल नहीं हैं । तुमसे बदला लेना अभी भी बाकी ही है ।

भीमसेन—यह सब व्यर्थ है । कुरुराज (दुर्योधन) के साथ तो सन्धि न करने की भावना तभी प्रदर्शित कर दी गई थी जब कि यहाँ से वन जाते हुए हम सभी के द्वारा कुरुकुल के विनाश की प्रतिज्ञा की गई । क्या धृतराष्ट्र के कुल का विनाश भी आप लोगों के लिये संसार में लज्जाजनक है ? और भी रे मुख—

क्रोध से शत्रु के कुल का नाश आप लोगों को संसार में लज्जित करता है । (किन्तु मरी) सभा में वधू का केश (पकड़ कर) खींचा जाना नहीं लज्जित करता है ॥ १७ ॥

प्रकरणविरोधात् । पश्चावक्त्रं छन्दः ॥ १६ ॥

टोका—**सहदेव इति** । प्रतिनामग्रामप्रार्थनया—नाम्ना नाम्ना प्रतिनाम=नाम गृहीत्वैत्यर्थः, ग्रामाणां प्रार्थनया=याचनया, अकीर्तनात्=नाम्ना अकथनात् ॥

सहदेव इति । स्वगोत्रक्षयाशङ्कि—स्वगोत्रस्य=आत्मनः कुलस्य क्षयम्=विनाशम् आशङ्कते इति तादृशम्, हृदयम्=चेतः, आविष्कृतम्=सूचितम्, व्यक्तमिति यावत्, कुरुराजस्य=कौरवाधिपतेः दुर्योधनस्य, असन्धेयता=असन्धानविषयता ॥

भीमसेन इति । अनर्थकम्=निष्प्रयोजनम् । निधनम्=विनाशः । धार्तराष्ट्रकुलक्षयः—धृतराष्ट्रस्य अपत्यानि धार्तराष्ट्राः=दुर्योधनादयस्तेषां कुलम्=वंशः तस्य क्षयः=विनाशः ॥

अन्वयः—क्रोधात्, शत्रुकुलक्षयः, युष्मान्, लोके, हेपयति; (किन्तु), समायाम्, दाराणाम्, केशकर्षणम्, न, लज्जयति ॥ १७ ॥

द्रौपदी—(जनास्तिकम्) नाथ न लज्जन्त एते । त्वमपि तावन्मा विस्मार्षीः ।

[णाह ण लज्जन्ति एदे । तुमं वि दाव मा विमुमरेहि ।]

भीमसेनः—(सस्मरणम्) वत्स, कथं चिरयति पाञ्चाली ।

सहदेवः—आर्य, का खलु वेला तन्नभवत्याः प्राप्तायाः । किं तु रोषावेगवशाद् आगताप्यार्येण नोपलक्षिता ।

भीमसेनः—(दृष्ट्वा सादरम्) देवि, समुद्धतामपैरस्माभिरागतापि भवती नोपलक्षिता अतो न मन्युं कर्तुमर्हसि ।

द्रौपदी—नाथ, उदासीनेषु युष्मासु मम मन्युर्न पुनः कुपितेषु ।

[णाह उदासीनेषु तुह्यसु मह मण्णु ण उण कुविदेसु ।]

भीमसेनः—यद्येवमपगतपरिभवमात्मानं समर्थयस्व । (हस्ते गृहीत्वा पार्श्वे समुपवेश्य मुखमवलोक्य) किं पुनरन्नभवतीमुद्विग्नमिवोपलक्षयामि ?

द्रौपदी—नाथ, किमुद्वेगकारणं युष्मासु सन्निहितेषु ।

[णाह किं उव्वेअकालणं तुह्येषु सण्णिहिदेसु ।]

भीमसेनः—किमिति नावेदयसि । (केशानवलोक्य) अथवा किमावेदितेन ।

जीवत्सु पाण्डुपुत्रेषु दूरमप्रोषितेषु च ।

पाञ्चालराजतनया बहते यदिमां दशाम् ॥१८॥

द्रौपदी—हज्जे बुद्धिमतिके, निवेदय तावन्नाथस्य । कोऽन्यो मम परीभवेन खिद्यते ।

[हज्जे बुद्धिमदिए, णिवेदेहि दाव णासस्स । को अण्णो मह परिहवेण खिज्जइ ।]

शब्दार्थः—क्रोधात्=क्रोध से, शत्रुकुलक्षयः=शत्रु के कुल का नाश, युष्मान्=आप लोगों को, लोके=ससार में, ह्येपयति=लज्जित करता है, (किन्तु=परन्तु), सभायाम्=सभा में, दाराणाम्=वधू का, केशकर्षणम्=केश (पकड़ कर) खींचा जाना, न=नहीं, लज्जयति=लज्जित करता है ॥ १७ ॥

युष्मानिति । क्रोधात्=क्रोपात्, कृतः शत्रुकुलक्षयः--शत्रुकुलस्य=रिपुवंशस्य क्षयः=विनाशः, युष्मान्=भवतः सर्वान्, लोके=जगति, ह्येपयति=लज्जायुक्तान् करोति । किन्तु, सभायाम्=समितौ, दाराणाम्=वध्वाः ('दाराः पुंभूमि' इत्यमरः), यद्यपि यहर्थवाचिदारशब्देनायोग्य-तया एकैव द्रौपदी प्रतिपादयितुं न शक्यते तथापि लक्षणया तद्रूपनिराकरणमित्यशेषः, केशकर्षणम्-केशेन=केशं गृहीत्वेत्यर्थः कर्षणम्=आकर्षणम्, कर्तुं, न लज्जयति=न त्रपयति ? लज्जास्थाने भवतां लज्जाभावप्रदर्शनं लज्जाभावस्याने लज्जाप्रदर्शनमेव तेषां मूर्खत्वं शेषमिति । पथावकत्रं छन्दः ॥ १७ ॥

सहदेव इति । प्राप्तायाः—आगतायाः । रोषावेगवशात्—रोषस्य=कोपस्य आवेगः=प्रवाहः तद्वशात्=तदाधीन्यात्, उपलक्षिता=अवलोकिता ॥

भीमसेन इति । समुद्धतामपैः—समुद्धतः=वृद्धिज्ञतः अमर्षः=क्रोधः येषां तैः । मन्युम्=

द्रौपदी—(अलग से) स्वामिन्, नहीं लजाते हैं ये लोग । सम्प्रति आप मत मुछा देना ।

भीमसेन—(यादपूर्वक) वत्स, द्रौपदी क्यों देर कर रहो है ?

सहदेव—आर्य, आदरणीया (द्रौपदी) को आप हुए कितना समय हो गया (अर्थात् वे तो काफी देर से आई हुई हैं) । किन्तु क्रोध के आवेग के कारण; आई हुई भी (वह), आर्य के द्वारा नहीं देखी गईं ।

भीमसेन—(देखकर आदर के साथ) महारानी, प्रबल क्रोधवाले हमारे द्वारा आई हुई भी आप नहीं देखी गईं । अतः (आपको) नाराज (दुःखित) नहीं होना चाहिए ।

द्रौपदी—नाथ, आपके उदासीन होने पर हमें दुःख होता है, कुपित होने पर नहीं ।

भीमसेन—यदि ऐसा है तो अपने अपमान को समाप्त ही जानो । (हाथ पकड़कर, पास में बैठकर तथा मुख देखकर) लेकिन आपको परेशानसी क्यों देख रहा हूँ ?

द्रौपदी—स्वामिन्, आपके पास में होने पर उद्वेग का कारण क्या (हो सकता है ? अर्थात् कुछ नहीं) ।

भीमसेन—क्यों नहीं बतला रही हो ? (शिर के बालों को देखकर) अथवा, बतलाने से क्या ?

जो कि पाण्डु पुत्रों (अर्थात् हम लोगों) के जीवित रहते हुए तथा दूर परदेश न जाने पर (भी) पाञ्चालनरेश की पुत्री (अर्थात् द्रौपदी) इस (हीन) दशा को धारण कर रही है ॥ १८ ॥

द्रौपदी—चेटी, बुद्धिमत्तिके, स्वामी (भीम) से निवेदन कर दो (मेरे अपमान की कहानी) । (इनके अलावा) दूसरा कौन मेरे (प्रति किये गये) तिरस्कार से दुःखी होगा ।

कोथं शोकं वा ('मन्युः पुमान् क्रुधि । दैन्ये शोके च' इति मेदिनी) ॥

द्रौपदी इति । उदासीनेषु = तटस्थेषु । शत्रुप्रतिकारविमुखेभ्यस्त्यर्थः ॥

भीमसेन इति । अपगतपरिभवम्—अपगतः=दूरीभूतः, वैरनिर्यातिनेति शेषः, परिभवः=तिरस्कारोऽवमानना वा यस्य तम्, आत्मानम्=स्वम्, समर्थयस्व=जानीहि । उद्विग्नमिव=चिन्तितामिव, सञ्जातहादिकदुःखमिव, उपलक्षयामि=पश्यामि ॥

अन्वयः—यत्, पाण्डुपुत्रेषु, जीवत्सु, च, दूरम्, अप्रोपितेषु, (अपि), पाञ्चालराजतनया, इमाम्, दशाम्, वहते ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—यत्=जो कि, पाण्डुपुत्रेषु=पाण्डु के पुत्रों के (अर्थात् हमलोगों के), जीवत्सु=जीवित रहने पर, च=तथा, दूरम्=दूर, अप्रोपितेषु=परदेश न जाने पर, (अपि=भी), पाञ्चालराजतनया=पाञ्चालनरेश की पुत्री, इमाम्=इस, दशाम्=अवस्था को, वहते=धारण कर रही है ॥ १८ ॥

यदिति । यत्=यस्मात्, पाण्डुपुत्रेषु=अस्मात् सुधिक्षिणादिभ्यस्त्यर्थः, जीवत्सु=प्राणान् धारयत्सु, च=तथा, दूरम्=विप्रकृष्टम्, अप्रोपितेषु=अपरदेशवासिषु, अपीति शेषः, पाञ्चालराजतनया=द्रौपदी, पाञ्चालराजेति कीर्तनेन द्रौपद्या उत्कृष्टता सुकुमारता तद्दशाऽयोग्यता च सूचिता, इमाम्=एताम्, अतिहीनामिति भावः, दशाम्=अवस्थाम्, वहते=धारयति । अत उद्वेगकारणं स्पष्टमेव कोऽवसरः प्रश्नस्य ? पथ्यावकं छन्दः ॥ १८ ॥

चेटी—यदेव्याज्ञापयति । (भीममुपसृत्य, अञ्जलि बद्ध्वा) कुमार, इतोऽप्यधिकतरमद्य मन्युकारणमासाद्देव्याः । [जं देवी आणवेदी । कुमाल, इदोवि अहिअदरं अज्ज मण्णुकालं आसो देवीए ।]

भीमसेनः—किं नामास्मादप्यधिकतरम् । तत्कथय कथय ।

कौरव्यवंशदावेऽस्मिन् क एष शलभायते ।

मुक्तवेणीं स्पृशन्तेनां कृष्णां धूमशिखामिव ॥१९॥

चेटी—शृणोतु कुमारः । अद्य खलु देवी अम्बासाहता सुभद्राप्रमुखेन सपत्नीवर्गेण परिवृताऽऽर्याया गान्धार्याः पादवन्दनं कर्तुं गतासीत् । [सुणादु कुमाला । अज्ज खलु देवी अम्बासहिदा सुभद्रापमुहेण सर्वत्तिवग्गेण परिवुदा अज्जार गन्धालीए पादवन्दनं कादुं गदा आसी ।]

भीमसेनः—युक्तमेतत् । वन्द्याः खलु गुरवः । ततस्ततः !

चेटी—ततः प्रतिनिवर्तमाना मानुमत्या देवी दृष्टा !

[तदो पडिणिवुत्तमाणा भाणुमदीए देवी दिट्ठा ।]

भीमसेनः—(सक्रोधम्) आः शत्रोर्भार्यया दृष्टा । हन्त स्थानं क्रोधस्य देव्याः । ततस्ततः ?

चेटी—ततस्तत्या देवीं प्रेक्ष्य सखीजनदत्तदृष्ट्या सगर्वमोपद् विहस्य भणितम् । [तदो ताए देवीं पेक्खिअ सहोजणदिण्णदिट्ठए सगर्वं ईस विहसिअ भणिदं ।]

भीमसेनः—न केवलं दृष्टा उक्ता च । अहो किं कुर्मः । ततस्ततः ?

चेटी—अयि याज्ञसेनि, पञ्चग्रामाः प्रार्थ्यन्त इति श्रूयते । तत्कस्मादिदानीमपि ते केशा न संयम्यन्ते । [अई जण्णसेणि, पञ्च गामा पयोअन्ति त्ति सुणीअदि । ता कीस दाणीं वि दे केसा ण संजमीअन्ति ।]

भीमसेनः—सहदेव श्रुतम् ?

अन्वयः—(कृष्णाम्), धूमशिखाम्, इव, मुक्तवेणाम्, एनाम्, कृष्णाम्, स्पृशन्, एषः, कः, अस्मिन्, कौरव्यवंशदावे, शलभायते ॥ १९ ॥

शब्दार्थः—(कृष्णाम्=काली), धूमशिखाम्=धूम की शिखा की, इव=तरह, मुक्तवेणीम्=खुली हुई चोटी वाली, एनाम्=इस, कृष्णाम्=द्रौपदी को, स्पृशन्=स्पर्श करता हुआ, एषः=यह, कः=कौन, अस्मिन्=इस, कौरव्यवंशदावे=कौरवकुल की वनाग्नि में, शलभायते=फटिझा बन रहा है ॥ १९ ॥

कौरव्येति । (कृष्णाम्=कृष्णवर्णाम्), धूमशिखाम्=धूमस्य शिखाम्=वेणीम्, इव=यथा, मुक्तवेणीम्=मुक्ता=विश्लिष्टा वेणी=केशवेशः=यस्यास्ताम्, एनाम्=एतां पुरोवर्तिनीम्, कृष्णाम्=द्रौपदीम्, स्पृशन्=छुपन्, एषः=द्रौपदीमन्युहेतुरित्यर्थः, कः=को जनः, अस्मिन्=एतस्मिन्, मयि भीमे इति भावः, कौरव्यवंशदावे=कुरोरपत्यं कुरूणां राजा वा कौरव्यः कौरव्ये साधवः कौरव्याः तेषां वंशः अथवा ते वंशाः=वेणव इवेति उपमितिसमासः, तस्य तेषां वा दावे=वनाग्नौ, दाहके विनाशके वेत्यर्थः, शलभायते=शलभवत्=कीटवत् आचरतीति शलभायते,

चेटी—जैतो महारानी आशा दे रही हैं (वैसा ही कहूँगी) । (भीम के पास जाकर, हाथ जोड़ कर) कुमार, आज देवी के शोक का कारण इससे भी अधिक था ।

भीमसेन—क्या कह रही हो (नाम) इससे भी अधिक ? तो बुद्धिमतिके, बतलाओ बतलाओ (इसे) ।

(काली) धूम-शखा की तरह, सुली चोटी वाली इस कृष्णा (द्रौपदी) को, स्पर्श करता हुआ यह कौन इस कौरव-कुल को वनाग्नि में फतिष्ठा बन रहा है ? ॥ १६ ॥

विशेष—अस्मिन् कौरव्यवंशदात्रे—‘अस्मिन्’ इस शब्द को कहते हुए भीम हाथ से अपनी ओर इशारा करते हैं । वे अपने आप को कौरवों के कुलरूपी वाँस (वंश) के लिये वनाग्नि बतला रहे हैं ।

शलभायते—वर्षा ऋतु में फतिष्ठा आग पर जान-बूझ कर कूदते हैं । इससे आग का कुछ बनता-विगड़ता नहीं । किन्तु वे स्वयं ही जलकर मर जाते हैं । ठीक यही बात द्रौपदी को छेड़नेवाले व्यक्ति की होगी । अर्थात् उसका विनाश अनायास ही मेरे हाथों से होगा ॥ १६ ॥

चेटी—कुमार सुनें । आज मैं (कुन्ती) के साथ, सुभद्रा आदि सपत्नीवर्ग (सौत-समूह) से विर्रा हुई (यह) देवी आर्या गान्धारी की चरण-वन्दना करने के लिये गईं थीं ।

भीमसेन—यह ठीक है । निश्चय ही गुरुजन (बड़े व्यक्ति) वन्दनीय होते हैं । उसके बाद, उसके बाद (क्या हुआ) ?

चेटी—वहाँ से लौटती हुई (महारानी द्रौपदी) भानुमती के द्वारा देखी गईं ।

विशेष—‘भानुमती’ दुर्बोधन की स्त्री का नाम था ।

भीमसेन—(क्रोध के साथ) ओह, शत्रु की पत्नी के द्वारा देखी गईं ? आह, (तब तो) देवी के क्रोध का स्थान (ही) था, अर्थात् तब तो देवी का क्रोध उचित ही था । उसके बाद, उसके बाद (क्या हुआ) ?

चेटी—तब महारानी (द्रौपदी) को देखकर उसके द्वारा अभिमान के साथ मुस्कराकर कहा गया ।

भीमसेन—(भानुमती के द्वारा द्रौपदी) केवल देखी ही न गई किन्तु (कुछ) कही भी गई (अर्थात् उसने द्रौपदी को केवल देखा ही भर नहीं अपितु कुछ कहा भी) ? आह क्या करे ? उसके बाद, उसके बाद ?

चेटी—अब द्रौपदी, सुना है कि (तुम्हारे पतिदेव लोगों के द्वारा) पाँच गाँव भाँगे जा रहे हैं । तो क्यों अब भी तुम्हारे केश नहीं बाँधे जा रहे हैं ?

भीमसेन—सहदेव, सुना (तुमने) ?

आचारायें बयङ् । द्रौपद्या अनिटं कुर्वन् को जनो मम गदाप्रहारेण मर्तुमुद्यत इति भावः । अत्रोपमा-लङ्कारः । पथ्यावक्त्रं लन्दः ॥ १९ ॥

चेटीति । खल्विति वाक्यमूषायाम् । देवी=महारानी द्रौपदीत्यर्थः, अम्बासहिता--अम्बा=

सहदेवः—आर्यं, किमिहोच्यते । दुर्योधनकलत्रं हि सा । पश्य,

(स्त्रीणां हि साहचर्याद् भवन्ति चेतांसि भर्तृसदृशानि ।)
मधुरापि हि मूर्च्छयते विषविटपिसमाश्रिता वल्ली ॥२०॥

भीमसेनः—बुद्धिमतिके, ततो देव्या किमभिहितम् ?

चेटी—कुमार, यदि परिहीनं मम वचनं भवेत्तदा देवः भणति ।

[कुमार, जइ पडिहीणं मम वचनं भवे तदो देवी भणादि ।]

भीमसेनः—किं पुनरभिहितं भवत्या ।

चेटी—मया एवं भणितम् । अयि भानुमति, युष्माकममुक्तेषु केशेषु कथमस्माकं देव्याः केशाः संयम्यन्त इति । [मय एवं भणितं । अइ भाणुमदि, तुह्याणं अमुक्तेसु केसेसु कथं अह्याणं देवीए केसा संजमोअन्ति ति ।]

भीमसेनः—(सपरितोषम्) साधु, बुद्धिमतिके, साधु । तदभिहितं यदस्मत्परिजनो-
चितम् । (अधोरमासनादुत्तिष्ठन्) अत्रभवति पाञ्चालराजतनये श्रूयताम् । अचिरेणैव कालेन-

चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघात-

सञ्चूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य ।

स्त्यानावनद्धधनशोणितशोणपाणि-

रुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि भीमः ॥२१॥

माता कुन्ता तथा सहिता = संयुक्ता, सुभद्रा = अर्जुनपत्नी प्रमुखे = प्रधाने स्थाने यस्य तेन सपत्नी-
वर्गेण = सपत्नीनां समानभार्याणां वर्गस्तेन, गान्धार्याः = दुर्योधनमातुः, पादवन्दनम् = चरणवन्दनम् ॥

चेटीति । सखीजनदत्तदृष्ट्या = सखीजने = वयस्यावर्गे दत्ता = प्रक्षिता दृष्टिः = नेत्रं यथा सा
तादृश्या; सगर्वम् = साभिमानम्, ईषत् = किञ्चित् ॥

अन्वयः—हि, स्त्रीणाम्, चेतांसि, साहचर्यात्, भर्तृसदृशानि, भवन्ति; हि, मधुरा, अपि, वल्ली,
विषविटपिसमाश्रिता, (सती), मूर्च्छयते ॥ २० ॥

शब्दार्थः—हि = निश्चय ही, स्त्रीणाम् = स्त्रियों के, चेतांसि = चित्त, साहचर्यात् = सहवास के
कारण, भर्तृसदृशानि = पति के समान, भवन्ति = हो जाते हैं । हि = उदाहरणार्थ, मधुरा = मीठी,
अपि = भी, वल्ली = लता, विषविटपिसमाश्रिता (सती) = विष के वृक्ष पर चढ़ कर, मूर्च्छयते =
बेहोश करने वाली हो जाती है ॥ २० ॥

दुर्योधनकलत्रत्वात्तस्यां दोषापत्तिं साधयन्नाह—स्त्रीणामिति । हीति निश्चये, स्त्रीणाम् = नारीणाम्
चेतांसि = चित्तानि, चित्तप्रवृत्तय इत्यर्थः, साहचर्यात् = सहवासात्, भर्तृसदृशानि—भर्तुः = पत्युः
चेतसः सदृशानि = अनुरूपाणि, भवन्ति = जायन्ते । 'संसर्गजा दोषगुणा भवन्तो'ति न्यायात् स्त्रीणां
चित्तवृत्तयोऽपि पतिवृत्त्यनुरूपाणि जायन्ते इत्यभिप्रायः । हि = यथा, मधुरा = मधुरगुणा, अपि, वल्ली
= लता, विषविटपिसमाश्रिता—विषारमकः विटपी = वृक्षः (मध्यमपदलोपी समासः) तं समाश्रिता =
अवलम्बिता, (सती), मूर्च्छयते = जनं मूर्च्छितं करोतीति भावः । आधारगुणेनाऽऽधेयोऽपि अलङ्कृतो

सहदेव—आर्य, इस विषय में क्या कहा जाय ? क्योंकि वह दुर्योधन को पत्नी हैं । देखिये—
निश्चय ही स्त्रियों के चित्त, सहवास के कारण (अपने) पति के (चित्त के) समान होते हैं ।
उदाहरणार्थ—मोठी लता भी विष के वृक्ष पर चढ़ कर बेहोश करने वाली हो जाती है ॥२०॥

भीमसेन—बुद्धिमतिके, तब देवों ने क्या कहा ?

चेटी—कुमार, यदि मेरी जवान नष्ट होती तब देवों (कुछ) कहतीं ।

भीमसेन—अच्छा, आपने क्या कहा ?

चेटी—मैंने इस तरह कहा—‘अयि भानुमति, आप लोगों के केशों के बिना खुले हो हमारी स्वामिनी के केश कैसे बाँधे जा सकते हैं ?’

विशेष-अमुक्तेशु केशेषु—विधवा स्त्रियाँ चोटी नहीं करती हैं, वालों को नहीं सँवरती हैं ।
चेटी का भाव यह है कि जब तक आप लोग विधवा नहीं हो जातीं, आपके बाल नहीं खुल जाते, आप लोगों के पतिदेव मारे नहीं जाते, तब तक हमारी स्वामिनी के बाल कैसे बाँधे जा सकते हैं ।

भीमसेन—(पूरी प्रसन्नता के साथ) ठीक, बुद्धिमतिके, ठीक । (तुमने) वह कहा जो हमारे परिजन (सेवक-सेविका) के लिये उचित है । (अधीरता के साथ आसन से उठते हुये) आदर के योग्य, पाञ्चालराज की कुमारी (द्रौपदी), सुनिये । अत्यल्प ही समय में—

हे देवि, चञ्चल भुजाओं के द्वारा घुमाई गई प्रचण्ड गदा के प्रहार से चूर-चूर हुई दोनों जाँघों वाले दुर्योधन के चिकने, चिपके हुए, गाढ़े रक्त से लाल हाथों वाला भीम तुम्हारे केशों को अलङ्कृत करेगा ॥२१॥

जायते इति तात्पर्यम् । आर्याच्छन्दः ॥२०॥

अन्वयः—हे देवि, चञ्चलभुज-भ्रमितचण्डगदाभिघातसञ्चूर्णितोरुगुलस्य, सुयोधनस्य, स्यानावनद्धवनशोणितशोषपाणिः, भीमः, तव, कचान्, उत्तंसयिष्यति ॥ २१ ॥

शब्दार्थः—हे देवि = हे महारानी, चञ्चल-भुज-भ्रमित-चण्ड-गदाभिघातसञ्चूर्णितोरुगुलस्य = चञ्चल भुजाओं के द्वारा घुमाई गई प्रचण्ड गदा के प्रहार से चूर-चूर हुई दोनों जाँघों वाले, सुयोधनस्य = दुर्योधन के, स्यानावनद्धवनशोणितशोषपाणिः = चिकने, चिपके हुए, गाढ़े रक्त से लाल हाथों वाला, भीमः = भीम, तव = तुम्हारे, कचान् = केशों को, उत्तंसयिष्यति = अलङ्कृत करेगा ॥२१॥

भीमः शत्रुविनाशार्थं स्वकीयं वृद्धं निश्चयमभिव्यनक्ति—चञ्चदित्यादिना । हे देवि = हे महारानि द्रौपदि, चञ्चदित्यादिः—चञ्चद्भ्याम् = चलद्भ्याम् भुजाभ्याम् = दोभ्याम्, भ्रमिता = प्रेरिता या चण्डा = भीमा गदा तस्याः अभिघातेन = प्रहारेण सञ्चूर्णितम् = मग्नम् उरुगुलम् = जङ्घाद्वयम् यस्य स तस्य, सुयोधनस्य = दुर्योधनस्य, स्यानावनद्धेत्यादिः—स्यानम् = स्निग्धम् अवनद्धम् = संसक्तम् धनञ्च = निविडञ्च यत् शोणितम् = रक्तम् तेन शोषः = रक्तवर्णः पाणिः = करः यस्य तादृशः, भीमः = अहमित्यर्थः, भीमपदोपादानेनाहङ्कारः सूचितः, तव = भवत्याः, कचान् = केशान्, उत्तंसयिष्यति = अलङ्कुरिष्यति । सुयोधनं विनाश्य तव मन्युमपनेष्यामीति भावः । अत्राऽनुप्रासारङ्कारः । वसन्ततिलका छन्दः ॥ २१ ॥

द्रौपदी—किं नाथ दुष्करं त्वया परिकुपितेन । सर्वथाऽनुगृह्णन्तु व्यवसितं ते भ्रातरः ।
[किं पाह दुष्करं तुष्ट परिकुपितेन । सव्वहा अणुगृह्णन्तु ऐदं ववसिदं दे भादरो ।]

सहदेवः—अनुगृहीतमेतदस्माभिः ।

(नेपथ्ये महान्कलकलः । सर्वे सविस्मयमाकर्णयन्ति)

मन्यायस्तार्णवाम्भःप्लुतकुहरचलन्मन्दरध्वानधीरः

कोणाघातेषु गर्जत्प्रलयघनघटान्योन्यसङ्घट्टचण्डः ।

कृष्णाक्रोधाग्रदूतः कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातवातः

केनास्मत्सिंहनादप्रतिरसितसखो दुन्दुभिस्ताडयतेऽयम् ॥२२॥

(प्रविश्य संभ्रान्तः)

कञ्चुकी—कुमार, एष खलु भगवान्वासुदेवः ।

(सर्वे कृताञ्जलयः समुत्तिष्ठन्ति)

भीमसेनः—(ससंभ्रमम्) ववासौ भगवान् ।

कञ्चुकी—पाण्डवपक्षपातामर्षितेन सुयोधनेन संयमितुमारब्धः ।

(सर्वे संभ्रमं नाटयन्ति)

द्रौपदीति । दुष्करम् = कर्तुं कठिनम्, व्यवसितम् = निश्चयम्, अनुगृह्णन्तु = अनुमन्यन्ताम् ॥

अन्वयः—मन्यायस्तार्णवाम्भःप्लुतकुहरचलन्मन्दरध्वानधीरः, कोणाघातेषु, गर्जत्प्रलयघनघटान्योन्यसङ्घट्टचण्डः, कृष्णाक्रोधाग्रदूतः, कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातवातः, अस्मत्सिंहनादप्रतिरसितसखः अयम्, दुन्दुभिः, केन, ताडयते ॥२२॥

शब्दार्थः—मन्यायस्तार्णवाम्भःप्लुतकुहरचलन्मन्दरध्वानधीरः = मन्यन से क्षुब्ध सागर के जल से व्याप्त गुफाओं वाले, घूमते हुए मन्दराचल की ध्वनि के समान गम्भीर, कोणाघातेषु = लाख डमरुओं तथा दश हजार नगाड़ों पर एक साथ प्रहार होने पर, गर्जत्प्रलयघनघटाऽन्योन्यसङ्घट्टचण्डः = गरजती हुई प्रलयकालीन मेघ-घटाओं की परस्पर टकराहट की तरह भयङ्कर, कृष्णाक्रोधाग्रदूतः = द्रौपदी के क्रोध का अग्रदूत (आगे-आगे चलकर सूचना देने वाला, सूचक), कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातवातः = कुरु-वंश के विनाश के अपशकुनस्वरूप प्रचण्ड वायु के समान, अस्मत्सिंहनादप्रतिरसितसखः = हमारे सिंह गर्जन की प्रतिध्वनि के सदृश, अयम् = यह, दुन्दुभिः = भेरी, केन = किसके द्वारा, ताडयते = बजाई जा रही है ॥ २२ ॥

दुन्दुभिध्वानं वर्णयति—मन्थेत्यादिः । मन्यायस्तार्णवेत्यादिः—मन्थे = मन्थनक्रियायां मन्थनेन वा आयस्तः = क्षुब्धः यः अर्णवः = सागरः तस्य यद् अम्भः = जलम् तेन प्लुतानि व्याप्तानि कुहराणि = गहराणि यस्य, तथाभूतश्च चलन् = चलन्, भ्रमन्तित्यर्थः, च यः मन्दरः = मन्दराचलः तस्य ध्वान इव = ध्वनिरिव धीरः = गम्भीरः, कोणाघातेषु = ढक्काणां लक्षेषु भेरीणां दशसहस्रेषु च एककालमेव कृतेषु प्रहारेषु, तथा चोक्तं भरतेन—‘ढक्काशतसहस्राणि भेरीदशशतानि च । एकदा यत्र हन्यन्ते कोणाघातः स उच्यते ॥ गर्जत्प्रलयघनघटान्योन्यसङ्घट्टचण्डः—गर्जन्यः = शब्दायमानाः प्रलयघनानाम् =

द्रौपदी—स्वामिन्, कुपित हुये आपके लिये क्या करना कठिन है ? (अर्थात् क्रुद्ध होने पर आप सब कुछ कर सकते हैं) । आपके इस तरह के निश्चय का आपके भाई सब तरह से समर्थन करें ।

सहदेव—हम इसका समर्थन करते हैं ।

(पदों के पीछे भीषण कल-कल होता है । सभी लोग आश्चर्य के माय सुनते हैं)

भीमसेन—मन्यन से क्षुब्ध सागर के जल से व्याप्त गुफाओं वाले, धूमते हुये मन्दराचल को ध्वनि के समान गम्भीर, लाख डमरुओं तथा दश हजार नगाड़ों पर एक साथ प्रहार होने पर गरजती हुई प्रलयकालीन मेघ-घटाओं की परस्पर टकराहट की तरह भयङ्कर, द्रौपदी के क्रोध का सूचक, कुरु-वंश के विनाश के अपशकुन-स्वरूप प्रचण्ड वायु के समान, हमारे सिंह-गर्जन की प्रतिध्वनि के सदृश यह मेरी किसके द्वारा बजाई जा रही है ? ॥ २२ ॥

विशेष—मन्दरध्वानधीरः—प्राचीनकाल में देवों और दैत्या ने मिलकर, अमृत के लिये, समुद्र को मथा था । उस समय उन लोगों ने मन्दराचल को मथानी तथा वासुकि नाग को मथानी की रस्ती बनाया था । मथने में छप-छप को आवाज होती है उसी की आर. यहाँ सूक्त है ॥ २२ ॥

(प्रवेश करके बवराया हुआ)

कञ्जुकी—यह भगवान् वासुदेव (कृष्ण) ।

विशेष—कञ्जुकी—राजाओं के रनिवास में रहनेवाला, धार्मिक, विद्वान्, वृद्ध, ब्राह्मण कञ्जुकी कहा जाता था ।

(सभी हाथ जोड़े खड़े हो जाते हैं)

भीमसेन—(बवराहट के साथ) कहाँ हैं यह भगवान् ?

कञ्जुकी—(श्रीकृष्ण के द्वारा प्रदर्शित) पाण्डवों के प्रति पक्षपात को न सहन करने वाले दुर्योधन के द्वारा बाँध लेने के लिये प्रयास किये जा रहे हैं (अर्थात् दुर्योधन उनका बाँध लेना चाह रहा है) ।

(सभी बवराहट का अभिनय करते हैं)

प्रलयमेघानाम्, संवर्तकावर्तकादीनामित्यर्थः, घटाः—पक्षयः तासामन्योन्यम् = परस्परम् संवट्टः = संघर्षः तद्वचचण्डः = भीषणः, कृष्णाक्रोधाग्रदूतः = कृष्णावाः—द्रौपद्याः क्रोधस्य = क्रोधस्य अग्रदूतः = अग्ने-अग्ने गत्वा उद्धोषकः, कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातवातः—कुरुकुलस्य = कौरववंशस्य निधनम् = विनाशः तस्य उत्पात्तमूतः = अशुभमूलकः यः निर्घातवातः = प्रचण्डपवनः, अस्मत्सिंहनादप्रतिरसितसत्त्वः—अस्माकं सिंहनादः—सिंहगर्जनम् तस्य प्रतिरसितम् = प्रतिध्वनिः तस्य सत्त्वा—मित्रम्, सदृशः इत्यर्थः, अयम् = एषः, दुन्दुभिः = मेरी, ('मेर्यानकदुन्दुभिः' इत्यमरः), केन = केन जनेन, ताड्यते = आह्वन्यते । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः । सन्धरा छन्दः । छन्दोलक्षणं यथा—अभ्युपनिषत्तुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ॥ २२ ॥

कञ्जुकीति । पाण्डवपक्षपातामर्षितेन—पाण्डवेषु = पाण्डुपुत्रेषु पक्षपातः = प्रेमप्रदर्शनं तेन अमर्षितः = क्रुद्धः तेन ॥

मीमसेनः—किं संयतः ?

कञ्चुकी—नहि नहि संयमितुमारब्धः ।

मीमसेनः—किं कृतं देवेन ?

कञ्चुकी—ततः स महात्मा दर्शितविश्वरूपतेजःसंपातमूर्च्छितमवधूय कुरुकुल-
मस्मच्छिविरसन्निवेशमनुप्राप्तः कुमारमविलम्बितं द्रष्टुमिच्छति ।

मीमसेनः—(सापहासम्) किं नान दुरात्मा सुयोधनो भगवन्तं संयमितुमिच्छति ।
(आकाशं दत्तदृष्टिः) आः दुरात्मन्कुरुकुलपांसुल, एवमतिक्रान्तमर्यादे त्वयि निमित्त-
मात्रेण पाण्डवक्रोधेन भवितव्यम् ।

सहदेवः—आर्य, किमसौ दुरात्मा सुयोधनो वासुदेवमपि भगवन्तं स्वरूपेण
न जानाति ।

मीमसेनः—वत्स, मूढः खल्वयं दुरात्मा कथं जानातु पश्य ।

आत्मारामा विहितरतयो निर्विकल्पे समाधौ

ज्ञानोद्रेकाद्विघटिततमोग्रन्थयः सत्त्वनिष्ठाः ।

यं वोक्षन्ते कमपि तमसां ज्योतिषां वा परस्तात्

तं मोहान्धः कथमयममुं वेत्तु देवं पुराणम् ॥२३॥

कञ्चुकीति । दर्शितविश्वरूपतेजःसम्पातमूर्च्छितम्—दर्शितम् यत् विश्वरूपम् = विश्वम्भरमूर्तिः
तस्य तेजः = प्रकाशः तस्य सम्पातः = समूहः अमिघातो वा तेन मूर्च्छितम् = अपगतचेतनम्,
कुरुकुलम् = कुरुवंशम्, अवधूय = तिरस्कृत्य, अस्मच्छिविरसन्निवेशम्—अस्माकं शिविरस्य = पटनिमित्त-
निवासस्थानस्य सन्निवेशम् = स्थानम्, अनुप्राप्तः = आगतः, न विलम्बितम् अविलम्बितम् =
अतिशीघ्रम् ॥

मीमसेन इति । कुरुकुलपांसुल—कुरुकुलस्य कुरुकुले वा—कुरुवंशस्य कुरुवंशे वा पांसुलः =
पापकर्ता तत्सम्बुद्धौ, एवम् = इत्थम्, अतिक्रान्तमर्यादे, अतिक्रान्ता = उल्लङ्घिता मर्यादा = स्थितिः
येन तस्मिन् ॥

अन्वयः—आत्मारामाः, निर्विकल्पे, समाधौ, विहितरतयः, ज्ञानोद्रेकात्, विघटिततमोग्रन्थयः,
सत्त्वनिष्ठाः, तमसाम्, वा, ज्योतिषाम्, परस्तात्, यम्, कमपि, वोक्षन्ते, तम्, अमुम्, पुराणम्,
देवम्, मोहान्धः, अयम्, कथम्, वेत्तु ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—आत्मारामाः = आत्मा में ही भली-भाँति रमण करने वाले, निर्विकल्पे = निर्विकल्पक,
समाधौ = समाधि में, विहितरतयः = तल्लान रहने वाले, ज्ञानोद्रेकात् = ज्ञान के आधक्य से,
विघटिततमोग्रन्थयः = विनष्ट हुई अज्ञान-ग्रन्थिवाले, सत्त्वनिष्ठाः = सत्त्व (गुण) में प्रेम करनेवाले,
तमसाम् = अन्धकार, वा = अथवा, ज्योतिषाम् = प्रकाश के, परस्तात् = पर, यम् = जिस, कमपि =
किसी को भी, वोक्षन्ते = देखते हैं, तम् = उस, अमुम् = इन, पुराणम् = सनातन, देवम् = देव को,
मोहान्धः = मोह से अन्धा, अयम् = यह, कथम् = कैसे, वेत्तु = जाने ॥ २३ ॥

कृष्णस्य ब्रह्मरूपत्वं प्रतिपादयन्नाह—आत्मारामा इति । आत्मारामाः—आत्मनि आ = समन्तात्,

भीमसेन—क्या बाँध लिये गये ?

कञ्चुकी—नहीं नहीं, बाँधने का प्रयास किये गये ।

भीमसेन—(तब) भगवान् ने क्या किया ?

कञ्चुकी—तब वह महात्मा (अपने द्वारा) प्रकट किये गये विश्वरूप के तेज के प्रहार से मूर्छित हुए कुरु-कुल को तिरस्कृत करके हमारी छावनी में आ गये हैं और कुमार को (अर्थात् आप को) अतिशीघ्र देखना चाहते हैं ।

विशेष—विश्वरूप—ऐसा स्वरूप जिसमें सारा ब्रह्माण्ड चलता-फिरता दृष्टिगोचर हो । मोह होने पर अर्जुन को भी भगवान् ने यही रूप दिखलाया था, जिसे वे अपनी सामान्य आँखों से न देख सके थे ।

भीमसेन—(उपहास के साथ) क्या दुष्ट दुर्योधन भगवान् को बाँधना चाहता है ? (आकाश की ओर आँख लगाकर) आह ! दुष्ट कुरुकुल के पाप, इस तरह तेरे मर्यादा का उल्लङ्घनकर्ता होने पर (तुम्हारे विनाश के लिये) पाण्डवों का क्रोध तो केवल निमित्त-मात्र होगा (अर्थात् तू तो मरेगा अपने पाप से—हम लोगों का क्रोध केवल निमित्त भर होगा) ।

सहदेव—आर्य, क्या यह नीच दुर्योधन भगवान् वामदेव को भी यथार्थरूप से नहीं जानता है ?

भीमसेन—वत्स, मूढ़ दुरात्मा यह (दुर्योधन) कैसे जाने ? देखो—

आत्मा में ही भली-भाँति रमण करने वाले, निर्विकल्प समाधि में तल्लीन रहने वाले, ज्ञान के प्राचुर्य से विनष्ट हुई अज्ञान-ग्रन्थि वाले, सत्त्व (गुण) में निष्ठा रखनेवाले (मुनि-जन) अन्धकार अथवा प्रकाश के परे जिस किसी (अर्थात् अनिर्वचनीय) को देखते हैं, उस इन सनातन देव को मोह (अज्ञान) से अन्धा यह (दुर्योधन) कैसे जान सकता है ? ॥ २३ ॥

विशेष—निर्विकल्पे—समाधि दो तरह की होती है—(१) सविकल्पक तथा (२) निर्विकल्पक । समाधि की पहली अवस्था का नाम सविकल्पक तथा दूसरी अर्थात् परिपक्व अवस्था का नाम निर्विकल्पक है । सविकल्पक समाधि में शाता (अर्थात् अपना), ज्ञान तथा शेष (ईश्वर आदि) का भेद शात रहता है । किन्तु निर्विकल्पक समाधि में शाता, ज्ञान तथा शेष का भेद समाप्त हो जाता है । सब कुछ शेष स्वरूप ही प्रतीत होता है ॥ २३ ॥

रमन्ते = विचरन्तीति आत्मारामाः = आत्मनि विहरणशीलाः, वा आ = सम्यक् रमन्ते अस्मिन्निति आरामः = रमणस्थलम् आत्मा आरामः येषान्ते तथोक्ताः, निर्विकल्पे = शाता-ज्ञान-शेष-भेदशून्ये, परिनिष्ठिते इत्यर्थः, समार्थो = नियमविशेषे, विहितरतयः—विहितता = प्रेरिता रतिः = तल्लीनता यैस्ते, शानोद्रेकात्—ज्ञानस्य = प्रकाशस्य उद्रेकात् = आधिक्यात्, विवटिततमोग्रन्थयः—विवटिताः = उच्छिन्नाः तमसः = अज्ञानस्य ग्रन्थयः = बन्धनानि यैस्त, सत्त्वनिष्ठाः—सत्त्वे = सत्त्वगुणे सार्विके भावे वा निष्ठा—रातः येषान्ते, सार्विकभावापन्नाः इत्यर्थः, तमसाम् = अन्धकाराणाम्, मिथ्याज्ञानानामित्यपि, वेति विकल्पे, उद्योतिषाम् = तेजसाम्, तत्त्वज्ञानानामित्यपि, परस्तात् = परम्, यम् = यादृशम्,

आर्यं जयन्धर, किमिदानीमध्यवस्यति गुरुः ।

कञ्चुकी—स्वयमेव गत्वा महाराजस्याध्यवसितं ज्ञास्यति कुमारः । (इति निष्क्रान्तः ।)

(नेपथ्ये कलकलानन्तरम्)

भो भो द्रुपदविराट्वृष्ण्यन्धकसहदेवप्रभृतयोऽस्मदक्षौहिणीपतयः कौरवचमूप्रधान-
योधाश्च शृण्वन्तु भवन्तः ।

यत्सत्यव्रतभङ्गभीरुमनसा यत्नेन मन्दोक्तं

यद्विस्मर्तुमपीहितं शमवता शान्तिं कुलस्येच्छता ।

तद्युतारणिसंभृतं नृपसुताकेशाम्बराकर्षणैः

क्रोधज्योतिरिदं महत्कुरुवने यौधिष्ठिरं जृम्भते ॥२४॥

भीमसेनः—(आकर्षणं सहर्षम्) जृम्भतां जृम्भतामप्रतिहतप्रमत्तमायस्य क्रोधज्योतिः ।

द्रौपदी—नाथ, किमिदानीमेष प्रलयजलधरस्तनितमांसलः क्षणे क्षणे समरदुन्दु-
भिस्ताड्यते । [षाह किं दाणीं एसो पलअजलहरत्यणिदमंसलो कखणे कखणे समरदुन्दुही ताडोअदि ।]

भीमसेनः—देवि, किमन्यत् । यज्ञः प्रवर्तते ।

द्रौपदी—(सविस्मयम्) क एष यज्ञः । [को एसो जण्णो ।]

कमपि, = अनिर्वचनीयमित्यर्थः, वीक्षन्ते = पश्यन्ति, तम् = तादृशम्, अमुम् = एतम्, पुराणम् = सनातनम्, देवम् = परमात्मानम्; मोहान्धः—मोहेन = अज्ञानेन अन्धः = विमूढः, अयम् = एषः, दुर्योधनः इत्यर्थः, कथम् = कैन् प्रकारेण, वेत्तु = जानातु । पत्रिचान्तःकरणैर्मुनिभिर्ज्ञेयो ब्रह्मस्वरूपः श्रीकृष्णः दृष्टेन दुर्योधनेन कथं ज्ञातुं शक्यः ? न कथमपीति भावः । मन्दाक्रान्ता छन्दः । तल्लक्षणं यथा—‘मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैमौ मनौ तौ गयुग्मम्’ ॥ २३ ॥

अन्वयः—सत्यव्रतभङ्गभीरुमनसा, (युधिष्ठिरेण), यत्, यत्नेन, मन्दोक्तम्; कुलस्य, शान्तिम्, इच्छता, शमवता, (तेन), यत्, विस्मर्तुम्, अपि, ईहितम्, द्युतारणिसंभृतम्, तत् यौधिष्ठिरम्, क्रोधज्योतिः, नृपसुताकेशाम्बराकर्षणैः, महत्, (सत्), इदम्, कुरुवने, जृम्भते ॥ २४ ॥

शब्दार्थः—सत्यव्रतभङ्गभीरुमनसा = सत्य-प्रतिज्ञा के उल्लंघन से भयभीत मनवाले, (युधिष्ठिरेण = युधिष्ठिर के द्वारा), यत् = जो, यत्नेन = प्रयत्नपूर्वक, मन्दोक्तम् = मन्द की गई थी; कुलस्य = कुल की, शान्तिम् = शान्ति की, इच्छता = चाहने वाले, शमवता = शान्ति धारण करने वाले, (तेन = उनके द्वारा), यत् = जो, विस्मर्तुम् = भुला देना, अपि = भी, ईहितम् = चाही गई, द्युतारणि-संभृतम् = जुआरूप अरणि से उत्पन्न, तत् = वह, यौधिष्ठिरम् = युधिष्ठिर की, क्रोधज्योतिः = क्रोधरूपी चिनगारी, नृपसुताकेशाम्बराकर्षणैः = द्रौपदी के केश और वस्त्र के खींचने से, महत् = विशाल, (सत् = होकर), इदम् = सम्प्रति, कुरुवने = कुरु (कुल) रूपी वन में, जृम्भते = भड़क उठी है ॥२४॥

यत्सत्यव्रतेति । सत्यव्रतभङ्गभीरुमनसा—सत्यम् = अवितथम् एव व्रतम् = नियमः तस्य भङ्गः = विच्छेदः तस्मात् भीरुः = भयशीलम् मनः यस्य तेन, युधिष्ठिरेणेति शेषः, यत् = क्रोधज्योतिरित्यर्थः,

आदरणीय जयन्धर, अब बड़े भाई क्या निश्चय कर रहे हैं ?

कञ्चुकी—स्वयं ही जाकर महाराज के निश्चय को जानेंगे कुमार । (ऐसा कहकर निकल गया)
(पदों के पीछे कोलाहल के अनन्तर)

हे हे द्रुपद, विराट, वृष्णि, अन्धक, सहदेव आदि हमारी सेना के सेनानायकों और कौरवों की सेना के प्रधान वीरों, आप लोग सुन—

सत्यप्रतिष्ठा के उल्लंघन से भयभीत मन वाले (युधिष्ठिर) के द्वारा जो यज्ञपूर्वक मन्द की गई थी, कुल की शान्ति चाहने वाले, शान्ति धारण करने वाले (उनके) द्वारा जो भुला देना भी चाही गई (अर्थात् जिसे उन्होंने भुला देना भी चाहा ऐसा), जुआरूप अरणि से उत्पन्न वह युधिष्ठिर की क्रोधरूपी चिनगारी द्रौपदी के केश और वस्त्र के खींचने से विशाल (होकर) सम्प्रति कुरु (कुल)-रूपी वन में भड़क उठा है ॥ २४ ॥

विशेष-द्यतारणि०—जुआरूप अरणि । पलाश या शमी की सूखी लकड़ी लेकर उसमें थोड़ा गड्ढा बना दीजिए और एक दूसरी लकड़ी लेकर उसे नुकीली बना लीजिए । गड्ढा वाली लकड़ी को जमीन पर रख दीजिए तथा नुकीली लकड़ी को उसी गड्ढे में डालकर मयानी की तरह चलाइए । काफी गरम हो जाने के बाद उसमें से आग निकल आयेगी । इन्हीं दोनों काष्ठों को अरणि कहते हैं । अरणि की आग से ही पवित्र यज्ञादि करने का विधान है ॥ २४ ॥

भीमसेन—(सुनकर हर्षपूर्वक) बड़े, आर्य की क्रोधाग्नि बेरोक टोक (बिना रुके) बड़े ।

द्रौपदी—स्वामिन्, प्रलयकालीन मेघ के गर्जन के समान गम्भीर यह युद्ध का नगाड़ा क्यों पीटा जा रहा है ?

भीमसेन—देवि, दूसरा क्या ? यज्ञ प्रारम्भ हो रहा है ।

द्रौपदी—(आश्चर्य के साथ) यह कौन-सा यज्ञ (प्रारम्भ हो रहा है) ?

यत्नेन = प्रयासेन, मन्दोक्तम् = स्वल्पोक्तम्, अभूततद्भावे चित्रः, कुलस्य = वंशस्य, शान्तिम् = कल्याणम्, इच्छता = वाञ्छता, शमवता = शान्तिशीलेन, तेनेति शेषः, यत् = क्रोधज्योतिरित्यर्थः, विस्मृतम् = अन्तःकरणान्निःसारयितुम्, अपि = च, ईहितम् = चेष्टितम्, द्युतारणिमम्भृतम्-द्युतम् = कैतवम् ('कैतवं तु छले द्युते' इति मेदिनी) एव अरणिः = यज्ञकाष्ठमेदः, निर्मन्थ्यदारु ('निर्मन्थ्यदारुणि त्वरणिः' इत्यमरः) तत्र सम्भृतम् = समुपचितम्, तत् = बहोः कालाद्भूमायितमित्यर्थः, यौधिष्ठिरम्-युधिष्ठिरस्य सम्बन्धि इदं यौधिष्ठिरम् = युधिष्ठिरे जातम्, क्रोधज्योतिः = ज्योतिरिव क्रोधः क्रोधज्योतिः = क्रोधाग्निः, उपमितिसमासः, नृपसुताकेशाम्बराकर्षणैः—नृपस्य = राज्ञो द्रुपदस्य सुता = पुत्री द्रौपदी तस्याः केशाम्बराणाम् = कचवस्त्राणाम्, आकर्षणैः = आहरणैः, महत् = प्रबृद्धम्, (सत्), इदम् = अधुना, कुरुवने = कुरुकुले इत्यर्थः, जृम्भते = प्रकाशते । शान्त्याशां विहाय युद्धवोषणा विधोयत इति भावः । काव्यलिङ्गमुपमा चात्रालङ्कारी । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ २४ ॥

द्रौपदीति । प्रलयजलधरास्तनितमांसलः—प्रलयस्य = जगदिनाशस्य ये जलधराः = मेघाः तेषां स्तनितम् = गर्जनम् इव मांसलम् = गम्भीरम् ॥

भीमसेनः—रणयज्ञः । तथाहि—

चत्वारो वयमृत्विजः स भगवान्कर्मोपदेष्टा हरिः

संग्रामाध्वरदीक्षितो नरपतिः पत्नी गृहीतव्रता ।

कौरव्याः पशवः प्रियापरिभवक्लेशोपशान्तिः फलं

राजन्योपनिमन्त्रणाय रसति स्फीतं यशोदुन्दुभिः ॥ ५॥

सहदेवः—आर्य गच्छामो वयमिदानीं गुरुजनानुज्ञाता विक्रमानुरूपमाचरितुम् ।

भीमसेनः—वत्स, एते वयमुद्यता एवार्यस्यानुज्ञामनुष्ठातुम् । (उत्थाय) देव, गच्छामो वयमिदानीं कुरुकुलजयाय ।

द्रौपदी—(वाष्पं धारयन्ती) नाथ, असुरसमराभिमुखस्य हरेरिव मङ्गलं युष्माकं भवतु । [णाह, असुरसमराहिमुहस्य हरिणो विअ मङ्गलं तुङ्गाणं होदु ।]

उभौ—प्रतिगृहीतं मङ्गलवचनमस्माभिः ।

अन्वयः—वयम्, चत्वारः, ऋत्विजः, (स्मः), सः, भगवान्, हरिः, कर्मोपदेष्टा, (वर्तते); नरपतिः, संग्रामाध्वरदीक्षितः, (आस्ते); पत्नी, गृहीतव्रता, (अस्ति); कौरव्याः, पशवः, (सन्ति), प्रियापरिभवक्लेशोपशान्तिः, फलम्, (वर्तते); (अयम्), यशोदुन्दुभिः, राजन्योपनिमन्त्रणाय, स्फीतम्, रसति ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—वयम् = हम, चत्वारः = चारों (भाई), ऋत्विजः = पुरोहित, (स्मः = हैं); सः = वह, भगवान् = प्रभु, हरिः = श्रीकृष्ण, कर्मोपदेष्टा = कर्म का उपदेश करने वाले (आचार्य), (वर्तते = हैं); नरपतिः = राजा (युधिष्ठिर), संग्रामाध्वरदीक्षितः = संग्राम रूपी यज्ञ में दीक्षा लिए हुए (अर्थात् यजमान), (आस्ते = हैं); पत्नी = स्त्री (अर्थात् तुम), गृहीतव्रता = नियम को धारण करने वाली, (अस्ति = हो), कौरव्याः = कौरव, पशवः = (बलि के) पशु, (सन्ति = हैं); प्रिया-परिभवक्लेशोपशान्तिः = प्रिया के (अर्थात् तुम्हारे) अपमान से होने वाले क्लेश की शान्ति, फलम् = फल, (वर्तते = है); (अयम् = यह), यशोदुन्दुभिः = यश (को फैलाने वाली) दुन्दुभिः, राजन्योपनिमन्त्रणाय = राजसमूह को आमन्त्रित करने के लिये, स्फीतम् = जोर से, रसति = बज रही है ॥ २५ ॥

युद्धस्य रणरूपतामेव प्रतिपादयन्नाह—चत्वार इति । वयं चत्वारः = भीमार्जुनकुलसहदेवा इत्यर्थः, ऋत्विजः—ऋतो यजन्तीति ऋत्विजः = वृताः सन्तो यज्ञकर्तारः, स्मः इति शेषः । सः = सन्धानाय प्रयतमानः इत्यर्थः, भगवान् = ऐश्वर्यसम्पन्नः, प्रभुरिति यावत्, हरिः = श्रीकृष्णः कर्मोपदेष्टा—कर्मणः = कर्तव्यस्य उपदेष्टा = निर्देष्टा, प्रधानाचार्य इत्यर्थः, वर्तत इति शेषः । नरपतिः = राजा युधिष्ठिरः, संग्रामाध्वरदीक्षितः—संग्रामः = युद्धम् एव अध्वरः = यज्ञम् तत्र दीक्षितः = गृहीतनियमः, प्रधानो यजमान इति यावत्, वर्तते इति शेषः, ध्वर्यते = हन्यतेऽस्मिन्निति ध्वरः = हिंसा न ध्वरः अस्मिन् । यागीयहिंसा हिंसा न भवतीति वचनाद् अध्वरः हिंसारहित इति समीचीनमेवाभिधानं यज्ञस्येति, पत्नी = स्त्री, त्वमिति भावः, गृहीतव्रता—गृहीतम् = स्वीकृतम् व्रतम् = नियमः यया सा,

प्रथमोऽङ्कः

३६

भीमसेन—रणयश । जैसे कि—

हम चारों (भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव) पुरोहित (हैं) । वह भगवान् श्रीकृष्ण कर्म का उपदेश करने वाले (आचार्य हैं) । राजा (युधिष्ठिर) संग्रामरूपी यश में दीक्षा लिए हुए (अर्थात् यजमान हैं), कौरव (बलि के) पशु (हैं) । प्रिया के अपमान से होने वाले क्लेश की शान्ति फल (है) । (यह) यशो-दुन्दुभि राजसमूह को आमन्त्रित करने के लिये बज रही है ॥ २५ ॥

विशेष—**ऋत्विजः**—यश के पुरोहित के रूप में कार्य करने वाले व्यक्ति ऋत्विक् कहे जाते हैं । मुख्यतया चार ऋत्विक् होते हैं—होता, उद्गाता अध्वर्यु और ब्रह्मा ।

कर्मोपदेष्टा—प्रधान आचार्य, यश का सञ्चालन करने वाले ।

...**अध्वरदीक्षितः**—प्रधान यजमान जो यश को निष्पन्न करता है वह दीक्षित या यश में दीक्षा लिए हुए कहा जाता है ।

पशवः—प्राचीन काल में यश में पशुओं की बलि चढ़ाई जाती थी । यहाँ संग्रामरूपी यश के लिये दुर्योधनादि कौरव ही पशु कहे जा रहे हैं, क्योंकि उन्हीं का ही वध अभीष्ट है ।

राजन्योपनिमन्त्रणाय—प्राचीन समय में जब चक्रवर्ती सम्राट् यश करता था, उस समय उसकी ओर से पूरे देश में नगाड़ा (दुन्दुभि) पीट कर उसके यश की घोषणा की जाती थी । इससे सूचना पाकर सभी अधीनस्थ राजा यश में सादर उपस्थित होते थे । जो नहीं आता या वह विद्रोही माना जाता था, अतः दण्डनीय भी होता था । यहाँ भी दुन्दुभि अपने पक्ष के राजाओं को बुद्ध-स्थल में एकत्रित होने के लिये बजाई जा रही है ॥ २५ ॥

सहदेव—आर्य, बड़े लोगों से अनुमति पाये हुए (अर्थात् अनुमति प्राप्त कर) हमलोग अपने पराक्रम के लायक आचरण करने के लिये अब चले ।

भीमसेन—वत्स, आर्य (युधिष्ठिर) की आशा का पालन करने के लिये यह हम तैयार ही हैं । (उठकर) देवि सम्प्रति हम कुरुकुल के विनाश के लिये जा रहे हैं ।

द्रौपदी—(आँसू भरकर) असुरों के साथ संग्राम करने के लिए जाने वाले विष्णु की तरह आप लोगों का मङ्गल हो ।

दोनों—हम लोगों के द्वारा (आप का यह) मङ्गल-वचन ग्रहण कर लिया गया ।

कृतनियमेति यावत्, यजमानपत्नीत्यर्थः, अस्तीति शेषः । कौरव्याः = दुर्योधनादयः कुरुपुत्राः; पशवः = पशवः वातनीयाः पशव इत्यर्थः, सन्ति । प्रियापरिभवक्लेशोपशान्तिः—प्रियायाः = प्रेयस्यास्तवेत्यर्थः, परिभवः = तिरस्कारः, वस्त्राद्याकर्षणरूपः परिभवः, तज्जनितः = तदुत्पन्नः क्लेशः = दुःखम् तस्य उपशान्तिः = शमनम् एव फलम् = परिणामः, वर्तते इति शेषः । यशोदुन्दुभिः—यशोजनकः दुन्दुभिः यशोदुन्दुभिः = यशविस्तारकः पटहः ('पटहा ढक्का मेयानकदुन्दुभिः' इत्यमरः) । राज-न्योपनिमन्त्रणाय—राजन्यानाम् = राजसमूहानाम् उपनिमन्त्रणाय = आह्वानाय, स्फीतम् = प्रवृद्धं यथा तथा, रसति = शब्दायते । युद्धार्थमाह्वानाय दुन्दुभिस्ताडयते इत्यभिप्रायः । अत्र रूपकालङ्कारः । शार्ङ्गलविक्रीडितं छन्दः ॥ २५ ॥

द्रौपदी—अन्यच्च नाथ, पुनरपि शुष्माभिः समरादागत्याहं समाश्वासयितव्या ।
[अण्णं च णाह, पुणोवि तुहोहिं समरादो आअच्छिय अहं समास्सासइदव्वा ।]

भीमसेनः—ननु पाञ्चालराजतनये, किमद्याप्यलीकाश्वासनया ।

भूयः परिभवक्लान्तिलज्जाविधुरिताननम् ।

अनिःशेषितकौरव्यं न पश्यसि वृकोदरम् ॥ २६ ॥ ✕

द्रौपदी—नाथ, मा खलु मा खलु याज्ञसेनीपरिभवोद्दीपितकोपानला अनपे (वे)
क्षितशरीराः संचरिष्यथ । यतोऽप्रमत्तसंचरणीयानि रिपुबलानि श्रूयन्ते । [णाह, मा खु
मा खु जण्णसेणीपरिहवुद्धोविदकोवाणला अण्वेक्खिदसरीरा संचरिस्सथ । जदो अप्पमत्तसंचरणिज्जाहं
रिउबलाहं सुणीअन्ति ।]

भीमसेनः—अयि सुशत्रिये,

अन्योन्यास्फालभिन्नद्विपरुधिरवसामांसमस्तिष्कपङ्के

मग्नानां स्यन्दनानामुपरि कृतपदन्यासविक्रान्तपत्नी ।

सहदेव इति । गुरुजनानुज्ञाताः—गुरुजनैः=श्रैष्ठैः, युधिष्ठिरादिभिरित्यर्थः, श्रुतज्ञाताः=माता-
नुमतयः, वयम्=सर्वे भ्रातरः, विक्रमानुरूपम्—विक्रमस्य=स्वस्वपराक्रमस्य अनुरूपम्=योग्यम् ।
उभाविति । प्रतिगृहीतम्=स्वीकृतम्, अभिनन्दितमिति भावः, मङ्गलवचनम्=शुभाशंसनम्,
अस्माभिः=भीमादिभिः ॥

भीमसेन इति—पाञ्चालराजतनये—पाञ्चालराजस्य=द्रुपदस्य तनया=पुत्रो तत्सबुद्धौ, अलीका-
श्वासनया—अलीकम्=व्यर्थम् आश्वासना=धैर्यप्रदानम् तथा ॥

अन्वयः—अनिःशेषितकौरव्यम्, (अतः), परिभवक्लान्तिलज्जाविधुरिताननम्, वृकोदरम्,
भूयः, (त्वम्), न, पश्यसि ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—अनिःशेषितकौरव्यम्=नहीं समाप्त कर दिया है कौरवों को जिसने ऐसे, (अतः=
इस कारण), परिभवक्लान्तिलज्जाविधुरिताननम्=तिरस्कार से होने वाली शिथिलता तथा लज्जा से
दीन मुख वाले, वृकोदरम्=भीम को, भूयः=फिर से, (त्वम्=तुम), न=नहीं, पश्यसि=
देखोगी ॥ २६ ॥

अनिःशेषितकौरव्यम्—अनिःशेषिताः=न विनाशिताः कौरव्याः=कुरुपुत्राः दुर्योधनादयः येन
तादृशम्, अतः परिभवक्लान्तिलज्जाविधुरिताननम्=परिभवस्य=तिरस्कारस्य क्लान्त्या=खेदेन लज्जाया,
परिभवक्षान्तिरिति पाठे परिभवस्य क्षान्त्या=सहनेनेति व्याख्या, विधुरितम्=विवर्णम् श्राननम्=
मुखम् यस्य तादृशम्, वृकोदरम्=भीमम्, त्वमिति शेषः, न पश्यसि=न अवलोकयिष्यसि, भविष्यति
लट् । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २६ ॥

द्रौपदीति । याज्ञसेनीपरिभवोद्दीपितकोपानलाः—याज्ञसेन्याः=द्रौपद्याः, परिभवः=अनादरः,
अपमानमित्यर्थः, ('अनादरः परिभवः परिभावास्तिरस्क्रिया' इत्यमरः), तेन उद्दीपितः=प्रबुद्धः
कोपानलः येषां ते तादृशाः, मा खल्विति निषेधे, अनपेक्षितशरीराः—अनपेक्षितम्=अचिन्तितम्

द्रौपदी—और भी स्वामिन्, युद्ध से लौटकर आप लोग फिर भी हमें सान्त्वना प्रदान करें ।
(अर्थात् आपलोग सकुशल युद्ध से लौट कर हमें सान्त्वना प्रदान करें) ।

भीमसेन—अरी पाञ्चाल की राजकुमारी, अब भी झूठे आश्वासन से क्या (प्रयोजन) ?

नहीं समाप्त कर दिया है कौरवों का जिसने ऐसे (अर्थात् कौरवों को विनष्ट न किये हुए) अतः तिरस्कार से होने वाली शिथिलता तथा लज्जा से दानमुख वाले माम को फिर नहीं देखोगी (अर्थात् कौरवों का विनाश किये बिना मैं तुम्हें सुख न दिखलाऊँगा) ॥ २६ ॥

द्रौपदी—नाथ, नहीं, द्रौपदी के (अर्थात् मेरे) अपमान से प्रचण्ड कोप वाले आप लोग शरीर की बिना परवाह किये मत (युद्ध में) विचरण करेंगे । क्योंकि सुना जाता है कि शत्रु की सेना सावधानीपूर्वक विचरण की जाने वाली होती है (अर्थात् शत्रु की सेना में सावधान होकर विचरण करना चाहिये) ।

भीमसेन—अग्नि सुझविये,

परस्पर टकराने से क्षत-विक्षत हाथियों के रक्त, चर्वा, मांस और मस्तिष्क के कीचड़ में डूबे हुए रथों के ऊपर पैर रख कर पराक्रम प्रदर्शित कर रही पैदल सेनावाले (अर्थात् पराक्रम प्रदर्शित कर

शरीरम्=देहः यं ते, अपमत्तसञ्चरणीयानि—न प्रमत्तम्=प्रमादः यस्मिन् कर्मणि यथा तथा सञ्चरणीयानि=सञ्चरितुं योग्यानि, रिपुबलानि=शत्रुसैन्यानि ॥

अन्वयः—अन्योन्यास्फालभिन्नद्विपरुधिरवसामांसमस्तिष्कपक्के, मग्नानाम्, स्यन्दनानाम्, उपरि, कृतपदन्यासविक्रान्तपत्नी, स्फीतासृक्पानगोष्ठीरसदशिवशिवातूर्यनृत्यत्कबन्धे, संग्रामैकार्णवान्तःपयसि, विचरितुम्, पाण्डुपुत्राः, पण्डिताः, (सन्ति) ॥ २७ ॥

शब्दार्थः—अन्योन्यास्फालभिन्नद्विपरुधिरवसामांसमस्तिष्कपक्के=परस्पर टकराने से क्षत-विक्षत हाथियों के रक्त चर्वा, मांस और मस्तिष्क के कीचड़ में, मग्नानाम्=डूबे हुए, स्यन्दनानाम्=रथों के, उपरि=ऊपर, कृतपदन्यासविक्रान्तपत्नी=पैर रखकर पराक्रम प्रदर्शित कर रही है पैदल सेना जिसमें ऐसे, स्फीतासृक्पानगोष्ठीरसदशिवशिवातूर्यनृत्यत्कबन्धे=विपुल रुधिर की पानगोष्ठी में चिल्लाती हुई अमङ्गलकारी तियारित-रूपां तुरहों पर नाच रहे हैं थड़-भाग जिसमें ऐसे, संग्रामैकार्णवान्तःपयसि=युद्धरूपी अनुपम सागर के मध्य-जल में, विचरितुम्=विचरण करने में, पाण्डुपुत्राः=पाण्डुपुत्र (युधिष्ठिर आदि), पण्डिताः=प्रवीण, (सन्ति=हैं) ॥ २७ ॥

अन्योऽन्येति—अन्योन्येत्यादिः—अन्योन्यम्=परस्परम् यः आस्फालः=संघट्टः तेन भिन्नाः=विदीर्णाः ये दिपाः=इस्तिनः तेषां रुधिरञ्च=रक्तञ्च वसा च=मेदश्च मांसञ्च मस्तिष्कञ्च=कपालञ्चेति रुधिरवसामांसमस्तिष्कानि तेषां पक्के=कदमे, समवाये इत्यर्थः, मग्नानाम्=बुड्ढितानाम्, स्यन्दनानाम्=रथानाम्, उपरि=आधारे इत्यर्थः, कृतपदन्यासविक्रान्तपत्नी—कृतः=विहितः पदन्यासः=चरणविन्यासः येन, तादृशः विक्रान्तः=दर्शितपराक्रमः पत्तिः=पदातिः यत्र तादृशे, स्फीतासृक्पा-नेत्यादिः—स्फीतम्=समुद्धमं यत् असृक्=रुधिरम् तस्य पानगोष्ठीषु=पानसमासु, मिलितेषु समाजे-ष्वित्यर्थः, रसन्त्यः=आरटन्त्यः अशिवाः=अमङ्गलरूपाः याः शिवाः=शृगाल्यः ('स्त्रियां शिवा

स्कीतासूक्पानगोष्ठीरसदशिवशिवातूर्यनृत्यत्कबन्धे

सङ्ग्रामैकार्णवान्तःपयसि विचरितुं पण्डिताः पाण्डुपुत्राः॥२७॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

❀ इति प्रथमोऽङ्कः ❀

भूरिमायगोमायुमृगधूर्तकाः' इत्यमरः) ता एव तूर्याणि=मर्दलानि, लोके तुरहीति प्रसिद्धानि तैः = तदनुरोधेनेति भावः, नृत्यन्तः=नर्तनं कुर्वन्तः कबन्धाः=अपमूर्धकलेवराणि ('कबन्धोऽस्त्री क्रियायुक्तमपमूर्धकलेवरम्' इत्यमरः) यस्मिन् तादृशे, संग्रामैकार्णवान्तःपयसि—संग्रामः=युद्धम् एव एकः=प्रधानः अर्णवः=सागरः ('उदन्वान् उदधिः सिन्धुः सरस्वान् सागरोऽर्णवः' इत्यमरः) तस्य

प्रथमोऽङ्कः

४७

रही है पैदल सेना जिसमें ऐसे), विपुल रुधिर को पान-गोष्ठा में चिल्लाती हुई अमङ्गलकारी,
सियारिन-रूपी तुरही पर नाच रहे धड़ भाग वाले (अर्थात् नाच रहे हैं धड़ भाग जिसमें ऐसे),
युद्धरूपी अनुपम सागर के मध्य-जल में विचरण करने में पाण्डु के पुत्र (अर्थात् हमलोग) प्रवीण
(हैं) ॥ २७ ॥

(इस तरह सभी निकल गये)

॥ प्रथम अङ्क समाप्त ॥

स्त्री
एव
तस्य

अन्तःपयसि = मध्य तले, विचरितुम् = सञ्चरितुम्, पाण्डुपुत्राः = पाण्डुतनयाः, युधिष्ठिरादयः इत्यर्थः,
पण्डिताः = प्रवीणाः सन्तीति शेषः । भीषणेऽपि युद्धे वयं योद्धुं प्रवीणाः स्म इति तात्पर्यम् । अत्रापमा
रूपकञ्चालङ्कारः । स्रग्धरा छन्दः । तल्लक्षणं यथा—भ्रमैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा
कीर्तितैयम् ॥ २७ ॥

॥ इति श्रीरमाशङ्करत्रिपाठिविरचितायां वेणीसंहारव्याख्यायां

रमाख्यायां प्रथमोऽङ्कः ॥

—:०:—

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति कञ्चुकी)

कञ्चुकी—आदिष्टोऽस्मि महाराजदुर्योधनेन—विनयन्धर, सत्वरं गच्छ त्वम् ।
अन्विष्यतां देवी आनुमती । अपि निवृत्ता अम्बायाः पादवन्दनसमयान्न वेति ।
यतस्तां विलोक्य निहताभिमन्यवो राधेयजयद्रथप्रभृतयोऽस्मत्सेनापतयः समरभूमिं
गत्वा समाजयितव्या इति । तन्मया द्रुततरं गन्तव्यम् । अहो प्रमविष्णुता महाराजस्य
यन्मम जरसाभिभूतस्य मर्यादामात्रमेवावरोधव्यापारः । अथवा किमिति जरामुपालभेय,
यतः सर्वान्तःपुरचारिणामयमेव व्यावहारिको वेषश्चेष्टा च । तथाहि—

नोच्चैः सत्यपि चक्षुषोक्षितमलं श्रुत्वापि नाकर्णितं
शक्तेनाप्यधिकार इत्यधिकृता यष्टिः समालम्बिता ।

सर्वत्र स्खलितेषु दत्तमनसा यातं मया नोद्धतं
सेवान्धोऽकृतजीवितस्य जरसा किं नाम यन्मे कृतम् ॥ १ ॥

कञ्चुकीति । सत्वरम् = शीघ्रम् । पादवन्दनसमयात् = पादवन्दनम् = चरणाभिवादनम् । एव
समयः = आचारः ('समयाः शक्याचारकालसिद्धान्तसंविदः' इत्यमरः) तस्मात् । निहताभिमन्यवः—
निहतः = हतः अभिमन्युः = अर्जुनपुत्रः यंस्ते, समाजयितव्याः = सम्भावयितव्याः, सत्कर्तव्याः इत्यर्थः ।
द्रुततरम् = अतिशीघ्रम् । प्रमविष्णुता = प्रभावशालिता । अभिभूतस्य = ग्रस्तस्य, मर्यादामात्रम् =
आचारमात्रम्, अवरोधनिवासः—अवरोध्यन्ते प्रमदाः अत्र इति अवरोधस्तत्र अवरोधे = अन्तःपुरे
निवासः = परिचर्या वासः । व्यावहारिकः = व्यवहारानुरूपः ॥

अन्वयः—चक्षुषि, सति, अपि, उच्चैः, अलम्, न, ईक्षितम्, श्रुत्वा, अपि, न, आकर्णितम्,
शक्तेन, अपि अधिकारः, इति, अधिकृता, यष्टिः, समालम्बिता; सर्वत्र, स्खलितेषु, दत्तमनसा, मया,
उद्धतम्, न, यातम्, सेवान्धोऽकृतजीवितस्य, मे, जरसा, यत्, कृतम्, (तत्), किं नाम ॥ १ ॥

शब्दार्थः—चक्षुषि = आँख के, सति = रहने पर, अपि = भी, उच्चैः = ऊपर, अलम् = पर्याप्त रूप से,
से, यथेच्छ, न = नहीं, ईक्षितम् = देखा जाता, श्रुत्वा = सुनकर, अपि = भी, न = नहीं, आकर्णितम् =
सुना जाता; शक्तेन = समर्थ होकर, अपि = भी, अधिकारः = अधिकार (है), इति = ऐसा मानकर
अधिकृता = धारण की गई, यष्टिः = छड़ी, समालम्बिता = पकड़ी जाती है; सर्वत्र = सब स्थानों पर
कार्यों में, स्खलितेषु = त्रुटियों पर, दत्तमनसा = ध्यान रखते हुये, मया = मेरे द्वारा, उद्धतम् = उद्विग्न
पूर्वक, न = नहीं, यातम् = चला जाता है; सेवान्धोऽकृतजीवितस्य = सेवा के कारण विवेकहीन जीवित
वाले, मे = मेरा, जरसा = बृद्धावस्था ने, यत् = जो कुछ, कृतम् = किया है, (तत् = वह), किं नाम

द्वितीय अङ्क

(तदनन्तर कञ्चुकी प्रवेश करता है)

कञ्चुकी—महाराज दुर्योधन के द्वारा मुझे आशा दी गई है—‘विनयन्धर, शीघ्र जाओ, तुम महारानी भानुमती का पता लगाओ। क्या माँ (गान्धारी) के चरण-वन्दन के आचार से (वे) लौट आईं अथवा नहीं। क्योंकि उनको देखकर, अभिमन्यु का वध करनेवाले कर्ण, जयद्रथ आदि अपने सेनापतियों को, समराङ्गण में जाकर सम्मानित करना है।’ तो मुझे अति शीघ्र चलना चाहिये। महाराज का प्रभाव आश्चर्य-जनक है, जो कि वृद्धावस्था से असे हुए मेरा अन्तःपुर (रनिवास) में निवास करना केवल आचारमात्र रह गया है। अथवा वृद्धावस्था को क्यों इस तरह उलाहना दूँ ? क्योंकि अन्तःपुर में नियुक्त सभी लोगों का यही व्यावहारिक वेष तथा चेष्टा है, जैसे कि—

आँख के रहने पर भी ऊपर की ओर यथेच्छ नहीं देखा जाता, सुनकर भी नहीं सुना जाता; समर्थ होकर भी, अधिकार (का लक्षण है)—ऐसा मानकर धारण की गई छड़ी पकड़ी जाती है; सब स्थानों में वृष्टियों पर ध्यान रखते हुए मेरे द्वारा उदण्डतापूर्वक नहीं चला जाता है। सेवा के कारण विवेकहीन जीवनवाले मेरा वृद्धावस्था ने जो कुछ किया है (वह) क्या (नई बात) किया है ? (अर्थात् कुछ नहीं) ॥ १ ॥

विशेष—जरसा...कृतम्—राजसेवा में नियुक्त व्यक्ति जब चाहे तब आँखें उठाकर ऊपर स्वामी के मुख की ओर देख नहीं सकता। डॉट-फटकार सुनकर भी अनुसूची कर देता है। पुलिस इन्स्पेक्टर की तरह उसे छड़ी धारण करना अनिवार्य होता है। कहीं गलती न हो जाय एतदर्थ वह सर्वदा सावधान रहता है। वह अपने-आप विचारकर कुछ भी कार्य नहीं कर सकता। (अर्थात् विवेक का अन्धा होता है)। वस, यही सब कार्य वृद्धावस्था भी तो करती है। यही कारण है कि कञ्चुकी कहता है कि जिस कार्य को वृद्धावस्था ने किया है उसे तो पहले से ही राजसेवा के कारण मुझे करना पड़ता था। अतः वृद्धावस्था ने कोई नवीन बात नहीं की है ॥ १ ॥

= क्या है ? (अर्थात् कुछ नहीं) ॥ १ ॥

अन्तःपुरजनानां स्वामाविकान् वेपादीनाह—नोच्चैः सत्यपीति। चक्षुषि = नेत्रे, जातावेकवचनम्, सति = वर्तमाने, अपि = च, उच्चैः = ऊर्ध्वम्, अलम् = पर्याप्तं यथेच्छमित्यर्थः, न = नहि, ईक्षितम् = अवलोकनं भवतीति क्रियाशेषः सर्वत्र। श्रुत्वा = आकर्ण्य, प्रमो = कटुवचनमाकर्ण्येत्यर्थः, अपि = च, न आकर्णितम् = न श्रुतम्। श्रुतमप्यश्रुतं भवतीति भावः। शक्तेन = समर्थेन, अपि, अधिकारः = आचार इत्यर्थः, इति = इति कृत्वा, अधिकृता = गृहीता, यष्टिः = वेत्रयष्टिः, समालम्बिता = आदत्ता। सर्वत्र = सर्वकार्येषु, खलितेषु = खलनेषु, व्यापारप्रच्यवेषु, दत्तमनसा—दत्तम् = समर्पितम् मनः = चेतः यस्य तेन, मया = कञ्चुकिना, उद्धतम् = साभिमानं यथा स्यात्तथा, न यातम् = न गमनं भवति। सेवान्धी-

(परिक्रम्य दृष्ट्वा, आकाशे) विहङ्गिके, अपि श्वश्रूजनपादवन्दनं कृत्वा प्रतिनिवृत्ता भानुमती । (कर्णं दत्वा) किं कथयसि—आर्य, एषा भानुमती देवी पत्युः समरविजया-शंसया निर्वर्तितगुरुदेवपादवन्दनाद्यप्रभृत्यारब्धनियमा बालोद्याने तिष्ठतीति । तद्भद्रे, गच्छ त्वमात्मव्यापाराय । यावदहमप्यत्रस्थां देवीं महाराजस्य निवेदयामि । (इति परिक्रम्य) साधु पतिव्रते, साधु । स्त्रीभावेऽपि वर्तमाना वरं भवती न पुनर्संहाराजः, योऽयमुद्यतेषु बलवत्सु, अथवा किं बलवत्सु वा वासुदेवसहायेषु पाण्डुपुत्रेष्वप्यन्तः-पुरविहारमनुभवति । (विचिन्त्य) इदमपरमयथातथं स्वामिनश्चेष्टितम् । कुतः—

आ शस्त्रग्रहणादकुण्ठपरशोस्तस्यापि जेता मुने—

स्तापायास्य न पाण्डुमुनुभिरयं भीष्मः शरैः शायितः ।

प्रीढानेकधनुर्धरारिविजयश्रान्तस्य चैकाकिनो

बालस्यायमरातिलूनधनुषः प्रीतोऽभिमन्योर्वधात् ॥२॥

कृतजीवितस्य—सेवया = परिचर्यया अन्धीकृतम् = निष्फलोक्तम् = विवेकशून्यमित्यर्थः, जीवितम् = जीवनम् यस्य तादृशस्य, मे = मम कञ्च कतः, जरसा = बाधं क्येन, यत् = यदवस्थान्तरमित्यर्थः, कृतम् = विहितम्, तदिति शेषः, किं नाम = न किमपीत्यर्थः । वृद्धावस्थया यत् क्रियते तत्तु पूर्वतः एव राजसेवया कृतमास्तेऽतो वार्द्धक्येन न किमपि नूतनमवस्थान्तरमानीतमिति । अतो न जरा उपालम्भनीयेति । अत्र विशेषोक्तिरलङ्कारः शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ १ ॥

परिक्रम्येति । आकाशे = आकाशे दृष्टिं दस्वेत्यर्थः । आकाशमाषितलक्षणं दशरूपके—“किं ब्रवीष्येवमित्यादि विना पात्रं ब्रवीति यत् । उक्त्वेवानुक्तमप्यर्थं तत्स्यादाकाशमाषितम् ।” श्वश्रूजनपाद-वन्दनम्—श्वश्रूजनानां पादवन्दनम् = चरणनिषतनम्, प्रतिनिवृत्ता = प्रतियाता । समरविजयाशंसया—समरे = संग्रामे विजयः = जयः तस्य आशंसया = अभिलाषया, निर्वर्तितम् = सम्पादितम् गुरूणाम् = वृद्धानाम् देवानाम् = सुराणाम् पादवन्दनम् = चरणवन्दनम् यया सा, अद्यमृति = अद्यारभ्य, आरब्ध-नियमा—आरब्धः = प्रारब्धः नियमः = व्रतम् यया सा, बालोद्याने = नवारामे, आत्मव्यापाराय—आत्मनः = स्वस्य व्यापाराय = कार्याय । वासुदेवसहायेषु—वासुदेवः = श्रीकृष्णः सहायः = सखा येषां तादृशेषु । अद्यापि = अद्यापि, समुपस्थिते युद्धकालेऽपि इत्यर्थः । अयथातथम्—यथा—सत्यम् अनतिक्रम्य = अनुत्तलं यथातथम् = समीचीनम्, न यथातथम् अयथातथम् = असमीचीनम्, अनुचितमित्यर्थः ॥

अन्वयः—आ शस्त्रग्रहणात्, अकुण्ठपरशोः, तस्य, मुनेः, अपि, जेता, अयम्, भीष्मः, पाण्डु-मुनिः, शरैः, शायितः, (तत्), अस्य, तापाय, नः, (किन्तु), प्रीढानेकधनुर्धरारिविजयश्रान्तस्य, एकाकिनः, च, अरातिलूनधनुषः, बालस्य, अभिमन्योः, वधात्, (अयम्), प्रीतः, (अस्ति) ॥ २ ॥

शब्दार्थः—आ शस्त्रग्रहणात् = शस्त्र धारण करने (के समय) से लेकर, अकुण्ठपरशोः = अप्रतिहत परशुवाले, तस्य = उस (जगद्विदित), मुनेः = मुनि (परशुराम) को, अपि = भी, जेता =

द्वितीयोऽङ्कः

५१

(धूमकर, देखकर आकाश को ओर) विहङ्गिके, क्या सास के चरणों की बन्दना कर (अर्थात् सास का पैर छूकर) मानुमती लौट आई है ? (कान लगाकर) क्या कह रही हो (कि)— 'माननीय यह महारानी मानुमती पति की युद्ध में विजय की अभिलाषा से बड़े-बूढ़ों तथा देवताओं की चरण बन्दना करके आज से व्रत धारण किये हुई बालोद्यान में स्थित हैं । तो मल्लोमानस, जाओ तुम अपने कार्य के लिये । मैं भी 'महारानी (मानुमती) यहाँ स्थित हूँ' (इस सूचना को) महाराज (दुर्योधन) से निवेदन करता हूँ (ऐसा कह कर तथा धूमकर) बाह पतिव्रते (मानुमती) बाह ! स्त्री होती हुई भी आप अच्छी हैं, किन्तु महाराज नहीं, जो यह प्रबल अथवा अप्रबल किन्तु वासुदेव की सहायता से सम्पन्न, शत्रु, पाण्डुपुत्रों के (युद्ध के लिये) उद्यत होने पर आज भी अन्तःपुर के विहार का अनुभव कर रहे हैं । (सोचकर) स्वामी का यह एक दूसरा अनुचित कार्य है । क्योंकि—

विशेष—आकाशे—आकाशमाषित रङ्गमन्त्र पर अनुपस्थित व्यक्ति से माषण करने को कहते हैं । इसमें एकही व्यक्ति इस तरह प्रश्नोत्तर प्रस्तुत करता है जिससे शत होता है कि मानो वह किसी से बात कर रहा हो ।

शस्त्र धारण करने (के समय) से लेकर अपराजित परशु वाले उस (जगदिन्द्रित) मुनि (परशुराम) को भी जीतनेवाले यह भीष्म पाण्डु के पुत्रों के द्वारा बाणों से (मारकर) सृष्टा दिये गये । (वह) इनके दुःख के लिये न हुआ । (किन्तु) महान् अनेक धनुर्धर शत्रुओं के ऊपर विजय करने से थके हुए, अकेले तथा शत्रु के द्वारा काटे गये धनुष वाले बालक अभिमन्यु के वध से (यह) प्रसन्न (हैं) ॥ २ ॥

विशेष—तस्य जेता—भीष्म ने परशुराम से धनुर्विद्या सीखी थी । एक बार भीष्म के विवाह को लेकर गुरु शिष्य में विवाद तथा युद्ध हुआ । उसमें परशुराम को हार खानी पड़ी थी ॥ २ ॥

जीतने वाले, अयम् = यह, भीष्मः = भीष्म, पाण्डुसनुभिः = पाण्डु के पुत्रों द्वारा, शरैः = बाणों से, शायितः = सृष्टा दिये गये; (तत् = वह), अस्य = इनके, तापाय = दुःख के लिये, न = न हुआ; (किन्तु = परन्तु), प्रौढानेकधनुर्धरारिविजयश्रान्तस्य = महान् अनेक धनुर्धर शत्रुओं के ऊपर विजय करने से थके हुए, एकाकिनः = अकेले, च = तथा, अरातिलूनधनुषः = शत्रु के द्वारा काटे गये धनुषवाले, बालस्य = बालक, अभिमन्योः = अभिमन्यु के, वधात् = वध से, (अयम् = यह), प्रीतः = प्रसन्न, (अस्ति = हैं) ॥ २ ॥

आशस्त्रेति—आ शस्त्रग्रहणात् = शस्त्रग्रहणमारभ्य, अकुण्ठपरशोः—अकुण्ठः = अप्रतिहतः, अपराजितः इति यावत्, परशुः = कुठारः ('कुठारः.....परशुश्च परश्वधः' इत्यमरः) यस्य तस्य, अपराजितशस्त्रस्येति यावत्, तस्य = जगदिन्द्रितस्येत्यर्थः, मुनेः = ऋषेः, परशुरामस्येत्यर्थः अपि, जेता = विजेता, अयम् = एषः, मम पक्षावलम्बीत्यर्थः, भीष्मः = भीष्मपितामहः, पाण्डुसनुभिः—पाण्डोः सनुभिः = सुतैः, शरैः = बाणैः, शायितः = स्त्रापितः, पातित इत्यर्थः, तदिति शेषः, अस्य महाराजस्य दुर्योधनस्य, तापाय = दुःखाय, न = न जातम्; (किन्तु), प्रौढानेकधनुर्धरारिविजयश्रान्तस्य—प्रौढाः =

सर्वथा दैवं नः स्वस्ति करिष्यति । तद्यावदत्रस्थां देवीं महाराजस्य निवेदयामि ।
(इति निष्क्रान्तः) ।

॥ विष्कम्भकः ॥

(ततः प्रविशत्यासनस्था देवी मानुमती, सखी, चेटी च)

सखी—सखि मानुमति, कस्मादिदानीं त्वं स्वप्नदर्शनमात्रस्य कृते अमि-
मानिनो महाराजदुर्योधनस्य महिषो भूत्वा विगलितधीरभावातिमात्रं संतप्यसे ।
[सहि माणुमदि, कीस दाणीं तुमं सिविष्यदंसणमेत्तस्स किदे अहिमाणियो महाराजदुज्जोहणस्स
महिषो भविअ एव्वं विअलिअधीरभावा अदिमेत्तं संतपसि ।]

चेटी—मट्टिनि, शोभनं मणति सुवदना । स्वपञ्जनः किं न खलु प्रलपति ।
[मट्टिणि, सोहणं मणादि सुवअणा । सिविष्यअन्तो जणो कि ण व्खु प्लवदि ।]

मानुमती—हज्जे एवमेतत् । किंत्वयं स्वप्नोऽतिमात्रमकुशलदर्शनो मे प्रतिभाति ।
[हज्जे एव्वं ण्णेदम् । किदु एदं सिविष्यअं अदिमेत्तं अकुसलदंसणं मे पडिमादि ।]

सखी—प्रियसखि, यद्येवं तत्कथय स्वप्नं येनावामपि प्रतिष्ठापयन्त्यौ धर्मप्रशंसया
देवतासंकीर्तनेन दूर्वादिपरिग्रहेण च परिहरिष्यावः । [पिअसहि, जइ एव्वं ता कहिहि
सिविष्यअं जेण अहो वि पडिठ्ठावअन्तोओ धम्मप्पसंसाए देवदासंकित्तणेण दुव्वादिपडिग्गहेण अ
पडिहडिस्सामो ।]

चेटी—शोभनं खलु मणति सुवदना । अकुसलदर्शनाः स्वप्ना देवतानां प्रशंसया
कुशलपरिणामा भवन्तीति श्रूयते । [सोहणं खु मणादि सुवअणा । अकुसलदंसणा सिविष्यअ
देवदाणं पसंसाए कुसलपरिणामा होन्ति त्ति सुणोअदि ।]

मानुमती—यद्येवं तत्कथयिष्ये । अवहिता तावज्ज्व ।

[जइ एव्वं ता कहइस्सं । अवहिदा दाव होहि ।]

सखी—अवहितास्मि । कथयतु प्रियसखी । [अवहिदहि । कहेदु पिअसही]

मानुमती—हला, मयेन विस्मृतास्मि । तत्तिष्ठ यावत्सर्वं स्मृत्वा कथयिष्यामि ।
[हला, मएण विमुमरिदहि ता चिट्ठ जाव सव्वं सुमरिअ कहइस्सं ।] (इति चिन्तां नाटयति) ।

विख्याताः, प्राप्तवयस्का इत्यर्थः, अनेके = बहवः धनुर्धराः = कोदण्डधारिणः ये अरयः = शत्रवः तेषां
विजयेन = जयेन श्रान्तः = श्लथः तस्य, एकाकिनः = असहायस्य, च = तथा, अरातिलूनधनुषः—
अरातिना = शत्रुणा लूनम् = छिन्नम् धनुः = कोदण्डम् यस्य तस्य, बालस्य = अप्राप्तधौवनस्येत्यर्थः,
अभिमन्योः = अर्जुनपुत्रस्य, बधात् = हननात्, अयं प्रीतः = प्रसन्नः, अस्तीति क्रियाशेषः । हते मोक्षे
ततः क्षीणे स्वपक्षेऽयं नानुशोचति, किन्तु परपक्षस्य बालके हते हर्षमनुभवतीति हर्षस्थाने शोकस्य
शोकस्थाने हर्षस्यानुभवादस्यानौचित्यं वतते इति भावः । अत्र विशेषोक्तिविभावनालङ्कारयोः सङ्करः ।
शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ २ ॥

सर्वथेति । दैवम् = भाग्यम्, नः = अस्माकम्, सर्वथा = सर्वप्रकारेण, स्वस्ति = कल्याणम्,
करिष्यति = विधास्यति ॥

द्वितीयोऽङ्कः

५३

देव ही सब तरह से हमारा कल्याण करेगा। तो अब यहाँ वर्तमान महारानी के विषय में महाराज (दुर्योधन) से निवेदन कर दूँ (अर्थात् बतला दूँ)। (ऐसा कहकर निकल गया)।

॥ विष्कम्भक समाप्त ॥

विशेष—व्यतीत तथा मावो कथा-भाग को सूचित करने वाले, संक्षिप्त अर्थवाले, अङ्क के आदि में प्रयुक्त अंश को 'विष्कम्भक' कहा जाता है।

(तदनन्तर आसन पर विराजमान महारानी भानुमती सखी और चेटी प्रवेश करती हैं)।

सखी—भानुमती, अभिमानो महाराज दुर्योधन का पटरानी होकर (भी) स्वप्न के देखने मात्र से इस तरह धैर्य-हीन होकर तुम सम्प्रति क्यों अत्यन्त दुःखी हो रही हो?

चेटी—स्वामिनी, सुवदना ठीक कह रही है। सोता हुआ व्यक्ति क्या नहीं बड़बड़ाता?

विशेष—महारानी की दासी को चेटी कहते हैं। यह छोटी जाति की स्त्री होती है।

भानुमती—हज्जे, यह ऐसी हो (बात) है। किन्तु यह स्वप्न मुझे अत्यधिक अमङ्गलसूचक प्रतीत हो रहा है।

विशेष—महारानी अपनी सखी अथवा चेटी को 'हज्जे' इस सम्बोधनपद से पुकारती है।

सखी—प्रिय सखी, यदि ऐसी (बात) है तो (हम लोगों को भी) स्वप्न बतला दो, जिससे हम दोनों भा (उसे) मङ्गलजनक बनाती हुई धमक्या, देवताओं के (नाम,) कीर्तन तथा दूर्वा (द्वार) के धारण से (अमङ्गल को) दूर करने का उपाय करें।

चेटी—सुवदना ठीक कह रही है। ऐसा सुना जाता है कि अशुभ स्वप्न भी देवताओं के कीर्तन से (अथवा देवताओं की स्तुति से) शुभ फलवाले हो जाते हैं।

भानुमती—यदि ऐसा है तो कहती हूँ। तुम सावधान हो जाओ।

सखी—सावधान हूँ। प्रिय सखी कहें।

भानुमती—सखि, भय के कारण भूल गई हूँ। तो जरा रुको, पूरा स्वप्न स्मरण करके कहती हूँ।

विष्कम्भक इति। अतीतानागतयोः कथांशयोर्निर्देशकस्य संक्षिप्तार्थस्य अङ्कादौ प्रयुक्तस्यांशस्य विष्कम्भक इति संज्ञा कृता नाट्याचार्यैः। तल्लक्षणं यथा—

वृत्तवर्तिभ्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।

संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावकस्य दर्शितः॥'

सखीति। स्वप्नदर्शनमात्रस्य कृते = स्वप्नदर्शनमात्रेणैवेत्यर्थः, अभिमानिन इत्यनेन दुर्योधनस्य प्रभुत्वं निर्दिष्टम्, महिषी = कृताभिषेका स्त्री, विगलितधोरमावा—विगलितः = दूरीभूतः धोरमावः = धैर्यम् यस्याः सा, अधीरेत्यर्थः॥

भानुमतीति। 'हज्जे' इति नीचां चेटी प्रत्याह्वाने प्रयुज्यते—'हण्डे हज्जे हलाह्वाने नीचां चेटी सखी प्रति' इत्यमरः। अकुशलदर्शनाः—अकुशलम् = अमङ्गलं दर्शयन्तीति अकुशलदर्शनाः = अशुभसूचकाः॥

वेणीसंहारे

(ततः प्रविशति दुर्योधनः कञ्चुकी च)

दुर्योधनः—सूक्तमिदं कस्यचित्—

गुप्त्या साक्षान्महानल्पः स्वयमन्येन वा कृतः ।

करोति महतीं प्रीतिमपकारोऽपकारिणाम् ॥ ३ ॥

येनाद्य द्रोणकर्णजयद्रथादिभिर्हतमभिमन्युमुपश्रुत्य समुच्छ्वसितमिव नश्चेतसा ।

कञ्चुकी—देव, नेदमतिदुष्करमाचार्यशस्त्रप्रभावाणाम् । कर्णजयद्रथयोर्वा का नामात्र श्लाघा ।

राजा—विनयन्धर, किमाह भवान् ? एको बहुभिर्बालो लूनशरासनश्च निहत इत्यत्र का श्लाघा कुरुपुङ्गवानामिति । मूढ पश्य—

हते जरति गाङ्गेये पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।

या श्लाघा पाण्डुपुत्राणां सैवास्माकं भविष्यति ॥ ४ ॥ २

कञ्चुकी—(सवैलक्ष्यम्) देव, न ममायं सङ्कल्पः । किं तु भवत्पौरुषप्रतीघातो-
ऽस्माभिर्नावलोकितपूर्वं इत्यत एव विज्ञापयामि ।सखाति—प्रतिष्ठापयन्तौ = अशुभं स्वप्नं शुभ सम्पादयन्तौ, धर्मप्रशंसया—धर्मस्य = धार्मिक-
कथादेरित्यर्थः प्रशंसया = कथनेन, दूर्वादिपरिग्रहेण—दूर्वादीनाम् = मङ्गलकारकवस्तूनाम् परिग्रहेण =
धारणेन, परिहरिष्यावः = निवर्तयिष्यावः, अमङ्गलमिति शेषः ॥चेटीति । भणति = वदति । कुशलपरिणामाः—कुशलम् = मङ्गलम्, मङ्गलकारकमित्यर्थः, परिणामः
फलं येषां ते तादृशाः, इति श्रूयते = इति प्रसिद्धिर्बतते इति भावः ॥अन्यः—अपकारिणाम्, गुप्त्या, वा, साक्षात्, महान्, (वा), अल्पः, स्वयम्, (वा),
अन्येन, कृतः, अपकारः, महतीम्, प्रीतिम्, करोति ॥ ३ ॥शब्दार्थः—अपकारिणाम् = शत्रु का, गुप्त्या = छिपकर, वा = अथवा, साक्षात् = प्रत्यक्ष,
महान् = बड़ा, (वा = अथवा), अल्पः = छोटा, स्वयम् = अपने से, (वा = अथवा), अन्येन =
दूसरे के द्वारा, कृतः = किया गया, अपकारः = अपकार, महतीम् = बहुत ही अधिक, प्रीतिम् =
प्रसन्नता को, करोति = करता है ॥ ३ ॥गुप्येति । अपकारिणाम् = शत्रूणाम्, गुप्त्या = निभृतम्, वा = अथवा, साक्षात् = प्रत्यक्षम्,
महान् = विशालः, (वा), अल्पः = लघुः, स्वयम् = स्वकरेणैवेत्यर्थः, वा = अथवा, अन्येन = इतरेण
जनेन, कृतः = सम्पादितः, अपकारः = अहितम्, महतीम् = विपुलाम्, प्रीतिम् = प्रसन्नताम्, करोति =
विदधाति । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ३ ॥येनाद्येति । हतम् = मारितम्, उपश्रुत्य = वशयेत्यर्थः, समुच्छ्वसितमिव = विकसितमिव,
सुखेन प्रफुल्लितमिवेति भावः ॥कञ्चुकीति—अतिदुष्करम् = अतिकठिनम्, आचार्यशस्त्रप्रभावाणाम्—आचार्यस्य = द्रोणस्य
शस्त्राणाम् = आशुधानाम् प्रभावाः = सामर्थ्यानि तेषाम्, का नाम = अपि तु न कापीत्यर्थः,
श्लाघा = प्रशंसा ॥

द्वितीयोऽङ्कः

५५

(तदनन्तर दुर्योधन और कञ्चुकी प्रवेश करते हैं)

दुर्योधन—किसी का यह सुन्दर वचन है—

शत्रु का, छिपकर अथवा प्रत्यक्ष, बड़ा (अथवा छोटा, अपने से (अथवा) दूसरे के द्वारा किया गया अपकार बहुत ही अधिक प्रसन्नता को प्रदान करता है ॥ ३ ॥

जिससे कि आज द्रोण, कर्ण तथा जयद्रथ आदि के द्वारा अभिमन्यु को मारा गया सुनकर हमारे चित्त ने सांस-सी ली है (अर्थात् राहत का अनुभव किया है) ।

कञ्चुकी—महाराज, आचार्य (द्रोण) के शस्त्रों के सामर्थ्य के लिए यह (कोई) अत्यन्त कठिन (कार्य) नहीं (था) । तो कर्ण एवं जयद्रथ को इसमें कैसी प्रशंसा ?

राजा विनयन्धर, क्या कहा आपने (कि)—‘असहाय बालक और (उस पर भी) कटे धनुषवाला (अभिमन्यु) बहुतों के द्वारा मारा गया है, इसलिये इनमें कुरुक्षेत्रों की कैसी प्रशंसा ? मूर्ख, देखो

शिखण्डो को आगे करके वृद्ध भीष्म के मारे जाने पर पाण्डवों के लिये जो (जैसी) प्रशंसा (थी), (वैसी) ही हमें (भी) होगी ॥ ४ ॥

विशेष—शिखण्डिनम्—शिखण्डो दुपद का पुत्र था । मूलरूप से यह लड़की के रूप में जन्मा तथा तपस्या के द्वारा पुरुष बना था किन्तु भीष्म सर्वदा इसे स्त्री की दृष्टि से ही देखते थे । युद्ध में जब अर्जुन ने शिखण्डो को अपने योद्धा के रूप में आगे कर दिया तो भीष्म ने स्त्री के साथ युद्ध करने से हाथ खींच लिया । वस, इसी समय अर्जुन ने उन्हें बाणों से बौध कर धराशायी बना दिया था । यह एक अनुचित कार्य था । इसी की ओर दुर्योधन इशारा कर रहा है ॥ ४ ॥

कञ्चुकी—(लज्जा के साथ) महाराज, मेरा यह अभिप्राय न था । परन्तु आपके पुरुषार्थका अवरोध हमने कभी नहीं देखा था, यही कारण है कि ऐसा कह रहा हूँ ।

अन्वयः—शिखण्डिनम्, पुरस्कृत्य, जरति, गाङ्गेये, हते, पाण्डुपुत्राणाम्, या, श्लाघा, (आसीत्), सा, एव, अस्माकम्, (अपि), मविष्यति ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—शिखण्डिनम् = शिखण्डो को, पुरस्कृत्य = आगे करके, जरति = वृद्ध, गाङ्गेये = भीष्म के, हते = मारे जाने पर, पाण्डुपुत्राणाम् = पाण्डवों को, या = जो, श्लाघा = प्रशंसा, (आसीत् = थी), सा = वह, एव = ही, अस्माकम् = हमें, (अपि = भी), मविष्यति = होगी ॥ ४ ॥

हत इति । शिखण्डिनम् = शिखण्डिनामानं दुपदपुत्रमित्यर्थः, पुरस्कृत्य = संग्रामस्थले अग्रे कृत्वा, जरति = वृद्धे, गाङ्गेये = गङ्गापुत्रे भीष्मे, हते = पातिते सति, पाण्डुपुत्राणाम् = पाण्डवानाम्, या = यादृशी, श्लाघा = प्रशंसा, आसीदिति क्रियाशेषः, सा = तादृशी, एव = च, अस्माकम् = कुरुपुङ्गवाना-मिति भावः, (अपि), मविष्यति । दुपदपुत्रः शिखण्डो जन्मना स्त्री तपस्यया पुरुषः आसीत् । भीष्मः सर्वदैव तं स्त्रीबुद्धयाऽपश्यत् । अतस्तत्र बाणमोक्षणं न चकार युद्धस्थले । एतस्मिन्नेव कालेऽर्जुनस्तं बाणैर्जघान । यदि तत् श्लाघ्यं तर्हीदमपि श्लाघ्यं यदि तत्र तर्हीदमपि नेति । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ४ ॥

कञ्चुकीति । सवैलक्ष्यम्—विलक्ष्य भावो वैलक्ष्यं तेन सहितं यथा तथा सलज्जमित्यर्थः । सङ्कल्पः = अभिप्रायः । भवत्योरुपप्रतिघातः = भवतां पौरुषस्य = पुरुषार्थस्य प्रतिघातः = कुण्ठा, एवम् = इत्यम्, विशापयामि = निवेदयामि ॥

राजा—एवमिदम् ।

सहभृत्यगणं सबान्धवं सहमित्रं ससुतं सहानुजम् ।

स्वबलेन निहन्ति संयुगे न चिरात्पाण्डुसुतः सुयोधनम् ॥ ५ ॥ १

कञ्चुकी—(कर्णौ पिपाय समयं) शान्तं पापम् । प्रतिहतमसङ्गलम् ।

राजा—विनयन्धर, किं मयोक्तम् ।

कञ्चुकी—सहभृत्यगणं सबान्धवं सहमित्रं ससुतं सहानुजम् ।

स्वबलेन निहन्ति संयुगे न चिरात्पाण्डुसुतं सुयोधनः ॥ ६ ॥ ४

(इति पठति) । एतद्विपरीतमभिहितं देवेन ।

राजा—विनयन्धर, अद्य खलु भानुमती यथापूर्वं मासनामन्य वासभवनात् प्रातरेव निष्क्रान्तेति व्याक्षिप्तं मे मनः तदादेश्य तमुद्देशं यत्रस्था भानुमती ।

कञ्चुकी—इत इतो देवः ।

(उभौ परिक्रामतः)

कञ्चुकी—(पुरोऽवलोक्य । समन्ततो गन्धमाघ्राय) देव, पश्य पश्य । एतत्तुहिनकण-
शिशिरसमौरणोद्वेलितवन्धनच्युतशेफालिकाविरचितकुसुमप्रकरम्, ईषदालोहितसुरध-
वधूकपोलपाटललोध्रप्रसूनविजितश्यामलतासौभाग्यम्, उन्मीलितवकुलकुन्दकुसुम-
सुरमिश्रीतलं प्रभातकालरमणीयमग्रतस्ते बालोद्यानम् । तदवलोक्यतु देवः ।
तथाहि—

अन्वयः—पाण्डुसुतः, संयुगे, स्वबलेन, न, चिरात्, सहभृत्यगणम्, सबान्धवम्, सहमित्रम्, ससुतम्, सहानुजम्, सुयोधनम्, निहन्ति ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—पाण्डुसुतः=पाण्डु-पुत्र, संयुगे=संग्राम में, स्वबलेन=अपने बल से, न चिरात्=अतिशीघ्र, सहभृत्यगणम्=नौकर-चाकरों के साथ, सबान्धवम्=भाई बन्धुओं के साथ, सहमित्रम्=मित्रों के साथ, ससुतम्=पुत्रों के साथ, सहानुजम्=छोटे भाईयों के सहित, सुयोधनम्=दुर्योधन को निहन्ति=मार डालेगा ॥ ५ ॥

सहभृत्यगणमिति । पाण्डुसुतः=पाण्डवः, युधिष्ठिरः इत्यर्थः, संयुगे=संग्रामे, ('संयुगाः १०० संग्रामाभ्यागमाहवाः ॥' इत्यमरः), स्वबलेन=स्वबलेन सेनया वा, न चिरात्=शीघ्रम्, सहभृत्य-
गणम्=भृत्यगणेन=सेवकवर्गेण, सहितम्=सह इति सहभृत्यगणम्=ससेवकवर्गम्, सहशब्दस्थाने
सादेशस्य वैकल्पिकत्वादिदं साधु, सबान्धवम्=बन्धुभिः सहितम्, सहमित्रम्=सुहृद्गणसंयुतम्,
ससुतम्=सपुत्रम्, सहानुजम्=लघुभिः भ्रातृभिः सहितम्, सुयोधनम्=दुर्योधनम्, निहन्ति
हनिष्यति, वर्तमानसामीप्ये लट् । ललिता छन्दः । तल्लक्षणं यथा—'ससजा विषमे यदा गुरुः समरा
स्याल्ललिता समे लगौ' ॥ ५ ॥

द्वितीयोऽङ्कः

५७

राजा—यह ऐसा ही है ।

पाण्डु-पुत्र (अर्थात् युधिष्ठिर) संग्राम में अपने बल से (अर्थात् जबर्दस्ती) अतिशीघ्र नीकर-चाकरो, भाई-बन्धुओं, मित्रों, पुत्रों तथा छोटे भाइयों के सहित दुर्योधन को मार डालेगा ॥ ५ ॥

कञ्चुकी—(कानों को ढँक कर, मय के साथ) पाप शान्त हो । अमङ्गल विनष्ट हो ।

राजा—विनयन्धर, क्या मैंने कहा है ?

कञ्चुकी—‘दुर्योधन संग्राम में अपने बन्धुओं, मित्रों, पुत्रों तथा छोटे भाइयों के सहित पाण्डु-पुत्र (युधिष्ठिर) को मार डालेगा’ ॥ ६ ॥

(इस तरह अर्थात् दुर्योधन के द्वारा कहे गये गलत वाक्य को सही करके पढ़ता है) महाराज ने इसके विपरीत कह दिया है ।

राजा—विनयन्धर, आज मानुमती नित्य की तरह, मुझसे बिना पूछे ही वासमवन से प्रातःकाल ही निकल गई । अतः मेरा वित्त व्याकुल है । इसलिये वह स्थान बतलाओ जहाँ मानुमती स्थित है ।

कञ्चुकी—शहर से, शहर से महाराज (चलो) ।

(दोनों धूमते हैं)

कञ्चुकी—(सामने देखकर, चारों ओर गन्ध सूँघ कर) महाराज, देखें देखें । ओस के कणों से शीतल वायु (के झकरोँ) के द्वारा प्रकम्पित (अतः) बन्धन (वृन्त) से झट्टी हुई निर्गुण्डों के द्वारा फूलों को ढेर लगा दी गई है जिसमें ऐसा, भोलो-भाली दुलहन (वधू) के कपोलों (गालों) के सदृश किञ्चित् लाल लोभपुष्पों के द्वारा जीत लिया गया है श्यामलता का सौन्दर्य जिसमें ऐसा, विकसित बकुल तथा कुन्द के फूलों की सुगन्धि से शीतल, प्रातःकाल (के समय) में रमणीय वह बालोद्यान आपके सामने (आ गया है) । तो महाराज (इसे) देखें । जैसे कि—

राजा इति । अनामन्य = न पृष्ट्वेत्यर्थः, वासमवनात् = निवासगृहात्, इति = अतः, व्याप्तिस्म = व्याकुलम्, चञ्चलमिति यावत् । उद्देशम् = स्थानम् ॥

कञ्चुकीति । तुहिनकृषेत्यादिः—तुहिनस्य = हिमस्य कृषेः = बिन्दुभिः शिशिरः = शीतलः यः समीरणः = वायुः तेन उद्वेलिताः = भृशं कम्पिताः अत एव बन्धनात् = वृन्तात् च्युताः = भ्रष्टाः याः शेफालिकाः = शेफालिकाकुसुमानोत्पत्तयः, तामिः विरचितः = सम्पादितः कुसुमानाम् = पुष्पाणाम् प्रकरः = समूहः, आस्तरणमिति यावत्, यत्र तादृशम् ; ईषदित्यादिः—ईषत् = किञ्चित् आलाहिताः = आरक्ताः ये मुखवधूनाम् = सलज्जमुन्दरीषाम् करोलाः = गण्डस्थलानि तद्वत् पाटलानि = श्वेतरक्तानि यानि लोभप्रसूतानि = लोभकुसुमानि तैः विजितम् = अधराकृतम् श्यामलतानाम् = प्रियगुलतानाम् सौभाग्यम् = सौन्दर्यम् यत्र तादृशम्, उन्मीलितेत्यादिः—उन्मीलितानि यानि बकुलकुन्दकुसुमानि = बकुलमाद्यपुष्पाणि तैः सुरभिः = सुगन्धितम् अत एव शीतलम् = शिशिरम्, सुखावहमित्यर्थः, प्रमात-कालरमणीयम्—प्रमातकाले = प्रातःकाले रमणीयम् = मनोहरम्, एतत् = इदम्, बालोद्यानम् = नवीनारामः, अग्रतः = अग्रे ॥

प्रालेयमिश्रमकरन्दकरालकोशैः

पुष्पैः समं निपतिता रजनीप्रबुद्धैः ।

अकांशुभिन्नमुकुलोदरसान्द्रगन्ध-

संसूचितानि कमलान्यलयः पतन्ति ॥ ७ ॥

राजा—(समन्तादवलोक्य) विनयन्धर, इदमपरमसुष्मिन्नुपसि रमणीयतरम् ।
पश्य—

जम्भारम्भप्रविततदलोपान्तजालप्रविष्टै-

हंस्तैर्भानोर्नृपतय इव स्पृश्यमाना विबुद्धाः ।

स्त्रीभिः सार्धं घनपरिमलस्तोकलक्ष्याङ्गरागा

मुञ्चन्त्येते विकचनलिनीगर्भशय्यां द्विरेफाः ॥ ८ ॥

कञ्चुकी—देव नन्वेषा देवी भानुमती सुवदनया तरलिकया च पयुपास्यमाना तिष्ठति । तदुपसर्पतु देवः ।

राजा—(दृष्ट्वा) आर्य विनयन्धर, गच्छ त्वं साङ्ग्राहिकं मे रथमुपकल्पयितुम् ।

अन्वयः—रजनीप्रबुद्धैः, प्रालेयमिश्रमकरन्दकरालकोशैः, पुष्पैः, समम्, निपतिताः, अलयः, अकांशुभिन्नमुकुलोदरसान्द्रगन्धसंसूचितानि, कमलानि, पतन्ति ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—रजनीप्रबुद्धैः=रात्रि में खिले हुये, प्रालेयमिश्रमकरन्दकरालकोशैः=ओस (के कणों) से मिश्रित पुष्परस से एक तरफ झुके हुए कोशवाले (अथखिली कलीवाले), पुष्पैः=पुष्पों के, समम्=साथ, निपतिताः=गिरे हुए, अलयः=भौरे, अकांशुभिन्नमुकुलोदरसान्द्रगन्धसंसूचितानि=सूर्य की किरणों से खिली हुई कलियों के मध्य-भाग की तीव्र गन्ध के कारण (दूर से ही) मालूम पड़नेवाले, कमलानि=कमलों पर, पतन्ति=गिर रहे हैं ॥ ७ ॥

प्राज्ञेयेति । रजनीप्रबुद्धैः—रजन्याम्=रात्री प्रबुद्धानि=विकसितानि तैः, प्रालेयेन=हिमेन मिश्रः=संयुक्तः यः मकरन्दः=पुष्परसः तेन करालाः=नतोन्नताः कोशाः=मध्यभागाः येषां तानि तादृशैः, पुष्पैः=प्रसूनैः, समम्=साकम्, निपतिताः=च्युताः, अलयः=भ्रमराः, अकांशुभिन्नेत्यादिः—अकंस्य=सूर्यस्य अंशुभिः=किरणैः भिन्नाः=विकासं प्राप्ताः ये मुकुलाः=कलिकाः तेषाम् उदराणाम्=मध्यभागानाम् यः सान्द्रः=निविडः, तीव्र इति यावत्, गन्धः=सुरभिः तेन संसूचितानि=सम्यक् शातानि, कमलानि=जलजानि, पतन्ति=वेगेन गच्छन्ति । अत्र तात्पर्यालङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम्—‘उक्ता वसन्ततिलका तमजा जगौ गः ॥’ ७ ॥

अन्वयः—जम्भारम्भप्रविततदलोपान्तजालप्रविष्टैः, भानोः, भामिः, स्पृश्यमानाः, (अतः), विबुद्धाः, नृपतयः, इव, पते, द्विरेफाः, घनपरिमलस्तोकलक्ष्याङ्गरागाः, (सन्तः), स्त्रीभिः, सार्धम्, विकचनलिनीगर्भशय्याम्, मुञ्चन्ति ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—जम्भारम्भप्रविततदलोपान्तजालप्रविष्टैः=विकास (खिलना) प्रारम्भ होने पर फैली हुई पंखुडियां के छोररूपी झरोखों से (अन्दर) प्रविष्ट, भानोः=सूर्य की, भामिः=किरणों के द्वारा,

द्वितीयोऽङ्कः

५९

रात्रि में बिले हुए, ओस (के कणों) से मिश्रित पुष्प-रस से एक तरफ झुके हुये कोशवाले (अर्ध-खिली कलीवाले) पुष्पों के साथ गिरे हुए भौरे सूर्य की किरणों से खिली हुई कलियों के मध्यभाग को तीव्र गन्ध के कारण (दूर से ही) मालूम पड़नेवाले कमलों पर गिर रहे हैं ॥ ७ ॥

राजा—(चारों ओर देखकर) विनयन्धर, इस प्रातः काल की वेला में यह दूसरा (दृश्य) अत्यधिक सुन्दर है । देखो—

विकास (खिलना) आरम्भ होने पर फैली हुई पंखुडियों के छोर रूपी झरोखों से (अन्दर) प्रविष्ट सूर्य की किरणों के द्वारा लुये जाते हुये (अतः) जगे हुये, राजाओं के समान, ये भौरे जबर्दस्त रात्रि-विहार के कारण (मिटे हुए अतः) थोड़ा थोड़ा दिखलाई पड़ रहे अङ्गराग (सुगन्धित उवटन) से युक्त होकर स्त्रियों के साथ विकसित कमलिनी के मध्यभागरूपी शय्या को छोड़ रहे हैं ॥ ८ ॥

विशेष—नृपतय इव—राजा लोग सुकोमल शय्या पर सोये रहते थे । प्रातःकाल सेवा में नियुक्त दासियों उन्हें हाथों से सहला-सहला कर जगाती थी । यहाँ उपमान स्थल में सूर्य अपने हाथों (करों=किरणों) से छूकर भौरों को जगा रहा है ॥ ८ ॥

कञ्चुको—महाराज, सुवदना और तरलिका के द्वारा सेवा की जाती हुई यह महारानी मानु-मती बैठी हैं । तो महाराज (इनके) पास चलें ।

राजा—(देखकर) आदरणीय विनयन्धर, जाओ तुम युद्ध सम्बन्धी मेरे रथ को तैयार करने के

स्पृश्यमानाः=लुये जाते हुये, (अतः=अतः), विबुद्धाः=जगे हुए, नृपतयः=राजाओं के, इव=समान, एते=ये, द्विरेफाः=भौरे, धनपरिमलस्तोकलक्ष्याङ्गरागाः=जबर्दस्त रात्रिविहार (स्त्री सम्भोग) के कारण थोड़ा-थोड़ा दिखलाई पड़ रहे अङ्गराग, सुगन्धित उवटन) से युक्त, (सन्तः=होकर), स्त्रीभिः=स्त्रियों के, सार्धम्=साथ, विकचनलिनोगर्भशय्याम्=विकसित कमलिनी के मध्य भाग रूपी शय्या को, मुञ्चन्ति=छोड़ रहे हैं ॥ ८ ॥

जृम्भेति । जृम्भारम्भेत्यादिः—जृम्भायाः=विकासस्य आरम्भः=उपक्रमः तेन प्रवितताः=विस्तृताः ये दलानाम्=पत्राणाम् उपान्ताः=सन्निधिप्रदेशाः ते एव जालानि=गवाक्षाः तैः प्राविष्टाः तैः, मानोः=सूर्यस्य, भाभिः=करैः, किरणैरिति यावत्, स्पृश्यमानाः=लुप्यमानाः, (अतः), विबुद्धाः=विनिद्राः, नृपतय इव=राजान इव, एते=इमे, द्विरेफाः=भ्रमराः, धनपरिमलस्तोकलक्ष्याङ्गरागाः=धनः=सान्द्रः यः परिमलः=सम्भोगः, रात्रिविहार इति यावत्, ('संभोगः स्यात्परिमले ।' इति वैजयन्ती) तेन स्तोकलक्ष्यः=ईषददृश्यः अङ्गरागः=विलेपनम् येषां ते ताडशाः, सम्भोगकाले संघर्षपादङ्गरागस्य वेरल्ये जाते तज्ज्ञानं गन्धेनैव जायते इति भावः, (सन्तः), स्त्रीभिः=वनिताभिः, सार्धम्=साकम्, विकचनलिनोगर्भशय्याम्—विकचायाः=प्रफुल्लयाः नलिन्याः=कमलिन्याः गर्भः=मध्यभागः एव शय्या=पर्यङ्कः ताम्, मुञ्चन्ति=त्यजन्ति । यथा राजानः परिजनकरैः स्पृष्टाः निद्रां जहति तथैवैते द्विरेफाः अपि सूर्यकरैरामृष्टाः सन्तः निद्रां जहतीति भावः । अङ्गरागाणां वेरल्यं धन-सम्भोगेनैवेति शेषम् । अत्रोपमालङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—'मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसन-गैमौ मनौ तौ गयुग्मम् ॥' ८ ॥

अहमप्येष देवीं दृष्ट्वानुपदमागत एव ।

कञ्चुकी—एष कृतो देवादेशः । (इति निष्क्रान्तः)

सखी—प्रियसखि, अपि स्मृत त्वया । [पिअसहि, अवि सुमरिदं तुए ।]

मानुमती—सखि, स्मृतम् । अद्य किल प्रमदवन आसीनाया ममाग्रतः केनाप्यतिशयितदिव्यरूपिणा नकुलेनाहिशतं व्यापादितम् । [सहि, सुमरिदम् । अज्ज किल पमदवणे आसीणाए मम अगदो केणावि अतिसददिव्वरूविणा णउलेण अहिसदं वावादिदम् ।]

उभे—(अपवार्य । आत्मगतम्) शान्तं पापम् । प्रतिहतममङ्गलम् । (प्रकाशम्) ततस्ततः । [सन्तं पावम् । पडिहदं अमंगलम् । तदो तदो ।]

मानुमती—अतिसन्तापोद्विग्नहृदयया विस्मृत मया । तत्पुनरपि स्मृत्वा कथयिष्ये । [अदिसंदावोविग्गहिअआए मए विसुमरिदं । ता पुणो वि सुमरिअ कहइस्सम् ।]

राजा—अहो देवी मानुमती सुवदनातरलिकाभ्यां सह किमपि मन्त्रयमाणा तिष्ठति । भवतु । अनेन लताजालेनान्तरितः शृणोमि तावदासां विश्रब्धालापम् । (इति तथा स्थितः)

सखी—अलं सन्तापेन । कथयतु प्रियसखी ।

राजा—किं नु खल्वस्याः सन्तापकारणम् । अथवानामन्य मामियमद्य वासमन्निष्क्रान्तेति समर्थित एवास्या मया कोपः । अयि मानुमति, अविषयः खलु दुर्योधनो भवत्याः कोपस्य ।

किं कण्ठे शिथिलीकृतो भुजलतापाशः प्रमादान्मया

निद्राच्छेदविवर्तनेष्वभिमुखं नाद्यासि संभाविता ।

अन्यस्त्रीजनसंकथालघुरह स्वप्ने त्वया लक्षितो

दोषं पश्यसि कं प्रिये परिजनोपालम्भयोग्ये मयि ॥ ९ ॥ ~

राजा इति । साङ्ग्रामिकम्—संग्राम=युद्धे साधुः सांग्रामिकः तम्, उपकल्पयितुम्=सन्नद्धं कर्तुम् । अनुपदम्—पदस्य पश्चात् अनुपदम्=सद्य इति भावः ॥

मानुमतीति । किलेति निश्चये । प्रमदवने=प्रमदोद्याने, आसीनायाः=कृतासनपरिग्रहायाः, अग्रतः=पुरतः, अतिशयितदिव्यरूपिणा—अतिशयितम्=अतिक्रान्तम् दिव्यम्=स्वर्गोद्भवम् रूपम्=आकारः येन तादृशेन, नकुलेन=लोके 'नेउर' इति प्रसिद्धजन्तुना, पाण्डवेनेत्यपि, अहिशतम्=सर्पशतम्, शत्रुशतमित्यपि, व्यापादितम्=विनाशितम् ॥

मानुमतीति । अतिसन्तापोद्विग्नहृदयया—अतिसन्तापेन=अधिकेन मानसिकेन दुःखेन, उद्विग्नम्=व्यथितम् हृदयम्=चेतः यस्याः सा तथा ॥

राजा इति—किन्तु खल्विति जिज्ञासायाम् । अनामन्य=कथनं न कृत्वेत्यर्थः । समर्थितः=पूर्वतः एव शतः । अविषयः=अपात्रम् ॥

अन्वयः—प्रमादात्, मया, कण्ठे, भुजलतापाशः, शिथिलीकृतः, किम् ? अद्य, निद्राच्छेदविवर्त-

द्वितीयोऽङ्कः

६१

लिये । मैं भी यह महारानी को देखकर पीछे-पीछे आ ही गया ।

कञ्ज, की—यह कर ही दिया गया महाराज का आदेश [अर्थात् आपके आदेश को अभी-अभी पूर्ण करता हूँ] । (ऐसा कहकर निकल गया) ।

सखी—प्रियसखि, क्या आपके द्वारा याद कर लिया गया (वह स्वप्न) ?

मानुमती—सखि, याद आ गया । आज प्रमदवन में बैठी हुई मेरे सामने स्वर्ग के रूप से भी अधिक सुन्दर रूप धारण किये हुये किसी नकुल (नेवला) ने सौ सपों को मार डाला ।

विशेष—प्रमदवने—राजकीय अन्तःपुर से जुड़ा हुआ उद्यान, जिसमें राजा अपनी रानियों के साथ बिहार करते थे । यह प्रमदवन के नाम से जाना जाता था ।

दोनों—(दूसरी ओर मुँह फेरकर, अपने आप) पाप शान्त हो, अमङ्गल विनष्ट हो । (प्रकट रूप से) उसके बाद उसके बाद (क्या हुआ) ?

विशेष—अपवायं—यह इस ढंग से बोलने को कहते हैं कि केवल वही व्यक्ति सुने जिससे कहा गया है । इस तरह के कथन के समय मुँह के बगल में हथेली से आड़ कर लिया जाता है, ताकि बगलवाला व्यक्ति न सुनने पाये । (सा० द० ६) ।

मानुमती—अत्यधिक सन्ताप से व्यथित हृदयवाली मैं भूल गई । तो फिर से स्मरण करके कहूँगी ।

राजा—आहा ! महारानी मानुमती सुवदना तथा तरलिका के साथ कुछ बात-चीत करती हुई स्थित हैं । अच्छा, इस लता की झाड़ी से छिपकर इनके विश्वस्त-आलाप को सुनूँगा । (ऐसा कहकर उसी तरह खड़ा हो जाता है) ।

सखी—सखि, खेद करना व्यर्थ है । कहें प्रिय सखी ।

राजा—इसके खेद का कारण क्या हो सकता है ? श्रयवा विना पूछे ही मुझ से यह आज्ञा वास-गृह से निकल आई है, इससे (अपने उपर) इसके कोप को मैं समझ गया । अरी मानुमती, निश्चय ही दुर्योधन आपके कोप का पात्र नहीं है ।

असावधानी के कारण मेरे द्वारा गले में बाहु रूपी लताओं का पाश (बन्धन) शिथिल किया गया है क्या ? (अर्थात् तुम्हारे द्वारा बाहुओं को डाल कर मेरे गले में लटकने पर मैंने दूसरी ओर ध्यान होने के कारण उन्हें ढीली कर दिया है क्या) ? आज नौद उचटने पर करवटे बदलने में (मेरे द्वारा) नहीं सम्मानित की गई हो (क्या) ? (अर्थात् क्या सोते समय भी मैंने तुम्हारा तिरस्कार किया है क्या) ? स्वप्न में तुम्हारे द्वारा मैं दूसरी स्त्री के साथ बात-चीत में तल्लीन होने के कारण लघु (ओछा = तिरस्कारणीय) समझ लिया गया (क्या) ? हे प्रिये, मेवक की (तरह) मर्तना (डोंट) के पात्र मुझ में किम दोष को देख रही हो (जिसके कारण मुझ पर नाराज होकर यहाँ चली आई हो) ? ॥ ९ ॥

नेपु, न, सम्भाविता, असि, (किम्) ? स्वप्ने, त्वया, अहम्, अन्यस्त्रीजनसंकयालुः, लक्षितः, (किम्) ? हे प्रिये, परिजनोपालम्भयोग्ये, मयि, कम्, दोषम्, पश्यसि ? ॥ १० ॥

शब्दार्थः—प्रमादात् = असावधानी के कारण, मया = मेरे द्वारा, कण्ठे = गले में, मुजलतापाशः

(विचित्र्य) अथवा—

इयमस्मदुपाश्रयंकचित्ता मनसा प्रेमनिबद्धमत्सरेण ।

नियत कुपितातिवल्लभत्वात्स्वयमुत्प्रेक्ष्य ममापराधलेशम् ॥ १० ॥

तथापि शृणुमस्तावत्किं वक्ष्यतीति ।

मानुमती—हला, अहं ततस्तस्यातिशयितदिव्यरूपिणो नकुलस्य दर्शनेनोत्सुका जाता । [हला, अहं तदो तस्य अदिसद्दिव्यरूपिणो णउलसस दंसणेण उच्छुग्रा जादा ।]

राजा—(सवैलक्ष्यम्) किं नामातिशयितदिव्यरूपिणो नकुलस्य दर्शनेनोत्सुका जाता । तत्किमनया पापया माद्रीसुतानुरक्तया वयमेवं विप्रलब्धाः । (सोत्प्रेक्षम् । 'इयमस्मद्' १।१० इति पठित्वा) मूढ दुर्योधन, कुलटाविप्रलभ्यमानमात्मानं बहुमन्यमानोऽधुना किं वक्ष्यसि । ('कि कण्ठे' २ ९ इत्यादि पठित्वा । दिशोऽवलोक्य) अहो एतदर्थमेवास्याः प्रातरेव विविक्तस्थानामिलाषः सखीजनसकथासु च पक्षपातः । दुर्योधनस्तु

= बाहु रूपी लताओं का पाश, शिथिलीकृतः=शिथिल किया गया है, किम्=क्या ? अद्य=आज, निद्राच्छेदविवर्तनेषु=नींद उचटने पर करवटें बदलने में, न=नहीं, सम्माविता=सम्मानित की गई, असि=हो, (किम्=क्या) ? स्वप्ने=स्वप्न में, त्वया=तुम्हारे द्वारा, अहम्=मैं, अन्यस्त्रीजनसंकथालघुः=दूसरी स्त्री के साथ बात-चीत में तल्लीन होने के कारण लघु=ओछा (तिरस्करणीय), लक्षितः=समझ लिया गया, (किम्=क्या) ? हे प्रिये=हे वल्लभे, परिजनोपालम्भयोग्ये=सेवक की मर्तना के पात्र, मयि=मुझ में, कम्=किस, दोषम्=दोष का, पश्यसि=देख रही हो ? ॥९॥

किं कण्ठ इति । प्रमादात्=अनवधानतयेत्यर्थः, ('प्रमादोऽनवधानता' इत्यमरः) मया=तव पत्या, दुर्योधनेनेत्यर्थः, कण्ठे=स्त्रीये गलप्रदेशे, (त्वत्कृतः) भुजलतापाशः—भुजे=बाहु, लते=वल्लयौ श्वेति भुजलते=त्वदीये भुजलते इत्यर्थः, तयोः पाशः=बन्धनम्, शिथिलीकृतः=अशिथिलः दृढ़ इति यावत् शिथिलः कृतः इति शिथिलीकृतः=श्लथीकृतः, किमिति प्रश्ने, अर्थात् नैतादृशी वृष्टिर्मया कदाचिदपि विहितेति प्रश्नाभिप्रायः, अद्य=विगतार्था रात्रावित्यर्थः, निद्राच्छेदविवर्तनेषु—निद्रायाः=स्वापस्य छेदाः=भङ्गाः तेषु विवर्तनानि=पार्श्वपरिवर्तनानि तेषु, न सम्मात्रिता असि=न सत्कृता असि, चुम्बनादिना न सत्कृता असि, किमिति शेषः, निद्राकालेऽपि मया न तव तिरस्कारः विहित इति वक्तव्याभिप्रायः । स्वप्ने=स्वप्नदशकाले, त्वया=भवत्या, मम वल्लभयेत्यर्थः, अहम्=दुर्योधनः, तव दयित इत्यर्थः, अन्यस्त्रीजनसंकथालघुः—अन्येन=इतरेण, त्वदतिरिक्तेन स्त्रीजनेन=ललनाजनेन संकथा=तल्लीनतया सम्भाषणम् तेन कारणेन लघुः=क्षुद्रतां प्राप्तः, लक्षितः=विचारितः, किम् ? स्वप्ने एव त्वं मामन्यस्त्रीजनेन सह प्रेमसम्भाषणे संलग्नमवलोकयितुं शक्नोसि न प्रत्यक्षमिति प्रियापरायणता सूचिता । हे प्रिये=हे दयिते, परिजनोपालम्भयोग्ये—परिजनवत्=स्वदासवत् उपालम्भस्य=मर्तनस्य, विसंवादस्येति यावत्, योग्ये=पात्रे मयि=दुर्योधने, कम्=कीदृशम्, दोषम्=वृष्टिम्, अपराधमिति यावत्, पश्यसि=अवलोकयसि ? शार्दूलविक्रीडितं छन्दः । तल्लक्षणं यथा—'सूर्याश्वैर्यदि मः सजो सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्' ॥ ९ ॥

द्वितीयोऽङ्कः

६३

(गहराई से सोच कर) अथवा—

हम में ही एकमात्र चित्त को लगाने वाली यह (मानुमती) प्रेम के कारण उत्पन्न कोपवाले मन से, (मेरे ऊपर) अतिशय प्रेम के कारण, मेरे कणमात्र अपराध की अपने से ही सम्भावना कर के ही नाराज हो गयी है ॥ १० ॥

तो भी सुनें कि क्या कहती है ?

मानुमती—सखि, तदनन्तर देवताओं के रूप से भी अधिक सुन्दर उस नकुल के दर्शन से (मैं) उत्कण्ठित (काम पीड़ित) हो उठी ।

राजा—(उलझनपूर्वक) क्या देवों से भी अधिक रूपसम्पन्न नकुल के दर्शन से उत्कण्ठित (काम पीड़ित) हो गई ? तो क्या माद्री के पुत्र (नकुल) पर अनुरक्त इस पापिनी के द्वारा हम इस तरह धोखा दिये गये हैं ? (उपहृत्पूर्वक 'इयमस्मद्' २।१० इत्यादि फिा पढ़ कर के) मूढ़ दुर्योधन, कुलटा (छिनारस्त्री) के द्वारा छला जाता हुआ (भी) अपने आप को बहुत माननेवाला (तूँ) अब क्या कहेगा ? ('कि कण्ठे' २।९ इत्यादि पढ़ कर दिशाओं को देख कर) ओह ! इसी लिए प्रातःकाल ही इसकी निर्जनस्थान (के सेवन) की इच्छा तथा सखियों के साथ स्वच्छन्द बात-चीत करने की अभिलाषा हुई है दुर्योधन तो अशान के कारण कुलटा (मानुमती) के हृदय-तत्त्व को न

अन्वयः—अस्मदुपाश्रयैकचित्ता, इयम्, प्रेमनिबद्धमत्सरेण, मनसा, अतिवल्लभत्वात्, मम, अपराधलेशम्, स्वयम्, उत्प्रेक्ष्य, नियतम्, कुपिता ॥ १० ॥

शब्दार्थः—अस्मदुपाश्रयैकचित्ता—हम में ही एकमात्र चित्त को लगाने वाली, इयम्=यह (मानुमती), प्रेमनिबद्धमत्सरेण=प्रेम के कारण उत्पन्न कोपवाले, मनसा=मन से, अतिवल्लभ-मत्वात्=अतिशय प्रेममात्र के कारण, मम=मेरे, अपराधलेशम्=कणमात्र अपराध की, स्वयम्=अपने ही, उत्प्रेक्ष्य=सम्भावना करके नियतम्=निश्चय ही, कुपिता=नाराज हो गयी है ॥ १० ॥

इयमिति । अस्मदुपाश्रयैकचित्ता—वयम् उपाश्रयः=अवलम्बनाधारः यस्य ईदृशम् एकम्=अविक्रमम् अनन्यविषयमित्यर्थः चित्तम्=चेतः यस्याः सा, इयम्=एषा मानुमती, प्रेमनिबद्धमत्सरेण—प्रेम्णा=रत्या, निबद्धः जनितः मत्सरः=कोपः यस्मिन् तादृशेन, मनसा=चेतसा, अतिवल्लभत्वात्=अतिप्रेमभावात्, मम=स्ववल्लभस्य दुर्योधनस्येत्यर्थः, अपराधलेशम्=अपराधस्य=स्वलनस्य लेशम्=कणम्, अतिस्वलपम्यपराधमित्यर्थः, स्वयम्=आत्मनैव, उत्प्रेक्ष्य=सम्भाव्य, नियतम्=निश्चितम्, कुपिता=कुद्धा सजातेति । एतादृशो एव भावनोपनिबद्धान्यत्र—'कुपिता न तु कोपकारणं सङ्कट्यात्मगतं स्मराम्यहम् । प्रभुता रमणेषु योषितां न हि भावः स्खलितान्वपेक्षते ॥' (वि०-४-१२) औपच्छन्दसिकं छन्दः । तल्लक्षणं—'षट्विषमेऽष्टौ समे कलास्तारच समे स्युर्नो निरन्तराः । न समात्र पराश्रिता कला वेतालीयेऽन्ते रली गुरुः । तत्रैवान्वेऽधिके गुरौ स्यादौपच्छन्दसिकं कवीन्द्रहृद्यमिति ॥' १० ॥

मानुमतीति । अतिशयितदिव्यरूपिणः—अतिशयितम्=अतिक्रान्तम् दिव्यरूपम्=स्वर्गसौन्दर्यम्, तदस्यास्तीति तथाभूतस्य; अनुपमसौन्दर्यसम्पन्नस्येत्यर्थः, मत्वर्थे इनिः । दर्शनोत्सुका—दर्शनेन=अवलोकनेन उत्सुका=उत्कण्ठिता, कामपरवशेति यावत् ॥

मोहादविज्ञातबन्धकीहृदयसारः क्वापि परिभ्रान्तः । आः पापे मत्परिग्रहपांसुले—

तद्भीरुत्वं तव मम पुरः साहसानोदृशानि

श्लाघा सास्मद्वपुषि विनयव्युत्क्रमेऽप्येष रागः ।

तच्चौदार्यं मयि जडमती चापले कोऽपि पन्थाः

ख्याते तस्मिन्वितमसि कुले जन्म कौलीनमेतत् ॥ ११ ॥

सखी—ततस्ततः । [तदो तदो ।]

मानुमती—तत उज्जित्वा तदासनस्थानं लतामण्डपं प्रविष्टा । ततः सोऽपि
मानुसुरन्नेव लतामण्डपं प्रविष्टः । [ततो उज्जिञ्ज अ तं आसणदृष्ट्वा लतामण्डपं पविष्टा । तदो
सोवि मं अणुसरन्तो एव लतामण्डपं पविष्टो ।]

राजा—अहो कुलटोचितमस्याः पापाया अशालीनत्वम् ।

राजा इति । माद्रीसुतानुरक्त्या—माद्रीसुते = माद्रीपुत्रे नकुलपाण्डवे अनुरक्ता = उत्कण्ठिता
तया, विप्रलब्धाः = वञ्चिताः । सोत्प्रेक्षम् = सोपहासम् । कुलटाविप्रलभ्यमानम्—कुलटया = व्यंम-
चारिण्या मानुमत्या विप्रलभ्यमानम् = प्रतार्यमाणम्, बहुमन्यमानः = धन्यं मन्यमानः, किं वक्ष्यति =
किमुत्तरं दास्यति । विविक्तस्थानामिलापः—विविक्ते = विजने स्थाने = प्रदेशे अमिलापः = वाञ्छा,
सखीजनसंकयासु—सखीजनैः = वयस्याजनैः सह संकयासु = वार्तासु, पक्षपातः = प्रेमप्रदर्शनम् ।
मोहात् = अशानात्, अविज्ञातबन्धकीहृदयसारः—अविज्ञातः = अनवबुद्धः बन्धक्याः = कुलटयाः
हृदयस्य = मनसः ('कुलटा बन्धकीहरी' इत्यमरः) सारः = तथ्यांशः येन तादृशः । मत्परिग्रह-
पांसुले—मत्परिग्रहश्च = मत्कलत्रञ्च असौ पांसुला = असती तत्सम्बुद्धौ ॥ ('पत्नी परिजनादानमूलशापाः
परिग्रहाः' इत्यमरः) ॥

अन्वयः—मम, पुरः, तव, तत्, भीरुत्वम्, (तथा, सम्प्रति), ईदृशानि, साहसानि; अस्मद्वपुषि,
सा, श्लाघा, (तथा, अधुना), विनयव्युत्क्रमे, अपि, एषः, रागः; जडमती, मयि, च, तत्, औदार्यम्,
(तथा, सम्प्रति), चापले, कोऽपि, पन्थाः, तस्मिन्, वितमसि, कुले जन्म, (एवम्), एतत्,
कौलीनम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—मम = मेरे, पुरः = सामने, तव = तुम्हारी, तत् = वह, भीरुत्वम् = भीरुता
(तथा = और, सम्प्रति = अब), ईदृशानि, = ऐसे, साहसानि = साहसिक कार्य, अस्मद्वपुषि = मेरे
शरीर के विषय में, सा = वैसी, श्लाघा = प्रशंसा, (तथा = और, अधुना सम्प्रति), विनयव्युत्क्रमे =
विनय (पातिव्रत्यरूप सदाचार) के उल्लङ्घन में, अपि = भी, एषः = यह, रागः = अनुराग, जडमती =
मन्दबुद्धि, मयि = मेरे ऊपर, तत् = वह औदार्यम् = उदारता, (तथा = सम्प्रति), चापले = चञ्चलता में,
कोऽपि = कोई (अर्थात् अपूर्व), पन्थाः = मार्ग; तस्मिन् = उस (विश्वविख्यात), वितमसि =
निर्मल, कुले = वंश में, जन्म = उत्पत्ति, (एवम् = और, इस तरह), कौलीनम् = अपवाद, लोक-

समझ कर कहीं और मटका हुआ था । (अर्थात् कुछ और ही सोच रहा था) । आः पापिनी मेरी अधम की—

विशेष—माद्रीसुतानुरक्तया—मानुमती ने नकुल शब्द से नेवले को कहा है । किन्तु दुर्भाग्य से दुर्योधन नकुल का अर्थ माद्रीपुत्र पाण्डव नकुल करता है । नकुल स्वरूप से बड़े मव्य एवं दिव्य थे । नकुल शब्द की द्रव्यकता के कारण हो यहाँ दुर्योधन को गलतफहमी हो रही है ॥

मेरे सामने तुम्हारी वह भोरता, (और अब) ऐसे साहसिक कार्य ? मेरे शरीर के विषय में वैसी प्रशंसा (तथा सम्प्रति) विनय (पातिव्रत्यरूप सदाचार) के उल्लंघन में मो यह अनुराग ? मन्दबुद्धि मेरे ऊपर वह उदारता (तथा सम्प्रति) चञ्चलता में कोई (अर्थात् अपूर्व यह) मार्ग ? उस (विश्वविख्यात) निर्मल वंश में उत्पत्ति (और इस तरह) लोकनिन्दित कार्य ? (तुम्हारे इन दोनों तरह के कार्यों में मेल नहीं बैठता है) ॥ ११ ॥

विशेष—जडमती—दुर्योधन ने आँखें मूँद कर मानुमती की आराधना की है । उसने उसकी कमी प्रेम-परीक्षा नहीं की । अब वह देख रहा है कि मानुमती नकुल से प्रेम करती है । दुर्योधन को उसने मूर्ख बनाया है । अतः वह अपने आप को 'जडमति' कह रहा है ॥ ११ ॥

सखी—उसके बाद, उसके बाद (क्या हुआ) ?

मानुमती—तदनन्तर (में) बैठने के उस स्थान को छोड़कर लता-मण्डप में चली गई । तब वह भी मेरा पीछा करते हुए ही लतामण्डप में घुस गया ।

राजा—ओह, इस पापिनी की निर्लज्जता (भी) कुलया के अनुरूप (ही) है ।

निन्दित कार्य ॥ ११ ॥

तस्मोरुत्वमिति । मम = मे, पुरः = समक्षम्, तव = मानुमत्याः, तत् = तादृशम्, प्रशंसनीयमिति यावत्, भोरत्वम् = भोरता, तथा सम्प्रति, ईदृशानि = एतादृशानि, परपुरुषगमन स्पाणीत्यर्थः, साहसानि = दुष्कराणि कार्याणि ? अस्मद्बुद्धि = अस्माकं देहे, देहविषये इत्यर्थः, सा = तादृशी, अतिविशिष्टेति यावत्, श्लाघा = प्रशंसा, प्रशंसया प्रेमातिशयश्च सूचितः, (तथा अधुना), विनयव्युत्क्रमे—विनयस्य = पातिव्रत्यरूपस्य सदाचारस्य व्युत्क्रमे = उल्लङ्घने, अपि = च, एषः = अयम्, दृश्यमान इति यावत्, रागः = अनुरागः, जडमती—जडा = मन्दा, व्यक्तिविवेचनविहीनेत्यर्थः, मतिः = बुद्धिः यस्य तस्मिन्, मयि = दुर्योधने, च, तत् = तादृशम्, औदार्यम् = उदारता, प्रेमप्रदर्शनरूपमौदार्यं बोध्यम्, (तथा सम्प्रति), चापले = चाञ्चल्ये, पुंसचलित्वे इति यावत्, कोऽपि = विलक्षणः, पन्थाः = मार्गः, तस्मिन् = तादृशे, अतिप्रसिद्धे इति यावत्, वितमसिद्धे = विशुद्धे, कुले = वंशे, जन्म = उत्पत्तिः, (एवम् = तथेत्यम्), एतत् = इदम्, परपुरुषसङ्गमरूपमित्यर्थः, कौलीनम् = लोकवादाः ('त्यात्कौलीनं लोकवादः' इत्यमरः) । उभयं तवैतत् संघटवे इत्यभिप्रायः । अत्र विरुद्धयोः संघटनात् विषमालङ्कारः । मन्दाक्रान्ता छन्दः ॥ ११ ॥

राजा इति । पापायाः = पापशोलायाः, अशालोन्त्वम् = निर्लज्जता ॥

वेणीसंहारे

यस्मिंश्चिरप्रणयनिर्भरबद्धभाव-

मावेदितो रहसि मत्सुरतोपभोगः ।

तत्रैव दुश्चरितमद्य निवेदयन्ती

ह्रीणासि पापहृदये न सखीजनेऽस्मिन् ॥ १२ ॥ ५

उभे—ततस्ततः [तदो तदो ।]

भानुमती—ततस्तेन सगर्वं प्रसारितकरेणापहृतं मे स्तनांशुकम् । [तदो तेण सगर्वं पसारिअकरेण अवगहिदं मे त्यणंसुअम् ।]

राजा—(विचिन्त्य) । सगर्वं प्रसारितकरेणापहृतं मे स्तनांशुकम् । (सक्रोधम्) ।

अलमतः परं श्रुत्वा । भवतु तावत्तस्य परवनितास्कन्दनप्रगल्भस्य माद्रीसुतहतकस्य जीवितमपहरामि । (किञ्चिद् गत्वा । विचिन्त्य) । अथवा इयमेव तावत्पापशीला प्रथम-मनुशासनीया । (इति निवर्तते) ।

उभे—ततस्ततः । [तदो तदो] ।

भानुमती—ततोऽहमार्यपुत्रस्य प्रभातमङ्गलतूर्यरवमिश्रेण वारविलासिनीजन-सङ्गीतशब्देन प्रतिबोधिताऽस्मि । [तदो अहं अज्जउत्तस्य पमादमङ्गलतूररवमिस्सेण वारविला-सिणीजणसङ्गीदसहण पडिबोधिदस्मि ।]

राजा—(सवितर्कम्) । किं नु प्रतिबोधितास्मीति स्वप्नदर्शनमनया वर्णितं भवेत् । (विचिन्त्य) भवतु सखीवचनाद्व्यक्तिर्भविष्यति ।

अन्वयः—(हे) पापहृदये, यस्मिन्, सखीजने, (त्वया), रहसि, मत्सुरतोपभोगः, चिरप्रणय निर्भरबद्धभावम्, आवेदितः, तत्र, एव, अस्मिन्, (सखीजने), अद्य, दुश्चरितम्, निवेदयन्ती (त्वम्), न, ह्रीणासि, (किम्) ? ॥ १२ ॥

शब्दार्थः—(हे) पापहृदये = हे पापपूर्ण हृदयवाली, यस्मिन् = जिस, सखीजने = सखी-समूह में, (त्वया = तुम्हारे द्वारा), रहसि = एकान्त में, मत्सुरतोपभोगः = मेरे सुरत का उपभोग (काम-क्रीडा का व्यापार), चिरप्रणयनिर्भरबद्धभावम् = बहुत काल से चले आते हुए प्रेम के कारण अत्यन्त चाव से, आवेदितः = कहा गया है; तत्र = उसी, एव = ही, अस्मिन् = इस, (सखीजने = सखीसमूह) में, अद्य = आज, दुश्चरितम् = दुश्चरित्र को, निवेदयन्ती = कहती हुई, (त्वम् = तुम), न = नहीं, ह्रीणासि = लज्जित हो रही हो, (किम् = क्या) ? ॥ १२ ॥

यस्मिन्निति । हे पापहृदये—पापम् = पापपूर्णम् हृदयम् = चेतः यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ, यस्मिन् सखीजने = वयस्यासमूहे, त्वयेति शेषः, रहसि = एकान्ते, मत्सुरतोपभोगः—मम = स्वपत्युर्दुर्योधन-स्येत्यर्थः सुरतोपभोगः = कामक्रीडाव्यापारः, चिरप्रणयनिर्भरबद्धभावम्—चिरम् = चिरकालम्, बद्धोः कालादित्यर्थः, यः प्रणयः = प्रीतिः तेन निर्भरम् = भृशम्, सम्पूर्णमित्यर्थः बद्धः = रचितः, आविष्कृत इति यावत्, भावः = स्वचित्ताभिप्रायः यस्मिन् कर्मणि यथा तथा, आवेदितः = कथितः, तत्रैव = तस्मिन्नेव, अस्मिन् = एतस्मिन्, (सखीजने = वयस्यासमवाये), अद्य = सम्प्रति, दुश्चरितम् =

हे पापपूर्ण हृदयवाली ! जिस सखी-समूह में (तुम्हारे द्वारा) एकान्त में मेरे सुरत का उपयोग (काम-क्रीडा का व्यापार), बहुत काल से चले आते हुए प्रेम के कारण अत्यन्त चान से कहा गया है; उसी इस (सखी-समूह) में आज (अपने) दुश्चरित्र को कहानी हुई (तुम) नहीं लज्जित हो रही हो (क्या) ॥ १२ ॥

दोनों—उसके बाद ?

भानुमती—तब उसने धृष्टता के साथ हाथ बढ़ा कर मेरी चोली खींच ली ।

राजा—(सोच कर) धृष्टतापूर्वक हाथ बढ़ाकर मेरी चोली खींच ली ? (कोच के साथ) इस से आगे सुनना व्यर्थ है । अच्छा, सम्पत्ति दूसरे को लो का दूषित करने में ढीठ अनागे माद्रीपुत्र (नकुल) के प्राणों को ही समाप्त करता हूँ । (कुछ दूर जाकर, विचार करके) अथवा इस समय पहले यही पापिनी दण्ड देने के लायक है । (ऐसा सोच कर लौट पड़ता है) ।

दोनों—उसके बाद, उसके बाद ?

भानुमती—उसके बाद मैं आर्यपुत्र (पतिदेव) के प्रातःकालीन माङ्गलिक वाद्यों की आवाज से मिश्रित वेश्याजनकों सङ्गीत-ध्वनि से जगा दी गई हूँ ।

विशेष—आर्यपुत्र—स्त्रियाँ अपने पति को आर्यपुत्र कहा करती थीं । प्राचीन काल में यह एक सभ्य तरीका था ।

राजा—(तर्क-वितर्क के साथ) 'जगा दी गई हूँ' इस कथन से क्या इसके द्वारा देखे गये स्वप्न का वर्णन किया गया है ? (सोच कर) अच्छा, स्त्रियों के वाक्य से स्पष्ट हो जायगा (कि यह स्वप्न-वर्णन है अथवा यथार्थ-कथन) ।

दुर्वृत्तम्, पापपूर्णमाचरणमित्यर्थः, निवेदयन्ती = कथयन्ती, त्वमिति शेषः, न हीणासि = न लज्जिता असि, किमिति शेषः । अहह ! त्वदीयमेतदुर्वृत्तकथनमति लज्जास्पदमित्यभिप्रायः । वसन्ततिलका छन्दः ॥ १२ ॥

भानुमतोति । सगर्वम् = सप्रगल्भम्, प्रसारितकरेण-प्रसारितः = अग्रे सारितः करः = हस्तः येन तादृशेन, तेन = नकुलेन; स्तनांशुकम् = स्तनयोः = कुचयोः अंशुकम् = वस्त्रम् ॥

राजा इति । अलमिति पर्याप्तौ । परवनितास्कन्दन-प्रगल्भस्य—परस्य = अन्यस्य वनिता = परनी तस्याः स्कन्दने = प्रवर्षणे प्रगल्भस्य = धृष्टस्य, माद्रीसुतहतकस्य—माद्रीसुतश्चासौ हतकः तस्य माद्रीसुतहतकस्य = नीचस्य माद्रीपुत्रस्य, जीवितम् = जीवनम् । पापशीला—पापम् = पापपूर्णम् शीलम् = स्वभावः यस्याः सा तादृशी, अनुशासनीया = दण्डनीया ॥

भानुमतीति । प्रमातमङ्गलतुर्यैरवमिश्रेण—प्रमाते = प्रातःकाले मङ्गलानि = माङ्गलिकानि यानि तुर्याणि = वाद्यानि तेषां रवेण = शब्देन मिश्रः = संयुक्तस्तेन, वारविलासिनीजनसङ्गीतशब्देन—वारविलासिनीजनः = वेश्याजनः तेषां सङ्गीतस्य = गानस्य शब्देन = ध्वनिना, प्रतिबोधिता = जागरिता ॥

राजा इति । वर्णितम् = कथितम् । सखीवचनात् = वयस्था-संलापात्, व्यक्तिः = स्पष्टम् ॥

वेणीसंहारे

(उभे सविषादमन्योन्यं पश्यतः)

सुवदना—यत्किमप्यत्रास्याहित तद्भागीरथीप्रमुखानां नदीनां सलिलेनापह्रियताम्, भगवतां ब्राह्मणानामप्याशिषा आहुतिहुतेन प्रज्वालितेन भगवता हुताशनेन च नश्यतु । [जं किं वि पत्य अच्चाहिदं तं माईरहीप्पमुहाणं णईणं सलिलेण अवहारीअदु । भअवदाणं ब्रह्मणाणं वि आसोसाए आहुदिहुदेण पज्जलिदेण भअवदा हुदासणेण अ णस्सदु ।]

राजा—अलं विकल्पेन । स्वप्नदर्शनमेवैतदनया वर्णितम् । मया पुनर्मन्दधिया-
अन्यथैव संभावितम् ।

दिष्ट्यार्धश्रुतविप्रलम्भजनितक्रोधादहं नो गतो

दिष्ट्या नो परुषं रुषार्धकथने किञ्चनमया व्याहृतम् ।

मां प्रत्याययितुं विमूढहृदयं दिष्ट्या कथान्तं गता

मिथ्यादूषितयानया विरहितं दिष्ट्या न जातं जगत् ॥ १३ ॥

भानुमती—हला, कथय किमत्र शुभसूचकम् ।

[हला, कहेहि किं पत्य सुहस्रअम् ।]

सखी चेटी च—(अन्योन्यमवलोक्य, अपवार्य) अत्र नास्ति स्तोकमपि शुभसूचकम् । यद्यत्रालोकं कथयिष्ये तत्प्रियसख्या अपराधिनी मविष्यामि । स एव स्निग्धो जनो यः पृष्ठः परुषमपि हितं भणति । (प्रकाशम्) सखि, सर्वमेवैतदशुभनिवेदनम् । तद्देवतानां प्रणामेन द्विजातिजनप्रतिग्रहेण चान्तर्यताम् । न खलु दृष्टिणो नकुलस्य वा दर्शनमहि-
शतवधं च स्वप्ने प्रशंसन्ति विचक्षणाः । [पत्य णत्थि त्योअं वि सुहस्रअम् । जइ पत्य

सुवदनेति । अत्याहितम् = अनिष्टम्, महद्भयमित्यर्थः, ('अत्याहितं महद्भयम्' इत्यमरः) । हुताशनेन = अग्निना ॥

राजा इति । अलमिति निषेधे । मन्दधिया—मन्दा = जडा धीः = बुद्धिः यस्य तेन, अन्यथैव = विपरीतमेव, सम्भावितम् = तर्कितम्, विचारितमिति यावत् ॥

अन्वयः—दिष्ट्या, अहम्, अर्धश्रुतविप्रलम्भजनितक्रोधात्, (भानुमत्याः, पार्श्वम्), नो, गतः; दिष्ट्या, अर्धकथने, रुषा, मया, किञ्चित्, परुषम्, नो, व्याहृतम्; दिष्ट्या, विमूढहृदयम्, माम्, प्रत्याययितुम्, कथा, अन्तम्, गता; दिष्ट्या, जगत्, मिथ्यादूषितया, अनया, विरहितम्, न, जातम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—दिष्ट्या = भाग्य से, अहम् = मैं, अर्धश्रुतविप्रलम्भजनितक्रोधात् = आधी सुनी हुई (बात से प्रतीत) वञ्चना से उत्पन्न क्रोधवश, (भानुमत्याः = भानुमती के, पार्श्वम् = पास तक), नो = नहीं, गतः = चला गया; दिष्ट्या = भाग्य से, अर्धकथने = आधे कहने पर (ही), रुषा = क्रोध के कारण, मया = मेरे द्वारा, किञ्चित् = कुछ, परुषम् = कठोर, नो = नहीं, व्याहृतम् = कह डाला गया; दिष्ट्या = भाग्य से, विमूढहृदयम् = शून्य हृदयवाले, माम् = मुझको, प्रत्याययितुम् = विश्वास दलाने के लिए (ही), कथा = कथा, अन्तम् = समाप्ति को, गता = पहुँच गई; दिष्ट्या = भाग्य से,

द्वितीयोऽङ्कः

६९

(दोनों दुःख के साथ एक दूसरी को देखती हैं)

सुवदना—जो कुछ भी इस (स्वप्नदर्शन) में अनिष्ट है, उसे गङ्गा आदि प्रमुख नदियों के उठ से दूर कर दिया जाय । पूज्य ब्राह्मणों के अशीष तथा आहुति दिये गये (हवन किये गये) एवं प्रज्वलित अग्नि के द्वारा भी नष्ट कर दिया जाय (अर्थात् पवित्र नदियों में स्नान, हवन एवं ब्राह्मण-भोजन से स्वप्न के कुप्रभाव को विनष्ट कर दिया जाय) ।

राजा—वर्क-वितर्क की आवश्यकता नहीं है । इसने देखे गये स्वप्न का ही यह वर्णन किया है । किन्तु मन्दबुद्धि मैंने कुछ अन्य ही समझ लिया है ।

भाग्य से, मैं आधी सुनी हुई (बात से प्रतीत) वस्त्रना से उत्पन्न क्रोधवश (मानुमती के पास तक) नहीं चला गया । भाग्य से, (कथा के) आधे कहे जाने पर (ही) क्रोध के कारण मेरे द्वारा कुछ कठोर (वचन) नहीं कह डाला गया । भाग्य से, शून्य हृदयवाले मुझ को विश्वास दिलाने के लिए (ही) कथा समाप्ति को पहुँच गई (अर्थात् समाप्त हो गई) । भाग्य से, संसार झूठे आरोप से युक्त इस (मानुमती) से विहीन नहीं हुआ (अर्थात् मैंने उसे मार कर संसार से विदा नहीं कर दिया) ॥ १३ ॥

मानुमती—सखि, बतलाओ इस (स्वप्न) में क्या शुभ-सूचक है ?

सखी और चेटी—(एक दूसरी को देख कर, अलग से) इस में स्वल्प भी शुभ-सूचक नहीं है । यदि इसमें असत्य कहूँ तो प्रिय सखी की अपराधिनी होऊँगी । वही (वस्तुतः) स्नेही व्यक्ति है, जो पूछे जाने पर कठोर (अप्रिय) भी हित को कहता है । (प्रकटरूप में) सखि, समूचा ही यह (स्वप्न) अशुभसूचक है । अतः देवताओं के (प्रति किये गये) प्रणाम, ब्राह्मणों के (लिये दिये गये) दान से (इस अनिष्ट को) दूर किया जाय । बुद्धिमान् व्यक्ति स्वप्न में जंगली मृगर अथवा नेवले के दर्शन और सौ-सौ सांपों के वध को अच्छा नहीं समझते हैं ।

जगत् = संसार, मिथ्यादूषितया = झूठे आरोप से युक्त, अनया = इस (मानुमती) से, विरहितम् = विहीन, न = नहीं, जातम् = हुआ ॥ १३ ॥

दिष्ट्येति । दिष्टया = भाग्येन ('दिष्टया शमुपजोषं चेत्यानन्दे' इत्यमरः), अहम् = दुर्योधनः, असत्यधारणापांगृहीतचित्तो दुर्योधन इत्यर्थः, अर्थश्रुतविप्रलम्भजनितक्रोधात्—अर्थेन = असम्पूर्णतः श्रुतेन = श्रवणेन, नपुंसके भावे क्तः, यः विप्रलम्भः = भ्रान्तिः तेन जनितः क्रोधः = क्रोपः तस्मात्, तमवलम्ब्येत्यर्थः, (मानुमत्याः, पार्श्वम् = समीपम्) नो गतः = न यातः, दिष्टया अर्थकथने—कथनस्य = वार्तायाः अर्थम् अर्थकथनं तस्मिन्, रुषा = क्रोपेन, मया = दुर्योधनेन, किञ्चित् = किमपि, परुषम् = कठोरम्, नो व्याहृतम् = न कथितम्, दिष्टया विमूढहृदयम्—विमूढम् = विवेचने असमर्थं हृदयम् = चेतः यस्य तम्, माम् = दुर्योधनम्, प्रत्याययितुम् = बोधयितुम्, कथा = स्वप्न-वृत्तान्तः, अन्तम् = समाप्तिम्, गता = प्राप्ता, दिष्टया, जगत् = संसारः, मिथ्यादूषितया—मिथ्या = असत्यम् दूषिता = कलङ्किता तथा, अनया = एतया मानुमत्या, विरहितम् = विरहितम्, न जातम् । क्रोधावेगात्प्रहृत्य मया परलोकं न प्रेषितेति मदीयमेव भाग्यमिति भावः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ १३ ॥

अलीअं बहश्चसं ता पिअसहीए अवराहिणी भविरसम् । सो एव्व सिणिद्धो जणो जो पुच्छिदो परसं वि हितं भणादि । सही सव्वं एव्व एदं असुहणिवेदनम् । ता देवदाणं पणामेण दुजादिजण पट्टिगहेण अ अन्तरीअदु । ण हु दाढिणो णउलस वा दंसणं अहिंसदवहं अ सिविणए पसंसन्ति विअवरुणाओ ।]

राजा—अवितथमाह सुवदना । नकुलेन पन्नगशतवधः स्तनांशुकापहरणं च नियतमनिष्टोदकं तर्कयामि ।

पर्यायेण हि दृश्यन्ते स्वप्नाः कामं शुभाशुभाः ।

शतसंख्यां पुनरियं सानुजं स्पृशतीव माम् ॥ १४ ॥ ५

(वामाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा) आः, ममापि नाम दुर्योधनस्यानिमित्तानि हृदयक्षोभमावेदयन्ति । (सावष्टम्भम्) अथवा भीरुजनहृदयप्रकर्षनेषु का गणना, दुर्योधनस्यैव विधेषु । गीतश्रायमर्थोऽङ्गिरसा—

ग्रहाणां चरितं स्वप्नोऽनिमित्तान्युपयाचितम् ।

फलन्ति काकतालीयं तेभ्यः प्राज्ञा न बिभ्यति ॥ १५ ॥

सखी चेष्टी चेति । स्तोकम् = स्वल्पम्, शुभसूचकम् = कल्याणनिर्देशकम् । अलीकम् = असत्यम्, ('अलीकं त्वप्रियेऽनृते' इत्यमरः) । स्निग्धः = स्नेहयुक्तः, प्रियङ्कर इत्यर्थः, परुषम् = कठोरम्, हितम् हितकरं वचनमित्यर्थः । अशुभनिवेदनम्—अशुभस्य = अकल्याणस्य निवेदनम् = निवेदकम्, सूचकमिति यावत् । द्विजातिजनप्रतिग्रहेण—द्विजातीनाम् = विप्राणाम् जनः = समूहः तस्मै प्रतिग्रहः = दानं ('प्रतिग्रहः स्वीकरणे...योग्येभ्यो विधिवद्देये' इति मेदिनी) तेन, अन्तर्यताम् = अन्तरीक्रियताम्, शान्त्यतामिति यावत्, विचक्षणाः = विद्वांसः ॥

राजा इति । अवितथम् = सत्यम् ('वितथं त्वनृतं वचः' इत्यमरः), अनिष्टोदकम्—अनिष्टः = अनभीष्टः, विपत्तिबहुल इत्यर्थः, उदकः = परिणामः, उत्तरं फलमिति यावत्, ('उदकः उत्तरे काले यच्च स्यात्फलमुत्तरम्' इति वैजयन्ती) यस्य तत्, भाविनि काले विपत्तिकारणमित्यर्थः, तर्कयामि = अनुमिनोमि ॥

अन्वयः—कामम्, शुभाशुभाः, स्वप्नाः, पर्यायेण, दृश्यन्ते, हि, पुनः, इयम्, शतसंख्या, सानुजम्, माम्, स्पृशति, इव ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—कामम् = यह सच है कि, शुभाशुभाः = शुभ और अशुभ, स्वप्न, पर्यायेण = क्रमशः, दृश्यन्ते = देखे जाते हैं, हि = निश्चय ही, पुनः = किन्तु, इयम् = यह, शतसंख्या = सौ की संख्या, सानुजम्—माइयों के सहित, माम् = मुझको, स्पृशति = छू रही है, लग रही है, इव = सी ॥ १४ ॥

पर्यायेणेति । कामम् = यद्यपि, शुभाशुभाः—शुभाश्च अशुभाश्चेति शुभाशुभाः = माङ्गल्यजनकाः अमाङ्गल्यजनकाश्चेति, स्वप्नाः = स्वपनानि, पर्यायेण = क्रमेण, यदा तदेत्यर्थः, दृश्यन्ते = अवलोक्यन्ते, हीति निश्चये, पुनः = किन्तु, इयम् = एषा, शतसंख्या, सानुजम् = लघुबन्धुभिः सहितम्, माम् = दुर्योधनम्, स्पृशति = विषयीकरोति, श्वेत्युत्प्रेक्षा । शतसंख्यकानां सर्पाणां प्रसङ्गेन स्वप्नः मामपि

राजा—सुवदना ने यथार्थ कहा । नकुल के द्वारा सौ साँपों का वध तथा स्तन-वस्त्र (चोली) का खींचा जाना निश्चय ही परिणाम में विपत्तियों को लाने वाला है—(ऐसा मैं) सोच रहा हूँ ।

यह सच है कि शुभ और अशुभ स्वप्न (लोगों के द्वारा) क्रमशः देखे ही जाते हैं । किन्तु यह सौ की संख्या भाश्यों के सहित मुझको स्पर्श-सी कर रही है ॥ १४ ॥

विशेष-सानुजं स्पृशतीव माम्—दुर्योधन सौ भाई था । यही कारण है कि सौ साँपों के मारे जाने की बात को वह और उस की महारानी भानुवती उसके (दुर्योधन) के पक्ष में सोच कर चिन्तित हैं ॥ १४ ॥

(बाई आँख के फड़कने को सूचित करके) अरे अपशकुन मुझ दुर्योधन के भाँ हृदय को व्यग्र बना रहे हैं ? (दृढ़तापूर्वक) अथवा डरपोक व्यक्तियों के हृदय को काँपा देने वाले इस तरह के (अपशकुन आदि के) विषय में दुर्योधन को (भला) क्या परवाह हो सकती है ? (अर्थात् दुर्योधन इस तरह के स्वप्नों की कुछ भी परवाह नहीं करता है ।) । अङ्गिरा के द्वारा भी यही अर्थ छन्दोबद्ध किया गया है—

ग्रहों की गति (एक राशि से दूसरी राशि पर जाना), स्वप्न, अपशकुन और मनोनी (ये) संयोग-वश (ही) फल देते हैं । उनसे बुद्धिमान् व्यक्ति नहीं डरते हैं ॥ १५ ॥

विशेष-ग्रहाणां चरितम्—शनि, मङ्गल आदि ग्रह जिस राशि पर जाते हैं, उस राशि के व्यक्तियों को कष्ट मिलता है । बृहस्पति, बुध तथा शुक्रादि ग्रह जिस राशि पर जाते हैं, उस राशिवाले व्यक्ति का ये ग्रह कल्याण करते हैं । ऐसी मान्यता है । किन्तु दुर्योधन का कहना है कि यह बात निर्मूल है, पक्की नहीं है । ग्रहों के एक राशि से दूसरी राशि पर जाने का फल शायद ही कभी किसी को मिल जाता है ।

काकतालीयम्—जो बात अकस्मात् अन्त्याशित रूप से हो उसे 'काकतालीयन्याय' से हुई कहते हैं । मानिये—दुतगामो, चालाक, चञ्चल, एक कौवा ताड़-वृक्ष के नीचे से उड़ा जा रहा था । अकस्मात् ताड़ का एक फल गिरा और वह कौवा वहाँ उससे दब कर मर गया । यद्यपि ऐसा होता बहुत ही कम है । वस्तु, इसी उदाहरण के आधार पर संयोगवश घटित कार्य को 'काकतालीयन्याय' से घटित कार्य मानते हैं ॥ १५ ॥

निदिशतीत्यर्थः । पथ्यावक्रमत्र छन्दः ॥ १४ ॥

अन्वयः—ग्रहाणाम्, चरितम्, स्वप्नः, अनिमित्तानि, उपयाचितम्, (च), काकतालीयम्, फलन्ति । तेभ्यः, प्राशाः, न बिभ्यति ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—ग्रहाणाम्=ग्रहों की, चरितम्=गति, स्वप्नः=स्वप्न, अनिमित्तानि=अपशकुन, उपयाचितम्=मनोनी, च=भी, ये सब, काकतालीयम्=संयोग से, फलन्ति=फल देते हैं । तेभ्यः=उनसे, प्राशाः=बुद्धिमान् व्यक्ति, न=नहीं, बिभ्यति=डरते हैं ॥ १५ ॥

ग्रहाणामिति । ग्रहाणाम्=नक्षत्राणाम्, चरितम्=गमनम्, राशिपरिवर्तनमिति यावत्, स्वप्नः=सुषुप्तिकाले दृष्टो दृश्यविशेषः, अनिमित्तानि=अपशकुनानि, उपयाचितम्=दिव्यदोहदम् ('यदीयते

तन्नानुमत्याः स्त्रीस्वभावसुलभामलीकाशङ्कामपनयामि ।

मानुमती—हला सुवदने, पश्य तावदुदयगिरिशिखरान्तरितमुत्तरथवरो विगलित-
सन्ध्यारागप्रसन्नदुरालोकमण्डलो जातो भगवान्दिवसनाथः । [हला सुवदने, पेक्ष दाव
उदयगिरिसिहरन्तरिदिवमुक्करहवरो विगलितसन्ध्यारागप्रसन्नदुरालोकमण्डलो जादो भगवं
दिवसणाहो ।]

सखी—सखि, रोसानितकनकपत्रसदृशेन लताजालान्तरोपहितकिरणनिवहेन
पिञ्जरितोद्यानभूमिभागो दुःप्रेक्षणीयो भगवान्सहस्ररश्मिः संवृत्तः । तत्समयस्ते
लोहितचन्दनकुसुमगर्भेणाध्यक्ष्यं पयुपस्थातुम् । [सहि; रोसाणिदकणपत्तसरिसेण लताजालन्त-
रोपहितकिरणनिवहेण पिञ्जरिदोज्जाणभूमिभागो दुपेक्षणीज्जो भवन् सहस्ररस्सी संवृत्तो । ता
समयो दे लोहितचन्दनकुसुमगर्भेण अक्षेण पञ्जुवट्टादुम् ।]

मानुमती—हञ्जे तरलिके, उपनय मेऽर्घ्यभाजनं यावद्भगवतः सहस्ररश्मेः सपर्यां
निर्वर्तयामि । [हञ्जे तरलिप, उवणेहि मे अर्घ्यभाजनं जाव भवदो सहस्ररस्सिणो सवरिअं
षिव्वट्ठेमि ।]

चेटी—यद्दे व्याज्ञापयति । (इति निष्क्रान्ता) [जं देवी आपणवेदि ।]

राजा—अयमेव साधुतरोऽवसरः प्रियासमीपमुपगन्तुम् । (इत्युपसर्पति)

(प्रविश्य)

चेटी—भट्टिनि, इदमर्घ्यभाजनम् । तान्नर्वर्त्यतां भगवतः सहस्ररश्मेः सपर्यां । [भट्टिणि,
एदं अर्घ्यभाजनम् । ता निव्वट्ठिअदु भवदो सहस्ररस्सिणो सवरिअ]

सखी—(विलोक्यात्मगतम्) कथं महाराज आगतः । हन्त जातोऽस्या नियमभङ्गः [कं
महाराओ आअदो । हन्त जादो से णिअमभङ्गो ।]

(राजा उपसृत्य संशया परिजनमुत्सार्य स्वयमेवार्घ्यपात्रं गृहीत्वा ददाति)

मानुमती—(दिनकरामिमुखी भूत्वा) भगवन्, अम्बरमहासरण्कसहस्रपत्र, पूर्वदिशा-
वधूमुखमण्डलकुङ्कुमविशेषक, सकलभुवनैकरत्नप्रदीप, यदत्र स्वप्नदर्शने किमप्यत्याहितं

तु देवेश्यो मनोराज्यस्य सिद्धये । उपर्याचितकं दिव्यदोहदं तद्वदुर्बुधाः इति हारावली), काकतालीयम्
—काक श्व तालमिव च काकतालं, काकतालमिव काकतालीयम्=काकागमनमिव ततस्तत्र ताल-
फलपतनमिवेत्यर्थः, फलन्ति=परिणामं जनयन्ति, क्वाचित्कं फलन्तीत्यर्थः । तेभ्यः=ग्रहचरितादिभ्यः;
प्राशाः=बुद्धिमन्तः जनाः, न विभ्यति=न भयं प्राप्नुवन्ति । अनिमित्तौत्पातिकं तथेति पाठे तु अनि-
मित्तानि च औत्पातिकञ्चेति तेषां समाहारः अनिमित्तौत्पातिकम्=अपशकुनं तथा आकास्मिकमहावा-
य्वादिप्रवहणमित्यर्थः । अत्र प्राकरणिकस्वप्नस्य अप्राकरणिकानामन्येषाञ्चैकस्मिन् फले सम्बन्धाद्
दोषकालङ्कारः । पथ्यावक्त्रं छन्दः ॥ १५ ॥

तदिति । स्त्रीस्वभावसुलभाम्—स्त्रीणाम्=नारीणाम् स्वभावे=प्रकृतौ सुलभाम्=प्राप्तियोग्याम्,
अलीकाशङ्काम्—अलीका=मिथ्या चासौ आशङ्का=मोतिरचेति ताम्, अपनयामि=दूरीकरोमि ॥

द्वितीयोऽङ्कः

७३

तो (अब) भानुमती को, स्त्रियों की प्रकृति में प्रायः दिखलाई पड़नेवाली, (इस) झूठी आशङ्का को दूर करता हूँ ।

भानुमती—सखि सुवदने, जरा देखो तो—उदयाचल की चोटियों से छिप कर निकला हुआ श्रेष्ठ रथवाला, भगवान् दिनपति (सूर्य) (प्रातः—) सन्ध्या (अर्थात् उषा) को लालिमा के दूर हो जाने से चमकते हुए एवं दुर्लक्ष्य विम्ब से युक्त हो गया है ।

सखी—सखि, शान पर खरादे गये सोने के पत्र के सदृश, लताओं की झाड़ियों के अन्तराल में पड़ी हुई, किरणों के समूह से, बगोचे के भूमि-भाग को पीला कर देने वाला (यह) भगवान् सूर्य दुष्प्रेक्षणीय हो गया है ।

भानुमती—अरी तरलिका, लाकर दे सुझे पूजा-सामग्री का पात्र (वर्तन) जिस से भगवान् सूर्य की पूजा पूरी करूँ ।

चेटी—जो महारानी आशा दे रही हैं (अर्थात् महारानी को जैसी आशा) । (ऐसा कह कर निकल गई) ।

राजा—यही सुन्दर अवसर है प्रिया (भानुमती) के पास चलने का । (ऐसा कह कर पास में जाता है) ।

(प्रवेश कर के)

चेटी—स्वामिनी, यह पूजा-पात्र (है) । तो अब भगवान् सूर्य की पूजा की जाय ।

सखी—(देख कर, अपने आप) क्या महाराज आ गये ? दुःख है कि (अब) इसका व्रत-मङ्गल हुआ ।

(राजा पास में जा कर इशारे से सेविकाओं को हटा कर स्वयं ही पूजा का पात्र लेकर देता है) ।

भानुमती—(सूर्य की ओर मुख करके) हे भगवन्, हे आकाशरूपी विशाल तालाव (झील) के अनुपम कमल, हे पूरव दिशारूपी बहू (दुलहन) के मुखमण्डल के कुंकुम-तिलक, हे सम्पूर्ण

भानुमतीति । उदयगिरिशिखरेत्यादिः—उदयगिरेः=उदयाचलस्य शिखरैः=शृङ्गेः आदौ अन्तरितः=निहुतः पश्चाद्विमुक्तः=विमुष्टः रथवरः=स्यन्दनश्रेष्ठः यस्य तादृशः, भगवान्=ऐश्वर्य सम्पन्नः, दिवसनाथः=दिवस्पतिः सूर्यः, विगलितसन्ध्यारागप्रसन्नदुरालोकमण्डलः=विगलितः=नष्टः यः सन्ध्यारागः=सन्ध्यासम्बन्धः रक्तिमा तेन प्रसन्नम्=निर्मलम् अतः दुरालोकम्=दुर्दर्शनीयम् च मण्डलम्=विम्बम् यस्य तादृशः, जातः=सम्पन्नः । सूर्योदयात्कश्चित्कालो व्यतीत इति भावः ॥

सखीति । रोसानितकनकपत्रसदृशेन—रोसानितम्—रोसने=निकषघ्रावणीति यावत् घृष्टम्, शाणोल्लीढमिति यावत्, यत् कनकपत्रम्=सुवर्णपत्रम् तेन सदृशः=तुल्यस्तेन, लताजालेत्यादिः—लतानाम्=वल्लीनाम् जालस्य=समूहस्य अन्तरैः=अन्तरालैः उपहितः=आपतितः यः किरणनिबहः=रश्मि-समूहः तेन पिञ्जरितः—पीतवर्ण कृतः उद्यानस्य=आरामस्य भूमिभागः=भूप्रदेशः येन तादृशः, सहस्र-रश्मिः=सूर्यः, संवृतः=जातः । तत्=तस्मात्, समयः=कालः, लोहितचन्दनकुसुमगर्भेण—लोहितम्=रक्तम् चन्दनञ्च कुसुमानि=पुष्पाणि च गर्भे=मध्ये यस्य तेन ॥

भानुमतीति । अर्घ्यमाजनम्=पूजापात्रम्, सपर्याम्=पूजाम्, निर्वर्तयामि=सम्पन्नां करोमि ॥

तद्भवतः प्रणामेन सभ्रातृकस्यार्यपुत्रस्य कुशलपरिणामि भवतु । (अर्थं दत्त्वा) हज्जे तरलिके, उपनय मे कुसुमानि । अपरासामपि देवतानां सपर्यां निर्वर्तयामि । (हस्तौ प्रसारयति ।) [भयवं, अम्बरमहासरेकसहस्रपत्त, पुव्वदिसावहूमुहमण्डलकुङ्कुमविसेसअ, सअलभुवणैक्करअणप्पदीव, जं एत्थ सिविणअदंसणे किं वि अच्चाहिदं तं मअवदो पणामेण समादु-अस्स अज्जउत्तस्स कुलपरिणामि होदु । हज्जे तरलिके, उवणेहि मे कुसमाइं । अवराणं वि देवदानं सवरिअं णिव्वट्टेमि ।]

(राजा पुष्पाण्युपनयति । स्पर्शमुखमभिनीय च कुसुमानि भूमौ पातयति) ।

भानुमती—(सरोपम्) अहो प्रमादः परिजनस्य । (परिवृत्य दृष्ट्वा ससंभ्रमम्) कथमर्थ-पुत्रः । [अहो पमादो परिअणस्य । कथं अज्जउत्तो ।]

राजा—देवि, अनिपुणः परिजनोऽयमेवंविधे सेवावकाशे । तत्प्रभवत्यत्रानु-शासने देवी ।

(भानुमती लज्जां नाटयति)

राजा—अयि प्रिये,

विकिर धवलदीर्घापाङ्गसंसर्पि चक्षुः

परिजनपथवर्तिन्यत्र किं संभ्रमेण ।

स्मितमधुरमुदारं देवि मामालपोच्चैः

प्रभवति मम पाण्योरञ्जलिः सेवितुं त्वाम् ॥१६॥

भानुमती—आर्यपुत्र, अभ्यनुज्ञातायास्त्वयाऽस्ति मे कस्मिन्नपि नियमेऽभिलाषः ।

भानुमतीति । अम्बरमहासरएकसहस्रपत्र—अम्बरमेव = आकाशमेव महासरः = विशालजलाशयः तस्मिन् एकम् = मुख्यम् ('एके मुख्यान्येकेवलाः ।' इत्यमरः) सहस्रपत्रम् = कमलं तत्सम्बुद्धौ, पूर्वदिशावधूमुखमण्डलकुङ्कुमविशेषक—पूर्वदिशा = पूर्वा दिक् एव वधूः = नवपरिणीता स्त्री तस्याः मुखमण्डलस्य = आननमण्डलस्य कुङ्कुमविशेषकः = कुङ्कुमतिलकः तत्सम्बुद्धौ, सकलभुवनैकरत्नप्रदीप—सकलभुवनस्य एकः = अद्वितीयः रत्नप्रदीपः = मणिदीपकः तत्सम्बुद्धौ, अत्याहितम् = महद्भयम्, अमङ्गलमिति यावत्, कुशलपरिणामि—कुशलश्चासौ परिणामश्च स अस्ति अस्य कुशलपरिणामि = मङ्गलफलपदम् । उपनय = देहि । सपर्याम् = पूजाम्, निर्वर्तयामि = सम्पादयामि ॥

भानुमतीति । अहो इत्याश्चर्ये, प्रमादः = अनवधानता, परिजनस्य = सेवकवर्गस्य ॥

राजा इति । अनिपुणः = अचतुरः, एवंविधे = एतादृशे, सेवावकाशे = शुश्रूषावसरे, तत् = तस्मात्, अनुशासने = दण्डदाने, प्रभवति = समर्था भवति ॥

अन्वयः—परिजनपथवर्तिनि, अत्र, धवलदीर्घापाङ्गसंसर्पि, चक्षुः, विकिर, संभ्रमेण, किम् हे देवि, स्मितमधुरम्, उदारम्, उच्चैः, माम्, आलप; मम, पाण्योः, अञ्जलिः, त्वाम्, सेवितुम्, प्रभवति ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—परिजनपथवर्तिनि = सेवक की राह पर चलने वाले, अत्र = इस (मुझ दुर्योधन)

द्वितीयोऽङ्कः

७५

मुवन के अद्वितीय मणि-दीपक, (हमारे) स्वप्न दर्शन में जो कुछ भी अनिष्ट हो, वह आपके (प्रति किये गये मेरे) प्रणाम से भाव्यों के सहित आर्यपुत्र (पतिदेव) के लिए शुभ फलवाला हो जाय । (अर्घ्य देकर) अरी तरलिके, दो मुझे पुष्प । अन्य देवताओं की भी पूजा सम्पन्न करूँ । (दोनों हाथों को फैलाती है) ।

(राजा फूलों को देता है और स्पर्श-सूख का अभिनय कर फूलों को जमीन पर गिराता है) ।

भानुमती—सेवकों की असावधानी आश्चर्यजनक है । (मुड़ कर और देखकर घबराहट के साथ) क्या आर्यपुत्र (हैं) ?

राजा—देवि, यह सेवक इस तरह की सेवा के अवसर के लिए पूर्ण चतुर नहीं है । तो महारानी दण्ड देने में समर्थ हैं (अर्थात् दण्ड दे सकती हैं) ।

(भानुमती लज्जने का अभिनय करती है)

सेवक की राह पर चलने वाले इस (मुझ दुर्योधन) पर धवल एवं विशाल नेत्र कोण तक व्याप्त आँख फेरो (डालो) । घबराहट से क्या (लाम) ? हे देवि, मुस्कान से मधुर मनोहरतापूर्वक स्पष्टतः मुझ से बात करो । मेरे हाथों की अञ्जलि आप को सेवित करने के लिए समर्थ है (अर्थात् सर्वदा तत्पर है) ॥ १६ ॥

भानुमती—पतिदेव, आप से आशा पायी हुई मेरा (आज) किसी (एक खास) व्रत के

पर, धवलदीर्घापाङ्गसंसर्पि=धवल एवं विशाल नेत्र-कोण तक व्याप्त, चक्षुः=नेत्र को, विकिर=डालो; सम्भ्रमेण=घबराहट से, किम्=क्या (लाम) ? हे देवि=हे महारानी, स्मितमधुरम्=मुस्कान से मधुर, उदारम्=मनोहरतापूर्वक, उच्चैः=जोर से, माम्=मुझसे, आलप=सम्भाषण करो; मम=मेरे, पाण्योः=हाथों की, अञ्जलिः=अञ्जलि, त्वाम्=आपको, सेवितुम्=सेवित करने के लिए । प्रभवति=समर्थ है (अर्थात् सर्वदा तत्पर है) ॥ १६ ॥

विकिरेत । परिजनपथवर्तिनि—परिजनस्य=सेवकस्य पत्न्याः=मार्गः इति परिजनपथः, तस्मिन् वर्तितुं शीलम्=स्वभावः यस्य स तस्मिन्, अत्र=समक्षं वर्तमाने मयि दुर्योधने इत्यर्थः, धवल-दीर्घापाङ्ग-संसर्पि=धवलम्=शुभ्रम् यत् अपाङ्गम्=नेत्रप्रान्तं, तत् संसर्पितुं शीलं यस्य तत् तादृशम्, चक्षुः=नेत्रम्, विकिर=विक्षिप; सम्भ्रमेण=संवेगेन ('संवेगसम्भ्रमौ' इत्यमरः), किम्=किं प्रयोजनम्, सम्भ्रमस्तु निरर्थक इति भावः; हे देवि, स्मितमधुरम्=स्मितेन=ईषद्धास्येन मधुरम्=श्रवणसुखदम्, उदारम्=मनोहरं यथा तथा, उच्चैः=स्पष्टमित्यर्थः, माम्=त्वत्समक्षं वर्तमानं दुर्योधनम्, आलप=वार्ता कुरु; मम=मम दुर्योधनस्य; पाण्योः=करयोः, अञ्जलिः=शम्पुटः, त्वाम्=भवतीम्, सेवितुम्=पूजितुम्, प्रभवति=समर्थो भवति । सर्वदा तत्परो वर्तते इति भावः । 'प्रभवति मम पाण्योरञ्जलिस्त्वं स्पृशामान्' इति जगद्धरपाठः । अत्र दीपकालङ्कारः । मालिनी छन्दः । छन्दोलक्षणम्—न न म य य युतेयं मालिनी भोगिलोकैः ॥ १६ ॥

भानुमतीति । त्वया=भवता, अभ्यनुज्ञातायाः=प्राप्तानुज्ञायाः, नियमे=व्रते ॥

[अञ्जउत्त, अचमण्णुणादाए तुए अत्थि मे कस्सि वि णिअमे अहिलासो ।]

राजा—श्रुतविस्तर एवास्मि भवत्याः स्वप्नवृत्तान्तं प्रति । तदलमेवं प्रकृतिसुकुमारमात्मानं खेदयितुम् ।

भानुमती—आर्यपुत्र, अतिमात्रं मां शङ्का बाधते । तदनुमन्यतां मामार्यपुत्रः ।

[अञ्जउत्त, अदिमेत्तं मे सङ्का बाहेइ । ता अणुमण्णदु मं अञ्जउत्तो ।]

राजा—(सगर्वम्) देवि, अलमनया शंकया । पश्य—

किं नो व्याप्तदिशां प्रकम्पितभुवामक्षौहिणीनां फलं

किं द्रोणेन किमङ्गराजविशिखैरेवं यदि क्लाम्यसि ।

भीरु भ्रातृशतस्य मे भुजवनच्छायासुखोपस्थिता

त्वं दुर्योधनकेशरीन्द्रगृहिणी शङ्कास्पदं किं तव ॥१७॥

भानुमती—आर्यपुत्र, न खलु किमपि मे शङ्काकारणं युष्मासु सन्निहितेषु ।

किन्त्वार्यपुत्रस्यैव मनोरथसंपत्तिमभिनन्दामि । [अञ्जउत्त, ण हुं किं वि मे संकाकालणं तुम्हेसु सण्णिहिदेसु । किं तु अञ्जउत्तस्स एव्ढ मणोरहसंपत्तिं अहिणन्दामि ।]

राजा—अयि सुन्दरि, एतावन्त एव मनोरथा यदहं दयितया संगतः स्वेच्छया विहरामीति । पश्य—

राजा इति । श्रुतविस्तरः—श्रुतः=आकर्णितः विस्तरः=विस्तारः येन तादृशः । स्वप्नवृत्तान्तम्—स्वप्नस्य वृत्तान्तम्=समाचारम् । अलमिति निषेधे, एवम्=इत्थं व्रतादिनेत्यर्थः, प्रकृतिसुकुमारम्—प्रकृत्वा=स्वभावेन सुकुमारम्=सुकोमलम्, आत्मानम्=शरीरमित्यर्थः, खेदयितुम्=आयासयितुम् ॥

अन्वयः—यदि, एवम्, क्लाम्यसि, (तर्हि), व्याप्तदिशाम्, प्रकम्पितभुवाम्, नः, अक्षौहिणीनाम्, किम्, फलम् ? द्रोणेन, किम् ? अङ्गराजविशिखैः, किम् ? हे भीरु, त्वम्, मे, भ्रातृशतस्य, भुजवनच्छायासुखोपस्थिता, दुर्योधनकेशरीन्द्रगृहिणी, (असि); तव, किम्, शङ्कास्पदम् ॥ १७ ॥

शब्दार्थः—यदि=यदि, एवम्=इस तरह, क्लाम्यसि=दुःखी होओगी, (तर्हि=तो), व्याप्तदिशाम्=दिशाओं को व्याप्त करने वाली, प्रकम्पितभुवाम्=भूतल को काँपा देने वाली, नः=हमारी, अक्षौहिणीनाम्=अक्षौहिणी (सेनाओं) का, किम्=क्या, फलम्=फल है ? द्रोणेन=द्रोण से, किम्=क्या ? अङ्गराजविशिखैः=अङ्ग देश के राजा (कर्ण) के बाणों से, किम्=क्या (लाम) ? हे भीरु=हे डरपोक, त्वम्=तुम, मे=मुझ, भ्रातृशतस्य=सौ भाइयों के, भुजवनच्छायासुखोपस्थिता=भुजाओं रूपी वन की छाया में सुखपूर्वक बैठी हुई, दुर्योधनकेशरीन्द्रगृहिणी=दुर्योधनरूपी सिंह राज की पत्नी, (असि=हो), तव=तुम्हें, किम्=क्या, शङ्कास्पदम्=मय का कारण (हो सकता) है ? ॥ १७ ॥

किं नो व्याप्तेति । यदि=चेत्, त्वमिति शेषः, एवम्=इत्थम्, क्लाम्यसि=खिन्ना भवसि, तर्हीति शेषः, व्याप्तदिशाम्—व्याप्ताः=आच्छादिताः दिशः=काष्ठाः ('दिशस्तु ककुभः काष्ठाः' इत्यमरः) यामिः तासाम्, प्रकम्पितभुवाम्—प्रकम्पिता=दोलायिता भूः=धरा यामिस्तासाम्, नः=

द्वितीयोऽङ्कः

७७

विषय में अभिलाषा है (अर्थात् आज मैं एक व्रत करने की इच्छा कर रही हूँ । आप उसे पूर्ण करने की आज्ञा प्रदान करें, तथा विघ्न करने से विरत हो जायें) ।

राजा—आप के स्वप्न-समाचार को मैं विस्तार से सुन चुका हूँ । तो इस तरह (व्रत आदि के द्वारा) स्वभावतः सुकोमल अपने शरीर को कष्ट देना निरर्थक है ।

भानुमती—आर्यपुत्र, मुझे शंका बहुत अधिक परेशान कर रही है । तो आर्यपुत्र (आप) मुझे (व्रत पूर्ण करने के लिए) अनुमति दें ।

राजा—(अमिमान के साथ) देवि, (तुम्हारी) यह शंका व्यर्थ है । देखो—

यदि इस तरह (तुम) दुःखी होओगी (तो) दिशाओं को व्याप्त करने वाली, मूल को कँपा देने वाली, हमारी अक्षौहिणी (सेनाओं) का क्या फल है ? द्रोण से क्या (फल है) ? अंग देश के राजा (कर्ण) के बाणों से क्या (लाभ है) ? हे डरपोक, तुम मुझ सौ भाइयों के भुजाओं रूपी वन की छाया में सुखपूर्वक बैठो हुई, दुर्योधनरूपी सिंह राज की पत्नी (हो) । (मला) तुम्हें क्या मय का कारण (हो सकता) है ? ॥ १७ ॥

विशेष—अक्षौहिणीनाम्—अक्षौहिणी पूरी चतुरङ्गिणी सेना को कहते थे, जिसमें—२१८७० रथ, २१८७० हाथी, ६५६१० घोड़े तथा १०९३५० पैदल सिपाही हों ॥ १७ ॥

भानुमती—आर्यपुत्र, आप लोगों के पास रहने पर मुझे कोई मय का कारण नहीं है । किन्तु (मैं तो) आर्यपुत्र (अर्थात् आप) की ही मनोरथ-सिद्धि की कामना कर रही हूँ ।

राजा—अग्रि सुन्दरि, (मेरे) इतने ही मनोरथ हैं कि मैं प्रियतमा के (तुम्हारे) साथ मिल कर यथेच्छ आमोद-प्रमोद करूँ । देखो—

अस्माकम्, अक्षौहिणीनाम्=चतुरङ्गिणीनां सेनानाम्, किम्=कोऽशम्, फलम्=परिणामः ? को लाभ इत्यर्थः, द्रोणेन=द्रोणाचार्येण, किम्=किं फलम् ? अङ्गराजविशिखैः—अङ्गराजस्य=अङ्गदेशाधिपस्य कर्णस्य विशिखैः=बाणैः, किम्=किं फलम् ? हे भीरु=हे भयशीले, त्वम्=आशङ्कावशात् नियममुरीकृत्यावस्थिता मम पत्नीत्यर्थः, मे=मम, भ्रातृशतस्य=सहोदरशतस्य, भुजवनच्छाया-सुखोपस्थिता—भुजाः=बाहवः एव वनम्=अरण्यम् तस्य छाया=अनातपः तस्मिन् सुखम्=सानन्दं यथा उपस्थिता=वर्तमाना, दुर्योधनकेशरीन्द्रगृहिणी—दुर्योधनः एव केशरीन्द्रः=सिंहराजः तस्य गृहिणी=गृहस्वामिनी, पत्नीति यावत्, असीति क्रियाशेषः, त्वम्=एतादृशायाः भवत्याः, किम्=कोऽशम्, शङ्कास्पदम्—शङ्कायाः=भीतः आस्पदम्=स्थानम्, कारणमिति यावत् ? सर्वत्रियमहिमामण्डितायाः भवत्या न किमपि भयकारणमित्यभिप्रायः । अत्र रूपकालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ १७ ॥

भानुमतीति । सन्निहितेषु=निकटे वर्तमानेषु । मनोरथसम्पत्तिम्—मनोरथस्य=अभीप्सायाः सम्पत्तिम्=सम्पन्नताम्, सफलतामित्यर्थः ॥

राजा इति । दयितया=कान्तया, सङ्गतः=संयुक्तः, स्वेच्छया=यथेच्छम् ॥

वेणीसंहारे

प्रेमाबद्धस्तिमितनयनापीयमानाब्जशोभं

लज्जायोगादविशदकथं मन्दमन्दस्मितं वा ।

वक्त्रेन्दुं ते नियममुषितालक्तकाग्राधरं वा

पातुं वाञ्छा परमसुलभं किं नु दुर्योधनस्य ॥१८॥

(नेपथ्ये महान् कलकलः । सर्वे आकर्षयन्ति)

भानुमती--(समयं राजानं परिष्वज्य) परित्रायतां परित्रायतामार्यपुत्रः ।

[परित्रायदु परित्रायदु अज्जउत्तो ।]

राजा--(समन्तादवलोक्य) अलं संभ्रमेण । पश्य--

दिक्षु व्यूढाङ्घ्रिपाङ्गस्तृणजटिलचलत्पांशुदण्डोन्तरिक्षे

झाङ्कारी शर्करालः पथिषु विटपिनां स्कन्धकाषैः सधूमः ।

प्रासादानां निकुञ्जेष्वभिनवजलदोदगारगम्भीरधीर-

श्चण्डारम्भः समीरो वहति परिदिशं भीरु किं संभ्रमेण ॥१९॥

अन्वयः--प्रेमाबद्धस्तिमितनयनापीयमानाब्जशोभम्, लज्जायोगात्, अविशदकथम्, मन्दमन्द-स्मितम्, वा, नियममुषितालक्तकाग्राधरम्, वा, ते, वक्त्रेन्दुम्, पातुम्, इच्छा, (मे, सदैव, वर्तते); (अतः), परम्, दुर्योधनस्य, किं नु, असुलभम्, (अस्ति) ॥ १८ ॥

शब्दार्थः--प्रेमाबद्धस्तिमितनयनापीयमानाब्जशोभम्=प्रेम से भरपूर (अतः) निश्चल नेत्रों की शोभा से कमल के सौन्दर्य को चुराने वाले, लज्जायोगात्=लज्जा के कारण, अविशदकथम्=अस्पष्ट वचन बोलने वाले, मन्द-मन्दस्मितम्=मन्द-मन्द मुस्कान से युक्त, वा=और, नियममुषितालक्तकाग्राधरम्=व्रत के कारण अधर के अग्रभाग से वञ्चित अलक्तक (लिपिस्तिक) वाले, ते=तुम्हारे, वक्त्रेन्दुम्=मुख-कमल को, पातुम्=पीने को, चूमने को, इच्छा=वाञ्छा, (मे=हमें, सदैव=हमेशा, वर्तते=रहती है); (अतः=इस से), परम्=अधिक दुर्योधनस्य=(मुझ) दुर्योधन का, किं नु=भला क्या, असुलभम्=दुर्लभ, (अस्ति=है) ॥ १८ ॥

प्रेमाबद्धति । प्रेमाद्वेत्यादि--प्रेम्णा=अनुरागेण, मद्विषयकेनानुरागेणेत्यर्थः, आबद्धे=खचिते अतएव स्तिमिते=निश्चले ये नयने=नेत्रे ताभ्यां कारणभूताभ्यां पीयमाना=अधरीक्रियमाणा अब्जस्य=कमलस्य शोभा=सौन्दर्यम् येन तम्, लज्जायोगात्--लज्जायाः=कुलाङ्गनोचितब्रीडायाः योगात्=सम्पर्कात् अविशदकथम्--अविशदा=अविस्पष्टा कथा=कथनम् यत्र तम्, मन्दमन्दस्मितम्-मन्दमन्दम्=अङ्गनानुरूपं स्वल्पमित्यर्थः स्मितम्=ईषदास्यम् यत्र तादृशम्, वा=तथा, नियममुषितालक्तकाग्राधरम्--नियमेन=व्रतेन मुषितम्=अपहृतम्, वञ्जितमिति यावत्, अलक्तकम्=लाक्षा, ओष्ठरञ्जनद्रव्यमित्यर्थः, यत्र तादृशः अग्राधरः=अधराग्रभागः यत्र तादृशम्, वेति पादपूर्तौ, ते=तव, वक्त्रेन्दुम्=मुखचन्द्रम्, पातुम्=पानं कर्तुम्, चुम्बितुमित्यर्थः, इच्छा=अभिलाषा, (मे=मम, सदैव=सर्वदैव, वर्तते=अस्ति); (अतः=अस्मात्), परम्=अधिकम्, दुर्योधनस्य=भारतभूपालस्य दुर्योधनस्येत्यभिप्रायः, किम्=किं वस्तु, न्विति प्रश्ने, असुलभम्=दुर्प्राप्यम्, अस्तीति शेषः । अन्यस्य

द्वितीयोऽङ्कः

७९

प्रेम के भरपूर (अतः) निश्चल नेवों की शोभा से कमल के सौन्दर्य को चुराने वाले (अर्थात् कमल की तरह सुन्दर), लज्जा के कारण अस्पष्ट वचन बोलने वाले, मन्द-मन्द मुस्कान से युक्त, व्रत के कारण अघर के अग्रभाग से वस्त्रित अलक्तक (लिपिस्टक) वाले, तुम्हारे मुख कमल को पीने की (चूमने की) इच्छा (हमें सर्वदा रहती है) । (इससे) अधिक (मुझ) दुर्योधन को मला क्या (चीज) दुर्लभ (है) ? ॥ १८ ॥

विशेष—नियमेत्यादिः—व्रत में प्रसाधन वर्जित है । यही कारण है कि भानुमती अपने ओठ पर लाली नहीं लगाई है ।

असुलभम्—दुर्योधन के पास संसार की सारी वस्तुएँ वर्तमान हैं । अतः उसे किसी वस्तु की कामना नहीं है । उसे केवल एकमात्र एक ही इच्छा रहती है कि वह भानुमती के अधरोष्ठ का पान करता रहे ॥ १८ ॥

(पदों के पीछे महान् कोलाहल । सभी सुनते हैं)

भानुमती—(डर के मारे राजा से लिपट कर) बचावें-बचावें आर्यपुत्र ?

राजा—(चारों ओर देख कर) प्रिये, भय करना व्यर्थ है । देखो—

दिशाओं में बिखेर दिया है वृक्षों की डालियों को जिसने ऐसा, आकाश में तृणों से परिव्याप्त धूल के दण्ड (ववण्डर) को चलाने वाला, मार्गों में ज्ञाय-ज्ञाय करने वाला, कङ्कणों से भरपूर, वृक्षों की रगड़ के कारण धूम से युक्त, महलों के कुंजों में (अर्थात् घने सुइलों में) नूतन जलभरे बादल के गर्जन के समान गम्भीर और घोर, तीव्र वेगवाला वायु चारों ओर बह रहा है । हे डरपोक स्वभाववाली, धवराने से क्या (मतलब) ? (अर्थात् धवराने की आवश्यकता नहीं है) ॥ २९ ॥

विशेष—स्कन्धकृपैः सधूमः—जब वृक्षों की डालियाँ आपस में रगड़ खाती हैं तो कुछ काल के अनन्तर उन से धुआँ निकलने लगता है । यदि यही क्रम जारी रहा तो बाद में वही से अग्नि भी पैदा हो जाती है । इसी से कभी-कभी जङ्गलों में आग लगती है ॥ १९ ॥

कस्यापि वस्तुनो न अभोप्ता सर्वथा सुलभत्वात् । केवलं तत्राधरोष्ठान्तर्यामिनेनोत्कृष्टा मां बाधते । मन्दाक्रान्ता छन्दः ॥ १८ ॥

अन्वयः—दिक्षु, व्यूढाद्विप्राङ्गः, अन्तरिक्षे, तृणवटिलचलत्वांशुदण्डः, पथिषु, झाङ्कारी, शर्कारालः; विटपिनाम्, स्कन्धकापैः, सधूमः; प्रासादानाम्, निकुञ्जेषु, अमिनवजलदोद्गारगम्भीरधोरः, चण्डारम्भः, समीरः, परिदिशम्, वहति; हे भोरु, सम्भ्रमेण, किम् ? ॥ १९ ॥

शब्दार्थः—दिक्षु=दिशाओं में (अर्थात् चारों-ओर), व्यूढाद्विप्राङ्गः=चारों ओर बिखेर दिया है वृक्षों की डालियों को जिसने ऐसा, अन्तरिक्षे=आकाश में, तृणवटिलचलत्वांशुदण्डः—तृणों से परिव्याप्त धूल के दण्ड (ववण्डर) को चलाने वाला, पथिषु=मार्गों में, झाङ्कारी=ज्ञाय-ज्ञाय करने वाला, शर्कारालः=कङ्कणों से भरपूर, विटपिनाम्=वृक्षों की, स्कन्धकापैः=डालियों की रगड़ के कारण, सधूमः=धूम से युक्त, प्रासादानाम्=महलों के, निकुञ्जेषु=कुंजों में (घना वस्तिनी में), अमिनवजलदोद्गारगम्भीरधोरः=नूतन जल भरे बादल के गर्जन के समान गम्भीर और घोर,

सखी—महाराजः प्रविशत्विमं दारुपर्वतप्रासादम् । उद्वेगकारी खल्वयमुत्थि-
तपरुषरजःकलुषीकृतनयन उन्मूलिततरुवरशब्दवित्रस्तमन्दुरापरिभ्रष्टवलभतुरङ्गमपर्या-
कुलीकृतजनपद्धतिभीषणः समीरणासारः । [महाराजो पविसदु पदं दारुपर्वतप्रासादम् ।
उद्वेगकारी क्थु अयं उत्थितपरुषरजकलुषीकृतनयनो उन्मूलिततरुवरशब्दवित्तत्यमन्दुरापरिभ्रष्टवल्लह-
तुलङ्गमपञ्जाउलीकृतजनपद्धतिं भीषणो समीरणासारो ।]

राजा—(सहर्षम्) उपकारि खल्विदं वात्याचक्रं सुयोधनस्य । यस्य प्रसादादयत्न-
परित्यक्तनियमया देव्या संपादितोऽस्मन्मनोरथः । कथमिति—

न्यस्ता न भुक्नुतिर्न बाष्पसलिलैराच्छादिते लोचने

नीतं नाननमन्यतः सशपथं नाहं स्पृशन् वारितः ।

तन्व्या मग्नपयोधरं भयवशादाबद्धमालिङ्गितं

भङ्क्ताऽस्या नियमस्य भीषणमरुन्नायं वयस्यो मम ॥ २० ॥

चण्डारम्भः=तीव्र वेगवाला, समीरः=वायु, परिदिशम्=चारों ओर, वहति=वह रहा है; हे
मीरु=हे डरपोक, सम्भ्रमेण=धवराने से, किम्=क्या (मतलब) ? ॥ १६ ॥

दिचिवति । दिक्षु = दिशासु, व्यूढाद्विपाङ्गः—व्यूढानि=इतस्ततः प्रक्षिप्तानि अङ्घ्रिपाणाम्=
वृक्षाणाम् अङ्गानि=शाखाः येन तादृशः; अन्तरिक्षे=आकाशे तृणजटिलचलत्पांशुदण्डः—तृणैः=
घासादिखण्डैः जटिलः=व्याप्तः चलंश्च=भ्रमंश्च पांशूनाम्=धूलिनाम् दण्डः=स्तम्भः यस्मिन् सः;
पथिषु=मार्गेषु, झाङ्कारी=झङ्कारः=झाँय-झाँय इति शब्दः विद्यते अस्य, ध्वनिविशिष्टः इत्यर्थः;
शर्करालः=शर्कराः सन्ति अस्य शर्करालः=बालुकापरिव्याप्तः, विटपिनाम्—विटपः=शाखाविस्तारः
अस्य अस्तीति विटपो=वृक्षः तेषाम्; स्कन्धकाषः=स्कन्धानाम्=शाखानाम् काषैः=अन्यान्यघर्षणैः;
सधूमः=धूमेन सहितः; काष्ठयोः परस्परं संघर्षणे धूमोद्गतस्ततोऽग्निप्रादुर्भावश्च जायते, प्रासादानाम्=
देवमन्दिराणां नृपभवनानाञ्च ('प्रासादो देवमूमूजाम्' इत्यमरः), निकुञ्जेषु=कुञ्जेषु, निविडप्रदेशेषु
इत्यर्थः ('निकुञ्जकुञ्जौ' इत्यमरः), अभिनवजलदोद्गारगम्भीरधीरः—अभिनवः=नूतनः यः जलदः=
मेघः तस्य उद्गारः=गजितम् इव गम्भीरः=गम्भीरः ('गम्भीरं गम्भीरम्' इत्यमरः) धीरश्च=शस्तश्च
('धीरशस्तयोः' इत्यमरः), चण्डारम्भः—चण्डः=भीषणः आरम्भः=प्रारम्भः यस्य सः; समीरः=
वायुः, परिदिशम्—दिशि दिशि इति परिदिशम्=सर्वांस्तु दिक्षु इत्यर्थः; वहति=वाति; हे मीरु=हे
मयशीले, सम्भ्रमेण=भयेन, किम्=किं प्रयोजनम्, भीतर्न कर्तव्येति भावः । स्रग्धरा छन्दः ।
तल्लक्षणं यथा... 'अन्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनिपतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्' ॥ १९ ॥

सखीति । दारुपर्वतप्रासादम्—दारुपर्वते=काष्ठनिर्मिते कुत्रिमे विलासपर्वते निर्मितं प्रासादम्=
राजमवनम् । उत्थितरजःकलुषीकृतनयनः—उत्थितैः=उद्गतैः रजोभिः=धूलिभिः कलुषीकृतानि=
व्याकुलीकृतानि नयनानि=नेत्राणि येन तादृशः; उन्मूलिततरुवरत्यादिः—उन्मूलिताः=उत्पाटिताः वे-
तरुवराः=महान्तो वृक्षाः तेषां पतता शब्देन विव्रस्ताः=मयविह्वलाः अतः मन्दुरायाः=वाजिशालायाः
परिभ्रष्टाः=उन्मुक्ताः ये वल्लभाः=श्रेष्ठतमाः तुरङ्गमाः=अश्वाः तैः पर्याकुलीकृताः=व्याकुली-

मुख्य-सखी—महाराज, इस लकड़ी के बने पर्वत पर (निमित्त) काष्ठों के मड़ल में प्रवेश करें।
 पर्या-उठी हुई कर्कश धूलि से नेत्रों को भर देने वाला; उखड़े हुए विशाल वृक्षों के शब्द से मयमोत, घुड़-
 दम्-साल से भागे हुये उत्तम घोड़ों के कारण जन-मार्ग को अस्तव्यस्त कर देने वाला, भोषण, उद्वेगजनक,
 वल्लह-यह वायु का तूफान उठा है (उत्पन्न हुआ है)।

राजा—(हर्ष के साथ) यह तूफान दुर्योधन का उपकार करने वाला ही है; जिसको कृपा से
 विना प्रयास के ही व्रत छोड़ देने वाली महारानी के द्वारा हमारा मनोरथ पूर्ण किया गया है
 (अर्थात् व्रत के नियम को छोड़ कर महारानी के द्वारा हमारा आलिङ्गन किया गया है)। जैसे कि-
 रयन्-मौह न टेढ़ी की, नेत्र अश्रुजल से नहीं ढके गये, मुख दूसरी ओर नहीं फेरा गया, छूता हुआ
 में सौगन्धपूर्वक नहीं रोका गया, (किन्तु) कृशाङ्गो (मानुमती) के द्वारा मय के कारण (मेरी
 छाती में) स्तन गड़ा कर आलिङ्गन किया गया। इसके व्रत को ताड़नेवाला यह भयंकर वायु नहीं
 है, अपितु (यह) मेरा मित्र (है) ॥२०॥

विशेष—वयस्यो मम—मानुमती व्रत में थी। दुर्योधन उसका सरस आलिङ्गन चाहता था।
 है; हे वात कैसे बनती? यदि वह जवर्दस्ती छूता तो मानुमती मौह चढ़ा कर अपना क्रोध प्रदर्शित करती,
 सौगन्ध दिलाती, ओर न जाने क्या-क्या करती। किन्तु इसी समय भोषण आँधी आई। मय के कारण
 मानुमती दुर्योधन के शरीर में कस कर लिपट गई। दुर्योधन का मनोरथ पूरा हो गया। अतः वह
 आँधी को भोषण वायु नहीं अपितु अपना मित्र बतला रहा है ॥२०॥

नीताः जनपद्धतयः = लोकमार्गाः येन तादृशः, समीरणासारः = समीरणस्य = वायोः आसारः = वेगः,
 उत्थितः = उत्पन्नः ॥

राजा इति। वात्याचक्रम्-वातानाम् = वायूनाम् समूहः वात्या तस्याः चक्रम् = मण्डलाकारेण
 भ्रमणम्। प्रसादात् = अनुग्रहात्, अयत्नपरित्यक्तनियमया—अयत्नेन = प्रयासेन विनैव परित्यक्तः =
 मुक्तः नियमो = व्रतम् यथा सा तादृश्या, सम्पादितः = पूरितः। यस्माद्भयेन देवी मामालिङ्ग्य कृतार्थं
 कृतवतीति भावः ॥

अन्वयः—भ्रुकुटिः, न, न्यस्ता; लोचने, बाष्पसलिलैः, न, आच्छादिते; आननम्, अन्यतः, न,
 नीतम्; स्पृशन्, अहम्, सशपथम्, न, वारितः; (किन्तु), तन्व्या, भयवशात्, मग्नपयोधरम्,
 आलिङ्गितम्, आवद्धम्; अस्याः, नियमस्य, भङ्क्ता, अयम्, भोषणमरुत्, न, (अपितु), मम,
 वयस्यः, (वर्तते) ॥ २० ॥

शब्दार्थः—भ्रुकुटिः = मौह, न = नहीं, न्यस्ता = टेढ़ी की; लोचने = नेत्र, बाष्पसलिलैः =
 अश्रुजल से, न = नहीं, आच्छादिते = ढके गये; आननम् = मुख, अन्यतः = दूसरी ओर, न = नहीं,
 नीतम् = फेरा गया; स्पृशन् = छूता हुआ, अहम् = मैं, सशपथम् = सौगन्धपूर्वक, न = नहीं, वारितः =
 रोका गया; (किन्तु), तन्व्या = कृशाङ्गी के द्वारा, भयवशात् = भय के कारण, मग्नपयोधरम् = स्तन
 गड़ा कर, आलिङ्गितम् = आलिङ्गन, आवद्धम् = बाँधा गया, किया गया; अस्याः = इसके, नियमस्य =
 व्रत को, भङ्क्ता = तोड़नेवाला, अयम् = यह, भोषणमरुत् = भयंकर वायु, न = नहीं (है),
 (अपितु = किन्तु), मम = मेरा, वयस्यः = मित्र, (वर्तते = है) ॥ २० ॥

तत्संपूर्णमनोरथस्य मे कामचारः संप्रति विहारेषु । तदितो दारुपर्वतप्रासादमेव गच्छामः ।

(सर्वे वात्यावाधां रूपयन्तो यत्नतः परिक्रामन्ति)

राजा—

कुरु घनोरु पदानि शनैः शनैरयि विमुञ्च गतिं परिवेपिनीम् ।

सुतनु बाहुलतोपरिवन्धनं मम निपीडय गाढमुरःस्थलम् ॥ २१ ॥

(प्रवेशं रूपयित्वा) प्रिये, अलब्धावकाशः समीरणः संवृतत्वाद्गभगृहस्य । विस्त्रब्धमुन्मील्य चक्षुरुन्मृष्टरेणुनिकरम् ।

भानुमती—(सहर्षम्) दिष्ट्येह तावदुत्पातसमीरणो न बाधते । [दिष्टिआ इह दाव उत्पादसमीरणो ण बाधेह ।]

सखा—महाराज, आरोहणसंभ्रमनिःसहं प्रियसख्या ऊरुयुगलम् । तत्कस्मादिदानीं महाराज आसनवेदीं न भूषयति [महाराज, आरोहणसंभ्रमणिस्सहं पित्रसहीष ऊरुजुअलम् । ता कीस दाणी महाराओ आसणवेदीं ण भूसेदि ।]

राजा—(देवीमवलोक्य) भवति, अनल्पमेवापकृतं वात्यासंभ्रमेण । तथाहि—

न्यस्तेति । भ्रुकुटिः (भ्रुकुटिर्भ्रुकुटिः इत्यमरः), न न्यस्ता=न आरोपिता, न कृतेति यावत् ; कोपेन भ्रुकुटिर्न वक्रोक्तेति भावः ; लोचने=नेत्रे, बाष्पसलिलैः अश्रुजलैः न आच्छादिते=न पूरिते; नियमभङ्गावेगेन रोदितुं न प्रवृत्तेति भावः ; आननम्=सुखम्, अन्यतः=अन्यस्यां दिशि, न नीतम्=न कृतम् ; स्पृशन्=हठात् स्पर्शं कुर्वन्, अहम्=दुर्योधनः, सशपथम्—शपथैः=शपनैः ('शपनं शपथः पुमान्' इत्यमरः) सहितं यथा तथा, न वारितः=न निवारितः, (किन्तु) तन्व्या=कृशाङ्गया, भानुमत्येत्यर्थः, भयवशात्=भोतिकारणात्, मग्नपयोधरम्=मग्नौ=ब्रह्मिणौ पयोधरो=घटाकारौ कुचौ यस्मिन् कर्मणि यथा तथा, आलिङ्गितम्=आलिङ्गनम्, भावे क्तः, आवद्धम्=कृतम्, आवद्धमित्यनेन गाढालिङ्गनं सूचितम्, अस्याः=भानुमत्याः, नियमस्य=व्रतस्य, भङ्गा=भङ्गकः, अयम्=एषः, भीषणमरुत्=भयङ्करो वायुः, झञ्जावातः इत्यर्थः, न=न वर्तते, (अपितु,) मम=दुर्योधनस्य, सखा=सहायकः इत्यर्थः, वर्तते इति क्रियाशेषः । अत्र काव्यलिङ्गालङ्कारः । शार्दूलविकीर्णितं छन्दः ॥ २० ॥

तदिति । तत्=तस्मात्, सम्पूर्णमनोरथस्य—सम्पूर्णः मनोरथः=अभिलाषो यस्य तस्य, कामचारः=कामेन=स्वेच्छया चारः=आचरणम् ॥

अन्वयः—हे घनोरु, शनैः शनैः, पदानि, कुरु; अयि (प्रिये), परिवेपिनीम्, गतिम्, विमुञ्च; हे सुतनु, मम, उरःस्थलम्, बाहुलतोपरिवन्धनम्, गाढम्, निपीडय ॥ २१ ॥

शब्दार्थः—हे घनोरु=हे सटी हुई जाँघों वाली, शनैः शनैः=धीरे-धीरे, पदानि=पग, कुरु=रखो, अयि (प्रिये)=हे (प्रियसि), परिवेपिनीम्=लड़खड़ाती, गतिम्=चाल को, विमुञ्च=छोड़ो; हे सुतनु=हे सलोनी शरीरवाली, मम=मेरी, उरस्थलम्=छाती को, बाहुलतोपरिवन्धनम्=बाहुलता से ऊपर (गले में) बन्धन डालकर, गाढम्=कसकर, निपीडय=दबाओ ॥ २१ ॥

तो पूर्ण हुई अभिलाषावाला मैं सम्प्रति इच्छानुसार विहार कर सकता हूँ। अतः यहाँ से (हम लोग) काष्ठ (के बने कुत्रिम)-पर्वत के महल में ही चले ।

(सभी लोग तूफान के कष्ट का अभिनय करते हुए बड़ी कठिन्ता से घूमते हैं) ।

राजा—हे सटी हुई जायों वाली, धीरे-धीरे पग रखो । हे (प्रिये), लड़खड़ाती चाल को छोड़ो । हे सलोनी शरीर वाली, मेरी छाती को, (अपनी) बाहुलता से ऊपर (गले में) बन्धन ढाल कर, (अपनी छाती से) कस कर दबाओ ॥ २१ ॥

(प्रवेश का अभिनय करके) प्रिये, गर्भगृह (भीतरी कोठरी) के बन्द होने के कारण (यहाँ) आँधी नहीं आ सकती । (अतः) जिनके ऊपर के धूलि-कण पोंछ दिये गये हैं ऐसे (अपने) नेत्रों को खोलो ।

भानुमती—(प्रसन्नता के साथ) सौभाग्य से यहाँ तो उत्पातवायु (आँधी) नहीं परेशान कर रही है ।

सखी—महाराज, प्रियसखी (भानुमती) की दोनों जाँघें (ऊपर) चढ़ने की उतावली के कारण थक गई हैं । तो अब महाराज बैठने के चबूतरे को क्यों नहीं सुशोभित करते (अर्थात् चबूतरे पर क्यों नहीं बैठ जाते) ?

राजा—(महारानी को देख कर) भद्रे, आँधी के आतङ्क ने (इनका) बहुत अधिक अपकार किया है । जैसे कि—

कुर्विति । हे धनोरु—धनी=अविरली उरू=जङ्घे यस्याः सा तत्सम्बुद्धी, शनैः शनैः=मन्दं मन्दम्, पदानि=चरणन्यासान्, कुरु=सम्पादय, अयि (प्रिये)=हे प्रियतमे, परिवेपिनीम्—परिवेपः=प्रकम्पः विद्यते अस्याः सा तां परिवेपिनीम्=प्रकम्पमानाम्, गतिम्=गमनम्, विमुञ्च=परित्यज; हे सुतनु—सुष्ठु=शोभनम् तनूः=शरीरम् यस्याः सा तत्सम्बुद्धी, मम=तव वल्लभस्य दुर्बोधनस्येत्यर्थः, उरःस्थलम्=वक्षःस्थलम्, बाहुलतोपरिवन्धनम्—बाहुलताभ्याम्=लतासदृशाभ्यां बाहुभ्याम् उपरि=कण्ठे इत्यर्थः बन्धनम्=बलादग्रहणम् यस्मिन् कर्मणि यथास्यात्तथा, स्तोत्रेण उरसेति शेषः, गाढम्=दृढम्, निपीडय=आलिङ्गय । सुसुखं गाढमालिङ्गयेति भावः । अत्रोपमालङ्कारः । द्रुतविलम्बितं वृत्तम् । वृत्तलक्षणम्—‘द्रुतविलम्बितमाह नमो भरो’ ॥ २१ ॥

प्रवेशमिति । अलब्धावकाशः—अलब्धः=अप्राप्तः अवकाशः=स्थानम् येन तादृशः, समीरणः=वायुः, गर्भगृहस्य=अन्तर्गृहस्य । उन्मृष्टरेणुनिकरम्—उन्मृष्टः=प्रोञ्छितः रेणुनिकरः=धूलिसमुदायः यस्मात् तत्, चक्षुः=नेत्रम्, उन्मीलय=उद्घाटय ॥

सखीति । आरोहणसम्भ्रमनिःसहम्—आरोहणस्य=दारुपर्वते आगमनस्य सम्भ्रमेण=त्वरया निःसहम्=असमर्थम्, ऊरुयुगलम्=जङ्घाद्वयम् । आसनवेदोम्—आसनार्थम्=उपवेशनार्थम् कृता वेदी=चत्वरम् ताम्, न भूषयति=न अलङ्करोति ॥

राजा इति । अनल्पम्—न अल्पम्=स्वल्पम् अतल्पम्=अत्यधिकम्, अपकृतम्=अपकारः कृतः; भवत्या इति शेषः, वात्यासम्भ्रमेण=वायुचक्रमयेन ॥

रेणुर्बाधां विधत्ते तनुरपि महतीं नेत्रयोरायतत्वा-

दुत्कम्पोऽल्पोऽपि पीनस्तनभरितमुरः क्षिप्तहारं दुनोति ।

ऊर्वोर्मन्देऽपि याते पृथुजघनभराद्वेपथुर्वर्धतेऽस्या

वात्या खेदं मृगाक्ष्याः सुचिरमवयवैर्दत्तहस्ता करोति ॥ २२ ॥

(सर्वे उपविशन्ति)

राजा—तत्किमित्यनास्तीर्णं कटिनं शिलातलमध्यास्ते देवी ।

लोलांशुकस्य पवनाकुलितांशुकान्तं

त्वद्दृष्टिहारि मम लोचनबान्धवस्य ।

अध्यासितुं तव चिरं जघनस्थलस्य

पर्याप्तमेव करभोरु ममोरुयुग्मम् ॥ २३ ॥

अन्वयः—तनुः, अपि, रेणुः, (अस्याः), नेत्रयोः, आयतत्वात्, महतीम्, बाधाम्, विधत्ते; अल्पः, अपि, उत्कम्पः, पीनस्तनभरितम्, उरः, क्षिप्तहारम्, दुनोति, मन्दे, याते, अपि, पृथुजघन-भरात्, अस्याः, ऊर्वोः, वेपथुः, वर्धते; मृगाक्ष्याः, अवयवैः दत्तहस्ता, वात्या, (अस्याः), सुचिरम्, खेदम्, करोति ॥२२॥

शब्दार्थः—तनुः=अत्यन्त छोटा, अपि=भी, रेणुः=धूलिकण, (अस्याः=इन मानुमती के), नेत्रयोः=आँखों के, आयतत्वात्=विशाल होने के कारण, महतीम्=बहुत अधिक, बाधाम्=व्याधा को, विधत्ते=प्रदान कर रहा है; अल्पः=थोड़ी, अपि=भी, उत्कम्पः=धड़कन, कम्पन, पीनस्तन-भरितम्=मोटे स्तनों से बोझिल, उरः=छाती को, क्षिप्तहारम्=मोती की माला को उछाल कर, दुनोति=पीड़ित कर रहा है; मन्दे=मन्द, याते=चलने पर, अपि=भी, पृथुजघनभरात्=मोटे, चूतड़ के भार के कारण, अस्याः=इनके, ऊर्वोः=जोंघोंका, वेपथुः=कम्पन, वर्धते=बढ़ रहा है; मृगाक्ष्याः=मृगनयनी (इस मानुमती) के, अवयवैः=अङ्गों से, दत्तहस्ता=सहारा पाया हुआ, वात्या=झंझावात, (अस्याः=इनको), सुचिरम्=बहुत देर तक, खेदम्=कष्ट, करोति=प्रदान कर रहा है ॥२२॥

अपकारस्यानल्पतामेव प्रतिपादयन्नाह—रेणुरिति । तनुः=अल्पाकारः, अपि=च, रेणुः=धूलि-कणः, (अस्याः=मानुमत्याः), नेत्रयोः=लोचनयोः, आयतत्वात्=विशालभावात्, महतीम्=विशालाम्, बाधाम्=व्ययाम्, विधत्ते=करोति । एतेन नेत्रयोर्विशालत्वं सौन्दर्यञ्च निदिष्टम् । अल्पः=स्पल्पः, अपि=च, उत्कम्पः=कम्पनम्, वक्षःस्थले कम्पनमिति यावत्, पीनस्तनभरितम्=पीनाभ्याम् स्थूलाभ्याम् स्तनाभ्याम् कुचाभ्याम् भरितम्=सज्जातभारम्, उरः=वक्षःस्थलम्, क्षिप्तहारम्=क्षिप्तः=ऊर्ध्वं क्षिप्तः हारः=मुक्तादाम यस्मिन् कर्मणि यथा तथा, दुनोति=पीडयति, एतेन कुचयोः स्थूलता कामोत्तेजकता च सूचिता । मन्दे=शियिले, अपि, याते=गमने सति, अपि, पृथुजघनभरात्=पृथुनः=स्थूलस्य, जघनस्य=कटिपश्चाद्भागस्य भरात्=भारात्, अस्याः=मानुमत्याः, ऊर्वोः=सक्थनोः, वेपथुः=कम्पनम्, वर्धते=वृद्धिं गच्छति । एतेन ऊर्वोः कदलोस्तम्भाकारता ध्वनिता ।

अत्यन्त छोटा भी धूलिकण (इन भानुमती के) आँखों के विशाल होने के कारण बहुत अधिक व्यथा प्रदान कर रहा है। थोड़ी भी धड़कन मोटे स्तनों से बोझिल छाती को, मोती की माला उछाल-उछाल कर, पीड़ित कर रही है। धीरे-धीरे चलने पर भी मोटे चूतड़ के मार के कारण इनकी जाँघों का कम्पन (पुनः) बढ़ रहा है। मृगनयनी (इस भानुमती) के अङ्गों से सहारा पाया हुआ झंझावात (इनको) बहुत देर तक कष्ट प्रदान कर रहा है ॥२२॥

विशेष—अवयवैः दत्तहस्ता—इस श्लोक में राजा ने एक बहाने से भानुमती के सुन्दरतम अवयवों की प्रशंसा की है। उनका कहना है कि भानुमती अपने विशाल स्तनों, चक्राकार मोटे चूतड़ों तथा विशाल आँखों के कारण पहले से ही परेशान थीं। स्तनों आदि के मार से वे यों ही हमेशा परेशान रहती हैं। विशाल आँखों में कहीं-न-कहीं से धूलिकण पड़ ही जाते हैं। अब जब आँधी आई है उस समय इनके ये अंग आँधी से होने वाली तकलीफों के साथ अपने कारण होने वाली तकलीफ को भी भिड़ा दे रहे हैं ॥२२॥

राजा—तो क्या इस तरह विछावन-विहीन कठोर शिलातल पर महारानी बैठेंगी ?

हे करम (कलाई से लेकर अङ्गुलियों तक हथेली के हिस्से) के समान जाँघों वाली, (प्रिये), वायु से चञ्चल वस्त्र के छोर वाली, (अतः) तुम्हारी दृष्टि को आकृष्ट करने वाली मेरी ! दोनों जाँघें, लहराते हुये वस्त्र वाले, (अतः) मेरी आँखों को प्रिय तुम्हारे जवनस्थल (चौड़े चूतड़) के लिये काफी देर तक बैठने के लिये पर्याप्त ही (हैं) ॥२३॥

मृगाक्ष्याः = हरिणनयनायाः, भानुमत्याः इति शेषः, अवयवैः = अङ्गैः, दत्तहस्ता-दत्तः = समर्पितः हस्तः = साहाय्यमित्यर्थः यस्याः सा तादृशी, वात्या = वायुचक्रम्, अस्याः इति शेषः, सुचिरम् = बहु-कालम्, खेदम् = पीडाम्, करोति = विदधाति । उभाभ्यामङ्गवात्याभ्यामेव देव्याः पीडा इति भावः । व्याजेनात्राङ्गलावण्यवर्णनं कृतं राधा । अत्र चतुर्थपादार्थे पूर्वपादत्रयवाक्यायो हेतुरिति काव्यलिङ्गमलङ्कारः । सग्वरा छन्दः ॥२२॥

राजा इति । इति = इत्यम्, अनास्तीर्णम् = आस्तरणविरहितम्, कठिनम् = कठोरम्, शिला-तलम् = शिलापट्टम् ॥

अन्वयः—हे करभोर, पवनाकुलितांशुकान्तम्, (अत एव), त्वद्दृष्टिहारि, मम, उर्युगमम्, लोलांशुकस्य, (अतः), मम, लोचनवान्धवस्य, तव, जवनस्थलस्य, चिरम्, अभ्यासितुम्, पर्याप्तम्, एव ॥२३॥

शब्दार्थः—हे करभोर = हे करम (कलाई से लेकर अङ्गुलियों तक हथेली के हिस्से) के समान जाँघों वाली, पवनाकुलितांशुकान्तम् = वायु से चञ्चल वस्त्र के छोर वाली, (अतः = अत एव), त्वद्दृष्टिहारि = तुम्हारी दृष्टि को आकृष्ट करने वाली, मम = मेरी, उर्युगलम् = दोनों जाँघें, लोलांशुकस्य = लहराते हुये वस्त्र वाले, (अत एव = अतः), मम = मेरी, लोचनवान्धवस्य-आँखों को प्रिय, तव = तुम्हारे, जवनस्थलस्य = जवन-स्थल (चौड़े चूतड़) के लिये, चिरम् = काफी देर तक, अभ्यासितुम् = बैठने के लिये, पर्याप्तम् = पर्याप्त, एव = ही (है) ॥२३॥

(प्रविश्य पटाक्षेपेण संभ्रान्तः)

कञ्चुकी—देव भग्नं भग्नम् ।

(सर्वे सातङ्गं पश्यन्ति)

राजा—किं नाम ?

कञ्चुकी—भग्नं भीमेन ।

राजा—आः किं प्रलपसि ?

भानुमती—आर्य, किमनर्थं मन्त्रयसे । [अज्ज, किं अणत्थं मन्तेसि ।]

कञ्चुकी—(सभयम्) ननु भग्नं भीमेन भवतः ।

राजा—यिक् प्रलापिन् वृद्धापसद, कोऽयमद्य ते व्यामोहः ।

कञ्चुकी—देव, न खलु कश्चिद् व्यामोहः । सत्यमेव ब्रवीमि ।

भग्नं भीमेन भवतो मरुता रथकेतनम् ।

पतितं किङ्किणीववाणवद्धाक्रन्दमिव क्षितौ ॥ २४ ॥

राजा—बलवत्समीरणवेगात्कम्पिते भुवने भग्नः स्यन्दनकेतुः । तत्किमित्युद्धृतं प्रलपसि भग्नं भग्नमिति ।

कञ्चुकी—देव, न किञ्चित् । किंतु शमनार्थमस्यानिमित्तस्य विज्ञापयितव्यो देव

लोलांशुकस्येति । हे करभोरु—करमः = मणिवन्धादाकनिष्ठं करस्य भागः ('मणिवन्धादाकनिष्ठं करस्य करमो वहिः' इत्यमरः) इव ऊरु = जङ्घे यस्याः सा करभोरुः तत्सम्बुद्धौ, पवनाकुलितांशुकान्तम्—पवनेन = वायुना आकुलितः = स्वस्थानात् व्यस्तः अंशुकस्य = वस्त्रस्य, अन्तः = प्रान्तभागः यस्य तद्, (अत एव), त्वद्दृष्टिहारि—तव = भवत्याः दृष्टिम् = लोचनम् हर्तुम् = वशीकर्तुम् शीलं यस्य तद्दृष्टम्, मम = दुर्योधनस्य, उरुयुगलम्—ऊर्वोः = जघनयोः युगलम् = मिथुनम्, लोलांशुकस्य—लोलम् = चञ्चलम्, वायुना चञ्चलमित्यर्थः, अंशुकम् = वस्त्रम्, शाटिकेति यावत्, यस्य तादृशस्य, (अत एव), मम—दुर्योधनस्य, लोचनबान्धवस्य—लोचनयोः = नेत्रयोः बन्धाति = आकर्षति इति बन्धुः = आकर्षकः स एव बान्धवस्तस्य, तव = भवत्याः, जघनस्थलस्य—जघनम् = कटिपश्चाद्भागः स्थलमिव = पट्टमिव ('उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे' पा० सू० २-१-५६ इत्यनेन समासः) तस्य, विस्तीर्णस्य कटिपश्चाद्भागस्येत्यर्थः, चिरम् = बहुकालम्, अध्यासितुम् = आश्रयाय, पर्याप्तम् = अलम्, एवेति दृष्टतायाम्, अस्तीति क्रियाशेषः । अत्र योग्ययोः संघटनात् समालङ्कारः । वसन्ततिलका छन्दः—तल्लक्षणं यथा—'उक्ता वसन्ततिलका तमजा जगौ गः' ॥२३॥

अन्वयः—भीमेन, मरुता, भवतः, रथकेतनम्, भग्नम्; (तथा), किङ्किणीववाणवद्धाक्रन्दम्, इव, क्षितौ, पतितम् ॥२४॥

शब्दार्थः—भीमेन = भीषण, मरुता = वायु के द्वारा, भवतः = आप के, रथकेतनम् = रथ के पताका, भग्नम् = टूट गयी; (तथा = और), किङ्किणीववाणवद्धाक्रन्दम् = दुँधुरओं के शब्द से आर्त नन्दन (विलाप) करती हुई, इव = सी, क्षितौ = भूतल पर, पतितम् = गिर पड़ी ॥२४॥

(पर्दा हटाकर प्रवेश करके घबड़ाया हुआ)

विशेष—पटाचेपेय—सामान्यतः जब कोई पात्र सजने-धजने के स्थान से रङ्गमञ्च पर आता है, तब पर्दा उठा दिया जाता है। किन्तु जब कोई पात्र घबड़ाने की अवस्था में रङ्गमञ्च पर लाया जाता है, तब बिना पर्दा उठाए तथा बिना पूर्व सूचना के ही बगल से जरा-सा पर्दा हटाकर प्रवेश करता है। इस तरह के प्रवेश को अपटीक्षेप-अ = नहीं पटी = पर्दा के क्षेप = उठाए ही-प्रवेश कहा जाता है।

कञ्चुकी—महाराज, टूट गया, टूट गया।

(सभी लोग आतङ्कपूर्वक देखते हैं)

राजा—क्या (टूट गया) ?

कञ्चुकी—भीम के द्वारा (अर्थात् भीम ने तोड़ दिया)।

राजा—ओह ! क्या बकवास कर रहे हो ?

मानुमती—आर्य, क्यों अमङ्गल (वचन) बोल रहे हैं ?

विशेष—ऊपर श्लोक में दुर्योधन ने ज्यों ही 'ममोरुयुग्मम्' कहा त्यों ही प्रवेश करके कञ्चुकी ने कहना शुरू किया—टूट गया, टूट गया। यही कारण है कि मानुमती कञ्चुकी के कथन को अमङ्गल-जनक समझ रही है।

कञ्चुकी—(भयपूर्वक) निश्चय ही भीम के द्वारा आपका तोड़ दिया गया।

राजा—धिक्कार ! बकवास करने वाले, नीच वृद्ध, आज तुम्हें यह कैसा मति-भ्रम (हो गया है) ?

कञ्चुकी—महाराज, कोई मति-भ्रम नहीं हुआ है। पूर्ण सत्य कह रहा हूँ।

भीषण वायु के द्वारा आप के रथ की पताका टूट गयी, (तथा) धुँधुराओं के शब्द से आक्रान्दन (विलाप) करती हुई-सी भूतल पर गिर पड़ी ॥ २४ ॥

राजा—प्रबल वायु-वेग से जगद के कम्पित हो जाने पर रथ की पताका टूट गयी। तो क्यों इस तरह उद्बुधतापूर्वक प्रलाप कर रहे हो—'तोड़ दिया तोड़ दिया'।

कञ्चुकी—महाराज, कुछ भी नहीं। किन्तु इस दुर्निमित्त (अपशकुन) की शान्ति (कराने) के

स्वकीयं वक्तव्यं स्पष्टं करोति—**भग्नमिति**। भीमेन = भीषणेन, मरुता = वायुना; भवतः = श्रीम-तस्त्व, रथकेतनम्—रथस्य = स्यन्दनस्य केतनम् = पताका ('पताका वैजयन्ती स्यात्केतनं ध्वजमस्त्रि-याम्' इत्यमरः) भग्नम् = छिन्नम् अत्र केचन—भीमेन मरुता वायुना, अथ च भीमसेनेन। मरुता वायुपुत्रेण। मरुतेत्यत्र 'आत्मा वै जायते पुत्रः।' इत्यमेदोषाचारादा तद्धितलोपादा साधुतां साधयितुं प्रयतन्ते। परञ्च कविभावात्सङ्गमादेतद्वेद्यमिव। (तथा) किङ्किणीवत्पावद्वाक्रन्दम्—किङ्किणीनान् = क्षुद्रघण्टिकानाम् ('किङ्किणी क्षुद्रघण्टिका' इत्यमरः) क्वाणेन = शब्देन वद्धः = प्रारब्धः आक्रन्दः—विलपनं येन तथाभूतमिव, क्षितो = भूमौ, पतितम् = अधः आगतम्। एतेन दुर्योधनस्य भीमेन भाविन उरुभङ्गस्य सूचना दत्ता। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः। पथ्यावकत्रं छन्दः ॥ २४ ॥

राजा इति। बलवत्समीरणवेगात्—बलवान् = प्रबलः यः समीरणस्य = वायोः वेगः = तीव्रता तस्मात्, स्यन्दनकेतुः—स्यन्दनस्य = रथस्य केतुः = पताका। प्रलपसि = निरर्थकमुच्चैर्वदसि ॥

कञ्चुकीति। शमनार्थम् = शान्त्यर्थम्, अनिमित्तस्य = अपशकुनस्य, मुखरयति = वक्तुं प्रेरयति ॥

इति स्वामिभक्तिर्मां सुखरयति ।

मानुमतो—आर्यपुत्र, परिहार्यतामेतदनिमित्तं प्रसन्नब्राह्मणवेदानुघोषेण होमेन ॥

[अञ्जउत्त, पडिहरीअदु एदं अणिमित्तं पसण्णब्रह्मणवेआणुघोसेण होमेण अ ।]

राजा—(सावशम्) ननु गच्छ । पुरोहितसुमित्राय निवेदय ।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रान्तः) ।

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—(सोद्वेगमुपसृत्य) जयतु जयतु महाराजः । महाराज, एषा खलु जामातुः सिन्धुराजस्य माता दुःशला च प्रतीहारभूमौ तिष्ठति । [जअदु जअदु महाराओ । महाराअ, एसा खु जामादुणो सिन्धुराअस्स मादा दुस्सला अ पडिहारभूमोए चिट्ठदे ।]

राजा—(किञ्चिद्विचिन्त्यात्मगतम्) किं जयद्रथमाता दुःशला चेति । कञ्चिदभिमन्युवधामर्षितैः पाण्डुपुत्रेन किञ्चिदत्याहितमाचेष्टितं भवेत् । (प्रकाशम्) गच्छ । प्रवेशय शीघ्रम् ।

प्रतीहारी—यन्महाराज, आज्ञापयति । (इति निष्क्रान्ता) । [जं महाराओ आणवेदि ।]

(ततः प्रविशति सभ्रान्ता जयद्रथमाता दुःशला च)

(उभे सास्त्रं दुर्योधनस्य पादयोः पततः)

माता—परित्रायतां परित्रायतां कुमारः । [परित्ताअदु परित्ताअदु कुमालो ।]

(दुःशला रोदिति)

राजा (ससंभ्रममुत्थाप्य) अम्ब, समाश्वसिहि समाश्वसिहि । किमत्याहितम् । अपि कुशलं समाराङ्गणेष्वप्रतिरथस्य जयद्रथस्य ।

माता—जात, कुतः कुशलम् । [जाद कुदो कुसलम् ।]

राजा—कथमिव ।

माता—(साशङ्कम्) अद्य खलु पुत्रवधामर्षोद्दीपितेन गाण्डीविना अनस्तमिते दिवसनाथे तस्य वधः प्रतिज्ञातः । [अञ्ज खु पुत्तवहामरिसुदीविदेण गाण्डीविणा अणत्थमिदे दिवहणाहे तस्स वहो पडिण्णादो ।]

राजा—(स्स्मितम्) इदं तदश्रुकारणमम्बाया दुःशलायाश्च । पुत्रशोकादुन्मत्तस्य किरीटिनः प्रलापैरेवमवस्था । अहो सुगन्धत्वमवलानाम् । अम्ब, कृतं विषादेन । वत्से

राजा इति । अभिमन्युवधामर्षितैः—अभिमन्योः = अजुनपुत्रस्य वधेन = मारणेन अमर्षितैः = क्रुद्धैः, अत्याहितम् = महद्भयम्, अनर्थमिति यावत् (' अत्याहितं महद्भयम् ' इत्यमरः) ॥

राजा इति । अपीति प्रश्ने । अप्रतिरथस्य—न विद्यते प्रतिरथः = शत्रुस्यन्दनम्, शत्रुयोद्धा इति भावः, यस्य स तस्य ॥

मातेति । पुत्रवधामर्षोद्दीपितेन—पुत्रस्य = सुतस्य अभिमन्योः वधेन = विनाशेन यः अमर्ष = क्रोधः तेन उद्दीपितेन = क्रुद्धेन, गाण्डीविना—गाण्डीवम् = गाण्डीवनामकं धनुः अस्ति अस्य गाण्डीवी तेन, अर्जुनेनेत्यर्थः, प्रहरणनामग्रहणेन तस्य वीरकर्मणि प्रसिद्धिः सूचिता, अनस्तमिते = अस्तम् अप्राप्ते, दिवसनाथे = दिनमणौ सूर्ये, तस्य = जयद्रथस्य ॥

लिए महाराज को सूचना दे देनी चाहिए, यह स्वामिमक्ति ही मुझे ऐसा कहने के लिए प्रेरित कर रही है।

भानुमतो—आर्यपुत्र, (दक्षिणा आदि की प्राप्ति से) प्रसन्न हुए ब्राह्मणों के वेद-पाठ एवं होम से इस अपशकुन का निवारण करा दीजिए।

राजा—(तिरस्कारपूर्वक) अच्छा, जाओ। पुरोहित सुमित्र से (इसके लिए) निवेदन करो।
कञ्चुकी—जैसा महाराज आदेश दे रहे हैं (अर्थात् जैसा महाराज की आज्ञा)। (ऐसा कहकर निकल गया।)

(प्रवेश करके)

प्रतीहारी—(घबराहट के साथ पास में जाकर) महाराज विजयी बनें, विजयी बनें। महाराज, जमाई सिन्धुराज (दामाद जयद्रथ) की माता तथा दुःशला द्वार-भूमि पर आई हुई हैं।

विशेष—जामातुः सिन्धुराजस्य—दुर्योधन की छोटी बहन दुःशला का विवाह सिन्धु प्रदेश के शासक जयद्रथ के साथ हुआ था। यही कारण है कि प्रतीहारो उसे जामाता सिन्धुराज कह रही है।

राजा—(कुछ सोच कर, अपने आप) क्या जयद्रथ की माता तथा दुःशला (यहाँ आयी) है ? शायद अभिमन्यु के वध से क्रुद्ध पाण्डवों के द्वारा कुछ अनर्थ तो नहीं कर दिया गया ? (प्रकट रूप से) जाओ। शीघ्र (भीतर) लौटा आओ।

प्रतीहारी—जो महाराज आज्ञा दे रहे हैं। (ऐसा कह कर निकल गयी)। (तदनन्तर घबड़ाई हुई जयद्रथ की माता तथा दुःशला प्रवेश करती हैं)

(दोनों आँसु मर कर दुर्योधन के पैरों पर पड़ती हैं)

माता—बचाइये, बचाइये कुमार !

(दुःशला रोती है)

राजा—(आश्चर्यपूर्वक उठा कर) माँ, धैर्य रखो, धैर्य रखो। कौन-सा महान् मय (आ पड़ा) है ? अपतिम योद्धा जयद्रथ का समराक्षण में कुशल तो है ?

माता—बेटे कुशल कहाँ से ?

राजा—कैसे ?

माता—(आश्चर्य के साथ) आज (शत्रुओं के द्वारा किये गये) पुत्र के वध के क्रोध से मड़के हुए गाण्डीव (नामक धनुष) को धारण करने वाले (अर्जुन) के द्वारा सूर्य के अस्त होने के पहले ही उस के वध की प्रतिज्ञा की गयी है।

राजा—(मुस्कराहट के साथ) तो माताजी एवं दुःशला की आँसुओं का यह कारण है ? (मारे गये) पुत्र के शोक से पागल हुए अर्जुन के प्रलाप (निरर्थक चिल्लाहट) से ऐसी हालत है ? अबलाओं (स्त्रियों) का मोलापन आश्चर्य जनक होता है। माँ, दुःख करना व्यर्थ है। छोटी बहन

राजा इति। उन्मत्तस्य = विक्षिप्तस्य, किरीटिनः = अर्जुनस्य, प्रलापैः = विक्षेपक्यनैः, एवम् = इदृशी, अवस्था = दशा। मुग्धत्वम् = अज्ञानता, अबलानाम् = क्षीणाम्। विषादेन = दुःखेन।

दुःशले अलमश्रुपातेन । कुतश्चायं तस्य धनञ्जयस्य प्रभावो दुर्योधनबाहुपरिघरक्षितस्य
महारथजयद्रथस्य विपत्तिमुत्पादयितुम् ।

माता—जात, ते हि पुत्रबन्धुवधामर्षोद्दीपितकोपानला अनपेक्षितशरीरा वीराः
परिक्रामन्ति । [जाद, दे हि पुत्रबन्धुवहामरिद्विदकोवाणला अपेक्षितदशरीरा वीरा
परिक्रामन्ति ।]

राजा—(सोपहासम्) एवमेतत् । सर्वजनप्रसिद्धैवामर्षिता पाण्डवानाम् । पश्य—
हस्ताकृष्टविलोलकेशवसना दुःशासनेनाज्ञया

पाञ्चाली मम राजचक्रपुरतो गीर्गौरिति व्याहृता ।

तस्मिन्नेव स किं नु गाण्डिवधरो नासीत्पृथानन्दनो

यूनः क्षत्रियवंशजस्य कृतिनः क्रोधास्पदं किं न तत् ॥ २५ ॥

माता—असमाप्तप्रतिज्ञाभरस्यात्मवधोऽस्य प्रतिज्ञातः । [असमत्पटिष्णाभारस आप्ववहो
से पटिष्णादो ।]

राजा—यद्येवमलमानन्दस्थानेऽपि ते विपादेन । ननु वक्तव्यमुत्सन्नः सानुजो
युधिष्ठिर इति । अन्यच्च मातः, का शक्तिरस्ति धनञ्जयस्यान्यस्य वा कुरुशतपरिवार-
वधर्तिमहिम्नः कृपकर्णद्रोणाश्वत्थामादिमहारथद्विगुणीकृतनिरावरणविक्रमस्य नामापि
ग्रहीतुं ते तनयस्य । अयि सुतपराक्रमानभिजे ।

दुर्योधनबाहुपरिघरक्षितस्य—दुर्योधनस्य = ममेत्यर्थः बाहुः = भुजा परिघः = अर्गला श्वेति तेन, रक्षि-
तस्य = प्राप्तसंरक्षणस्य, विपत्तिम् = आपत्तिम्, मृत्युमिति यावत् ॥

मातेति । जात = पुत्र, अनपेक्षितशरीराः—अनपेक्षितम् = अगणितम् शरीरम् = देहः यैस्ता-
दृशाः, परिक्रामन्ति = युद्धाङ्गणे सर्वत्र विचरन्तीति भावः ॥

अन्वयः—मम, आशया, दुःशासनेन, हस्ताकृष्टविलोलकेशवसना, पाञ्चाली, राजचक्रपुरतः,
'गौः गौः' इति, व्याहृता; तस्मिन्, एव, (समये), सः, गाण्डिवधरः, पृथानन्दनः, न, आसीत्, किं
नु; क्षत्रियवंशजस्य, कृतिनः, यूनः, तत्, क्रोधास्पदम्, किम्, न ? ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—मम = मेरी, आशया = आशा से, दुःशासनेन = दुःशासन के द्वारा, हस्ताकृष्ट-
विलोलकेशवसना = हाथ से खींचे गये (अतः) अस्त-व्यस्तकेश और वस्त्रवाली, पाञ्चाली = द्रौपदी,
राजचक्रपुरतः = राजसमूह के सामने, 'गौः गौः' = गाय (हूँ) गाय (हूँ), इति = ऐसा, व्याहृता =
चिल्लाया थो; तस्मिन् = उस, एव = ही, (समये = समय में), सः = वह, गाण्डीवधरः = गाण्डीव
(नामक धनुष) को धारण करनेवाला, पृथानन्दनः = कुन्ती-पुत्र, (अर्जुन), न = नहीं, आसीत् =
था, किं नु = क्या ? क्षत्रियवंशजस्य = क्षत्रिय के कुल में उत्पन्न, कृतिनः = (शस्त्र चलाने में) निपुण,
यूनः = युवक के लिये, तत् = वह, क्रोधास्पदम् = कोप करने का स्थान, किं न = क्या नहीं
(था) ? ॥ २५ ॥

अर्जुनस्याकिञ्चित्करत्वं प्रतिपादयन्नाह—हस्ताकृष्टेति । मम = राशो दुर्योधनस्य, आशया = आदेशेन,

दुःशले, औम्, वहाने की आवश्यकता नहीं। (मुझ) दुर्गंधनकी बाहुरूपी अंगला (व्योढा) से रक्षित महारथी जयद्रथ के लिये विपत्ति पैदा करने का यह सामर्थ्य भला उस अर्जुन में कहाँ से (हो सकता है) ?

माता—वेटे, पुत्र तथा बन्धुओं के वध को सहन न करने से प्रचलित कोपवाले वे (पाण्डव) वीर शरीर की चिन्ता न करते हुए चारों ओर घूम रहे हैं।

राजा—(हँसी लेते हुए) यह ऐसा ही है। पाण्डवों की असहनशीलता सर्वजन-विदित हो है। देखिये—

मेरी आशा से दुःशासन के द्वारा हाथ से खींचे गये (अतः) अस्त-व्यस्त केश और वस्त्रवाली द्रौपदी राज-सभा के सामने गाय (हूँ), गाय (हूँ), ऐसा चिल्लाती थी। उस (समय) में गाण्डीव (नामक धनुष) की धारण करने वाला कुन्ती-पुत्र (अर्जुन) नहीं था क्या ? (अथवा) क्षत्रिय के कुल में उत्पन्न (शस्त्र चलाने में) निपुण युवक के लिए वह कोप करने का स्थान (कोप करने का कारण) क्या नहीं (था) ? ॥ २५ ॥

माता—(जयद्रथ के ववरूपी) प्रतिशा के भार को न समाप्त करने पर इस ने अपने वध की प्रतिशा की है। (अतः उसकी प्रतिशा को बहुत साधारण प्रतिशा नहीं समझनी चाहिए)।

राजा—यदि ऐसा है, तो आनन्द की जगह आप को विषाद नहीं करना चाहिए। तब तो कहना चाहिए कि भाइयों के सहित पुषिष्ठिर विनष्ट हुआ। इसके अतिरिक्त दूसरी (बात) भी है माँ, सौ कोरवों के समूह से बड़ी हुई महिमा वाले, कृपाचार्य, कर्ण, द्रोणाचार्य तथा अश्वत्थामा आदि महारथियों के द्वारा दूना कर दिया गया है जगद्धित विक्रम जिसका ऐसे तुम्हारे पुत्र (जयद्रथ) का नाम भी लेने की अर्जुन या अन्य किसी में क्या शक्ति है। अरी, (अपने) पुत्र के पराक्रम को न जानने वाली !

हेतुभूतेन, दुःशासनेन = ममानुजेन, कर्त्रा, हस्ताकृष्टविलोलकेशवसन—हस्तेन = करेण आकृष्टम् अतएव विलोलम् = विलस्तम् केशाश्च वसनञ्चेति केशवसनम् = शिरोरुहवस्त्रम् यस्याः सा, पाञ्चाली = पाञ्चालराजतनया द्रौपदी, राजचक्रपुरतः—राशाम् = विभिन्नप्रदेशादागतानां नृपतीनाम् चक्रम् = समूहः तस्य पुरतः = समक्षम्, गोः गौः = गोः अस्मि, गोः अस्मि, गोस्त्रि रक्षणया अस्मीति भावः, इति = इत्यम्, व्याहृता = कायतवती; तस्मिन् = तादृशे विपत्तिपूर्ण इत्यर्थः, एव = अपि, समये इति शेषः, सः = त्वद्भयकारणभूतः, गाण्डिवधरः = गाण्डीवधारी, पृथानन्दनः—पृथायाः = कुन्याः नन्दनः = सुतः अर्जुन इति भावः, न = नाहं, आसीत्, किन्विति प्रश्ने। आसीत्तदानीं, किन्तु नासीत् स कालो विक्रमप्रदर्शनस्येति वदति—क्षत्रियवंशजस्य = क्षत्रियकुलोत्पन्नस्य, तत्रापि कृतनः = शस्त्रादि-सञ्चालने निपुणस्य, तत्रापि द्युनः = युवकस्य, तत् = तद्दृश्यं व्याहरणं वा, क्रोधास्पदम्—क्रोधस्य = कोपस्य आस्पदम् = स्थानम्, कारणमित्यर्थः, किं न = किं नासीत्, अपितु आसीदेव परञ्च स किञ्चिदपि कर्तुं न प्राभवत्। अतस्तस्माच्च भीतिः कर्तव्या। शार्ङ्गलविक्रीडतं छन्दः ॥ २५ ॥

मातेति। असमाप्तप्रतिशामारस्य—समाप्तः = अपूरितः प्रतिशयाः = प्रणस्य भारः = मरः येन

धर्मात्मजं प्रति यमौ च कथैव नास्ति
मध्ये वृकोदरकिरीटभृतोर्बलेन ।

एकोऽपि विस्फुरितमण्डलचापचक्रं
कः सिन्धुराजमभिषेणयितुं समर्थः ॥२६॥

भानुमती—आर्यपुत्र, यद्यप्येवं तथापि गुरुकृतप्रतिज्ञामारो धनञ्जयः स्थानं खलु
शङ्कायाः । [अज्जउत्त, जइव एव्वं तहवि गुरुकिदपडिण्णामारो धनंजओट्ठाणं कलु संकाए ।]

माता—जाते, साधु कालोचितं त्वया मन्त्रितम् । [जादे, साहु कालोइदं तुए मन्तिदं ।]

राजा—आः, ममापि नाम दुर्योधनस्य शङ्कास्थानं पाण्डवाः । पश्य—

कोदण्डज्याकिणाङ्कैरगणितरिपुभिः कङ्कटोन्मुक्तदेहैः

श्लिष्टान्योन्यातपत्रैः सितकमलवनभ्रान्तिमुत्पादयद्भिः ।

रेणुग्रस्तार्कभासां प्रचलदसिलतादन्तुराणां बलाना-

माक्रान्ता भ्रातृभिर्मै दिशि दिशि समरे कोटयः संपतन्ति ॥२७॥

तस्य, अस्य = अर्जुनस्य, आत्मवधः = निजमरणम् ॥

राजा इति । आनन्दस्थाने = हर्षस्थाने, विषादेन = खेदेन । उत्सन्नः = विनष्टः । कुरुशतपरिवार-
वर्धितमहिम्नः—कुरूणाम् = कौरवाणाम् शतम् = शशावयवः समुदायः स एव परिवारः = बान्धवः तेन
वर्धितः = वृद्धिङ्गतः महिमा = महत्त्वम् यस्य तस्य, कृपकर्णद्रोषाश्वत्थामादिभिः महारथैः = “एको
दशसहस्राणि योध्येद्यस्तु धन्विनाम् । शस्त्रशास्त्रप्रवीणश्च विशेषः स महारथः ॥” इति लक्षणयुक्तैः वीरैः
द्विगुणीकृतः = द्विगुणत्वं प्रापितः निरावरणः = आवरणशून्यः, जगद्धिदित इत्यर्थः, विक्रमः = पराक्रमः
यस्य तस्य, तनयस्य = पुत्रस्य, नामापि ग्रहीतुम् = अन्यद् वधादिकं तु दूरे तिष्ठतु नामग्रहणमपि दुष्कर
मिति भावः । सुतपराक्रमानभिज्ञे—सुतस्य = पुत्रस्य पराक्रमः = विक्रमः तस्य अनभिज्ञा तत्सम्बुद्धौ ॥

अन्वयः—धर्मात्मजम्, च, यमौ, प्रति, कथा, एव, न, अस्ति; वृकोदरकिरीटभृतोः, मध्ये, एकः,
अपि, कः, विस्फुरितमण्डलचापचक्रम्, सिन्धुराजम्, बलेन, अभिषेणयितुम् समर्थः ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—धर्मात्मजम् = युधिष्ठिर, च = तथा, यमौ = जुहुओं (नकुल और सहदेव) के,
प्रति = प्रति, कथा = कहना, एव = ही, न = नहीं, अस्ति = है; वृकोदरकिरीटभृतोः = भीम तथा
अर्जुन के, मध्ये = बीच में, एकः = एक, अपि = भी, कः = कौन, विस्फुरितमण्डलचापचक्रम् = धूमते
हुए गोलकार धनुर्मण्डलवाले, सिन्धुराजम् = जयद्रथ पर, बलेन = बलपूर्वक, अभिषेणयितुन् = आक्रमण
करने में, समर्थः = समर्थ है ? ॥ २६ ॥

धर्मात्मजमिति । धर्मात्मजम् = धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्, च = तथा, यमौ = युग्मौ, सहजातौ, नकुल-
सहदेवौ इत्यर्थः, प्रति, कथा = कथनम्, एव = हि, न = नहि, अस्ति = वर्तते; तान् प्रति न वर्तते
काऽपि चिन्तेत्यर्थः; वृकोदरकिरीटभृतोः = भीमार्जुनयोः मध्ये, एकः अपि कः = कतरः इत्यर्थः,
विस्फुरितमण्डलचापचक्रम्—विस्फुरितम् = चञ्चलम् मण्डलम् = वर्तुलाकारम् यस्य एतादृशं चाप-

युधिष्ठिर तथा जुहुओं (नकुल और सहदेव) के प्रति कहना ही नहीं है (अर्थात् युधिष्ठिर, नकुल तथा सहदेव की तो कोई चिन्ता ही नहीं है) । भीम और अर्जुन के बीच में एक भी कौन (व्यक्ति) घूमते हुए गोलाकार धनुर्मण्डल वाले जयद्रथ पर बलपूर्वक आक्रमण करने में समर्थ है ? (अर्थात् कोई भी नहीं समर्थ है) ॥ २६ ॥

भानुमती—आर्यपुत्र, यद्यपि यह बात सही है; तो भी कौन गयो प्रतिज्ञा के भारी भार वाला अर्जुन निश्चय ही शङ्का की जगह है ।

माता—बेटी, तुम्हारे द्वारा ठीक (एवं) समयोचित (बात) कही गयी है ।

राजा—आह, (जगदिदित) दुर्योधन के लिए भी पाण्डव लोग शंका की जगह हैं ?

धनुष की डोरी की रगड़ से पड़ने वाले घट्टे (चिह्न) से युक्त, शत्रुओं की परवाह न करने वाले, (अतः) कवच (Armour) से रहित शरीर वाले, परस्पर सटे हुए राजच्छत्रों से श्वेत कमलों की शङ्का को उत्पन्न करने वाले मेरे भाइयों के द्वारा, धूलि से सूर्य को प्रभा को ढक लेने वाला, चलती हुई खड्ग-लताओं से विकराल; सेनाओं की कोटि संख्याएँ, सञ्चालित होकर चारों ओर आक्रमण कर रही हैं ॥ २७ ॥

चक्रम् = धनुर्मण्डलम् यस्य तम्, सिन्धुराजम् = सिन्धुदेशाधिपतिम्, जयद्रथमित्यर्थः, बलेन = सहसा, अभिषेणयितुम् = सेनाया आक्रमितुम्, समर्थः = शक्तः ? न कतरोऽपि समर्थोऽतः न कापि चिन्तेति भावः । वसन्ततिलका छन्दः ॥ २६ ॥

भानुमतीति । एवम् = भवत्कथनं समीचीनम्, गुरुकृतप्रतिशमारः—गुरुः = महान् कृतः = विहितः, स्वीकृत इति यावत्, प्रतिशयाः = प्रणस्य भावः = भरः येन तादृशः, स्थानम् = कारणम् ॥

अन्वयः—कोदण्डज्याकिणाङ्कैः, अगणितरिपुभिः, कङ्कटोन्मुक्तदेहैः, श्लिष्टान्योन्यातपत्रैः, सित-कमलवनभ्रान्तिम्, उत्पादयद्भिः, मे, भ्रातृभिः, रेणुग्रास्तार्कमासाम्, प्रचलिदसिलतादन्तुराणाम्, बलानाम्, कोटयः, आक्रान्ताः, (सत्यः), दिशि-दिशि, सम्पतन्ति ॥ २७ ॥

शब्दार्थः—कोदण्डज्याकिणाङ्कैः = धनुष की डोरी की रगड़ से पड़ने वाले घट्टे (चिह्न) से युक्त, अगणितरिपुभिः = शत्रुओं की परवाह न करने वाले, कङ्कटोन्मुक्तदेहैः = कवच से रहित शरीर वाले, श्लिष्टान्योन्यातपत्रैः = परस्पर सटे हुए राजच्छत्रों से, सितकमलवनभ्रान्तिम् = श्वेत कमलों की शङ्का को, उत्पादयद्भिः = उत्पन्न करने वाले, मे = मेरे, भ्रातृभिः = भाइयों के द्वारा, रेणुग्रास्तार्कमासाम् = धूलि से सूर्य को प्रभा को ढक लेने वाला, प्रचलिदसिलतादन्तुराणाम् = चलती हुई खड्ग लताओं से विकराल, बलानाम् = सेनाओं की, कोटयः = कोटि संख्याएँ, आक्रान्ताः सत्यः = अश्रिष्ट हो कर, सञ्चालित हो कर, दिशि दिशि = चारों ओर, सम्पतन्ति = आक्रमण कर रही हैं ॥ २७ ॥

अत्र दुर्योधनः स्वकीयं पराक्रमं वर्णयति—कोदण्डेति । कोदण्डज्याकिणाङ्कैः—कोदण्डस्य = विशालस्य धनुषः ज्यायाः = प्रत्यङ्गायाः किणानाम् = धर्षणजन्यव्रणानाम् अङ्कः चिह्नं येषां तैः, अगणित-रिपुभिः—अगणिताः = अविशताः, तुच्छप्रायविशता इत्यर्थः, रिपवः = शत्रवः यैः तादृशैः, कङ्कटोन्मुक्त-देहैः—कङ्कटेन = कवचेन उन्मुक्ताः = विरहिताः देहाः = शरीराणि येषां तैः, पतेन शत्रूणाम्-

अपि च मानुमति विज्ञातपाण्डवप्रभावे, किं त्वमप्येवमाशङ्कसे । पश्य—

दुःशासनस्य हृदयक्षतजाम्बुपाने

दुर्योधनस्य च यथा गदयोरुभङ्गे ।

तेजस्विनां समरमूर्धनि पाण्डवानां

ज्ञेया जयद्रथवधोऽपि तथा प्रतिज्ञा ॥२८॥

कः कोऽत्र भोः । जैत्रं मे रथमुपकल्पय तावत् । यावद्दहमपि तस्य प्रगल्भपाण्डवस्य
जयद्रथपरिरक्षणेनैव मिथ्याप्रतिज्ञावैलक्ष्यसंपादितमशस्त्रपूतं मरणमुपदिशामि ।
(प्रविश्य)

कञ्चुकी—देव,

उद्धातववणितविलोलहेमघण्टः

प्रालम्बद्विगुणितचामरप्रहासः ।

सञ्जोऽयं नियमितवल्गिताकुलाश्वः

शत्रूणां क्षपितमनोरथो रथस्ते ॥२९॥

किञ्चित्करत्वं प्रतिपादितम्, श्लिष्टान्योन्यातपत्रैः—श्लिष्टानि=परस्परं मिलितानि अन्योन्यानि
आतपत्राणि=छत्राणि येषां तैः, अतः सितकमलवनभ्रान्तिम्—सितानाम्=श्वेतानाम् कमलानाम्=
जलजानाम् भ्रान्तिम्=आशङ्काम्, उत्पादयद्भिः=जनयद्भिः, मे=मम, भ्रातृभिः=अनुजैः,
रेणुग्रस्तार्कभासाम्—रेणुभिः=वेगेन चलनादुत्पत्तितैः धूलिभिः ग्रस्ता=आच्छादिता अर्कस्य=सूर्यस्य
भाः=आभा यैः तानि तेषाम्, प्रचलितसिलतादन्तुराणाम्—प्रचलन्त्यः=विस्फुरन्त्यः असिलताः=
खड्गवल्लर्यः तामिः दन्तुराणि=निम्नोन्नतानि, भोषणनोति यावत्, तेषाम्, बलानाम्=मम
सैन्यानाम्, कोटयः=कोटिसंख्याः, कोटिसंख्याविशिष्टानि सैन्यानोत्थर्यः, आक्रान्ताः=अधिष्ठिताः
सञ्चालिता इति यावत्, सत्यः, दिशि-दिशि=प्रतिदिशम्, सम्पतन्ति=शत्रुसैन्येषु आक्रमणं कुर्वन्ति ।
अत्र केचन—मम भ्रातृभिः बलानाम्=शत्रुसैन्यानां कोटयः आक्रान्ताः सत्यः=अभिभूताः सत्यः दिशि
दिशि, सम्पतन्ति=पलाय्य गच्छन्तीत्यर्थं कुर्वन्ति । स्रग्धरा छन्दः ॥ २७ ॥

अन्वयः—दुःशासनस्य, हृदयक्षतजाम्बुपाने, च, गदया, दुर्योधनस्य, ऊरुभङ्गे, तेजस्विनाम्,
पाण्डवानाम्, यथा प्रतिज्ञा, तथा, समरमूर्धनि, जयद्रथवधे, अपि, ज्ञेया ॥ २८ ॥

शब्दार्थः—दुःशासनस्य=दुःशासन के, हृदयक्षतजाम्बुपाने=वक्षःस्थल के रक्तरूपी जल के पीने
के विषय में, च=तथा, गदया=गदा से, दुर्योधनस्य=दुर्योधन की, ऊरुभङ्गे=जोंघें तोड़ने के विषय में,
तेजस्विनाम्=तेजस्वी, पाण्डवानाम्=पाण्डवों की, यथा=जैसी, प्रतिज्ञा=प्रतिज्ञा (पूर्ण हुई),
तथा=वैसी ही, समरमूर्धनि=समराङ्गण में, जयद्रथवधे=जयद्रथ के वध के विषय में, अपि=भी,
ज्ञेया=समझनी चाहिए ॥ २८ ॥

दुःशासनस्येति । दुःशासनस्य=द्रौपदीवस्त्राकर्षकस्य ममानुजस्य, हृदयक्षतजाम्बुपाने—
हृदयस्य=वक्षःस्थलस्य क्षतजम्=क्षतात् जातं रक्तम् एव अम्बु=जलम् तस्य पानम्=आचमनम्

द्वितीयोऽङ्कः

९५

और पाण्डवों के प्रभाव को जानने वालों हे मानुमति, क्या तुम भी इस तरह की आशङ्का करती हो ? देखो—

दुःशासन के वक्षःस्थल के रक्तरूपी जल के पीने के विषय में तथा गदा से दुर्योधन की जाँवे तोड़ने के विषय में तेजस्वी पाण्डवों को जैसी प्रतिज्ञा (पूर्ण हुई) वैसी ही समराङ्गण में जयद्रथ के वक्ष के विषय में भी समझनी चाहिए (अर्थात् जैसे पहले की कतिपय प्रतिज्ञायें नहीं पूर्ण हुई उसी तरह यह भी नहीं पूर्ण हो सकेगी) ॥ २८ ॥

कौन-कौन, यहाँ (है) जी ? शीघ्र मेरे जयशील रथ को तैयार करो । जब तक मैं भी उस धृष्ट पाण्डव का, एकमात्र जयद्रथ की रक्षामात्र से ही, झूठी प्रतिज्ञा के कारण होने वाली लज्जा से किये गये (अतः) शस्त्र (के प्रहार) से पवित्र न हुए मरण का उपदेश देता हूँ ।

विशेष-अशस्त्रपूतम्—अत्रियों के लिए संग्राम में अस्त्र-शस्त्र के प्रहार से बाधित हो कर मरना ही पवित्र मरण है । यदि आयुध-प्रहार के बिना ही उनको मृत्यु हुई तो वह अपवित्र मृत्यु समझी जाती थी । अर्जुन प्रतिज्ञा पूरी न होने पर चिन्ता में जल मरेगा । अतः उसकी यह मृत्यु शस्त्र न लगने के कारण अपवित्र कही जा रही है ।

(प्रवेश करके)

कंचुकी—महाराज,

उछलने के कारण बजती हुई चञ्चल सुवर्ण-वण्टियाँ से युक्त, लटकती हुई पुष्प की मालाओं से दूना किया गया चामर का हास (ध्वलिमा) वाला, नियन्त्रित चञ्चल घोड़ों से युक्त, शत्रुओं के मनोरथ को निष्फल कर देने वाला यह आपका रथ तैयार (है) ॥ २९ ॥

तस्मिन्, च = तथा, गदया = शस्त्रविशेषण, दुर्योधनस्य = ममेत्यर्थः, ऊरुमङ्गे—ऊर्वोः = जङ्घयोः मङ्गे = विदारणे, तेजस्विनाम् = तेजःशालिनाम्, तेजशून्यानामिति वक्तुरभिप्रायः, पाण्डवानाम् = पाण्डुपुत्राणाम्, यथा = यादृशी, प्रतिज्ञा = प्रणः, (पूर्णा = सम्पन्ना), तथा = तेनैव प्रकारेण, समरमूर्धनि = समराङ्गणे, जयद्रथवधे = जयद्रथविनाशविषये, अपि = च, शेषा = बोद्धव्या । यथा भीमेन दुःशासनस्य हृदयरक्तपाने तथा ममोरुमङ्गे च कृता प्रतिज्ञा निष्फला अस्ति तथैवेयमपि वन्ध्या विशेषा । वसन्ततिलका छन्दः ॥ २८ ॥

काः कोऽनेति । उपकल्पय = सज्जो कुरु । मिथ्याप्रतिज्ञावैलक्ष्यसम्पादितम्—मिथ्या = विफलीकृता या प्रतिज्ञा तथा जनितं यद् वैलक्ष्यम् = लज्जा तेन सम्पादितम् = कृतम्, अशस्त्रपूतम्—शस्त्रेण = युद्धे महरणेन पूतम् = पवित्रम् शस्त्रपूतं न शस्त्रपूतम् अशस्त्रपूतम्, अत्रियाणां युद्धमरणं सर्वाधिकं पवित्रं निगदितम् ॥

अन्वयः—उद्धातव्यपिणितविलोहमेवघण्टः, प्रालम्बद्विगुणितचामरप्रहासः, नियमितवल्गिताकुलाश्वः, पात्राणाम्, क्षपितमनोरथः, अयम्, ते, रथः, सज्जः, (वर्तते) ॥ २९ ॥

शब्दार्थः—उद्धातव्यपिणितविलोहमेवघण्टः = उछलने के कारण बजती हुई चञ्चल सुवर्ण वण्टियों युक्त, प्रालम्बद्विगुणितचामरप्रहासः = लटकती हुई पुष्प की मालाओं से दूना किया गया चामर का

राजा—देवि, प्रविश स्वमभ्यन्तरमेव । ('यावदहमपि तस्य प्रगल्भपाण्डवस्य' इत्यादि पठन् परिक्रामति) ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

* इति द्वितीयोऽङ्कः *

हास (धवलिमा) वाला, नियमितवल्गिताकुलाश्च = नियन्त्रित चञ्चल घोड़ों से युक्त, शत्रूणाम् = शत्रुओं के, क्षपितमनोरथः = मनोरथ को निष्फल कर देने वाला, अयम् = यह, ते = आपका रथः = रथ, सज्जः = तैयार, (वर्तते = है) ॥ २६ ॥

सज्जं रथं वर्णयति—उद्धातेति । उद्धातव्रणितविलोलहेमघण्टः—उद्धातैः = आघातैः व्रणिताः = क्षण-क्षणायमानाः विलोलाः = चञ्चलाः हेमन्तः = सुवर्णस्य घण्टाः = क्षुद्रघण्टिकाः इत्यर्थः यस्य सः प्रालम्बद्विगुणितचामरप्रहासः—प्रालम्बेन = श्रवलम्बमानेन पुष्पदाम्ना द्विगुणितः = द्विगुणीकृतः, वृद्धि प्रापितः इत्यर्थः, चामराणाम् = प्रकीर्णकानाम् ('चामरं तु प्रकीर्णकम्' इत्यमरः) प्रहासः = श्वेतकान्तिः, साहित्ये हासस्य शुक्लवर्णत्वादत्र प्रहासपदेन शोक्त्यकथनं बोध्यम्, यस्य सः, नियमि-

राजा—महारानी, आप भीतर ही जाओ । ('जब तक मैं भी उस धृष्ट पाण्डव के' श्रृयादि पढ़ता हुआ घूमता हूँ) ।

(इस प्रकार सभी निकल जाते हैं)

॥ द्वितीय अङ्क समाप्त ॥

तवलिङ्गिताकुलाश्वः—तियमिताः=नियन्त्रिताः वलिङ्गतेन=गतिविशेषेण आकुलाः=अतिचञ्चलाः
अश्वाः=हयाः यत्र सः, शत्रूणाम्=रिपूणाम्, क्षपितमनोरथः—क्षपिताः=विताशिताः मनोरथाः=
अभिलाषाः येन सः, पतादृशः, अयम्=एषः, ते=तव, रथः=स्यन्दनम्, सज्जः=सन्नद्धः, वर्तते
इति शेषः । प्रहृषिणो छन्दः । तल्लक्षणं यथा—व्याशाभिर्मानजरगाः प्रहृषिणीयम् ॥२९॥

इति निष्क्रान्ताः सर्वे । पात्राणां रङ्गमञ्चात् बहिर्गमनमङ्कसमाप्तिस्त्वकमिति ॥

॥ इति श्रीरमाशङ्करत्रिपाठिरचितायां वेणीसंहारव्याख्यायां

रमाख्यायां द्वितीयोऽङ्कः ॥

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विकृतवेषा राक्षसी)

राक्षसी—(विकृतं विहस्य । सपरितोषम्)

हतमानुषमांसभारके कुम्भसहस्रवसाभिः संचिते ।

अनिशं च पिबामिः शोणितं वर्षशतं समरो भवतु ॥१॥

(नृत्यन्तो सपरितोषम्) यदि सिन्धुराजवधदिवस इव दिवसे-दिवसे समरकर्म प्रतिपद्यतेऽनुनस्ततः पर्याप्तभरितकोष्ठागारं मांसशोणितैर्मै गृहं भविष्यति । (परिक्रम्य दिशोऽवलोक्य) अथ क्व नु खलु रुधिरप्रियो भविष्यति । तद्यावदेतस्मिन्समरे प्रियभर्तारं रुधिरप्रियमन्वेषयामि । (परिक्रम्य) भवतु । शब्दायिष्ये तावत् । अरे रुधिरप्रिय, इत एहि, इत एहि ।

[हृदमाणुशमंशमालप कुम्भशहस्रवसाहिं शंचिप ।

अपिशं अ पिबामि शोणितं वलिशशद शमले हुवीअदु ॥१॥

जइ शिन्धुलाअवहदिअइे विअ दिअइ-दिअइे शमलकम्म पडिवज्जइ अज्जुण तदो पज्जत्तमल्लि कोटागाले मंशशोणिएहि मे गेहे हुवीअदि । अह कहि णु वखु लुहिलपिए हुवीअदि । ता बा इमरिश शमले पिअभत्तालं लुहिलपिए अण्णेशामि । होदु । शहावइशं दाव । अले लुहिलपिए लुहिलपिआ इदो एहि इदो एहि ।]

(ततः प्रविशति तथाविधो राक्षसः)

राक्षसः—(अमं नाटयन्)

प्रत्यग्रहतानां मांसं यद्युष्णं रुधिरं च लभ्येत ।

तदेष मम परिश्रमः क्षणमात्रमेव लघु नश्येत् ॥२॥

[पच्चगहदाणं मंशए जइ उण्हे लुहिले अ लब्भइ ।

ता एशो मह पलिशशमे कखणमेत्तं एव्व लडु णइइ ॥२॥

(राक्षसी पुनर्व्याहरति)

अन्वयः—हतमानुषमांसभारके, कुम्भसहस्रवसाभिः, साञ्चिते, (सति), अनिशम्, शोणितं पिबामि, समरः, वर्षतम्, भवतु ॥ १ ॥

शब्दार्थः—हतमानुषमांसभारके=सारे गये मनुष्यों के मांस की राशि के, कुम्भसहस्रवसाभिः=हजारों घड़े चबों के साथ, साञ्चिते (सति)=इकट्ठा हो जाने पर, अनिशम्=दिन-रात, शोणितम्

तृतीय अंक

(तदनन्तर विवृतवेषवाली राक्षसी प्रवेश करती है) ।

राक्षसी—(भयङ्कर हँसी हँस कर, पूर्ण सन्तोष के साथ) ।

मारे गये मनुष्यों के मांस की राशि के हजारों ढेड़े, चर्बों के साथ शकट्टा हो जाने पर (मैं) दिन-रात रक्त पी रही हूँ । (यह) युद्ध सैकड़ों वर्ष तक चलता रहे ॥१॥

(नाचती हुई, पूर्ण सन्तोष के साथ) यदि सिन्धुराज (जयद्रथ) के वध के दिन की तरह अर्जुन प्रतिदिन संग्राम करे, तो मेरा घर मांस तथा रुधिर से भरे-पूरे कुठिलों वाला (with store rooms) हो जायगा । (धूमकर, चारों ओर देख कर) अच्छा, रुधिरप्रिय कहाँ होगा ? तो सम्प्रति इसे युद्ध-क्षेत्र में (अपने) प्रिय पति रुधिरप्रिय को खोजूँगी । (धूम कर) ठीक है । पुकारती हूँ । अरे रुधिरप्रिय, रुधिरप्रिय, श्वर आओ, श्वर आओ ।

(तदनन्तर उसी प्रकार का राक्षस प्रवेश करता है) ।

राक्षस—(यकान का अभिनय करते हुये) ।

यदि तत्काल मारे गये (व्यक्तियों) का मांस और गरम रक्त मिल जाय तब मेरी यकावट क्षण-मर में ही अतिशोघ्र विनष्ट हो जाय ॥ २ ॥

(राक्षसी फिर से पुकारती है)

रक्त, पिबामि = पी रही हूँ; समरः = युद्ध, वर्षशतम् = सैकड़ों वर्ष तक, भवतु = चलता रहे ॥१॥

महामारतसंग्रामस्य विमोषिकामुपपादयितुं राक्षस्याः प्रवेशः—**हतामानुषेति** । हतमानुषमां समारके—हताः = युद्धे मारिता ये मानुषाः—मनुष्याः तेषां मांसस्य मारः = विशालः समवायः एव मारकः तस्मिन्, कुम्भसहस्रवसाभिः = कुम्भसहस्रेषु पूरिताः वसाः = वपाः ('हन्मेदस्तु वपा वसा, इत्यमरः) तामिः, सञ्चित्वे सति, अनिशम् = रात्रिन्दिवम्, शोणितम् = रक्तम्, पिबामि = पानं करोमि, अहमिति शेषः, अतः समरः = सङ्ग्रामः, वर्षशतम् = शतसंख्यापरिमितानि वर्षाणि यावत् भवतु = प्रचलतु । अनेन जयद्रथवधदिवसे भीषणः युद्धः सञ्जात इति सूचितम् ॥१॥

अन्वयः—यदि, प्रत्यग्रहतानाम्, मांसम्, च, उष्णम्, रुधिरम्, लभ्येत; तदा मम, एषः, परिश्रमः, क्षणमात्रम्, एव, लघु, नश्येत् ॥२॥

शब्दार्थः—यदि = यदि, प्रत्यग्रहतानाम् = तत्काल मारे गये (व्यक्तियों) का, मांसम् = मांस, च = तथा, उष्णम् = गरम, रुधिरम् = रक्त, लभ्येत = मिल जाय, तदा = तब, मम = मेरी, एषः = यह, परिश्रमः = यकावट, क्षणमात्रम् = क्षणमर में, एव = ही, लघु = अतिशोघ्र, नश्येत् = विनष्ट हो जाय ॥ २ ॥

वेणीसंहारे

राक्षसः—(आकर्ष्य) अरे कैषा मां शब्दायते । (विलोक्य) कथं प्रिया वसागन्धा ।
(उपसृत्य) वसागन्धे, कस्मान्मां शब्दायसे । [अले के एशे मं शब्दावेदि । कहं पिआ मे
वसागन्धा । वसागन्धे कीश मं शब्दावेशि ।]

रुधिरासवपानमत्तिके रणहिण्डनस्खलद्गात्रिके ।

शब्दायसे कस्मान्मां प्रिये पुरुषसहस्रं हतं श्रूयते ॥३॥

लुहिलाशवपाणमत्तिके रणहिण्डन्तस्खलन्गतिं ।

शद्वाअशि कीश मं पिए पुलिशशहरं हद शुणोअदि ॥३॥

राक्षसी—अरे रुधिरप्रिय, इदं खलु मया तव कारणात्प्रत्यग्रहतस्य कस्यापि
राजर्षेः प्रभूतवसास्नेहचिक्कणं कोष्णं नवरुधिरमग्रमांसं चानीतम् । तत्पिचैतत् ।
[अले लुहिलपिआ, इदं खु मए तुह कालपादो पच्चगहदरश कश्शवि लाएशिणो प्पह्दवशाशिणेह-
चिक्कणं कोण्हं पावलुहिलं अगमंशं अ आणीदम् । ता पिवाहि णम् ।]

राक्षसः—(सपरितोषम्) साधु, वसागन्धे, साधु । शोभनं त्वया कृतम् । बलवदस्मि
पिपामितः । तदुपनय । [शाडु वशागन्धे शाडु । शोहणं तुए किदं । वलिअस्मि पिवाशिण ।
ता उवणेह ।]

राक्षसी—अरे रुधिरप्रिय, ईदृशे हतनरगजतुरङ्गमशोणितवसासमुद्रदुःसंचरे समराक्षणे
परिभ्रमस्त्वं पिपासितोऽसीत्याश्रयं माश्रयंम् । [अले लुहिलपिआ, एदिशे हदणलगमतुलङ्गम-
शोपिअवशाशमुदुदुशं चले शमलेङ्गणे पडिअमन्ते तुमं पिवाशिणंशित्ति अच्चलिअं अच्चलिअम् ।]

राक्षसः—अयि सुस्थिते, ननु पुत्रशोकसंतसहृदयां स्वामिनीं हिडिम्बादेवीं प्रेक्षितुं
गतोऽस्मि । [अइ शुयिदे, पं पुत्तशोअशनत्तहिअअं शामिणीं हिडिम्बादेवीं पेकिखदुं गरद्धि ।]

राक्षसी—रुधिरप्रिय, अद्यापि स्वामिन्या हिडिम्बादेव्या घटोत्कचशोको नोपशाम्यति ।
[लुहिलपिआ, अज्जवि शामिणीए हिडिम्बादेवीए घडुक्कअशोए एण उपशमइ ।]

राक्षसः—वसागन्धे, कुतोऽस्या उपशमः । केवलममिमन्युवधशोकसमानदुःखया
सुमद्रादेव्या याज्ञसेन्या च कथं कथमपि समाश्वास्यते । [वशागन्धे, कुदो शे उवशमे ।
केवलं अहिमणुवहशोअशमाणदुक्खाए शुमद्रादेवीए जण्णशेणीए अ कथं कथं वि शमाशशाशीअदि ।]

प्रत्यग्रेति । यदि = चेत्, प्रत्यग्रहतानाम्—प्रत्यग्रम् = तत्कालम् हतानाम् = मारितानाम्,
मांसम् = पशितम्, च = तथा, उष्णम् = तप्तम्, रुधिरम् = रक्तम्, लभ्येत = प्राप्येत, तदा = ततः,
मम = रुधिरप्रियस्य, एषः = अयम्, परिभ्रमः = भ्रान्तिः, क्षणमात्रम् = क्षणितम्, एव = च, लघु =
अतिशोघ्रम्, अनायासमिति यावत्, नश्येत् = क्षयमियात् ॥ २ ॥

अन्वयः—रुधिरासवपानमत्तिके, रणहिण्डनस्खलद्गात्रिके, प्रिये, कस्मात्, माम्, शब्दायसे
पुरुषसहस्रम्, हतम्, श्रूयते ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—रुधिरासवपानमत्तिके = रुधिररूपी मदिराके पानसे मतवाली, रणहिण्डनस्खलद्गात्रिके
= युद्धस्थलमें भ्रमण के कारण शिथिल अङ्गवाली, प्रिये = प्रेयसि, कस्मात् = किस लिए, माम् =

राक्षस—(सुन कर) अरे, यह कौन (स्त्री) मुझे पुकार रही है ? (देख कर) क्या मेरी प्रिया वसागन्धा (है) ? (पास में जाकर) वसागन्धे, किस लिये मुझे पुकार रही हो ?

रुधिररूपी मदिराके पानसे मतवाली, युद्ध-स्थल में भ्रमण के कारण शिथिल अङ्गवाली, प्रेयसि, किसलिये मुझे पुकार रही हो ? (आज) हजार पुरुषों का समूह मारा गया सुना जा रहा है ॥३॥

राक्षसी—अरे रुधिरप्रिय, यह मैं तुम्हारे लिए अभी-अभी मारे गये किसी राजर्षिके अत्यधिक चर्बी के तेल से चिकने तथा कुछ-कुछ गरम ताजे रक्त तथा उत्तम मांस को लाई हूँ । तो इसे पी लो ।

राक्षस—(पूर्ण सन्तोष के साथ) वाह, वसागन्धे, वाह ! बहुत अच्छा तुमने किया । बहुत ही अधिक प्यासा हूँ । तो लाओ ।

राक्षसी—अरे रुधिरप्रिय, मारे गये मनुष्यों, हाथियों तथा घोड़ों के रक्त तथा चर्बी के समुद्र (अधिक) के कारण दुर्गम समराङ्गण में घूमते हुए (भी) तुम प्यासे हो यह आश्चर्य है, आश्चर्य है ।

राक्षस—अरी निश्चिन्त, (मारे गये) पुत्र के शोक से सन्तप्त हृदयवाली स्वामिनी हिडिम्बा देवीको देखने के लिये गया था ।

राक्षसी—रुधिरप्रिय, आज भी स्वामिनी हिडिम्बा देवी का (अपने पुत्र) घटोत्कचविषयक शोक शान्त नहीं हो रहा है ?

विशेष—हिडिम्बादेव्या घटोत्कचशोकः—हिडिम्बा एक विदुषी, बुद्धिमती तथा बलशालिनी राजसी थी । भीम ने उससे विवाह किया था । उसे भीम से उत्पन्न एक पुत्र था । जिसका नाम था घटोत्कच । भगवान् श्रीकृष्ण ने कुचक्र रचकर कर्ण के अमोघ तथा केवल एकबार ही चलनेवाली शक्ति से उसका वध करा दिया था ।

राक्षस—वसागन्धे, कहाँ से इसकी शान्ति होगी ? (वे) अभिमन्यु के वध से होनेवाले शोक के कारण समान दुःखवाली महारानी सुमद्रा तथा द्रौपदी के द्वारा किसी-किसी तरह केवल ढाढस बँधाई जा रही हैं—

मुझे, शब्दायसे=पुकार रही हो ? पुरुषसहस्रम्=हजार पुरुषों का समूह, हतम्=मारा गया, श्रूयते=सुना जा रहा है ॥३॥

रुधिरासवेति । रुधिरासवपानमत्तिके—रुधिरम्=रक्तम्=एव आसवः मधम् तस्य पानेन=आचमनेन, पानकर्मणेत्यर्थः, मत्ता=उन्मत्ता एव मत्तिका तत्सम्बुद्धौ, रणहिण्डनस्खलद्गात्रिके—रणे=युद्धस्थले हिण्डनेन=इतस्ततः सञ्चरणेन स्खलन्ति=श्लथानीत्यर्थः गात्राणि=शरीरावयवाः यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ, प्रिये=प्रेयसि, कस्मात्=केन हेतुना, माम्=रुधिरप्रियम्, शब्दायसे=आह-यसि ? अद्येत शेषः, पुरुषसहस्रम्—पुरुषाणाम्=मानवानाम् सहस्रम्=सहस्रसंख्याकः समवाय इत्यर्थः, हतम्=विनाशितम्, श्रूयते=आकर्ण्यते ॥३॥

राक्षस इति । शोभनम्=सुन्दरम् । बलवत्=अत्यधिकम्, पिपासितः=जलामितापी ॥

राक्षसाति । हतनरेत्यादिः—हतानाम्=विनाशितानाम् नरगजतुरङ्गमाणां मानवहस्त्यश्वानाम् शोषितवसयोः=रक्तवसयोः समुद्रेण=सागरेण, बाहुल्येनेति यावत्, दुःसञ्चरे=दुर्गमे, समराङ्गणे=युद्धस्थले ॥

राक्षस इति । पुत्रशोकसन्तप्तहृदयाम्—पुत्रस्य=सुतस्य शोकेन=शुचा सन्तप्तम्=दग्धम्

राक्षसी—रुधिरप्रिय, गृहाणैतद्धस्तिशिरःकपालसंचितमग्रमांसोपदंशम् । पिब शोषितासवम् । [लुहिलप्पिआ, गेण्ह पदं हत्थिशिलक्कवालशंचिअं अग्गमंशोवदंशम् । पिवाहि शोषिआशवम् ।]

राक्षसः—(तथा कृत्वा) वसागन्धे, अथ कियत्प्रभूतं त्वया संचितं रुधिरमग्रमांसं च । [वशागन्धे, अह किअप्पहूदं तुए शंचिअं लुहिलं अग्गमंशं अ ।]

राक्षसी—अरे रुधिरप्रिय, पूर्वसंचितं जानास्येव त्वम् । नवसंचितं शृणु तावत् । भगदत्तशोणितकुम्भः सिन्धुराजवसाकुम्भौ द्वौ द्रुपदमत्स्याधिपभूरिश्रवःसोमदत्तबालही-कप्रमुखाणां नरेन्द्राणामन्येषामपि प्राकृतपुरुषाणां रुधिरवसामांसस्य घटा अपिनद्धमुखाः सहस्रसंख्याः सन्ति मे गेहे । [अले लुहिलप्पिआ, पूर्वशंचिअ जाणाशि जेव्व तुमं । नवशंचिअं शिणु दाव । भमदत्तशोणिअकुम्भे शिन्धुआवशाकुम्भे दुवे दुवदमच्छाहिक्कमूलिस्सवशोमदत्तवस्सी-अप्पमुहाणं पल्लिन्दारणं अण्णणं वि प्पाकिदपुलिशाणं लुहिलवशामंशस्स घटा अपिणद्धमुहा शहस्स-शङ्का सन्ति मे गेहे ।]

राक्षसः—(सपरितोषमालिङ्ग्य) साधु सुगृहिणि साधु । अनेन ते सुगृहिणीत्वेनाद्य पुनः स्वामिन्याः संविधानेन च प्रनष्टं मे जन्मदारिद्र्यम् । [शाहु शुक्कलिणीए शाहु । इमिणा दे शुक्कलिणित्तणेण अज्ज उण शामिणीए हिडिम्बादेवीए शंविहाणेण अ प्पण्हं मे जन्मदालिदम् ।]

राक्षसी—रुधिरप्रिय, कीदृशं स्वामिन्या सविधानं कृतम् ।

[लुहिलप्पिआ, केशिसे शामिणीए शंविहाणेण किदे ।]

राक्षसः—वसागन्धे, अद्य खल्वहं स्वामिन्या हिडिम्बादेव्या सबहुमानं शब्दा-
व्यऽऽज्ञसः—यथा रुधिरप्रिय, सद्यप्रभृति त्वया आर्यपुत्रस्य भीमसेनस्य पृष्ठतोऽनुपृष्ठं समर आहिण्डितव्यमिति । तत्तस्यानुमार्गगामिनो हतमानुषशोणितनदीदर्शनप्रनष्ट-बुभुक्षापिपासस्यैव मे स्वर्गलोको भविष्यति । त्वमपि विस्त्रब्धा भूत्वा रुधिरवसामिः कुम्भसहस्रं संचिनु । [वशागन्धे, अज्ज क्खु हगे शामिणिए हिडिम्बादेवीये शब्बुमाणं शब्बाविअ आणत्ते जह लुहिलप्पिआ अजप्पहुदि तुए अज्जउत्तस्स भीमशेणस्स पिट्ठोणुपिट्ठं शमले आहिण्डितव्वं ति । ता तस्स अणुमग्गगामिणो हअमाणुशशोणिअणस्सदंशणप्पण्हउबुक्खापिवाशस्स इह ऐव्व मे शग्गलोओ हुवीअदि । तुमं वि वीशद्धा भविअ लुहिलवशाहि कुम्भशहस्सं शंचेहि ।]

राक्षसी—रुधिरप्रिय, किंनिमित्तं कुमारभीमसेनस्य पृष्ठतोऽनुपृष्ठमाहिण्डयते । [लुहिलप्पिआ, किंणिमित्तं कुमालभीमशेणस्स पिट्ठोणुपिट्ठं आहिण्डीअदि ।]

राक्षसः—वसागन्धे, तेन हि स्वामिना वृकोदरेण दुःशासनस्य रुधिरं पातुं प्रतिज्ञातम् । तच्चास्माभौ राक्षसैरनुप्रविश्य पातव्यमिति । [वशागन्धे, तेण हि शामिणा विअोदलेण दुस्साशणस्स लुहिलं पादुं पाडण्णादम् । तं च अल्लोहि लक्खसेहि अणुप्पविशिअ पाद-व्वंति ।]

राक्षसी—(सहर्षम्) साधु, स्वामिनि, साधु । सुसंविधानो मे भर्ता त्वया कृतः ।

राक्षसी—रुधिरप्रिय, हाथी के शिर की खोपड़ी में एकत्रित किये गये उत्तम मांसरूपी इस व्यञ्जन को ग्रहण करो । रक्तरूपी मदिरा को पियो ।

राक्षस—(बैसा करके) वसागन्धे, अच्छा, तुमने कितना अधिक रक्त तथा उत्तम मांस सञ्चित किया है ?

राक्षसी—अरे रुधिरप्रिय, पहले के सञ्चित किये गये को तो जानते ही हो । सम्प्रति नवीन सञ्चित किये गये (रक्त मांस) को सुनो । भगदत्त के रक्त का एक बड़ा, सिन्धुराज (जयद्रथ) की चर्बी के दो षड़े, द्रुपद तथा मत्स्य (देश) के राजा, भूरिश्रवा, सोमदत्त एवं बाहलीकमुख राजाओं और दूसरे साधारण पुरुषों के रक्त, चर्बी तथा मांस के बन्द किये गये मुँहवाले एक हजार षड़े हमारे घर में हैं ।

राक्षस—(पूर्ण सन्तोष के साथ आलिङ्गन करके) वाह, घर को उत्तम मालकिन वाह ! तुम्हारे इस उत्तम मालिकाने से तथा स्वामिनी हिडिम्बा देवी की व्यवस्था से आज मेरा जन्मदारिद्र्य (स्वाभाविक दरिद्रता) समाप्त हो गया ।

राक्षसी—रुधिरप्रिय, स्वामिनी ने कैसी व्यवस्था की है ।

राक्षस—वसागन्धे, आज मैं स्वामिनी हिडिम्बा देवी के द्वारा आदर के साथ बुलाकर आदेश दिया गया कि—‘रुधिरप्रिय, आज से तुम आर्यपुत्र भीमसेन के पीछे पीछे संग्राममें घूमना ।’ तो उनके पीछे-पीछे चलनेवाले (अतः) मारे गये मनुष्यों के रक्त की नदी के दरानसे नष्ट हुई मूख-प्यासवाले मेरे लिये यहीं (भूतल पर ही) स्वर्गलोक होगा । तुम भी निश्चिन्त होकर रक्त तथा चर्बी से (मरे हुये) हजारों षड़ों को संचित करो ।

राक्षसी—रुधिरप्रिय, किसलिए कुमार भीमसेन के पीछे-पीछे घूमा जायेगा ।

राक्षस—वसागन्धे, उन स्वामी भीमसेन ने दुःशासन के रक्त को पीने की प्रतिज्ञा की है । वह (रक्त कुमार भीमसेन के शरीर में) प्रवेश करके हम राक्षसों को ही पीना है ।

राक्षसी—(बड़ी प्रसन्नता के साथ) वाह, स्वामिनि, वाह ! आप के द्वारा मेरा पति सुन्दर व्यवस्था में लगा दिया गया है ।

हृदयम् = चेतः यस्याः सा ताम्, हिडिम्बादेवीम् = हिडिम्बानाम्नी भीम पत्नी राक्षसीम् ॥

राक्षस इति । अभिमन्युवधशोकसमानदुःखया—अभिमन्योः = अर्जुनपुत्रस्य वधेन = विनाशेन यः शोकः = परितपः तेन समानम् = सदृशम् दुःखं यस्याः सा तथा ॥

राक्षसीति । हस्तिशिरःकपालसञ्चितम्—हस्तिनः = गजस्य शिरसः = मस्तकस्य कपाले = खर्परे सञ्चितम् = एकत्रीकृतम्, अग्रमांसोपदंशम्—अग्रमांसम् = श्रेष्ठमांसम् एव उपदंशम् = व्यञ्जनम् ॥

[शाङ्गु शामिणीय शाङ्गु । शुशंविहाणे मे भक्ता तुष्ट किदे ।]

(नेपथ्ये महान्कलकलः उभावाकर्णयतः)

राक्षसी—(आकर्ण्य ससंभ्रमम्) अरे रुधिरप्रिय, किं नु खल्वेष महान्कलकलः श्रूयते ।
[अले लुहिलपिप्पिआ, किं पुं वलु एशे महन्ते कलअले शुणीअदि ।]

राक्षसः—(दृष्ट्वा) वसागन्धे, एष खलु धृष्टद्युम्नेन द्रोणः केशेष्वार्कष्यासिपत्रेण
ख्यापाद्यते । [वशागन्धे, एशे वलु धिष्टजुण्णेण दोणे केशेशु आकट्टिअ अशिवत्तेण वावादोअदि ।]

राक्षसी—(सहर्षम्) रुधिरप्रिय, एहि । गत्वा द्रोणस्य रुधिरं पिबावः ।

[लुहिलपिप्पिआ, एहि । गच्छिअ दोणशश लुहिलं पिवह्व ।]

राक्षसः—(समयम्) वसागन्धे, ब्राह्मणशोणितं खल्वेतद् । गलं दहद्दहत्प्रविशति ।
अत्किमेतेन । [वशागन्धे, ब्राह्मणशोणितं वलु पदं । गलअं दहन्ते दहन्ते पविशदि । ता किं
यदिप्पिआ ।]

(नेपथ्ये पुनः कलकलः)

राक्षसी—रुधिरप्रिय, पुनरप्येष महान्कलकलः श्रूयते ।

[लुहिलपिप्पिआ, पुणोवि एशे महन्ते कलअले शुणीअदि ।]

राक्षसः—(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) वसागन्धे, एष खल्वइवत्यामा आकृष्टासिपत्र
इत् एवागच्छति । कदाचिद् द्रुपदसुतरोपेणाऽऽवामपि व्यापादयिष्यति । तदेहि ।
अतिक्रमावः । [वशागन्धे, एशे वलु अशशत्यामे आकट्टिदाशिवत्ते इदो एव्व आअच्छदि । कदावि
दुवदशुदलोशेण अह्वेवि वावादशशश । ता एहि । अतिक्कमह्व ।]

(इति निष्क्रान्तौ)

॥ इति प्रवेशकः ॥

(ततः प्रविशत्युत्खातखड्गः कलकलमाकर्णयन्नश्वत्यामा)

अश्वत्यामा—

महाप्रलयमारुतक्षुभितपुष्करावर्तक—

प्रचण्डघनगर्जितप्रतिरवानुकारी मुहुः ।

रवः श्रवणभैरवः स्थगितरोदसीकन्दरः

कुतोऽद्य समरोदधेरयमभूतपूर्वः पुरः ॥४॥

प्रवेशक इति । प्रवेशकः = परिचायकः, नीचपात्रप्रयोजितो विष्कम्भकः । तल्लक्षणं दर्पणे—
“प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः । अङ्गद्वयान्तविशेषः शेषं विष्कम्भके यथा ॥”

अन्वयः—अद्य, पुरः, अयम्, महाप्रलयमारुतक्षुभितपुष्करावर्तकप्रचण्डघनगर्जितप्रतिरवानुकारी,
श्रवणभैरवः, स्थगितरोदसीकन्दरः, अभूतपूर्वः, रवः, समरोदधेः, मुहुः, कुतः, (भवति) ॥४॥

शब्दार्थः—अद्य = आज, पुरः = सामने, अयम् = यह, महाप्रलयमारुतक्षुभित-पुष्करावर्तक-प्रचण्ड-
घन-गर्जित-प्रतिरवानुकारी = महाप्रलय के समय वायु से आन्दोलित पुष्कर और आवर्तक नामक

(पदों के पीछे भीषण कोलाहल, दोनों सुनते हैं) ।

राक्षसी—(सुनकर, भय के साथ) अरे रुधिरप्रिय, यह कैसा महान् कोलाहल सुनाई पड़ रहा है ?

राक्षस—(देख कर) वसागन्धे, यह तो द्रोण धृष्टद्युम्न के द्वारा केश खींच कर तलवार से मारा जा रहा है ।

राक्षसी—(प्रसन्नतापूर्वक) रुधिरप्रिय, आओ चलकर द्रोणके रक्त को (हम दोनों) पियें ।

राक्षस—(भयपूर्वक) वसागन्धे, अरे यह तो ब्राह्मणका रक्त है । गले को जलता हुआ भीतर जाता है । अतः इससे (हमारा प्रयोजन ही) क्या ?

(पदों के पीछे फिर कोलाहल)

राक्षसी—रुधिरप्रिय, फिर से यह भीषण कोलाहल सुनाई पड़ रहा है ।

राक्षस—(पदों की ओर देख कर) वसागन्धे, यह तो अश्वत्थामा तलवार खींचे इधर ही आ रहा है । शायद, दुपद के पुत्र (धृष्टद्युम्न) पर आये हुए क्रोध से हम (दोनों) को भी मार डालेगा । तो आओ । भाग चलो ।

(इस तरह निकल गये)

॥ प्रवेशक समाप्त ॥

विशेष-प्रवेशक—प्रवेशक का अर्थ होता है परिचायक । इसमें श्रोता को रङ्गमञ्च पर अप्रस्तुत घटनाका, आगे होनेवाली बातों की जानकारी के लिए, शान कराया जाता है । यह नाटक की कथा तथा कथावस्तु के अवान्तर मेदों की, जो या तो अङ्कों के अन्तराल में घटित हो चुके हैं या अन्त में होनेवाले हैं, जोड़ देता है ।

(तदनन्तर तलवार ताने कोलाहल सुनते हुए अश्वत्थामा प्रवेश करता है)

अश्वत्थामा—आज सामने यह, महाप्रलय के समय वायु से आन्दोलित पुष्कर तथा आवर्तक नामक मेघों के प्रचण्ड गर्जन की प्रतिध्वनि का अनुकरण करने वाला, कर्णकटु, आकाश तथा पृथ्वी के मध्यवर्ती भाग (अन्तरिक्ष) रूपी कन्दरा को व्याप्त करने वाला, अभूतपूर्व, कोलाहल संग्रामरूपी सागर से बार-बार क्यों (उठ रहा है) ? ॥ ४ ॥

मेघों के प्रचण्ड गर्जन की प्रतिध्वनि का अनुकरण करने वाला, श्रवणमैत्रवः=कर्णकटु, स्थगितरोदसीकन्दरः=आकाश तथा पृथिवी के मध्यवर्ती भाग (अन्तरिक्ष) रूपी कन्दरा को व्याप्त करने वाला, अभूतपूर्वः=अभूतपूर्व, रवः=कोलाहल, समरोदधेः=संग्रामरूपी सागर से, सुदुः=बार-बार, कुतः=क्यों, (भवति=उठ रहा है) ? ॥ ४ ॥

महाप्रलयेति । अथ=सम्प्रति, पुरः=अग्रे, ममेति शेषः, अयम्=एषः; महाप्रलयेत्यादिः—महाप्रलये=महाप्रलयकाले ये माहताः=वायवः तै क्षुभितयोः=इतस्ततः सञ्चालितयोः; पुष्करावर्तकयोः=पुष्करावर्तकनामधारिणोः मेघयोः प्रचण्डम्=भीषणम् यत् धनगजितम्=मेघगर्जनम् यदा प्रचण्डं धनम्=अनवरतम् च यत् गजितम् तस्य प्रतिरवस्य=प्रतिध्वनेः अनुकारी=अनुकार

(विचिन्त्य) ध्रुवं गाण्डीविना सात्यकिना वृकोदरेण वा यौवनदर्पादतिक्रान्तमर्यादेन परिकोपितस्तातः समुल्लङ्घ्य शिष्यप्रियतामात्मप्रभावसदृशमाचेष्टते । तथादि ।

यद् दुर्योधनपक्षपातसदृशं युवतं यदस्त्रग्रहे

रामाल्लङ्घसमस्तहेतिगुरुणो वीर्यस्य यत्साम्प्रतम् ।

लोके सर्वधनुष्मतामधिपतेर्यच्चानुरूपं रूपः

प्रारब्धं रिपुघस्मरेण नियतं तत्कर्म तातेन मे ॥५॥

(पृष्ठतो विलोक्य) तत्कोऽत्र । रथमुपनयतु । अथवाऽलमिदानीं मम रथप्रतीक्षया ।

सशस्त्र एवास्मि सजलजलधरप्रभाभासुरेण सुप्रग्रहविमलकलधौतस्वरूपाऽमुना खड्गेन ।

यावत्समरभुवमवतरामि (परिक्रम्य वामाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा) आः ! कथं ममापि नामा-

श्वत्थाम्नः समरमहोत्सवप्रमोदनिर्भरस्य तातविक्रमदर्शनलालसस्याऽनिमित्तानि समर-

गमनविघ्नमुत्पादयन्ति । भवतु । गच्छामि । (सावष्टम्भं परिक्रम्याग्रतो विलोक्य)

कथमवधीरितक्षत्रधर्माणामुज्जितसत्पुरुषोचितलज्जावगुण्ठनानां विस्सृतस्वामिसत्कार-

लधुचेतसां द्विरदतुरङ्गमचरणचारिणामगणितकुलयशःसदृशपराक्रमव्रतानां रणभूमेः

णकर्ता, सदृश इत्यर्थः, श्रवणभैरवः—श्रवणयाः=श्रोत्रयोः श्रवणे=आकर्षणे वाभैरवः=

मोषणः, स्थगितरोदसीकन्दरः—स्थगितम्=व्याप्तम् रोदस्योः=द्यावापृथिव्योः कन्दरम्=गहरम्

येन तादृशः, अभूतपूर्वः=पूर्वमश्रुतः, रवः=ध्वनिः, समरोदधेः—समरः=सङ्ग्रामः उदधिः=सागरः

इव तस्मात्, मुहुः=बारम्बारम्, कुतः=कस्मात्, भवति=जायते इति शेषः । उपमाऽलङ्कारः ।

पृथ्वी छन्दः । छन्दोलक्षणम्—जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः ॥४॥

विचिन्त्येति । गाण्डीविना=अर्जुनेन, वृकोदरेण=भीमेन, यौवनदर्पात्—यौवनस्य=युवा-

वस्थायाः दर्पात्=अभिमानात्, अतिक्रान्तमर्यादेन—अतिक्रान्ता=उल्लङ्घिता मर्यादा=सीमा येन

तादृशेन । शिष्यप्रियताम्=शिष्यवत्सलताम्, आत्मप्रभावसदृशम्—आत्मनः=स्वस्य प्रभावेन=

सामर्थ्येन सदृशम्=तुल्यम्, अनुरूपमित्यर्थः, आचेष्टते=करोति ॥

अन्वयः—यत्, दुर्योधनपक्षपातसदृशम्; यत्, अस्त्रग्रहे, युक्तम्; यत्, रामात्, लब्धसमस्त-

हेतिगुरुणः, वीर्यस्य, साम्प्रतम्; च, यत्, लोके, सर्वधनुष्मताम्, अधिपतेः, रूपः, अनुरूपम्, तत्,

कर्म, रिपुघस्मरेण, मे, तातेन, नियतम्, प्रारब्धम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—यत्=जो (कर्म), दुर्योधनपक्षपातसदृशम्=दुर्योधन के पक्षपात के योग्य है, यत्=

जो, अस्त्रग्रहे=आयुध उठा लेने पर, युक्तम्=उचित है; यत्=जो, रामात्=परशुराम से, लब्ध-

समस्तहेतिगुरुणः=प्राप्त सम्पूर्ण आयुधों के कारण महान्, वीर्यस्य=पराक्रम के, साम्प्रतम्=योग्य

है; च—तथा, यत्=जो, लोके=संसार में, सर्वधनुष्मताम्=समस्त धनुर्धारियों के, अधिपतेः=

सम्राट् के, रूपः=कोप के, अनुरूपम्=उचित है; तत्=वह, कर्म=कार्य, रिपुघस्मरेण=शत्रु-

विनाशक, मे=मेरे, तातेन=पिता के द्वारा, नियतम्=अवश्य ही, प्रारब्धम्=प्रारम्भ किया

गया है ॥ ५ ॥

विशेष-पुष्करावतंक०—पुष्कर तथा आवतंक ये दो मेवों की अतिश्रेष्ठ जातियाँ हैं। प्रलय काल में ये गरजते और बरसते हैं ॥ ४ ॥

(सोच कर) निश्चय ही यौवन के मद के कारण मर्यादा का उल्लंघन करने वाले अर्जुन या सात्यकि अथवा भीम के द्वारा क्रुद्ध किये गये (हमारे) पिता (द्रोणाचार्य) शिष्यप्रियता को छोड़ कर अपने प्रभाव के सदृश आचरण कर रहे हैं (पराक्रम कर रहे हैं) । जैसे कि—

जो (कर्म) दुर्योधन के पक्षपात के योग्य है, जो (कर्म) शस्त्र उठा लेने पर उचित है, जो (कर्म) परशुराम से प्राप्त सम्पूर्ण आयुषों के कारण महान् पराक्रम के योग्य है तथा जो (कर्म) संसार में समस्त धनुर्धारियों के सम्राट् के कोप के अनुरूप है, वह कार्य शत्रुविनाशक मेरे पिता के द्वारा अवश्य ही प्रारम्भ किया गया है ॥ ५ ॥

(पीछे की ओर देखकर) यहाँ कौन है ? रथ लाओ । अथवा सम्प्रति मुझे रथ की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए । जल मेरे बादल की प्रभा की तरह चमकीले (तथा) अच्छी प्रकार पकड़ने योग्य एवं निर्मल सुवर्ण की मूठवाले इस खट्ग से सशस्त्र ही हूँ । इसलिये युद्ध के मैदान में उतरता हूँ । (धूमकर, बाईं आँख को फड़कन सूचित करके) आह ! युद्धरूपी महोरसवके हर्ष से परिपूर्ण, पिता के पराक्रम को देखने की लालसा वाले मुझ अश्वत्थामा के भी युद्धक्षेत्र जाने में (ये) अपशकुन विघ्न पैदा कर रहे हैं ? अच्छा, चलता हूँ । (गर्व के साथ धूमकर) (तथा सामने देखकर) क्या क्षत्रिय के धर्म की उपेक्षा करने वाली, सज्जनोचित लज्जारूपी आवरण (धूँवट) को त्याग देनेवाली, स्वामी के द्वारा किये गये सत्कार को भुला देने के कारण क्षुद्र चित्तवाली, (अपने) वंश तथा यश के योग्य पराक्रमरूपी व्रत की परवाह न करनेवाली, संग्रामभूमि से चतुर्दिक् मागने वाली, हाथों घोड़े तथा पैदल सेना का यह महान् कोलाहल क्यों है ? (ध्यान से देख कर) हाय ! चिन्कार है,

यद्दुर्योधनेति । यत् = कर्म, सर्वत्र यच्छब्देनाग्रे वक्ष्यमाणं कर्माभिधीयते, दुर्योधनपक्षपात सदृशम्—दुर्योधनस्य = कौरवराजस्य, कौरवराजस्य विषये कृतः इत्यर्थः, पक्षपातः = पक्षावलम्बनम् तस्य सदृशम् = अनुरूपम्, सर्वत्र वर्तते इति क्रियाशीलः, यत् अलग्रहे—अलग्रस्य = आयुधस्य ग्रहे = ग्रहणे, युक्तम् = समीचीनम्, यत् रामात् = परशुरामात्, द्रोणाचार्यः परशुरामात् शस्त्रं जग्राहेति पुराणप्रसिद्धिः, लब्धसमस्तहेतिगुरुणः—लब्धाभिः = अधिगताभिः समस्ताभिः = सम्पूर्णाभिः हेतिभिः = शस्त्रैः ('रथैरचिश्च शस्त्रं च वह्निज्वाला च हेतयः' इत्यमरः) गुरुः = महान् तस्य, वीर्यस्य = पराक्रमस्य, साम्प्रतम् = युक्तम्, च = तथा, यत् लोके = जगति, सर्वधेनुधत्ताम्—सर्वेषाम् = निखिलानाम् धनुधत्ताम् = धनुर्धारिणाम् अधिपतेः = सम्राजः, श्रेष्ठस्येति भावः, रूपः = कोपस्य, अनुरूपम् = योग्यम्, तत् = तादृशम्, कर्म = कार्यम्, पौरुषमित्यभिप्रायः, रिपुधर्मरेण—रिपूणाम् = शत्रूणाम् धर्मरः = भक्षकः, विनाशक इति यावत्, ('भक्षको धर्मरोऽक्षरः' इत्यमरः) तेन, मे = मम, तातेन = पित्रा, नियतम् =

सभन्तादपक्रामतामयं महान्नादो बलानाम् । (निरूप्य) हा धिक्कष्टम् । कथमेते
महारथाः कर्णादयोऽपि समरात्पराङ्मुखा भवन्ति । कथं नु ताताधिष्ठितानामपि
बलानामियमवस्था भवेत् । भवतु संस्तम्भयामि । भो भोः कौरवसेनासमुद्रवेला-
परिपालनमहामहीधरा नरपतयः, कृतं कृतममुना समरपरित्यागसाहसेन ।

यदि समरमपास्य नास्ति मृत्यो—

भयमिति युक्तमितोऽन्यतः प्रयातुम् ।

अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः

किमिति मुधा मलिनं यशः कुरुध्वे ॥६॥

अपि च

अस्त्रज्वालावलीढप्रतिबलजलधेरन्तरीर्वायमाणे

सेनानाथे स्थितेऽस्मिन्मम पितरि गुरौ सर्वधन्वीश्वराणाम् ।

कर्णाऽलं संभ्रमेण ब्रज कृप समरं मुञ्च हार्दिक्य शङ्कां

ताते चापद्वितीये वहति रणधुरां को भयस्याऽवकाशः ॥७॥

निश्चितम्, प्रारब्धम् = आरब्धम् । साम्प्रतं मे तातः शत्रुविनाशने नियतं प्रवृत्तः इति भावः । अत्रो-
त्प्रेक्षालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ ५ ॥

पृष्ठतो विलोवयेति । सज्जलजलधरप्रमामासुरेण—सजलः = जलभरितः यो जलधरः = पयोदः
तस्य प्रमा = कान्तिः तदद् भासुरेण = दीप्यमानेन, सुप्रग्रहविमलकलधौतत्सरुणा—सुप्रग्रहः = सुखेन
ग्रहणकर्तुं योग्यः विमलम् = निर्मलम् यत् कलधौतम् = सुवर्णम् तेन निर्मितः तसरुः = खङ्गमुष्टिः
(“तसरुः खङ्गादिमुष्टौ स्यात् ।” इत्यमरः) यस्य तेन । समरमहोत्सवप्रमोदनिर्भयस्य—समरः = संग्रामः
एव महोत्सवः = महानन्दः तस्य यः प्रमोदः = आनन्दः तेन निर्भरस्य = पूर्णस्य, तातविक्रमदर्शन-
लालसस्य—तातस्य = पितुः यो विक्रमः = पराक्रमः तस्य दर्शनम् = श्रवणलोकनम् तस्मिन् लालसा =
प्रबला अभिलाषा यस्य तस्य, अनिमित्तानि = अपशकुनानि, कर्तृपदमेतत्, समरगमनविधनम्—समरे =
संग्रामे यत् गमनम् = ब्रजनम् तत्र विधनम् = अन्तरायम्, उत्पादयन्ति = कुर्वन्ति । सावष्टम्भम्—
अवष्टम्भेन = अभिमानेन सहितं सावष्टम्भम् = सगर्वं यथा तथा । अवधोरितल्लात्रधर्माणाम्—अव-
धोरितः = तिरस्कृतः क्षात्रधर्मः = क्षत्रियमर्यादा यैस्तेषाम्, उज्झितसत्पुरुषोचितलज्जावगुण्ठनानाम्—
उज्झितम् = परित्यक्तम् सत्पुरुषोचितम् = सज्जनोचितम् लज्जा = ब्रीडा एव अवगुण्ठनम् = आवरणम्
यैस्तेषाम्, विस्मृतस्वामिसत्कारलघुचतेषाम्—विस्मृतः = चित्ताग्निः सारितः स्वामिसत्कारः = प्रभुकृतं
सम्मानं यैस्ते तथामृताः अतएव लघु = क्षुद्रम् चेतः = चित्तम् येषां तादृशानाम्, अगणितकुलयशः-
सदृशपराक्रमव्रतानाम्—अगणितम् = अविचारितम् कुलयशः सदृशम् = वंशकीर्त्यनुरूपम् पराक्रम-
व्रतम् = विक्रमनियमः येषां तेषाम्, अपक्रामताम् = पलायनपराण्याम्, बलानाम् = सैन्यानाम् । कौरव-
सेनेत्यादिः—कौरवसेना = कौरवबलम् एव समुद्रः = सागरः तस्य वेला = तटम्, प्रान्तप्रदेश इत्यर्थः,

बड़ा दुःख है ! क्या ये महारथी कर्ण आदि भी संग्राम से विमुख हो रहे हैं ? क्या पिताजी के द्वारा सञ्चालित सेना की भी यह अवस्था होगी ? अच्छा (इन्हें) रोकता हूँ । हे हे कौरवसेनारूपो समुद्र के तट की सुरक्षा के कार्य में महान् पर्वतों के समान राजाओं, बस-बस इस युद्ध परित्याग रूपी साहस से (अर्थात् भागना बन्द करो) ।

विशेष-वेलापरिपालनमहामहोदधराः—सागर के तटों की सुरक्षा पर्वत करते हैं । अन्यथा वह तट को उखाड़ फेंके । इसी तरह प्रधान योद्धा सेना के चारों ओर रह कर उनकी रक्षा करते हैं ।

यदि संग्राम छोड़ कर मृत्यु का भय न हो, तब तो अन्यत्र भाग जाना ठीक है । यदि प्राणी का मरण निश्चित ही (है, तब) क्यों इस तरह व्यर्थ में यश को मलिन कर रहे हो ॥ ६ ॥

और भी—

अस्त्ररूपी ज्वालामुखों से व्याप्त शत्रु-सेनारूप सागर के भीतर बढवानल के समान आचरण करने वाले, समग्र धनुर्धारियों में श्रेष्ठ, मेरे पिता के इस (युद्ध में) सेनापति रहने पर, हे कर्ण ! बढवाना व्यर्थ है, हे कृपाचार्य ! युद्ध-स्थल में जाओ, हे हादिस्य ! भय को छोड़ दो । धनुष धारण किये हुए पिताजी के संग्राम सञ्चालित करने के भार को धारण करने पर भय की कौन जगह है (अर्थात् भय का अवसर कहाँ है) ? ॥ ७ ॥

विशेष-औवायमाणे—बढवानल के समान आचरण करने पर । सागर के मध्य में एक घोड़ी—

तस्याः परिपालने=सुरक्षणं महामहोदधराः=महापर्वतसदृशाः, हे नरपतयः=हे राजानः, समर-परित्यागसाहसेन=समरस्य=युद्धाङ्गणस्य परित्यागः=परिवर्जनम् एव साहसम्=सहसा कृतं कर्म तेन, कृतम्=कृतम् ॥

अन्वयः—यदि, समरम्, अपास्य, मृत्योः, भयम्, नास्ति; इति, इतः, अन्यतः, प्रयातुम्, युक्तम्; अयं, जन्तोः, मरणम्, अवश्यम्, एव; किम्, इति, मुधा, यशः, मलिनम्, कुरुध्वे ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—यदि=यदि, समरम्=संग्राम को, अपास्य=छोड़ कर, मृत्योः=मृत्यु का, भयम्=भय, नास्ति=नहीं है, न हो, इति=तब तो, इतः=यहाँ से, अन्यतः=अन्यत्र, प्रयातुम्=भाग जाना, युक्तम्=ठीक है, अयं=यदि, जन्तोः=प्राणी का, मरणम्=मरण, अवश्यम्=निश्चित, एव=ही (है), किम्=क्यों, इति=इस तरह, मुधा=व्यर्थ में, यशः=यश को. मलिनम्=मलिन, कुरुध्वे=कर रहे हो ॥ ६ ॥

नरपतीनां समरपरित्यागसाहसमनुचितं प्रतिपादयन्नाह—यदि समरमिति । यदि=चेत्, समरम्=युद्धम्, अपास्य=त्यक्त्वा, मृत्योः=मरणात्, भयम्=भीतिः, नास्ति=न वर्तते, इति=अस्यामवस्थायाम्, तदेत्यर्थः, इतः=अस्मात् युद्धस्थलात्, अन्यतः=अन्यत्र, प्रयातुम्=पलाय्य गन्तुम्, युक्तम्=समीचीनम्, अयं=यदि, जन्तोः=प्राणिनः, मरणम्=मृत्युः, अवश्यम्=निश्चितम्, एवेति निश्चये दाढ्यद्योतनार्थम्, तदा, किम्=कस्मात्, इति=इत्यम्, मुधा=व्यर्थम्, यशः=कीर्तिम्, मलिनम्=कलुषम्, कुरुध्वे=सम्पादयध्वे । पुषिताया इन्दः । तल्लक्षणम्—‘अयुजि नयुगरेफतो यकारो, युजि च नजौ जरगाश्च पुषिताया’ ॥ ६ ॥

अन्वयः—अस्त्रज्वालावलीढप्रतिबलजलधेः, अन्तः, औवायमाणे, सर्वधन्वीश्वराणाम्, गुरौ,

कुतोऽद्यापि ते तातः ।

अश्वत्थामा—(श्रुत्वा) किं ब्रूथ—कुतोऽद्यापि ते तात इति । (सरोपम्) आः क्षुद्राः समरभीरवः कथमेवं प्रलपतां वः सहस्रधा न दीर्णमनया जिह्वया ।

दग्धुं विश्वं दहनकिरणैर्नोदिता द्वादशाकर्का

वाता वाता दिशि दिशि न वा सप्तधा सप्त भिन्नाः ।

छन्नं मेघैर्न गगनतलं पुष्करावर्तकाद्यैः

पापं पापाः कथयत कथं शौर्यराशेः पितुर्मै ॥८॥

(प्रविश्य संग्रान्तः सपहारः)

मम, पितार, अस्मिन्, (युद्ध), सेनानाथे; (सति), कर्ण, सम्भ्रमेण, अलम्, कृप, समरम्, व्रज, हादिक्य, शङ्काम्, सुब्र, चापद्वितीये, ताते, रणधुराम्, वहति (सति), भयस्य, कः, अवकाशः ॥७॥

शब्दार्थः—अस्त्रज्वालावलीढप्रतिबलजलधेः = अस्त्ररूपी ज्वालाओं से व्याप्त शत्रु-सेना रूप सागर के, अन्तः = मध्य में, और्वायमाणे = बढवानल के समान आचरण करने वाले, सर्वधन्वीश्वराणाम् = समग्र धनुर्धारियों में, गुरौ = श्रेष्ठ, मम = मेरे, पितरि = पिता के, अस्मिन् = इस, (युद्धे = संग्राम में), सेनानाथे = सेनापति, (सति = रहने पर), कर्ण = हे कर्ण, सम्भ्रमेण = धवडाना, अलम् = व्यर्थ है, कृप = हे कृपाचार्य, समरम् = युद्ध-स्थल में, व्रज = जाओ, हादिक्य = हे हादिक्य, शङ्काम् = मय को, सुब्र = छोड़ दो, चापद्वितीये = धनुष धारण किये हुए, ताते = पिताजी के, रणधुराम् = संग्राम सञ्चालित करने के भार को, वहति = धारण करने, (सति = पर), भयस्य = भय की, कः = कौन, अवकाशः = जगह है ? ॥ ७ ॥

प्रसङ्गेन स्वपितुः पराक्रमं कथयन्नाह—अस्त्रज्वालेति । अस्त्रज्वालेत्यादिः—अस्त्राणि = प्रहरणानि ज्वालाः = हेतयः ('शस्त्रं च वह्निज्वाला च हेतयः' इत्यमरः), 'उपमितं व्याघ्रादिभिः' इत्यनेन समासः, ताभिः अवलीढम् = व्याप्तम् प्रतिबलम् = शत्रुसैन्यम् जलधेः = सागरः इव तस्य, अन्तः = मध्ये, और्वायमाणे—ओर्वः = बढवानलः ('और्वस्तु वाढवो बढवानलः' इत्यमरः) इव आचरन् और्वायमाणः तस्मिन्, शत्रुसैन्योत्साहविध्वंसके इत्यर्थः, सर्वधन्वीश्वराणाम् = सकलधनुर्धराणाम्, गुरौ = श्रेष्ठे, मम = अश्वत्थाम्नः, पितरि = जनके, अस्मिन् = एतस्मिन्, युद्धे इति शेषः, सेनाध्यक्षे सति, कर्ण = हे राधापुत्र, सम्भ्रमेण = उद्वेगेन, अलम् = पर्याप्तम्, कृप = हे कृपाचार्य, समरम् = युद्धाङ्गणम्, व्रज = गच्छ, हादिक्य = हे हृदिकपुत्र, शङ्काम् = भीतिम्, सुब्र = त्यज, चापद्वितीये—चापः = धनुः द्वितीयः = सहायकः यस्य तस्मिन्, धनुर्धारके इत्यर्थः, ताते = पितरि, रणधुरम्—रणस्य = युद्धस्य धुरम् = भारम् ('धूर्यान्मुखमारयोः' इति हैमः), वहति = धारयति सति, भयस्य = भीतेः, कः अवकाशः = कः स्थानम्, न किमपि कारणमित्यर्थः । उपमालङ्कारः [स्रग्धराच्छन्दः ॥७॥

अन्वयः—द्वादश, अर्काः, दहनकिरणैः, विश्वम्, दग्धुम्, न, उदिताः; सप्तधा, भिन्नाः, सप्त, वाताः, दिशि-दिशि, न, वाताः; गगनतलम्, पुष्करावर्तकाद्यैः, मेघैः, न, छन्नम्; हे पापाः, शौर्यराशेः, मे, पितुः, पापम्, कथम्, कथयत ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—द्वादश = बारहों, अर्काः = सूर्य, दहनकिरणैः = भस्म कर देने वाली किरणों से,

बढ़वा रहती है। वह सर्वदा अपने मुँह से आग की भीषण लपटों को उगलती रहती है। इस से अथाह सागर का जल जल कर कम होता रहता है। यही कारण है कि उस में कभी बाढ़ नहीं आती। द्रोणाचार्य भी शत्रुसेना रूपी सागर में बढ़वानल जैसा व्यवहार कर रहे हैं ॥ ७ ॥

(पदों के पीछे)

कहाँ अब भी तुम्हारे पिता हैं ?

अश्वत्थामा—(सुन कर) क्या कह रहे हो—कहाँ हैं अब भी तुम्हारे पिता (क्रोधपूर्वक) ओह ! नीच युद्ध-भीरुओं, इस तरह प्रलाप करते हुए तुम लोगों की यह नीम हज़ार टुकड़े क्यों नहीं हो गयी ?

बारहों सूर्य मरम कर देने वाली किरणों से संसार को जला देने के लिए उदित नहीं हुए हैं। सात तरह से गुणित सात वायु ($7 \times 7 = 49$ वायु) चारों दिशाओं में चले नहीं हैं। आकाश-मण्डल पुष्कर तथा आवर्तक नामक (प्रलयकालीन) मेघों के द्वारा आच्छादित नहीं हुआ है। (तब भी) हे पापियों, वीरता के निधान, मेरे पिता के विषय में अनिष्ट (मृत्यु की बात) कैसे कह रहे हो ? ॥ ८ ॥

विशेष—‘दग्धु’...‘आद्यैः’—प्रलय के समय ही बारह सूर्य उदित होते हैं, ऊनचास (४९) वायु बहते हैं तथा पुष्कर और आवर्तक नामक मेघ भीषण वृष्टि करते हैं ॥ ८ ॥

(घायल तथा घबड़ाया हुआ प्रवेश करके)

विश्वम्=संसार को, दग्धुम्=जला देने के लिए, न=नहीं, उदिताः=उदित हुए हैं, सप्तधा=सात तरह से, भिन्नाः=गुणित, सप्त=सात, वाताः=वायुः, दिशि-दिशि=चारों दिशाओं में, न=नहीं, वाताः=चले हैं, गगनतलम्=आकाशमण्डल, पुष्करावर्तकाद्यैः=पुष्कर तथा आवर्तक आदि, मेघैः=मेघों के द्वारा, न=नहीं, छन्नम्=आच्छादित हुआ है; हे पापाः=हे पापियों, शौर्यराशेः=वीरता के निधान, मे=मेरे, पितुः=पिता के विषय में, पापम्=अनिष्ट, (मृत्यु की बात), कथम्=कैसे, कथयत=कह रहे हो ॥ ८ ॥

स्वपितुर्मृत्योरसम्भाव्यतां प्रतिपादयन्नाह—दग्धुमिति । द्वादश अर्काः=सूर्याः, दहनकिरणैः—अग्निकिरणैः, विश्वम्=जगत्, दग्धुम्=मरमलात् कर्तुम्, न, उदिताः=न निःसृताः; सप्तधा=सप्तप्रकारेण, भिन्नाः=गुणिताः, सप्त वाताः=वायवः, दिशि-दिशि=चतुर्षु दिक्षु, न वाताः=न प्रवहमानाः सन्ति; गगनतलम्=आकाशमण्डलम्, पुष्करावर्तकाद्यैः=प्रलयकालीनैः पुष्करादिनामकैः, मेघैः=पयोदैः, न छन्नम्=न आच्छादितम्, तदाऽपि हे पापाः=हे पापशीलाः, शौर्यराशेः—शौर्यस्य=वीरतायाः राशिः=आकरः तस्य, मे=मम, पितुः=जनकस्य, पापम्=पापपूर्णम् कथनम्, मृत्युघोषणमित्यर्थः, कथम्=कस्मात्, कथयत=ब्रूत । न जगज्जन्मा कोऽपि जनः अनुपमं योद्धारं मम पितरं युद्धे विनाशयितुमर्हति ऋते प्रलयकालमिति भावः । विभावनालङ्कारः । मन्दाक्रान्ता छन्दः ॥ ८ ॥

सूतः—परित्रायतां परित्रायतां कुमारः । (इति पादयोः पतति) ।

अश्वत्थामा—(विलोक्य) अये कथं तातस्य सारथिरश्वसेनः । आर्यं, ननु त्रैलोक्य-
त्राणक्षमस्य सारथिरसि । किं मत्तः परित्राणमिच्छसि ।

सूतः—(उवाच सकरुणम्) कुतोऽद्यापि ते तातः ।

अश्वत्थामा—(सावेगम्) किं तात एव नास्ति ।

सूतः—अथ किम् ।

अश्वत्थामा—हा तात । (इति मोहमुपगतः) ।

सूतः—कुमार, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

अश्वत्थामा—(लब्धसंशः साधम्) हा तात, हा सुतवत्सल, हा लोकत्रयैकधनुर्धर, हा
जामदग्न्यास्त्रसर्वस्वप्रतिग्रहप्रणयिन्, क्वासि । प्रयच्छ मे प्रतिवचनम् ।

सूतः—कुमार, अलमत्यन्तशोकावेगेन । वीरपुरुषोचितां विपत्तिमुपगते पितरि
त्वमपि तदनुरूपेणैव वीर्येण शोकसागरमुत्तीर्य सुखी भव ।

अश्वत्थामा—(अश्रूणि विमुच्य) आर्य, कथय कथय कथं तादृग्भुजवीर्यसागरस्तातोऽपि
नामाऽस्तमुपगतः ।

किं भीमाद्गुरुदक्षिणां गुरुगदां भीमप्रियः प्राप्तवान्

सूतः—शान्त पापम् । शान्तं पापम् ।

अश्वत्थामा—अन्तेवासिदयालुरुज्झितनयेनासादितो जिष्णुना ।

सूतः—कथमेवं भविष्यति ।

अश्वत्थामा—गोविन्देन सुदर्शनस्य नियतं धारापथं प्रापितः

सूतः—एतदपि नास्ति ।

अश्वत्थामा—शङ्के नापदमन्यतः खलु गुरोरेभ्यश्चतुर्थादहम् । ९॥ X

अश्वत्थामा इति । सारायः = रथसञ्चालकः । त्रैलोक्यत्राणक्षमस्य—त्रैलोक्यम् = त्रिलोकी तस्य
त्राणे = रक्षणे क्षमस्य = समर्थस्य । परित्राणम् = रक्षणम् ॥

अश्वत्थामा इति । सुतवत्सल—सुते=पुत्रे, मयि इत्यर्थः, वत्सलः=स्नेहपूर्णः तत्सम्बुद्धौ,
लोकत्रयैकधनुर्धर—लोकत्रये=त्रिलोक्याम् एकः=अद्वितीयः धनुर्धरः=धनुर्धारी तत्सम्बुद्धौ, जाम-
दग्न्यास्त्रसर्वस्वप्रतिग्रहप्रणयिन्—जामदग्न्यस्य=परशुरामस्य अस्त्रम्=आयुधम् एव सर्वस्वम्=
धनम् तस्य प्रतिग्रहे=स्वीकारे प्रणयो=प्रेमपरायणः तत्सम्बुद्धौ । प्रतिवचनम्=उत्तरम् ॥

सूत इति—वीरपुरुषोचिताम्—वीरपुरुषाणाम्=शूरजनानाम् उचिताम्=योग्याम्, विपत्तिम्=
मृत्युम्, उपगते=प्राप्ते, वीर्येण=शौर्येण ॥

अन्वयः—भीमप्रियः, (मत्तातः), भीमात्, गुरुगदाम्, गुरुदक्षिणाम्, प्राप्तवान्, किम् ?
अन्तेवासिदयालुः, (असौ), उज्झितनयेन, जिष्णुना, आसादितः, (किम्) ? (सः), गोविन्देन,
सुदर्शनस्य, निशितम्, धारापथम्, प्रापितः, (किम्) ? एभ्यः, अन्यतः, चतुर्थात्, गुरोः, आपदम्,

सूत—रक्षा करें, रक्षा करें कुमार । (ऐसा कहकर पैरों पर गिर पड़ता है) ।

विशेष—सूत—सूत रथ हाँकने वाले व्यक्ति को कहा जाता है ।

अश्वत्थामा—(देखकर) अरे ! क्या पिताजी का सारथी अश्वसेन ? आर्य, पिताजी को रक्षा करने में समर्थ (व्यक्ति) के सारथी हैं (आप) । (तो) क्यों मुझसे रक्षा चाहते हैं ?

सूत—(उठकर, करुणापूर्वक) कहाँ अब भी आपके पिताजी (हैं) ?

अश्वत्थामा—(बवराहट पूर्वक) क्या पिताजी ही नहीं हैं ?

सूत—और क्या (कह रहा हूँ) ?

अश्वत्थामा—हाय ! पिता जी । (ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाता है) ।

सूत—कुमार, धीरज रखें, धीरज रखें ।

अश्वत्थामा—(चेतना प्राप्त कर, आँखों में आँसू भर कर) हा तात, हा पुत्र को प्यार करने वाले, हा त्रिलोकी के सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी, हा परशुराम के अन्नरूपी धन को स्वीकार करने में प्रेम रखने वाले, कहाँ हो ? मुझे उत्तर प्रदान करो ।

विशेष—जामदग्न्यास्त्र०—द्रोणाचार्य के अन्न-शस्त्र के गुरु थे भगवान् परशुराम ।

सूत—कुमार, अत्यधिक शोक का आवेग व्यर्थ है । पिता (द्रोणाचार्य) के वीरपुरुषों के योग्य मृत्यु को प्राप्त करने पर आप भी उनके समान ही । पराक्रम से (अर्थात् पराक्रम पूर्वक शत्रुविनाश कर) सुखी बनें ।

अश्वत्थामा—(आँसू बहाकर) आर्य, बतलाइये, बतलाइये—उस तरह बाहुबल के सागर पिताजी भी किस तरह मृत्यु को प्राप्त हुए ?

भीम को प्यार करनेवाले (मेरे पिताजी ने) भीम से विशाल गदा को गुरुदक्षिणा के रूप में प्राप्त किया है क्या ? (अर्थात् पिताजी का मृत्यु भीम की गदा से हुई है क्या ?) ।

सूत—पाप शान्त हो, पाप शान्त हो (अर्थात् इस अनुचित बात को सोचना पाप करने-वाला है) ।

अश्वत्थामा—शिष्यों पर दया करने वाले (वे) मर्यादा का परित्याग करने वाले अर्जुन के द्वारा अभिभूत (Overpowered) कर दिये गये (क्या) ?

सूत—यह कैसे हागा ?

अश्वत्थामा—श्रीकृष्ण के द्वारा सुदर्शन चक्र के तीक्ष्ण धार के पथ को (To The sharp range of the edge) प्राप्त करा दिये गये (क्या) ?

सूत—यह भी नहीं (कारण) है ।

अश्वत्थामा—इससे अतिरिक्त (किसी) चौथे से पिता जी की मृत्यु की मैं नहीं आशङ्का कर रहा हूँ ॥ ९ ॥

अहम्, न खलु, शङ्क ॥ ९ ॥

शब्दार्थः—भीमप्रियः=भीम को प्यार करने वाले, (मत्तातः=मेरे पिता जी), भीमात्=भीम से, गुरुगदाम्=विशाल गदा को, गुरुदक्षिणाम्=गुरुदक्षिणा के रूप में, प्राप्तवान्=प्राप्त

सूतः—कुमार,

एतेऽपि तस्य कुपितस्य महास्त्रपाणेः

किं धूर्जटेरिव तुलामुपयान्ति संख्ये ।

शोकोपरुद्धहृदयेन यदा तु शस्त्रं

त्यक्तं तदास्य विहितं रिपुणाऽतिघोरम् ॥१०॥

अश्वत्थामा—किं पुनः कारणं शोकस्याऽस्त्रपरित्यागस्य वा ।

सूतः—ननु कुमार एव कारणम् ।

अश्वत्थामा—कथमहमेव नाम ।

सूतः—श्रूयताम् । (अश्रूणि विमुच्य) ।

अश्वत्थामा हत इति पृथासूनुना स्पष्टमुक्त्वा

स्वैरं शेषे गज इति किल व्याहृतं सत्यवाचा ।

तच्छ्रुत्वाऽसौ दयिततनयः प्रत्ययात्तस्य राज्ञः

शस्त्राण्याजौ नयनसलिलं चापि तुल्यं मुमोच ॥११॥

क्या है, किम् = क्या ? अन्तेवासिदयालुः = शिष्यो पर दया करनेवाले, (असौ = वे), उज्झित-
जयेन = मर्यादा का परित्याग करनेवाले, जिष्णुना = अर्जुन के द्वारा, आसादितः = अभिभूत कर दिये
गये, (किम् = क्या) ? (सः = वे), गोविन्देन = श्रीकृष्ण के द्वारा, सुदर्शनस्य = सुदर्शन चक्र के,
निशितम् = तीक्ष्ण, धारापथम् = धार के पथ को, प्रापितः = प्राप्त करा दिये गये, (किम् = क्या) ?
एभ्यः = इनसे, अन्यतः = अतिरिक्त, चतुर्थात् = चौथे से, गुरोः = पिता जी की, आपदम् = मृत्यु की,
अहम् = मैं, न खलु = नहीं, शङ्के = आशङ्का कर रहा हूँ ॥ ९ ॥

स्वपितुर्वातकं जिज्ञासते—किं भीमादिति । भीमप्रियः—भीमः = वृकोदरः प्रियः = स्नेहः यस्य
सः, योग्यः शिष्यो गुरोः प्रेममाजनं भवत्येवेति, (मत्तातः = मम पिता), भीमात् = वृकोदरात् स्वशिष्यात्,
गुरुगदाम्-गुर्वी = महती चासौ गदा ताम्, गुरुदक्षिणाम्—गुरोः = शिक्षकस्य दक्षिणाम् = पुरस्कारम्,
प्राप्तवान् = आसादितवान्, किमिति प्रश्ने, भीमगदया तातो हतः किमिति प्रश्नाभिप्रायः । अन्तेवासि-
दयालुः—अन्तेवासिनः = शिष्याः तेषु दयालुः = कृपालुः, शिष्यप्रियः इत्यर्थः, असाविति शेषः, उज्झित-
जयेन—उज्झितः = परित्यक्तः नयः = नोतिः, मर्यादेत्यर्थः, येन स तादृशेन, जिष्णुना = अर्जुनेन,
आसादितः = प्राप्तः, अभिभूत इत्यर्थः, किमिति सम्बन्धोऽत्रापि । सः गोविन्देन = श्रीकृष्णेन, सुदर्श-
नस्य = चक्रस्य ('चक्रं सुदर्शनः' इत्यमरः), निशितम् = तीक्ष्णम्, धारापथम्—धारायाः = अग्र-
भागस्य पन्थाः = मार्गः तम्, प्रापितः = गमितः, किम् ? एभ्यः = एतेभ्यः, अन्यतः = अन्यस्मात्,
चतुर्थात् = तृतीयातिरिक्तादिति भावः, गुरोः = पितुः, आपदम् = विपत्तिम्, मृत्युमित्यर्थः, अहम् =
तत्पुत्रः अश्वत्थामा, न खलु = नैव, आशङ्के = अभिशङ्के । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ ९ ॥

अन्वयः—एते, अपि, कुपितस्य, महास्त्रपाणेः, तस्य, धूर्जटेः, इव, संख्ये, किम्, तुलाम्,
दपयान्ति ? तु, शोकोपरुद्धहृदयेन, (तेन), यदा, शस्त्रम्, न्यस्तम्, तदा, रिपुणा, अस्य, अतिघोरम्,

सूत—कुमार, ये लोग भी क्रुद्ध, विशाल अस्त्र (धनुष) धारण किये हुए उनकी, शङ्कर की तरह, युद्ध में क्या तुलना प्राप्त कर सकते हैं ? (अर्थात् नहीं) । किन्तु शोक से बोझिल हृदयवाले (उनके द्वारा) जब शस्त्र रख दिया गया तब शत्रु के द्वारा इनके प्रति अत्यन्त दारुण कार्य किया गया (अर्थात् उनकी हत्या की गई) ॥ १० ॥

अश्वत्थामा—शोक अथवा अश्वत्थाग का क्या कारण था ?

सूत—वस, कुमार ही कारण थे ।

अश्वत्थामा—क्या मैं ही (कारण था) ?

सूत—सुनिये । (आँसू बहा कर) ।

सत्यवक्ता कुन्ती पुत्र ने 'अश्वत्थामा मारा गया' यह साफ साफ कह कर अन्त में 'हायी' यह धीरे से कहा । पुत्र को प्रेम करनेवाले यह (द्रोणाचार्य) उसे सुन कर, उस राजा के विश्वास से, युद्ध में शस्त्र तथा आँसू को भी एक साथ छोड़े ॥ ११ ॥

विहितम् ॥ १० ॥

शब्दार्थः—एते=ये, अपि=भी, कुपितस्य=क्रुद्ध, महास्त्रपाणेः=विशाल अस्त्र (धनुष) धारण किये हुए, तस्य=उन की, धूर्जटेः=शङ्कर की, इव=तरह, संख्ये=संग्राम में, किम्=क्या, तुलाम्=तुलना की, उपयान्ति=प्राप्त कर सकते हैं ? तु=किन्तु, शोकोपरुद्धहृदयेन=शोक से बोझिल हृदयवाले, (तेन=उन के द्वारा), यदा=जब, शस्त्रम्=शस्त्र, न्यस्तम्=रख दिया गया, तदा=तब, रिपुणा=शत्रु के द्वारा, अस्य=इन के प्रति, अतिवीरम्=अत्यन्त दारुण कार्य, विहितम्=किया गया ॥ १० ॥

द्रोणस्य वीर्यातिशयमेव प्रतिपादयन्नाह—एतेऽपीति । एते=इमे, अपि=च, कुपितस्य=क्रुद्धस्य, महारूपाणेः=महत्=विशालम् अस्त्रम्=महरणम् पाणौ=हस्ते यस्य तादृशस्य, तस्य=आचार्य-द्रोणस्य, धूर्जटेः=शिवस्य, इव=यथा, संख्ये=युद्धे, किमिति प्रश्ने, तुलाम्=सादृश्यम्, उपयान्ति=गच्छन्ति; तु=किन्तु, शोकोपरुद्धहृदयेन=शोकेन=शुचा उपरुद्धम्=व्याप्तम्, हृदयम्=चेतः यस्य तेन, तेनेति शेषः, यदा=यस्मिन् समये, शस्त्रम्=आयुधम्, न्यस्तम्=परित्यक्तम्, तदा=तस्मिन् समये, रिपुणा=शत्रुणा, अस्य=गुरोस्तव तातस्य, अतिवीरम्=अतिनृशंसम्, विहितम्=कृतम् । परित्यक्ते च धनुषि शत्रुणा स हतः इत्यभिप्रायः । अत्रोपमालङ्कारः । वसन्ततिलका छन्दः ॥ १० ॥

अन्वयः—सत्यवाचा, पृथामनुना, 'अश्वत्थामा, हतः,' इति, स्पष्टम्, उक्त्वा, शेषे, गजः, इति, स्वैरम्, व्याहृतम्, किल; दयिततनयः, असौ, (द्रोणः), तत्, श्रुत्वा, तस्य, राशः, प्रत्ययात्, आजौ, शस्त्राणि, च, नयनसलिलम्, अपि, तुल्यम्, समोच ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—सत्यवाचा=सत्यवक्ता, पृथामनुना=कुन्तीपुत्र ने, अश्वत्थामा=अश्वत्थामा, हतः=मारा गया, इति=यह, स्पष्टम्=साफ-साफ, उक्त्वा=कह कर, शेषे=अन्त में, गजः=हायी इति=यह, स्वैरम्=धीरे से, व्याहृतम्=कहा; किल=यह पादपूर्ति के लिये है; दयिततनयः=पुत्रको प्रेम करनेवाले, असौ=यह, (द्रोणः=द्रोणाचार्य), तत्=उसे, श्रुत्वा=सुनकर, तस्य=उस,

अश्वत्थामा—हा तात, हा सुतवत्सल, हा वृथामदर्थपरित्यक्तजीवित, हा शौर्यशे, हा शिष्यप्रिय, हा युधिष्ठिरपक्षपातिन् । (इति रोदिति) ।

सूतः—कुमार, अज्ञमत्यन्तपरिदेवनकार्पण्येन ।

अश्वत्थामा—

श्रुत्वा वधं मम मृषा सुतवत्सलेन

तात त्वया सह शरैरसवो विमुक्ताः ।

जीवाम्यहं पुनरयं भवता वियुक्तः

क्रूरेऽपि तन्मयि मुधा तव पक्षपातः ॥१२॥

(इति मोहमुपगतः)

सूतः—समाश्वसितु समाश्वसितु कुमारः ।

(ततः प्रविशति कृपः)

कृपः—(सोद्वेगं निःश्वस्य)

धिकं सानुजं कुरुपतिं धिगजातशत्रुं

धिग् भूपतीन्विफलशस्त्रभृतो धिगस्मान् ।

केशग्रहः खलु तदा द्रुपदात्मजाया

द्रोणस्य चाद्य लिखितैरिव वीक्षितो यैः ॥१३॥

राशः=राजाके, प्रत्ययात्=विश्वास से, आजौ=युद्ध में, शस्त्राणि=शस्त्र, च=तथा, नयन-सलिलम्=आँसुको, अपि=भी, तुल्यम्=एक साथ, मुमोच=छोड़ा ॥ ११ ॥

अश्वत्थामा इति । सत्यवाचा—सत्यम्=अवितथम् वाक्=वाणी यस्य असौ तेन, पृथासनुना-पृथा=कुन्ती तस्याः सन्तुः=पुत्रः तेन, 'अश्वत्थामा=द्रोणपुत्रः' हतः=घातितः, इति=एतत्, स्पष्टम्=सुश्राव्यम्, उक्त्वा=कथयित्वा, शेषे=अन्ते, गजः=हस्ती, इति=एतत्, स्वैरम्=मन्दम्, व्याहृतम्=कथितम्, किलेति पादपूर्तौ, दयिततनयः—दयितः=प्रियः तनयः=पुत्रः यस्य असौ, असौ=सः, द्रोणः इति शेषः, तत्=तादृशं वचनम्, श्रुत्वा=आकर्ण्य, तस्य=सत्यं वचनं वक्तुं प्रसिद्धस्येत्यर्थः, राशः=नृपतेः, प्रत्ययात्=विश्वासात्, आजौ=युद्धे, शस्त्राणि=आयुधानि, च=तथा, नयनसलिलम्=नयनयोः=नेत्रयोः सलिलम्=जलम्, अश्रु इत्यर्थः, अपि=च, तुल्यम्=समकालम्, मुमोच=तत्याज । मन्दाक्रान्ता छन्दः ॥ ११ ॥

अश्वत्थामा इति । वृथा मदर्थपरित्यक्तजीवित—वृथा=व्यर्थम् मदर्थम्=मम कृते परित्यक्तम्=निःसारितम् जीवितम्=जीवनम् येन तस्मिन्मुद्धौ ॥

सूत इति । अत्यन्तपरिदेवनकार्पण्येन—अत्यन्तम्=अधिकम् परिदेवनम्=विलापः ('विलापः परिदेवनम्' इत्यमरः) एव कार्पण्यम्=कातर्यम् तेन ॥

अन्वयः—हे तात, मम, मृषा, वधम्, श्रुत्वा, सुतवत्सलेन, त्वया, शरैः, सह, असवः, विमुक्ताः, पुनः, अयम्, अहम्, भवता, वियुक्तः, (अपि), जीवामि; तत्, क्रूरे, अपि, मयि, तव, मुधा, पक्षपातः, (आसीत्) ॥ १२ ॥

हा अश्वत्थामा—हा पिता जो ! हा पुत्र पर प्रेम रखनेवाले ! हा व्यर्थ में मेरे लिये प्राण छोड़ने-
वाले । हा शूरता की खान ! हा शिष्य पर प्रेम रखने वाले ! हा युधिष्ठिर का पक्षपात करनेवाले !

(इस प्रकार कह कर रोता है) ।

सूत—कुमार, अधिक विलाप रूप कातरता (प्रदर्शित करने की) आवश्यकता नहीं ।

अश्वत्थामा—हे तात, मेरा झूठा वध सुन कर (मुझ) पुत्र को स्नेह करने वाले आपके द्वारा
बाणों के साथ प्राण छोड़ दिया गया । किन्तु यह मैं आपके द्वारा विछुड़ कर (भी) जो रहा हूँ,
इसलिये क्रूर भी मुझ पर आपका व्यर्थ पक्षपात (था) ॥ १२ ॥

(ऐसा कह कर मूर्च्छित हो जाता है)

सूत—धैर्य धारण करें, धैर्य धारण करें कुमार ।

(तदनन्तर कृपाचार्य प्रवेश करते हैं)

भाश्यों के सहित कुरुराज (दुर्योधन) को धिक्कार (है); युधिष्ठिर को धिक्कार (है);
व्यर्थ शस्त्र धारण करनेवाले राजाओं को धिक्कार (है); हम सबको धिक्कार (है); जिन्होंने उस
समय द्रौपदी के तथा आज द्रोणाचार्य के केश-ग्रहण को, चित्र-लिखित की तरह (स्पन्दनशून्य
होकर) देखा है ॥ १३ ॥

विशेष-लिखितैरिव—दुर्योधन की समा वीरों से मरी थी । द्रौपदी को, बाल पकड़कर, खींचा
जा रहा था । किन्तु एक भी वीर उस कुक्ष्य को रोकने के लिए न तो बोला तथा न अपना शरीर
ही हिलाया-डुलाया । यही हाल द्रोणाचार्य के शिर काटने में भी हुआ है । अतः उपस्थित वीरों को
कृपाचार्य चित्र में बना हुआ-सा (निष्प्राण) कह रहे हैं ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—हे तात=हे पिता जो, मम=मेरा, मृषा=झूठा, वधम्=वध, श्रुत्वा=सुन कर,
सुतवत्सलेन=पुत्र को स्नेह करनेवाले, त्वया=आपके द्वारा, शरैः=बाणों के, सह=साथ, असवः=
प्राण, विमुक्ताः=छोड़ दिया गया, पुनः=किन्तु, अयम्=यह, अहम्=मैं, भवता=आपके द्वारा,
विमुक्तः=विछुड़ कर, (अपि=भी), जीवामि=जी रहा हूँ, तत्=इस लिये, क्रूरे=क्रूर, अपि=भी,
मयि=मुझ पर, तव=आपका, मुधा=व्यर्थ, पक्षपातः=पक्षपात, (आसीत्=था) ॥ १२ ॥

श्रुत्वेति । हे तात=हे पितः, मम=अश्वत्थामान्, मृषा=असत्यम्, वधम्=हननम्, श्रुत्वा=
आकर्ण्य, सुतवत्सलेन—सुते=पुत्रे, मयीत्यर्थः, वत्सलः=स्नेहप्रवणः तेन, त्वया=भवता, शरैः=
बाणैः, सह=साकम्, असवः=प्राणाः, विमुक्ताः=परित्यक्ताः, पुनः=किन्तु, अयम्=एषः,
अहम्=तव पुत्रः अश्वत्थामेति भावः, भवता=त्वया, विमुक्तः=विरहितः, (अपि=च),
जीवामि=प्राणान् धारयामि; तत्=तस्मात्, क्रूरे=निष्ठुरे, अपिना स्वस्मिन् पक्षपातस्यापात्रतां
सूचयति, मयि=अश्वत्थामिन्, तव=भवतः, मुधा=व्यर्थम्, पक्षपातः=स्नेहभावः, आसीदिति
शेषः । वसन्ततिलका छन्दः ॥ १२ ॥

अन्वयः—सानुजम्, कुरूपतिम्, धिक् (अस्ति); अजातशत्रुम्, धिक् (अस्ति); विफलशस्त्र-
भृतः, भूपतीन्, धिक्, (अस्ति); अस्मान्, धिक्, (अस्ति), खलु, यैः, तदा, द्रुपदात्मजायाः, च,
अथ, द्रोणस्य, केशग्रहः, लिखितैः, इव, वीक्षितः ॥ १३ ॥

तत्कथं नु खलु वत्सं द्रक्ष्याम्यश्वत्थामानम् । अथवा हिमवत्सारगुरुचेतसि
ज्ञातलोकस्थितौ तस्मिन् खलु शोकावेगमहमाशङ्के । किं तु पितुः परिभवमदृशमुप-
श्रुत्य न जाने किं व्यवस्यतीति । अथवा—

एकस्य तावत्पाकोऽयं दारुणो भुवि वर्तते ।

केशग्रहे द्वितीयेऽस्मिन् नृनं निःशेषिताः प्रजाः ॥१४॥ ✕

(विलोक्य) तदयं वत्सस्तिष्ठति । यावदुपसर्पामि । (उपसृत्य ससंभ्रमम्) वत्स, समा-
श्वसिहि समाश्वसिहि ।

अश्वत्थामा—(संशं लब्ध्वा सास्त्रम्) हा तात, हा सकलभुवनैकगुरो । (आकाशे) युधि-
ष्ठिर, युधिष्ठिर ।

आजन्मनो न वितथं भवता किलोक्तं

न द्वेक्षि यज्जनमतस्त्वमजातशत्रुः ।

ताते गुरौ द्विजवरे मम भाग्यदोषा-

त्सर्वं तदेकपद एव कथं निरस्तम् ॥१५॥ ✕

शब्दार्थः—सानुजम्=भाइयो के सहित, कुरुपितम्=कुरुराज (दुर्योधन) को, धिक्=धिकार,
(अस्ति=है); अजातशत्रुम्=युधिष्ठिर को, धिक्=धिकार, (अस्ति=है); विफलशस्त्रभृतः=
व्यर्थ शस्त्र धारण करने वाले, भूपतीन्=राजाओं को, धिक्=धिकार, (अस्ति=है); अस्मान्=
हम सबको, धिक्=धिकार, (अस्ति=है); खलु=निश्चय ही, यैः=जिन लोगों ने, तदा=उस
समय, द्रुपदात्मजायाः=द्रौपदी का, च=तथा, अद्य=आज, द्रोणस्य=द्रोणाचार्य का, केशग्रहः=
केश-ग्रह, लिखितैः=चित्र लिखित को, इव=तरह, वोक्षितः=देखा है ॥ १३ ॥

धिक् सानुजमिति । सानुजम्—अनुजैः=भातृभिः सहितं सानुजम्=ससहोदरम्, कुरुपितम्=
कुरुराजं दुर्योधनम्, धिक्=धिकारः, अस्तीति सर्वत्र वाक्यसमाप्ती क्रियाशेषः, अजातशत्रुम्—
अजातः=अनुत्पन्नः शत्रुः=रिपुः यस्य तम्, धिक्, विफलशस्त्रभृतः—विफलम्=निष्फलम् शस्त्रम्=
आयुधम् विघ्नति=धारयन्तीति तान्, भूपतीन्=राजः, धिक्, अस्मान्=महामारतवीरान् अस्मा-
नित्यर्थः, धिक्; खलु प्रसिद्धौ निश्चये वा, यैः=यैर्द्विभिः, तदा=पूर्वम्, द्रुपदात्मजायाः=द्रौपद्याः,
च=तथा, अद्य=अस्मिन् दिने, द्रोणस्य=द्रोणाचार्यस्य, केशग्रहः=शिरोरुहग्रहणम्, लिखितैः=
चित्रनिर्मितैः, इव=यथा, वोक्षितः=अवलोकितः । अत्र काव्यलिङ्गमलङ्कारः । वसन्ततिलका
छन्दः ॥ १३ ॥

तत्कथमिति—हिमवत्सारगुरुचेतसि—हिमवतः=हिमालय इव सारवत्=बलवत् गुरु=
विशालम्=चेतः=हृदयम् यस्य तस्मिन्, ज्ञातलोकस्थितौ—ज्ञाता=सुपरिचिता लोकस्य=संसारस्य
स्थितिः=व्यवहारः येन तस्मिन् ॥

अन्वयः—एकस्य, अयम्, दारुणः, पाकः, तावत्, भुवि, वर्तते; द्वितीये, अस्मिन्, केशग्रहे,
(सति), प्रजाः, नूनम्, निःशेषिताः, (भविष्यन्ति) ॥ १४ ॥

तो वेटे अश्वत्थामा को कैसे देखूँगा ? (जहाँ मैं उसे ढाढस बैठा सकूँ) । अथवा हिमालय के समान सुदृढ़ तथा विशाल हृदयवाले, लोकव्यवहार को जानने वाले, उस (अश्वत्थामा) में मैं शोक के आवेग को आशंका नहीं करता हूँ । किन्तु पिता के अनुचित अपमान को सुनकर (मैं) नहीं जानता (वह) क्या कर डालेगा । अथवा—

एक (केश-ग्रह) का यह भयङ्कर परिणाम सम्प्रति भूतल पर बना (हो) है, दूसरे इस केश-ग्रह के होने पर प्रजायें निश्चय ही पूर्ण रूप से समाप्त (हो जायेंगी) ॥ १४ ॥

(देखकर) तो यह वत्स (अश्वत्थामा) खड़ा है । अच्छा, (इसके) समीप चला हूँ । (पास में जाकर घबराहट के साथ) वत्स, धीरज रखो, धीरज रखो ।

अश्वत्थामा—(चेतना में आकर, आँसू भरे हुए) हा तात ! हा सम्पूर्ण जगत् के सर्वश्रेष्ठ आचार्य ! (आकाश की ओर देखकर) युधिष्ठिर, युधिष्ठिर !

‘आपके द्वारा जन्म से ही लेकर असत्य (वचन) नहीं कहा गया’—ऐसी प्रतिदि है । क्योंकि (किसी भी) प्राणी से द्वेष नहीं करते हो । इसीलिये तुम अज्ञातशत्रु (one to whom there is no enemy born) हो । किन्तु वह सब मेरे माग्य के दोष के कारण (एक तो) ब्राह्मण-श्रेष्ठ, (दूसरे) आचार्य, (तीसरे मेरे) पिता के विषय में, एक साथ ही आपके द्वारा कैसे छोड़ दिया गया ? ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—एकस्य=एक का, अयम्=यह, दारुणः=भयङ्कर, पाकः=परिणाम, तावत्=सम्प्रति, भुवि=भूतल पर, वर्तते=बना है; द्वितीये=दूसरे, अस्मिन्=इस, केशग्रहे=केश-ग्रह के, (सति=होने पर), प्रजाः=प्रजाएँ, नूनम्=निश्चय ही, निःशेषिताः=पूर्णरूप से समाप्त (भविष्यन्ति=हो जायेंगी) ॥ १४ ॥

एकस्येति । एकस्य=पूर्व कृतस्य द्रौपदीकेशग्रहस्येत्यर्थः, अयम्=एव; दारुणः=मोघणः, पाकः=परिणामः, तावत्=सम्प्रति, भुवि=भूतले, वर्तते=स्थितः आस्ते । द्वितीये=द्रौपदीकेश-ग्रहणातिरिक्ते, अस्मिन्=एतस्मिन् द्रोणसम्बन्धितोत्यर्थः, केशग्रहे=शिरोरुहग्रहणे सति, प्रजाः=जनाः, नूनम्=अवश्यम्, निःशेषिताः=विनष्टाः, भविष्यन्तीति क्रियाशेषः । पथ्यावक्त्रं छन्दः । तल्लक्षणं यथा—युजोश्चतुर्थतो येन पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम् ॥ १४ ॥

अन्वयः—भवता, आजन्मनः, वितथम्, न, उक्तम्, किञ्च, यत्, जनम्, न, द्वेक्षि, अतः, त्वम्, अज्ञातशत्रुः, (असि; किन्तु), तत्, सर्वम्, मम, माग्यदोषात्, दिज्वरे, गुरो, (मम), ताते, एक-पदे, एव, कथम्, निरस्तम् ? ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—भवता=आपके द्वारा, आजन्मनः=जन्म से ही लेकर, वितथम्=असत्य, न=नहीं, उक्तम्=कहा गया, किञ्च=ऐसी प्रतिदि है; यत्=क्योंकि, जनम्=प्राणी से, न=नहीं, द्वेक्षि=द्वेष करते हो, अतः=इसलिये, त्वम्=तुम्, अज्ञातशत्रुः=शत्रु-रहित, (अति=हा, किन्तु=परन्तु), तत्=वह, सर्वम्=सब, मम=मेरे, माग्यदोषात्=माग्य के दोष के कारण, दिज्वरे=ब्राह्मणश्रेष्ठ, गुरो=आचार्य, (मम=मेरे), ताते=पिता के विषय में, एकादे=एक साथ, एव=ही, कथम्=कैसे, निरस्तम्=छोड़ दिया गया ? ॥ १५ ॥

सुतः—कुमार, एष ते मातुलः शारद्वतः पाश्वे तिष्ठति ।
अश्वत्थामा—(पाश्वे विलोक्य सवाभम्) मातुल, मातुल,

गतो येनाद्य त्वं सह रणभुवं सैन्यपतिना

य एकः शूराणां गुरुसमरकण्डूनिक्षपणः ।

परीहासाश्चित्राः सततमभवन्त्येन भवतः

स्वसुः श्लाघ्यो भर्ता वव नु खलु स ते मातुल गतः ॥१६॥

कृपः—परिगतपरिगन्तव्य एव भवान् । तदलमत्यन्तशोकावेगेन ।

अश्वत्थामा—मातुल, परित्यक्तमेव मया परिदेवनम् । एषोऽहं सुतवत्सलं तातमेवानुगच्छामि ।

कृपः—वत्स, अनुपपन्नं भवद्विधानामिदम् ।

सूतः—कुमार अलमतिसाहसेन ।

अश्वत्थामा—आर्य शारद्वत,

मद्वियोगभयात्तातः परलोकमितो गतः ।

करोम्यविरहं तस्य वत्सलस्य सदा पितुः ॥१७॥

आजन्मन इति । भवता = श्रीमता त्वया, आजन्मनः—जन्मकालादारभ्य, वितथम् = असत्यम्, न उक्तम् = न कथितम्, किलेति प्रसिद्धौ, यत् = यस्मात्, जनम् = प्राणिनम्, न द्वेक्षि = द्वेषवन्तं न करोषि, अतः = एतस्मात् कारणात्, त्वम् = युधिष्ठिरः, अजातशत्रुः—अजातः = अनुत्पन्नः शत्रुः = रिपुः यस्य तादृशः, असीति शेषः, किन्तु तत् = मिथ्यावचनाभावादि, सर्वम् = निखिलम्, मम = द्रोणपुत्रस्य अश्वत्थामनः माग्यदोषात्—माग्यस्य = अदृष्टस्य दोषात् = पापात्, प्रथमं तु—द्विजवरे = ब्राह्मणश्रेष्ठे, तत्रापि—गुरौ = आचार्ये, तत्रापि ताते = पितरि, ममेति शेषः, अत्र विषयसप्तमी, एकपदे = युगपत्, एव = हि, कथम् = केन प्रकारेण, निरस्तम् = परित्यक्तम् । मम पितुर्विषये तवास्त्यभाषणं कथमपि न युक्तिसहमिति भावः । परिकरालङ्कारः । वसन्ततिलका छन्दः ॥ १५ ॥

अन्वयः—येन, सैन्यपतिना, सह, अद्य, त्वम्, रणभुवम्, गतः; यः, एकः, शूराणाम्, गुरुसमरकण्डूनिक्षपणः, (आसीत्); येन, (सह,) भवतः, चित्राः, परीहासाः, सततम्, अभवन्; हे मातुल, ते, सः, श्लाघ्यः, स्वसुः, भर्ता, वव नु खलु, गतः ? ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—येन = जिस, सैन्यपतिना = सेनापति के, सह = साथ, अद्य = आज, त्वम् = आप, रणभुवम् = युद्धस्थल में, गतः = गये थे; यः = जो, एकः = अकेले ही, शूराणाम् = योद्धाओं को, गुरुसमरकण्डूनिक्षपणः = भारी युद्धरूपी खुज्ज़ली को मिटा देने वाले, (आसीत = थे); येन = जिसके, (सह = साथ), भवतः = आपके, चित्राः = अनोखे, परीहासाः = हँसी-मजाक, सततम् = निरन्तर, अभवन् = हुआ करते थे; हे मातुल = हे मामा, ते = आपके, सः = वे, श्लाघ्यः = प्रशंसनीय, स्वसुः = बहन के, भर्ता = पति, वव नु खलु = कहौं, गतः = गये ? ॥ १६ ॥

गतो येनेति । येन सैन्यपतिना = सेनानायकेन, सह = साकम्, अद्य = अस्मिन् दिने, त्वम् = भवान्, रणभुवम् = युद्धस्थलम्, गतः = प्रयातः अस्ति; यः एकः = एकाकी एव, शूराणाम् = वीराणाम्,

सूत—कुमार, यह आपके मामा कृपाचार्य पास में खड़े हैं।

विशेष-शारद्वतः—कृपाचार्य शारद्वत मुनि के पुत्र थे। अतः उन्हें 'शारद्वत' भी कहा जाता है।

अश्वत्थामा—(बगल में देखकर, आँसू मरे हुए) मामा, मामा।

जिस सनापति के साथ आज आप युद्धस्थल में गये थे; जो अकेले ही योद्धाओं की मारी युद्धरूपी खुजली को मिटा देने वाले (थे); जिसके साथ आप के अनोखे हँसी-मजाक निरन्तर हुआ करते थे; हे मामा ! आपके वे प्रशंसनीय भगिनी-पति (वहनोई) कहाँ गये ? ॥ १६ ॥

कृप—आप शांतव्य (बातों) से भलों-भाँति परिचित ही हैं। अतः अत्यन्त शोक के आवेग की आवश्यकता नहीं।

अश्वत्थामा—मामा, मैंने विलाप करना छोड़ ही दिया है। यह तो मैं (मुझ) पुत्र को प्यार करने वाले पिता जी का ही अनुगमन कर रहा हूँ (अर्थात् प्राणों को त्याग कर स्वर्ग जा रहा हूँ)।

कृप—वत्स, आप जैसे (व्यक्तियों) के लिये यह उचित नहीं है।

सूत—कुमार, अत्यन्त साहस करना ठीक नहीं।

अश्वत्थामा—आदरणीय शारद्वत।

पिता जी हमारे वियोग के भय से यहाँ से परलोक चले गये। उन स्नेही पिता का (मैं) सर्वदा अवियोग कर रहा हूँ (अर्थात् मर कर हमेशा के लिए उनके पास ही जा रहा हूँ) ॥ १७ ॥

गुरुसमरकण्डूनिकपणः—गुरुः = विशालः समरः संग्रामः एव कण्डूः = खर्जनम् तस्याः निकपणः = निवारणः, आसीदिति शेषः, येन सह, भवतः = श्रीभक्तस्तव, चित्राः = अनेकविधाः, परीक्षाः = हास्य-व्यङ्ग्यवचनानि, सततम् = निरन्तरम्, अभवन् = जाताः; हे मातुल = हे मातुर्भातः, ते = तव सः = जगद्धित इत्यर्थः, श्लाघ्यः = प्रशंसनीयः, स्वसुः = भगिन्याः, भर्ता = पतिः, वव = कुव, नु खल्विति प्रश्ने, गतः = प्रयातः ? अत्र एकस्यैव द्रोणस्याऽनेकधौल्लेखादुल्लेखालङ्कारः। शिखरिणी छन्दः। तल्लक्षणम्—'रसे रुद्रैश्छिन्ना यमनसमला गः शिखरिणी' ॥ १६ ॥

कृप इति। परिगतपरिगन्तव्यः = परिगतः = परिशतः परिगन्तव्यः = क्षापनीयम् येन सः तथा ॥

अश्वत्थामा इति। परिदेवनम् = विलापः। अनुगच्छामि = अनुसरामि ॥

अन्वयः—तातः, मद्वियोगभयात्, इतः, परलोकम्, गतः; तस्य, वत्सलस्य, पितुः, सदा, अविरहम्, करोमि ॥ १७ ॥

शब्दार्थः—तातः = पिता जी, मद्वियोगभयात् = हमारे वियोगके भय से, इतः = यहाँ से, परलोकम् = परलोक, गतः = चले गये; तस्य = उन, वत्सलस्य = स्नेही, पितुः = पिता का, सदा = सर्वदा, अविरहम् = अवियोग, करोमि करता हूँ ॥ १७ ॥

मद्वियोगेति। तातः = पिता, मद्वियोगभयात्—मम = अश्वत्थामनः वियोगः = विरहः तस्मात् भयम् = भीतिः तस्मात्, इतः = अस्मात् लोकात्, परलोकम् = स्वर्गमित्यर्थः, गतः = प्रयातः; तस्य = तादृशस्य, वत्सलस्य = स्नेहयुक्तस्य, पितुः = जनकस्य, सदा = सर्वदा, अविरहम् = अवियोगम्, करोमि = विदधामि। प्रणान् परित्यज्य पितुः समीपमेव गच्छामीत्यभिप्रायः। अत्र काव्यलिङ्गमलङ्कारः। पथ्यावकत्रं छन्दः ॥ १७ ॥

कृपः—वत्स, यावद्यं संसारस्तावत्प्रसिद्धेवेयं लोकयात्रा यत्पुत्रैः पितरो लोक-
द्वयेऽप्यनुवर्तनीया इति । पश्य—

निवापाञ्जलिदानेन केतनैः श्राद्धकर्मभिः ।

तस्योपकारे शक्तस्त्वं किं जीवन्किमुतान्यथा ॥१८॥ x

सुतः—आयुष्मन्, यथैव मातुलस्ते शारद्वतः कथयति तत्तथा ।

अश्वत्थामा—आर्य, सत्यमेवेदम् । किंत्वतिदुर्वहत्वाच्छोकभारस्य न शक्नोमि
तातविरहितः क्षणमपि प्राणान्धारयितुम् । तद्गच्छामि तमेवोद्देशं यत्र तथाविधमपि
पितरं द्रक्ष्यामि । (उत्तिष्ठन् खड्गमवलोक्य विचिन्त्य) कृतमद्यापि शस्त्रग्रहणविडम्बनया ।
भगवन् शस्त्र,

गृहीतं येनासीः परिभवभयान्नोचितमपि

प्रभावाद्यस्याभून्न खलु तव कश्चिन्न विषयः ।

परित्यक्तं तेन त्वमसि सुतशोकान्न तु भया-

द्विमोक्ष्ये शस्त्र त्वामहमपि यतः स्वस्ति भवते ॥१९॥

(इति उत्सृजति)

(नेपथ्ये)

अन्वयः—निवापाञ्जलिदानेन, केतनैः, श्राद्धकर्मभिः, तस्य, उपकारे, त्वम्, जीवन्, शक्तः, किम्,
उत, अन्यथा, ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—निवापाञ्जलिदानेन=पितरों को दी जाने वाली जल की अञ्जलि के दान से,
केतनैः=ब्राह्मण-भोज से, श्राद्धकर्मभिः=पिण्डदान आदि कार्यों से, तस्य=उन का, उपकारे=
उपकार करने में, त्वम्=तुम, जीवन्=जीते हुए, शक्तः=समर्थ हो, किम्=यह प्रश्न करने के अर्थ
में आया है, उत=अथवा, अन्यथा=दूसरे रूप से (अर्थात् मर कर) ? ॥ १८ ॥

निवापेति । निवापाञ्जलिदानेन—निवापः=पितृदानम् ('निवापः पितृदानं स्यात्' इत्यमरः)
तस्य अञ्जलिः=जलाञ्जलिरित्यर्थः, पितृतर्पणमिति यावत्, तस्य दानम्=उद्दिश्य समर्पणम् तेन,
केतनैः=श्राद्धाङ्गभूतैः ब्राह्मणभोजनैरित्यर्थः ('केतनं तु निमन्त्रणे । गृहे केतौ च कृत्ये च' इति मेदिनी),
श्राद्धकर्मभिः—श्राद्धाणि=पिण्डदानानि एव कर्माणि=कृत्यानि तैः, तस्य=मृतस्य स्वजातस्येत्यर्थः,
उपकारे=कल्याणे, श्राद्धाद्यभावे परेतः बुभुक्षितः पिपासितश्च सन् विलपति पीडामनुभवति चेति तद्दाने
तु तस्य तुष्टिः शान्तिश्चेति श्राद्धकर्मणा तस्य कल्याणमत्र निर्दिष्टमिति, त्वम्=तत्पुत्रोऽश्वत्थामा,
जीवन्=प्राणान् धारयन्, शक्तः=समर्थः, किमुतेति प्रश्ने, अन्यथा=अन्यप्रकारेण, प्राणान्
परित्यज्येत्यर्थः । पितु श्राद्धकर्माधुना तत्र कर्तव्यं न तु मरणमित्यभिप्रायः । पृथग्वक्तुं छन्दः ॥१८॥

अन्वयः—येन, नोचितम्, अपि, (त्वम्), परिभवभयात्, गृहीतम्, आसीः; यस्य, प्रभावात्,
तव, कश्चित्, विषयः, न, (इति), खलु, न, अभूत्; तेन त्वम्, सुतशोकात्, परित्यक्तम्, असि,
न तु, भयात्, (अतः), हे शस्त्र, अहम्, अपि, त्वाम्, विमोक्ष्ये, यतः, भवते, स्वस्ति, अस्तु ॥ १९ ॥

कृप—वत्स, जब तक यह संसार है तब तक, यह लोक व्यवहार (Custom) प्रसिद्ध ही है कि—पुत्रों के द्वारा दोनों लोकों में पितरों का अनुवर्तन करना चाहिए । देखिये—

पितरों को दी जाने वाली जल की अञ्जलि के दान से, ब्राह्मण-भोज (तथा) पिण्डदान आदि कार्यों से, उनका उपकार करने में तुम जीते हुए समर्थ हो अथवा दूसरे रूप से (अर्थात् मर कर) ? ॥ १८ ॥

सूत—चिरञ्जीविन्, आपके मामा शारद्वत जैसा कह रहे हैं, वह वैसा ही है (अर्थात् वह ठीक ही है) ।

अश्वत्थामा—आर्य, यह सत्य है । किन्तु शोक-भार के अत्यन्त असह्य होने के कारण पिता जी से बिलुप्त कर एक क्षण भी प्राण धारण करने में समर्थ नहीं हूँ । अतः (मैं) उसी स्थान पर जा रहा हूँ, जहाँ उस अवस्था में भी पड़े हुए (अर्थात् मृत) पिता जी को देखूँगा । (उठते हुए, तलवार देखकर, सोचकर) अब भी शस्त्र धारण करने का ढोंग व्यर्थ है । भगवन् शस्त्र,

जिसके द्वारा उचित न होते हुए भी (तुम) तिरस्कार के भय से धारण किये गये थे; जिसके प्रभाव से तुम्हारा कोई विषय (पहुँच के भीतर की वस्तु) नहीं था (यह बात) नहीं थी (अर्थात् विश्व का कोई भी व्यक्ति तथा वस्तु तुम्हारा विषय बन सकता था) । उनके द्वारा तुम पुत्र के शोक के कारण परित्यक्त हुए हो, न कि (किसी शत्रु के) भय से । (इसलिये) हे शत्रु, मैं भी तुमको छोड़ रहा हूँ । आप का कल्याण हो ॥ १९ ॥

(ऐसा कहकर छोड़ता है)

(पदों के पीछे)

शब्दार्थः—येन = जिस के द्वारा, नोचितम् = उचित न होते हुए, अपि = भी, (त्वम् = तुम), परिभ्रमयात् = तिरस्कार के भय से, गृहीतम् = धारण किये गये, आसीः = थे, यस्य = जिस के, प्रभावात् = प्रभाव से, तव = तुम्हारा, कश्चित् = कोई, विषयः = विषय, न = नहीं था, (इति = यह बात), खलु = निश्चय ही, न = नहीं, अमृतम् = यो; तेन = उन के द्वारा, त्वम् = तुम्, सुतशोकात् = पुत्र के शोक के कारण, परित्यक्तम् = परित्यक्त, असि = हुए हो, न तु = न कि, भयात् = भय से; (अतः = इसलिये) हे शस्त्र = हे आयुध, अहम् = मैं, अपि = भी, त्वाम् = तुम का, विमोक्षे = छोड़ रहा हूँ; यतः = ताकि, भवते = आप का, स्वस्ति = कल्याण, अस्तु = हो ॥ १९ ॥

गृहीतमिति । येन = येन मम पित्रेत्यर्थः, नोचितम् = न उचितम् = योग्यम्, द्राणो ब्राह्मण आसादिति क्षत्रियोचितमस्त्रधारणं न समीचीनमासौत्तकृते, अपि = च, त्वमिति शेषः, परिभ्रमयात् = परिभवात् = तिरस्कारात्, भयम् = भीतिः तस्मात्, गृहीतम् = धृतम्; आसीः = अमृतम्, यस्य = एकवीरस्य मम पितुरित्यर्थः, प्रभावात् = सामर्थ्यात्, तव = भवतः, कश्चित् = कोऽपि, विषयः = लक्ष्यः, न = नहि, (इति = एतत्), खल्विति निश्चये, न अमृतम् = न आसीत्, 'द्वौ नजौ सविशेषं प्रकृतार्थं गमयतः' इति न्यायात् सर्वोऽपि तव विषय एवासीदिति भावः, तेन = तादृशेन मम पित्रा, त्वम् = भवान् सुतशोकात् = पुत्रदुःखात्, परित्यक्तम् = मुक्तम्, असि, न तु भयात् = भीतेः, शत्रुभौतेरित्यर्थः,

भो भो राजानः, कथमिह भवन्तः सर्वे गुरोर्भारद्वाजस्य परिभवममुना नृशंसेन प्रयुक्तमुपेक्षन्ते ।

अश्वत्थामा—(आकर्ण्य शनैः शस्त्रं स्पृशन्) किं गुरोर्भारद्वाजस्य परिभवः ।

(पुनर्नैपथ्ये)

आचार्यस्य त्रिभुवनगुरोर्न्यस्तशस्त्रस्य शोकाद्-

द्रोणस्याजौ नयनसलिलक्षालिताद्राननस्य ।

मौलौ पाणिं पलितधवले न्यस्य कृत्वा नृशंसं

धृष्टद्युम्नः स्वशिविरमयं यानि सर्वे सहध्वम् ॥२०॥

अश्वत्थामा—(सक्रोधं सकम्पं च कृपयतौ दृष्ट्वा) किं नामेदम् ?

प्रत्यक्षमात्तधनुषां मनुजैश्चराणां

प्रायोपवेशसदृशं व्रतमास्थितस्य ।

तातस्य मे पलितमौलिनिरस्तकाशे

व्यापारितं शिरशि शस्त्रमशस्त्रपाणोः ॥२१॥

(अतः), हे शस्त्र = हे आयुध, अहम् = तत्पुत्रोऽश्वत्थामा, अपि = च, त्वाम् = भवन्तम्, विमोक्षे = त्यजामि, यतः = यस्मात्, भवते = श्रोमते, स्वस्ति = कल्याणम्, अस्तु = भवतु, शत्रुणा तिरस्कृतस्य किञ्चित्कर्तुमशक्तस्य जनस्य हस्ते शस्त्रस्याकल्याणमेवेति परित्यजामि त्वामिति भावः । परिसंख्या-लङ्कारः । शिखरिणी छन्दः ॥१९॥

अन्वयः—आजौ, शोकात्, न्यस्तशस्त्रस्य, त्रिभुवनगुरोः, नयनसलिलक्षालिताद्राननस्य, आचार्यस्य, द्रोणस्य, पलितधवले, मौलौ, पाणिम्, न्यस्य, नृशंसम्, कृत्वा, अयम्, धृष्टद्युम्नः, स्वशिविरम्, याति, (तत्), सर्वे, सहध्वम् ॥२०॥

शब्दार्थः—आजौ = युद्ध में, शोकात् = शोक से, न्यस्तशस्त्रस्य = शस्त्र का परित्याग किये हुये, त्रिभुवनगुरोः = त्रिलोको के गुरु, नयनसलिलक्षालिताद्राननस्य = नेत्र-जल (अर्थात् आंसुओं) से धुले हुये (अतः) भोगे मुख वाले, आचार्यस्य = आचार्य, द्रोणस्य = द्रोण के, पलितधवले = पके हुये बालों के कारण श्वेत, मौलौ = शिर पर, पाणिम् = हाथ को, न्यस्य = रख कर, नृशंसम् = क्रूरता को, कृत्वा कर के, अयम् = यह, धृष्टद्युम्नः = धृष्टद्युम्न, स्वशिविरम् = अपने शिविर को, याति = जा रहा है; (तत् = उसे), सर्वे = सभी लोग, सहध्वम् = उपेक्षा कर रहे हैं ॥२०॥

आचार्यस्येति । आजौ = युद्धे, शोकात् = दुःखात्, पुत्रमरणमुपश्रुत्य जनितात् शोकादित्यर्थः, न्यस्तशस्त्रस्य—न्यस्तम् = परित्यक्तम् शस्त्रम् = आयुधम् येन तस्य, त्रिभुवनगुरोः—त्रिभुवनस्य = त्रिलोक्याः गुरोः = आचार्यस्य, नयनसलिलक्षालिताद्राननस्य—नयनसलिलैः = अश्रुभिः क्षालितम् = स्नातम् अतः आर्द्रम् = क्लिन्नम् आननम् = मुखम् यस्य तादृशस्य, आचार्यस्य = धनुर्विद्याविशारदस्य शिक्षकस्येत्यर्थः, द्रोणस्य = द्रोणाचार्यस्य, पलितधवले—पलितेन = जरसा शुक्लेन केशेनेत्यर्थः ('पलितं जरसा शौक्यं केशादिषु' इत्यमरः) धवले = शुभ्रे, मौलौ = शिरसि, पाणिम् = करम्, न्यस्य = स्थाप्य

हे हे राजाओं, यहाँ वर्तमान आप सभी इस क्रूर के द्वारा किये गये गुरु मारदाज (द्रोण) के तिरस्कार की कैसे उपेक्षा कर रहे हैं ?

अश्वत्थामा—(सुनकर, धीरे-धीरे शस्त्र को छूता हुआ) क्या ? गुरु मारदाज का अपमान ?

युद्ध में शोक से शस्त्र का परित्याग किये हुए, त्रिलोकी के गुरु, नेत्र-जल (अर्थात् आँसुओं) से धुले हुए (अतः) भीगे मुख वाले, आचार्य द्रोण के, पके हुए बालों के कारण श्वेत शिर पर हाथ रख कर क्रूरता करके (अर्थात् शिर काट कर) यह धृष्टद्युम्न अपने शिविर को जा रहा है । (उसे आप) सभी लोग उपेक्षा कर रहे हैं ? (अर्थात् उसे बर्दास्त कर रहे हैं ?) ॥ २० ॥

(क्रोध एवं कम्पन के साथ कृपाचार्य एवं सूत को देखकर) यह क्या (बात है) ?

धनुर्धारी राजाओं के समक्ष आमरण अनशन के लिये बैठने के सदृश व्रत में स्थित, शस्त्ररहित हाथवाले, मेरे पिताजी के, पके हुए बालों से काशों को तिरस्कृत करने वाले (अर्थात् काशों से भी अधिक धवल), मस्तक पर शस्त्र चलाया ? ॥ २१ ॥

नृशंसम् = विनाशम् ('विनाशोऽपि नृशंसः स्यात्' इति हारावली), कृत्वा = विधाय, अयम् = एषः, धृष्टद्युम्नः = पाण्डवपक्षपाती एको योद्धा, स्वशिविरम् = स्वसैन्यावासस्थानम्, याति = व्रजति, तद्, सर्वे = निखिलाः, यूयमिति शेषः, सहध्वम् = मर्षयत ? अस्य अत्याचारस्य मर्षणं युष्माकं कृतेऽनुचितमिति भावः । मन्दाक्रान्ता छन्दः । तल्लक्षणं—'मन्दाक्रान्ताऽन्धुरिसनगैर्मो मनो तौ गयुग्मम्' ॥ २० ॥

अन्वयः—आत्तधनुषाम्, मनुजेश्वराणाम्, प्रत्यक्षम्, प्रायोपवेशसदृशम्, व्रतम्, आस्थितस्य, अशस्त्रपाणेः, मे, तातस्य, पलितमौलिनिरस्तकाशे, शिरसि, शस्त्रम्, व्यापारितम् ॥ २१ ॥

शब्दाथः—आत्तधनुषाम् = धनुर्धारी, मनुजेश्वराणाम् = राजाओं के, प्रत्यक्षम् = समक्ष, प्रायोपवेशसदृशम् = अनशन के लिये बैठने के सदृश, व्रतम् = व्रत में, नियम में, आस्थितस्य = बैठे हुये, स्थित, अशस्त्रपाणेः = शस्त्ररहित हाथवाले, मे = मेरे, तातस्य = पिताजी के, पलितमौलिनिरस्तकाशे = पके हुये बालों से काशोंको तिरस्कृत करने वाले, शिरसि = मस्तक पर, शस्त्रम् = शस्त्र, व्यापारितम् = चलाया ? ॥ २१ ॥

प्रत्यक्षमिति आत्तधनुषाम्—आत्तम् = गृहीतम् धनुः = कोदण्डम् यैस्तेषाम्, मनुजेश्वराणाम् = राजां, प्रत्यक्षम् = समक्षम्, प्रायोपवेशसदृशम्—प्रायोपवेशः = आमरणम् उपवासार्थमुपवेशनम् तत्सदृशम् = तत्सुच्यम्, अत्राऽपि निष्क्रियेणोपविश्यते, अनेनापि तथैवोपविष्टम्, व्रतम् = नियमम्, आस्थितस्य = वर्तमानस्य, गृहीतस्येत्यर्थः, अशस्त्रपाणेः = शस्त्रम् = प्रहरणम् पाणौ = हस्ते यस्य स शस्त्रपाणिः = आयुधसहायः, तथा न भवतीति तस्य, मे = मम, अश्वत्थाम्न इत्यर्थः, तातस्य = पितुः, पलितमौलिनिरस्तकाशे—पलितेन = धवलेन मौलिना = केशेन ('चूडा किरीटं केशाश्च संयता मौलयस्त्रय' इत्यमरः) निरस्तः = अभिमूतः, काशः = काशसमूहः इत्यर्थः येन तस्मिन्, शिरसि = मस्तके, शस्त्रम् = प्रहरणम्, व्यापारितम् = प्रयुक्तम् । सशस्त्राणां राशं पुरतो निरस्त्रे वृद्धे च मम पितरि शस्त्र-प्रहरणं न समीचीनमासीदिति भावः । अत्रोपमालङ्कारः । वसन्ततिलका छन्दः ॥ २१ ॥

कृपः—वत्स, एवं किल जनः कथयति ।

अश्वत्थामा—किं तातस्य दुरात्मना परिमृष्टमभूच्छिरः ।

सूतः—(सभयम्) कुमार, आसीदयं तस्य तेजोराशेर्देवस्य नवः परिभवावतारः ।

अश्वत्थामा—हा तात, हा पुत्रप्रिय । मम मन्दभागधेयस्य कृते शस्त्रपरित्यागात्तथाविधेन क्षुब्धेणात्मा परिभावितः । अथवा—

परित्यक्ते देहे रणशिरसि शोकान्धमनसा

शिरः श्वा काको वा द्रुपदतनयो वा परिमृशेत् ।

स्फुरदिव्यास्त्रौघद्रविणमदमत्तस्य च रिपो-

ममैवायं पादः शिरसि निहितस्तस्य न करः ॥२२॥

आः दुरात्मन्पाञ्चालापसद,

तातं शस्त्रग्रहणविमुखं निश्चयेनोपलभ्य

त्यक्त्वा शङ्कां खलु विदधतः पाणिमस्योत्तमाङ्गे ।

अश्वत्थामा करधृतधनुः पाण्डुपाञ्चालसेना-

तूलोत्क्षेपप्रलयपवनः किं न यातः स्मृतिं ते ॥२३॥

अन्वयः—शोकान्धमनसा, (तेन), रणशिरसि, देहे, परित्यक्ते (सति), श्वा, वा, काकः, वा, द्रुपदतनयः, शिरः, परिमृशेत् ; स्फुरदिव्यास्त्रौघद्रविणमदमत्तस्य, रिपोः, च, शिरसि, अयम्, मम, पादः, एव, निहितः, न करः, (अथवा—स्फुरदिव्यास्त्रौघद्रविणमदमत्तस्य, रिपोः, अयम्, मम, एव शिरसि, पादः, निहितः, तस्य (शिरसि), करः, न) ॥२२॥

शब्दार्थः—शोकान्धमनसा=शोक से विह्वल मन वाले, (तेन=उन के द्वारा), रणशिरसि=युद्धभूमि में, देहे=शरीर के, परित्यक्ते (सति)=छोड़ देने पर, श्वा=कुत्ता, वा=अथवा, काकः=कौवा, वा=अथवा, द्रुपदतनयः=द्रुपदपुत्र, शिरः=शिर को, परिमृशेत्=छुये; स्फुरदिव्यास्त्रौघद्रविणमदमत्तस्य=चमकते हुये दिव्यास्त्रों के समूहरूपी धन से मतवाले, रिपोः=शत्रु के, च=और, शिरसि=मस्तक पर, अयम्=यह, मम=मेरा, पादः=पैर, एव=ही, निहितः=रक्खा है, न=न कि, करः=हाथ, अथवा—

स्फुरदिव्यास्त्रौघद्रविणमदमत्तस्य=चमकते हुए दिव्यास्त्रों के समूहरूपीधन से मतवाले, रिपोः=शत्रु का, अयम्=यह, मम=मेरे, एव=ही, शिरसि=शिर पर, पादः=पैर, निहितः=रक्खा गया है, तस्य=उन के (शिरसि=शिर पर), करः=हाथ, न=नहीं) ॥ २२ ॥

क्रुद्धोऽश्वत्थामा स्वकीयं भाविनं कार्यकलापं निर्दिशन्नाह—परित्यक्त इति । शोकान्धमनसा—शोकेन=पुत्रमरणमुपश्रुत्य सज्जातेन दुःखेन अन्धम्=व्याकुलम्, विवेकशून्यमिति यावत्, मनः=चेतः यस्य तेन, तेन=द्रोणेनेति शेषः, रणशिरसि=युद्धाङ्गणे, देहे=शरीरे, परित्यक्ते=उज्जिते सति, देहक्षणविषयकचिन्तायां मुक्तायामिति भावः, योगेन प्राणे परित्यक्ते धृष्टद्युम्नस्तच्छिरश्चक्रेति महाभारतप्रसिद्धिमनुसंध्य प्रथमैव व्याख्यां व्यवहरणीया, श्वा=कुक्कुरः, वा=अथवा, काकः=

कृप—वत्स, लोग ऐसा ही कह रहे हैं ।

अश्वत्थामा—वया (उस) दुरात्मा के द्वारा पिता जी का शिर छुड़ा गया ?

सूत—(भय के साथ) प्रताप की राशि उन पूज्य के अपमान की यह अमृतपूर्व घटना थी ।

अश्वत्थामा—हा तात, हा पुत्रपिय ! मुझ अमाने के लिये (आप ने) शस्त्र का परित्याग कर वैसे नीच से अपने आपको अपमानित कराया । अथवा—

शोक से विह्वल मनवाले (उनके द्वारा) युद्धभूमि में शरीर के छोड़ देने पर कुत्ता अथवा कीटा अथवा दुषदपुत्र (धृष्टद्युम्न) शिर को छुये । चमकते हुए दिव्यास्त्रों के समूहरूपी धन से मतवाले, शत्रु के भी मस्तक पर यह मेरा पैर ही रक्खा है न कि हाथ । (अथवा—चमकते हुए दिव्यास्त्रों के समूह-रूपी धन से मतवाले शत्रु का यह मेरे ही शिर पर पैर रक्खा गया है, उनके (अर्थात् पिताजी के) शिर पर हाथ नहीं) ॥ २२ ॥

विशेष—परित्यक्त देहे—महाभारत के अनुसार धृष्टद्युम्न ने द्रोण का शिर उस अवस्था में काटा था जब कि वे योग के द्वारा अपने प्राण को छोड़ चुके थे । उस समय वहाँ उनका निर्जीव शरीर था ॥ २२ ॥

आह ! दुष्ट, नीच पाञ्चाल,

शस्त्र उठाने से विमुख पिता जी को (अब किसी भी अवस्था में शस्त्र नहीं छुड़ेंगे—ऐसा) निश्चितरूप से जान कर (अतः) भय छोड़ कर इनके शिर पर हाथ रखते हुए तुम्हारी बुद्धि में क्या—पाण्डवों तथा पाञ्चालों की सेनारूपी कपास (Cotton) को उड़ा देने में प्रलयकाल का पवन, हाथ में धनुष लिये हुए (द्रोण-पुत्र) अश्वत्थामा नहीं आया ? ॥ २३ ॥

ध्वांक्षः, वा = अथवा, दुषदपुत्रः = धृष्टद्युम्नः, शिरः = उत्तमाङ्गम्, परिमृशेत = परिमृशतु । शुनः काकस्य च सहोपादानेन दुषदपुत्रस्याधमत्वं ध्वनितम् । स्फुरद्दिव्यास्त्रैश्चद्रविणमदमत्तस्य—स्फुरन्ति = प्रकाशमानानि यानि दिव्यानि = श्रेष्ठानि अस्त्राणि = प्रहरणानि तेषाम् ओषः = समूहः एव द्रविणम् = धनम् तेन मदमत्तस्य = गवितस्य, रिपोः = शत्रोः, च = अपि, शिरसि = मस्तके, अयम् = एषः, निरस्त्रस्यासहायस्य तस्य शिरसि धृष्टद्युम्नेन करो दत्तः, किन्तु अयमश्वत्थामा सायुधस्य ससहायस्य तस्य शिरसि पादं दास्यतीति दृढोक्तिः । सम्प्रतीति यावत्, मम = द्रोणपुत्रस्य अश्वत्थामनः, पादः = चरणः, एवेति दाढ्यै, निहितः = स्थापितः, आस्ते इति शेषः, न करः = न तु हस्तः । अथवा—स्फुरद्दिव्यास्त्रैश्चद्रविण-मदमत्तस्य रिपोः = शत्रोः, अयम् = एषः, मम = मानिनोऽश्वत्थामनः इत्यर्थः, एवेत्यन्यव्यवच्छेदायम्, शिरसि = मस्तके, पादः = चरणः, निहितः = स्थापितः, तस्य = पितुः, शिरसीति शेषः, करः = हस्तः न । अनेन कर्मणाऽहं पितुःस्थाने स्वकीयमेव धोरमपमानं मन्ये । तेन मां प्रत्येव शत्रुत्वमाचरित-मित्यभिप्रायः । अत्र तृतीये चरणे रूपकालङ्कारः । शिखरिणी छन्दः । तल्लक्षणम्—‘रसे रुद्रैश्छिन्ना यमनसमला गः शिखरिणी’ ॥ २२ ॥

अन्वयः—शङ्कग्रहणविमुखम्, तातम्, निश्चयेन, उपलस्य, शङ्काम्, त्यक्त्वा, अस्य, उत्तमाङ्गे, पाणिम्, विदधतः, ते, स्मृतिम्, किम्, पाण्डुपाञ्चालसेनात्थोक्षेपप्रलयपवनः, कर्धृतधनुः, अश्वत्थामा, न, यातः, खलु ॥ २३ ॥

युधिष्ठिर, युधिष्ठिर, अजातशत्रो, अमिथ्यावादिन्, धर्मपुत्र, सानुजस्य ते किमने-
नापकृतम् । अथवा किमनेनालीकप्रकृतिजिह्वचेतसा । अर्जुन, सात्यके, बाहुशालिन्वृ-
कोदर, साधव, युक्तं नाम भवतां सुरासुरमनुजलोकैकधनुर्धरस्य द्विजन्मनः परिणत-
वयसः सर्वाचार्यस्य विशेषता मम पितुरमुना हृषदकुलकलकेन मनुजपशुना स्पृश्यमा-
नमुत्तमाङ्गमुपेक्षितम् । अथवा सर्व एवैते पातकिनः । किमेतैः ।

कृतमनुमतं दृष्टं वा यौरदं गुरुपातकं

मनुजपशुभिर्निर्मयादैर्भवद्भिरुदायुधैः ।

नरकरिपुणा सार्धं तेषां सभोमकिरीटिना-

मयमहमसृङ्मेदोमांसैः करोमि दिशां बलिम् ॥२४॥

शब्दार्थः—शस्त्रग्रहणविमुखम्=शस्त्र उठाने से विमुख, तातम्=पिता जी को, निश्चयेन=
(अब किसी भी अवस्था में शस्त्र नहीं छुड़ेंगे—ऐसा) निश्चितरूप से, उपलभ्य=जान कर, शङ्काम्=
भय, त्यक्त्वा=छोड़ कर, अस्य=इन के, उत्तमाङ्गे=शिर पर, पाणिम्=हाथ, विदधतः=रखते हुए,
ते=तुम्हारी, स्मृतिम्=बुद्धि में, किम्=क्या, पाण्डुपाञ्चालसेनातूलोत्क्षेपप्रलयपवनः=पाण्डवों तथा
पाञ्चालों की सेनारूपी कपास को उड़ा देने में प्रलयकाल का पवन, कर्धृतधनुः=हाथ में धनुष लिये
हुए, अश्वत्थामा=(द्रोण का पुत्र) अश्वत्थामा, न=नहीं, यातः खलु=आया ? ॥ २३ ॥

प्रकारान्तरेण स्वकीयं सामर्थ्यं वर्णयन्नाह—तातमिति । शस्त्रग्रहणविमुखम्—शस्त्रस्य = आयुधस्य
ग्रहणे=धारणे विमुखम्=विरतम्, तातम्=मत्पितरम्, निश्चयेन=श्रुवेण, नास्यं कस्यामपि दशायां
शस्त्रग्रहणं करिष्यतीति निश्चयेनेत्यर्थः, उपलभ्य=शात्वा, अतः शङ्काम्=भोतिम्, त्यक्त्वा=मुक्त्वा,
अस्य=मम तातस्य, उत्तमाङ्गे=शिरसि, पाणिम्=हस्तम्, विदधतः=स्थापयतः, ते=तव,
धृष्टद्युम्नस्य, स्मृतिम्=बुद्धिस्मरणपथम्, बुद्धिचित्यर्थः, किमिति प्रश्ने, पाण्डुपाञ्चालसेनातूलोत्क्षेपप्रलय-
पवनः=पाण्डूनाम्=पाण्डुपुत्राणामित्यर्थः, अत्र पाण्डुशब्दो पाण्डुसुतेषु लाक्षणिकः, पाञ्चालानाञ्च=
धृष्टद्युम्नादीनाञ्च सेना=वाहिनी एव तूतः=कार्पासः तस्य उत्क्षेपे=उत्थाप्यानायासेनान्यत्र प्रापणे
प्रलयपवनः=प्रलयमारुतः, यथैव जगदुन्मूलयितुं समर्थस्य प्रलयपवनस्य कृते तूलमकिञ्चित्करं तथैव विश्वं
शक्नोतलेन दग्धुं समर्थस्याश्वत्थामनः पाण्डवपाञ्चालसेना तृणवदकिञ्चित्करांति भावः, अतस्तथा तव
रक्षणमसम्भवमिति गूढोऽर्थः, कर्धृतधनुः=करे=हस्ते धृतम्-गृहीतम् धनुः=कोदण्डम् येन तादृशः
अश्वत्थामा=द्रोणपुत्रोऽहमिति भावः, न यातः=न प्राप्तः, बुद्धो न आयातः ? खल्विति प्रश्ने । अत्र
परम्परितरूपकमलङ्कारः । मन्दाक्रान्ता छन्दः । तल्लक्षणं यथा—‘मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसनगैर्मौ मनौ तौ
गयुरमम्’ ॥ २३ ।

युधिष्ठिर इति । अत्र सर्वं सम्बोधनपदं व्यङ्ग्यार्थसंवलितमास्ते । अलोकप्रकृतिजिह्वचेतसा—
अलीका=मिथ्या या प्रकृतिः=स्वभावः तथा जिह्वम्=कुटिलम् चेतः=हृदयम् यस्य स तेन ।
उत्तमाङ्गम्=शिरः ॥

अन्वयः—यैः, मनुजपशुभिः, निर्मयादैः, उदायुधैः, भवद्भिः, इदम्, गुरुपातकम्, कृतम्,

युधिष्ठिर, युधिष्ठिर, अजातशत्रु, असत्य न बोलनेवाले, धर्मराज के पुत्र ! माइयों के सहित आपका इन्होंने क्या बिगाड़ा था ? अथवा झूठे स्वभाव के कारण कुटिल चित्तवाले इस (युधिष्ठिर) से क्या (दूसरी अपेक्षा की जा सकती है) ? अजुन, सत्यके, भुजबलशाली भोम तथा श्रोक्ण ! क्या, आप लोगों के लिये इस द्रुपदवंश के कलङ्क, मनुष्य-पशु द्वारा स्पर्श किये जाते हुए, सुर, असुर तथा मनुष्यलोक के वेजोष्ठ धनुर्धारी, (उस पर भी) ब्राह्मण, (उस पर भी) वृद्ध, (उस पर भी) सत्र के गुरु, (और उस पर भी विशेष रूप से मेरे पिता के (काटे जाते हुए) शिर को उपेक्षा करना उचित था ? अथवा ये सभी पातकी हैं । इनसे (कुछ कहने से) क्या (लाभ) ?

मानवरूप में वर्तमान पशु, मर्यादारहित, अस्त्र-शस्त्र उठाए हुए, जिन आप लोगों के द्वारा यह महान् पाप किया गया है, समर्थित हुआ है, अथवा देखा गया है, उन श्रोक्ण के साथ, भोम और अजुन के सहित (आप लोगों के) रक्त, मज्जा तथा मांस से अंगों में दिवांगों में बलि (पूजा) करता हूँ ॥ २४ ॥

विशेष—नरकरिपुणा—‘नरक’ एक असुर था । यह प्राग्ज्योतिषपुर (आसाम) का शासक था । देवताओं की प्रार्थना पर श्रोक्ण ने युद्ध में उसे मारा था । अतः वे ‘नरकरिपु’ कहे जाते हैं ॥ २४ ॥

अनुमतम्, वा, दृष्टम्, तेषाम्, नरकरिपुणा, सार्द्धम्, समीमकिरीटिनाम्, (भवताम्), असृङ्मेदो-मांसैः, अयम्, अहम्, दिशाम्, बलिम्, करोमि ॥ २४ ॥

शब्दार्थः—मनुजपशुभिः=मानवरूप में वर्तमान पशु, निर्मयादैः=मर्यादा रहित, उदायुधैः=अस्त्र-शस्त्र उठाए हुए, येः=जिन, मवद्भिः=आप लोगों के द्वारा, इदम्=यह, गुरुपातकम्=महान् पाप, कृतम्=किया गया है, अनुमतम्=समर्थित हुआ है, वा=अथवा, दृष्टम्=देखा गया है, तेषाम्=उन नरकरिपुणा=श्रोक्ण के, सार्द्धम्=साथ, समीमकिरीटिनाम्=भोम और अजुन के सहित, (भवताम्=आप लोगों के), असृङ्मेदोमांसैः=रक्त, मज्जा और मांस से, अयम्=अंगों, अहम्=मैं, दिशाम्=दिशाओं में, बलिम्=बलि (पूजा), करोमि=करता हूँ ॥ २४ ॥

कृतमनुमतमिति । यं: मनुजपशुभिः—मनुजाः=मनुष्याः पशवः इव तैः, निर्मयादैः=नोतिचयुतैः, युद्धमर्यादाविरहितैरित्यर्थः, उदायुधैः—उद्गतानि=उत्थितानि आयुधानि=प्रहरणानि येषां तैः, अनेन प्रतिरोधसामर्थ्यमुक्तम्, मवद्भिः=गुण्यभिः, इदम्=एतत्, गुरुपातकम्—गुरु=महत् च तत् पातकम्=पापम्, अथवा—गुरो=आचार्य पातकम्, कृतम्=सम्पादितम्, अनुमतम्=समर्थितम्, वा=अथवा, दृष्टम्=अवलोकितम्, तेषाम्=तादृशानाम्, नरकरिपुणा=नरकसुरशत्रुणा श्रोक्णेत, सार्द्धम्=साकम्, समीमकिरीटिनाम्=भोमाजुनमहितानाम्, भवतामिति शेषः, असृङ्मेदोमांसैः—असृक्=रक्तम् च मेदश्च=मज्जा च मांसम्=पिशितम् च तैः, अयम्=सम्प्रति, अहम्=अश्व-त्यामा, दिशाम्=चतुर्षु दिक्ष्वित्यर्थः, दिग्देवेभ्य इति यावत्, बलिम्=उपहारम् (‘बलिपूजोपहारयोः’ इति शाश्वतः) करोमि=सम्पादयामि । युद्धे सर्वान् हनिष्यामीति यावत् । हरिणो छन्दः । तत्त्वक्षणम्—‘नसमरसखा गः षड्वेदेहयैर्हरिणी मता’ ॥ २४ ॥

कृपः—वत्स, किं न संभाव्यते भारद्वाजतुल्ये बाहुशालिनि दिव्यास्त्रग्रामकोविदे भवति ।

अश्वत्थामा—भो भोः, पाण्डवमत्स्यसोमकमागधाद्याः क्षत्रियापसदाः ।

पितुर्मूर्ध्नि स्पृष्टे ज्वलदनलभास्वत्परशुना

कृतं यद्रामेण श्रुतिमुपगतं तन्न भवताम् ।

किमद्याश्वत्थामा तदरिरुधिरासारविषसं

न कर्म क्रोधान्धः प्रभवति विधातुं रणमुखे ॥२५॥ ✕

सूत, गच्छ त्वं सर्वोपकरणैः साङ्ग्रामिकैः सर्वायुधैरुपेतं महाहवलक्षणं नामा-
स्मत्स्यन्दनमुपनय ।

सूतः—यदाज्ञापयति कुमारः ।

(इति निष्क्रान्तः) ।

कृपः—वत्स, अवश्यप्रतिकर्तव्येऽस्मिन्दारुणे परिभवाग्नौ सर्वेषामस्माकं कोऽन्य-
स्त्वामन्तरेण शक्तः प्रतिकर्तुम् । किन्तु—

अश्वत्थामा—किमतः परम् ।

कृपः—सैनापत्येऽभिषिक्तं भवन्तमिच्छामि समरभुवमवतारयितुम् ।

अश्वत्थामा—मातुल, परतन्त्रमिदमकिंचित्करं च ।

कृपः—वत्स, न खलु परतन्त्रं नाकिंचित्करं च । पश्य—

भवेदभीष्ममद्रोणं धार्तराष्ट्रबलं कथम् ।

यदि तत्तुल्यकक्षोऽत्र भवान्धुरि न युज्यते ॥२६॥ ✕

कृप इति । दिव्यास्त्रग्रामकोविदे—दिव्यास्त्राणाम्=दिव्यायुधानाम् ग्रामः=समूहः तस्य कुः=
वेदः तस्य विदः=ज्ञाता तस्मिन्, अथवा दिव्यास्त्रग्रामस्य कोविदे=पण्डिते ॥

अन्वयः—पितुः, मूर्ध्नि, स्पृष्टे, (सति), ज्वलदनलभास्वत्परशुना, रामेण, यत्, कृतम्, तत्,
भवताम्, श्रुतिम्, न, उपगतम् ? क्रोधान्धः, अश्वत्थामा, अद्य, रणमुखे, अरिरुधिरासारविषसम्, तत्,
कर्म, विधातुम्, न प्रभवति, किम् ? ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—पितुः=पिताजी के, मूर्ध्नि=मस्तक के, स्पृष्टे (सति)=छुये जाने पर, ज्वलदनल-
भास्वत्परशुना=धधकती हुई अग्नि की तरह चमकते हुये परशुवाले, रामेण=परशुराम के द्वारा, यत्
=जो, कृतम्=किया गया है, तत्=वह, भवताम्=आप लोगों के, श्रुतिम्=कान तक, न=नहीं,
उपगतम्=पहुँचा है (क्या) ? क्रोधान्धः=क्रोध से पागल, अश्वत्थामा, अद्य=आज, रणमुखे=
संग्राम के मध्य, अरिरुधिरासारविषसम्=शत्रुओं के रुधिर की वृष्टिरूप विषसं (पितरों को प्रदत्त
भोजन) वाले, तत्=उस, कर्म=कर्म को, विधातुम्=करने में, न प्रभवति=नहीं समर्थ है; किम्=
क्या । ॥२५॥

अहं शत्रून् विनाश्य तेषां रुधिरैः समराङ्गणभुवमप्लावितां विधस्यामीति स्वकीयं निश्चयमुदघोषय-

विदे

कृप—वत्स, भारद्वाज (द्रोणाचार्य) के समान, बाहु (बल) से सम्पन्न, दिव्य अस्त्र-समूह के पण्डित आप में क्या सम्भव नहीं है ? (अर्थात् आप सब कुछ कर सकते हैं) ।

अश्वत्थामा—हे हे पाण्डव, मत्स्य, सोमक तथा मगध आदि देश के अधम क्षत्रियों !

पिता जी के मस्तक के छुये जाने पर धधकती हुई अग्नि की तरह चमकते हुए परशुशाले परशुराम के द्वारा जो किया गया है, वह आप लोगों के कान तक नहीं पहुँचा है (क्या) ? क्रोध से पाण्डव अश्वत्थामा आज संग्राम के मध्य शत्रुओं के रुधिर की वृष्टिरूप विषस (पितरों को प्रदत्त भोजन) वाले उस कर्म को करने में नहीं समर्थ है क्या ? (अर्थात् पूर्ण समर्थ है) ॥ २५ ॥

सुत, जाओ तुम सभी साधनों तथा युद्ध के योग्य सभी आयुधों से युक्त 'महाहव लक्षण' नामक हमारे रथ को ले आओ ।

सूत—जैसी कुमार आशा दे रहे हैं (वैसा ही करता हूँ) ।

(ऐसा कह कर निकल गया)

न्य-

कृप—वत्स, अवश्य ही प्रतिकार करने के योग्य, भीषण, इस अपमान रूपी अग्नि का हम सब में तुम्हारे अतिरिक्त कौन दूसरा प्रतिकार करने में समर्थ है ?

किन्तु—

अश्वत्थामा—इस के आगे क्या (आप कहना चाहते हैं) ?

कृप—सेनापति के पद पर अभिषेक कर के आप को संग्राम-भूमि में उतारना चाहता हूँ ।

अश्वत्थामा—मामा, यह (कार्य) दूसरे के (अर्थात् राजा दुर्योधन के) अधीन है और कोई बड़ी चीज भी नहीं है ।

कृप—वत्स, न तो (वह) परतन्त्र है औ नहीं है साधारण चीज भी । देखिए—

यदि उन (भीष्म और द्रोण) की श्रेणी के (व्यक्ति) आप सेनापति के इस (पद) पर नहीं नियुक्त किये जाते (तब) भीष्म से रहित, द्रोण के बिना, दुर्योधन की सेना कैसी होगी (अर्थात् किस काम की होगी) ? ॥ २६ ॥

कुः=

तत्,

तत्,

दन्त-

ा, यत्

नहीं,

खे=

प्रदत्त

रूप=

धोष-

न्नाह—पितुर्मूर्ध्नोति । पितुः=जनकस्य, जमदग्नेरित्यर्थः, मूर्ध्नि=मस्तके, स्पृष्टे सति, ज्वलदन-लमास्वत्परशुना-स्वलन्=ज्वाला मुत्पादयन् यः अनलः=वह्निः स इव मास्वान्=दीप्यमानः परशुः=कुठारः यस्य तेन, रामेण=परशुरामेण, यत्=यादृशं कर्म, कृतम्=सम्पादितम्, तत्=तत् कर्म, भवताम्=श्रीमताम्, श्रुतिम्=श्रवणम्, न उपगतम्=न प्राप्तम् ? क्रोधान्यः=क्रोधेन=कोपेन, अन्यः=विचारविरहितः, अश्वत्थामा=द्रोणपुत्रोऽहम्, अयं=सम्प्रति, रणमुखे=युद्धाङ्गणे, अरि-रुधिरासारविषसम्=अरोणाम्=शत्रूणाम् रुधिरस्य=रक्तस्य आसारः=अविरतं वर्षणम् एव विषसः पितृभोजनम् यस्मिन् तत् तादृशम्, तत् कर्म=तत्कार्यम्, विधातुम्=कर्तुम्, न प्रभवति=न समर्थो भवति, किमिति प्रश्ने, अपि तु तदेव कर्म कर्तुं प्रभवतीति तात्पर्यम् । शिखरिणी छन्दः ॥ २५ ॥

कृप इति । दारुणे=मोषणे, परिभवाग्नौ=परिभवः=तिरस्कारः ('निकारः स्वात्परिभवः' इति विश्वः) एवं अग्निः=वह्निः तस्मिन्, दाहकत्वात् परिभवे अग्निस्वारोपः, प्रतिकर्तुम्=प्रतिविधातुम् ॥

कृतपरिकरस्य भवादृशस्य त्रैलोक्यमपि न क्षमं परिपन्थीभविष्यं किं पुनर्युधिष्ठिर-
बलम् । तदेवं मन्ये परिकल्पिताभिपेक्षोपकरणः कौरवराजो न चिरात्त्वामेवाभ्यपेक्ष-
माणस्तिष्ठतीति ।

अश्वत्थामा—यद्येवं त्वरते मे परिभवानलदह्यमानमिदं चेतस्तत्प्रतीकारजलावगा-
हनाय । तदहं गत्वा तातवधविषण्णमानसं कुरुपतिं सैन्यापत्यस्वयंग्रहणप्रणयसमा-
द्वासनया मन्दसन्तापं करोमि ।

कृपः—वत्स, एवमिदम् । अतस्तमेवोद्देशं गच्छावः ।

(इति परिक्रामतः)

(ततः प्रविशतः कर्णदुर्योधनौ)

दुर्योधनः—अङ्गराज,

तेजस्वी रिपुहतबन्धुदुःखपारं

बाहुभ्यां व्रजति धृतायुधप्लवाभ्याम् ।

आचार्यः सुतनिधनं निशम्य संख्ये

किं शस्त्रग्रहसमये विशस्त्र आसीत् ॥२७॥ ५

अन्वयः—यदि, तत्तुल्यकक्षः, भवान्, अत्र, धुरि, न, युज्यते, (तदा), अमीष्मम्, अद्रोणम्,
धार्तराष्ट्रबलम्, कथम्, भवेत् ॥२६॥

शब्दार्थः—यदि = यदि, दत्तुल्यकक्षः = उन (भीष्म और द्रोण) की श्रेणी के, भवान् = आप,
अत्र = इस, धुरि = सञ्चालक के प्रमुख पद पर, न = नहीं, युज्यते = नियुक्त किये जाते, (तदा = तब),
अमीष्मम् = भीष्म से रहित, अद्रोणम् = द्रोण के बिना, धार्तराष्ट्रबलम् = दुर्योधन की सेना, कथम् =
कैसे, भवेत् = होगी ॥२६॥

भवेदिति । यदि = चेत्, तत्तुल्यकक्षः—तयोः = द्रोणभीष्मयोः तुल्या = सदृशी कक्षा = श्रेणी
यस्य तादृशः, भवान् = त्वम्, अत्र = अस्मिन्, धुरि = सैन्यापत्यपदे इत्यर्थः, न = नहि, युज्यते =
नियुज्यते, तदेति शेषः; अमीष्मम् = भीष्मविरहितम्, अद्रोणम् = द्रोणविहीनम्, धार्तराष्ट्रबलम्—
धार्तराष्ट्रस्य = दुर्योधनस्य बलम् = सैन्यम्, कथम् = कीदृशमित्यर्थः, भवेत् = स्यात् । पथ्यावका-
लन्दः ॥२६॥

कृतपरिकरस्येति । कृतः = विहितः परिकरः = योद्धुं कटिबन्धनम् येन तादृशः, परिपन्थीभवितुम्
= शत्रून् भवितुम्, शत्रुवधोद्बुधमिति भावः ('दस्त्रुशात्रवशत्रवः । परिपन्थिनः' इत्यमरः) । परिकल्पिता-
भिपेक्षोपकरणः—परिकल्पितानि = सज्जीकृतानि अभिपेक्षस्य उपकरणानि = योग्यवस्तूनि येन तादृशः
अभ्यपेक्षमाणः = प्रतीक्षमाणः ॥

अश्वत्थामा इति । त्वरते = शीघ्रतां कुरुते, परिभवानलदह्यमानम्—परिभवः = अपमानः
पितृवधरूपोऽपमान इत्यर्थः, एव अनलः = अग्निः तेन दह्यमानम् = सन्तप्यमानम्, तत्प्रतिकारजलाव-
गाहनाय—तस्य = पितृवधस्य प्रतिकारः = परिशोधनम् एव जलम् = सलिलम् तत्र अवगाहनाय =

(युद्ध के लिये) कमर कसे हुये आप जैसे (योद्धा) का तीनों लोक में मुक्तावला करने में समर्थ नहीं हो सकते तो फिर युधिष्ठिर की सेना का क्या (कहना) ? अतः (मैं) ऐसा समझता हूँ कि (सेनापति के पद पर तुम्हारा अभिषेक करने के लिये) अभिषेक की सारी सामग्री तैयार किये हुए कौरवराज (दुर्योधन) अब आप की ही प्रतीक्षा कर रहा है ।

अश्वत्थामा—यदि ऐसा है (तो) अपमानरूपी अग्नि से जलता हुआ यह मेरा मन भी (पिता के) उस (वध) के प्रतिशोधरूपी जल में प्रवेश करने के लिये उतावला हो रहा है । तो मैं जा कर पिताजी के वध से खिन्न मनवाले कुरुराज (दुर्योधन) को सेनापति के पद को स्वयं ग्रहण करनेरूप प्रेम से सान्त्वना देकर, हल्का दुःखवाला करता हूँ (अर्थात् कुरुराज के दुःख को कम करता हूँ) ।

कृप—वत्स, यह ऐसा ही (उचित) है । अतः (हमलोग) उसी स्थान को चलें ।

(ऐसा कह कर दोनों धूमते हैं)

(तदनन्तर कर्ण और दुर्योधन प्रवेश करते हैं)

दुर्योधन—तेजस्वी (व्यक्ति) आयुधरूपी डोंगी को धारण करनेवाली (अपनी) मुजाओं से शत्रु के द्वारा मारे गये स्वजन के दुःख को पार करता है (अर्थात् स्वजन के मारे जाने पर व्यक्ति उस का बदला चुका कर सन्तोष लेता है) । (किन्तु) युद्ध में द्रोणाचार्य पुत्र को मृत्यु को सुन कर शस्त्र धारण करने के अवसर पर क्यों निरस्त्र हो गये ? ॥ २७ ॥

विशेष—पञ्चवाभ्याम्—लम्बी सूखी लोको को रस्सी या लकड़ी से बाँध कर काखों के नीचे दबाकर व्यक्ति काफी देर तक तथा दूर तक तैरते हैं । इसे भी 'प्लव' कहते हैं । यहाँ इसी से मतलब है ॥ २७ ॥

निमज्जनाय । तातवधेन विषण्णमानसम्—तातवधेन = पितुः धातेन विषण्णम् = खिन्नम् मानसम् = चेतः यस्य तम्, सैन्यापत्यस्वयं ग्रहणप्रणयसमाश्रयसन्ध्या—सैन्यापत्यस्य = सेनानायकपदस्य यत् स्वयं ग्रहणम् = स्वयमेव कथयित्वा स्वीकारणम् तस्मिन् यः प्रणयः = प्रेम अथवा तद्रूपः यः प्रणयः तेन या समाश्रयसन्ध्या = धैर्यधारणा तथा, मन्दसन्तापम्—मन्दः = अल्पीभूतः सन्तापः = खिन्नता यस्य तादृशम् ॥

अन्वयः—तेजस्वी, धृतायुधप्लवाभ्याम्, बाहुभ्याम्, रिपुहतबन्धुदुःखपारम्, ब्रजतिः, संख्ये, आचार्यः, सुतनिधनम्, निशम्य, शस्त्रग्रहसमये, किम्, विशस्त्रः, आसीत् ॥ २७ ॥

शब्दार्थः—तेजस्वी = तेजस्वी, धृतायुधप्लवाभ्याम् = आयुधरूपी डोंगी को धारण करनेवाली, बाहुभ्याम् = मुजाओं से, रिपुहतबन्धुदुःखपारम् = शत्रु के द्वारा मारे गये स्वजन के दुःख को पार, ब्रजति = जाता है, करता है; संख्ये = युद्ध में, आचार्यः = द्रोणाचार्य ने, सुतनिधनम् = पुत्र को मृत्यु को, निशम्य = सुन कर, शस्त्रग्रहसमये = शस्त्र धारण करने के अवसर पर, किम् = क्यों, निरस्त्रः = निरस्त्र, आसीत् = हो गये ॥ २७ ॥

तेजस्वीति । तेजस्वी = शौर्यसम्पन्नः, धृतायुधप्लवाभ्याम् = धृतौ = गृहीतो आयुधौ = प्रहरणे एव प्लवौ = कोली ('उडुपं तु प्लवः कोलः' । इत्यमरः) याभ्यां ताभ्याम्, बाहुभ्याम् = मुजाभ्याम्,

अथवा सूक्तमिदमभियुक्तैः प्रकृतिर्दुस्त्यजेति । यतः शोकान्धमनसा तेन विमुच्य
क्षात्रधर्मकार्कश्यं द्विजातिधर्मसुलभो मार्दवपरिग्रहः कृतः ।

कर्णः—राजन् कौरवेश्वर, न खल्विदमेवम् ।

दुर्योधनः—कथं तर्हि ।

कर्णः—एवं किलास्याभिप्रायो यथा अश्वत्थामा सया पृथिवीराज्ये अभिषेक्तव्य
इति । तस्याभावाद्वृद्धस्य मे ब्राह्मणस्य वृथा शस्त्रग्रहणमिति तथा कृतवान् ।

दुर्योधनः—(सशिरःकम्पम्) एवमिदम् ।

कर्णः—एतदर्थं च कौरवपाण्डवपक्षपातप्रवृत्तमहासङ्ग्रामस्य राजकस्य परस्परक्ष-
यमपेक्षमाणेन तेन प्रधानपुरुषवध उपेक्षा कृता ।

दुर्योधनः—उपपन्नमिदम् ।

कर्णः—अन्यच्च, राजन्, द्रुपदेनाप्यस्य बाल्यात्प्रभृत्यभिप्रायवेदिना न स्वराष्ट्रे
वासो दत्तः ।

दुर्योधनः—साधु, अङ्गराज, साधु । निपुणमभिहितम् ।

कर्णः—न चायं ममैकस्याभिप्रायः । अन्येऽभियुक्ता अपि नैवेदमन्यथा मन्यन्ते ।

दुर्योधनः—एवमेतत् । कः सन्देहः ।

दत्त्वाभयं सोऽतिरथो वध्यमानं किरीटिना ।

सिन्धुराजमुपेक्षेत नैवं चेत्कथमन्यथा ॥२८॥

रिपुहत्वन्धुदुःखपारम्—रिपुणा=शत्रुणा हतः=मारितः यो बन्धुः=स्वजनः तस्य दुःखस्य=सन्ता-
पस्य पारम्=परतटम्, उत्तीर्णतामित्यर्थः, ब्रजति=गच्छति । (किन्तु) संख्ये=युद्धे, आचार्यः=दोषा-
चार्यः, सुतनिधनम्—सुतस्य=पुत्रस्य निधनम्=मरणम्, निशम्य=श्रुत्वा, शस्त्रग्रहणसमये—शस्त्रग्रहणस्य=
आयुधधारणस्य समये=काले, किम्=किमर्थम्, विशस्त्रः=निरस्त्रः, आसीत्=सञ्जातः ? । अत्र
रूपकालङ्कारः । प्रहर्षिणी छन्दः । छन्दोलक्षणम्—‘ज्याशभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम्’ ॥ २७ ॥

अथवेति । सूक्तम्=शोभनसूक्तम्, अभियुक्तैः=नीतिज्ञैः, प्रकृतिः=स्वभावः, दुस्त्यजा=दुःखेन
त्यक्तुं योग्या । शोकान्धमनसा—शोकेन=सन्तापेन अन्धम्=विमूढम् मनः=चेतः यस्य तेन,
क्षात्रधर्मकार्कश्यम्—क्षात्रधर्मस्य=क्षत्रियभावस्य कार्कश्यम्=काठिन्यम्, द्विजातिधर्मसुलभः—
द्विजातिधर्मं=ब्राह्मणधर्मं सुलभः=सुप्राप्यः, मार्दवपरिग्रहः—मार्दवस्य कीमलतायाः=परिग्रह-
स्वीकरणम् ॥

कर्ण इति । कौरवपाण्डवपक्षपातप्रवृत्तमहासंग्रामस्य—कौरवपाण्डवानां पक्षपातेन=पक्षग्रहणेन
प्रवृत्तः=प्रारब्धः महासंग्रामः=भीषणं युद्धम् येन तस्य, राजकस्य=राज्ञां समूहस्य, प्रधानपुरुष-
वधे—प्रधानपुरुषाणाम्=प्रधानयोद्धूणाम् वधे=विनाशे, उपेक्षा=उदासीनता ॥

अन्वयः—एवम्, न, चेत्, (तदा), अन्यथा, अतिरथः, सः, अभयम्, दत्त्वा, किरीटिना,
वध्यमानम्, सिन्धुराजम्, कथम्, उपेक्षेत ॥ २८ ॥

अथवा नीतिशौ ने ठीक ही कहा है—स्वभाव का बदलना बहुत ही कठिन है। क्योंकि शोक से सन्तप्त हृदय वाले उन (द्रोणाचार्य) के द्वारा अभियन्त को कठोरता को छोड़ कर ब्राह्मणजाति के अनुरूप सुदुलता धारण कर ली गयी।

कर्ण—राजन्, कौरवराज, यह ऐसा न था।

दुर्योधन—तो कैसा था (अर्थात् तो क्या बात थी)?

कर्ण—उन का आशय यही था कि—“मैं पृथ्वी के राज्य पर अश्वत्थामा का अभिषेक करूँगा।” उस के न रहने पर ‘सुस वृद्ध ब्राह्मण का शस्त्र धारण करना व्यर्थ है,’ यह सोच कर (उन्होंने) वैसा किया।

दुर्योधन—(शिर हिला कर) यह ऐसा ही है।

कर्ण—और इसीलिये कौरवों तथा पाण्डवों के प्रति पक्षपात के कारण मोषण युद्ध करने वाले राजसमूह का परस्पर विनाश चाहने वाले उन (द्रोण) के द्वारा प्रधान पुरुषों के वध में दिव्यशक्ति न दिखलाई गयी।

दुर्योधन—यह ठीक मालूम पड़ता है।

कर्ण—और भी, राजन्, बन्धन से ही इनके अभिप्राय को जानने वाले द्रुपद ने भी इन्हें अपने राज्य में निवास-स्थान नहीं दिया था।

विशेष—न स्वराष्ट्रे वासो दत्तः—द्रोणाचार्य पहले द्रुपद के यहाँ रहते थे। कालान्तर में दोनों में वैमनस्य हो गया। फलस्वरूप द्रोण को द्रुपद के राज्य से निकलना पड़ा।

दुर्योधन—बाह, अङ्गराज, बाह। बहुत ठीक कहा है (तुमने)।

कर्ण—यह, केवल सुस अकेले का ही अभिप्राय नहीं है। अन्य बुद्धिमान् लोग भी इसे गलत नहीं समझते हैं।

दुर्योधन—यह ठीक है। क्या सन्देह (इस में)?

ऐसा न होता (तो) एक तरह से, अतिरथी वे अभय देकर (भी) अर्जुन के द्वारा वध किये जाते हुए जयद्रथ को कैसे उपेक्षित कर देते ? ॥ २८ ॥

विशेष—दत्त्वाऽभयम्—आचार्य द्रोण ने जयद्रथ को यह वचन दिया था कि—“तुम निश्चिन्त रहो। आज अर्जुन तुम्हारा कुछ भी न बिगाड़ सकेगा। इसको जिम्मेदारी मेरी है।” किन्तु अन्ततः द्रोण जयद्रथ की रक्षा न कर सके और वह अर्जुन के बाणों से मारा गया। यहाँ सत्य तो यह है कि उस समय द्रोण के साथ धोखा हुआ था। अतः वे, उसे बचा न सके थे, किन्तु अब कर्ण दुर्योधन को उसकी गलत व्याख्या कर के समझा रहा है।

अतिरथः—अगणित व्यक्तियों से एक साथ ही युद्ध करने वाला व्यक्ति अतिरथ कहा जाता है। यह महारथी से भी उच्च श्रेणी का व्यक्ति होता है।

शब्दार्थः—एवम्=ऐसा, न=नहीं, चर=होता, (तदा=तो), अन्यथा=अन्यथा (एक तरह से), अतिरथः=अतिरथी, सः=वे, अभयम्=अभय, दत्त्वा=देकर, किरीटिना=अर्जुन के द्वारा, वधयमानम्=वध किये जाते हुए, सिन्धुराजम्=जयद्रथ को, कथम्=कैसे, उपेक्षित

कृपः—(विलोक्य) वत्स, एष दुर्योधनः सूतपुत्रेण सहास्यां न्यग्रोधच्छायायामुपविष्ट-
स्तिष्ठति । तदुपसर्पावः ।

(तथा कृत्वा)

उभौ—विजयतां कौरवेश्वरः ।

दुर्योधनः—(दृष्ट्वा) अये कथं कृपोऽश्वत्थामा (आसनादवतीर्य कृपं प्रति) गुरो अस्मि-
वाद्ये । (अश्वत्थामानमुद्दिश्य) आचार्यपुत्र,

एह्यस्मदर्थहततात परिष्वजस्व

कलान्तैरिदं मम निरन्तरमङ्गमङ्गैः ।

स्पर्शस्तवैष भुजयोः सदृशः पितुस्ते

शोकेऽपि यो महति निर्वृतिमादधाति ॥२९॥ ✓

(आलिङ्ग्य पार्श्वं उपवेशयति)

(अश्वत्थामा वाष्पमुत्सृजति)

कर्णः—द्रौणायन, अक्षमत्यर्थमात्मानं शोकानले प्रक्षिप्य ।

दुर्योधनः—आचार्यपुत्र, को विशेष आवयोरस्मिन्व्यसनमहार्णवे । पश्य—

तातस्तव प्रणयवान्स पितुः सखा मे

शस्त्रे यथा तव गुरुः स तथा ममापि ।

कर देते ? ॥ २८ ॥

दत्वाभयमिति । एवम्=इत्थम्, न चेत्=न स्यात्, (तदा), अन्यथा=एकेन प्रकारेण
अतिरयः=अप्रतिमो योद्धा, 'अमितान्योधयेद्यस्तु संप्रोक्तोऽतिरयस्तु सः', सः=असौ द्रोणः, अम-
यम्=अभीतिम्, अर्जुनादभयमित्यर्थः, दत्त्वा=प्रदाय, किरीटिना=अर्जुनेन, वध्यमानम्=हन्य-
मानम्, सिन्धुराजम्=जयद्रथम्, कथम्=करमात्, उपेक्षेत=तिरस्कुर्वात्, नोपेक्षेदित्यर्थः ।
पथ्यावक्त्रं छन्दः ॥ २८ ॥

अन्वयः—हे अस्मदर्थहततात ! एहि, कलान्तैः, इमैः, अङ्गैः, मम, अङ्गम्; निरन्तरम्, परिष्व-
जस्व; ते, पितुः, सदृशः, तव, यः, एषः, भुजयोः, स्पर्शः, महति, शोके, अपि, निर्वृतिम्, आदधाति,
(पाठान्तरे—ते, पितुः, सदृशः, तव, एषः, भुजयोः, स्पर्शः, नः, शोके; अपि, तनूहेषु, विकृतिम्,
पति) ॥ २९ ॥

शब्दार्थः—हे अस्मदर्थहततात=हे हमारे लिये मारे गये पितावाले, एहि=आओ, कलान्तैः=
मुझाये हुए, इमैः=इन, अङ्गैः=अङ्गों से, मम=मेरे, अङ्गम्=शरीर को, निरन्तरम्=कसकर,
परिष्वजस्व=आलिङ्गित करो; ते=तुम्हारे, पितुः=पिता के, सदृशः=समान, यः=जो, तव=
तुम्हारा, एषः=यह, भुजयोः=भुजाओं का, स्पर्शः=स्पर्श, महति=महान्, शोके=शोक में,
अपि=भी, निर्वृतिम्=शान्ति को, आदधाति=धारण कर रहा है (पाठान्तर में—ते=तुम्हारे,
पितुः=पिता के, सदृशः=सदृश, तव=तुम्हारा, एषः=यह, भुजयोः=बाहुओं का, स्पर्शः=स्पर्श,

कृप—(देखकर) वत्स, यह दुर्योधन सुतपुत्र (कर्ण) के साथ इस वटवृक्ष की छाया में बैठा हुआ है । तो पास चलो ।

(बैसा कर के)

दोनों—कुरुराज विजयी बने (अर्थात् कुरुराज की जय हो) ।

दुर्योधन—(देखकर) अरे ! क्या कृप और अश्वत्थामा ! (आसन से उतर कर कृपाचार्य के प्रति) गुरो प्रणाम कर रहा हूँ । (अश्वत्थामा को लक्ष्य कर के) आचार्य-पुत्र,

हे हमारे लिये मारे गये पिता वाले ! आओ, सुझाये हुए इन (अपने) अङ्गों से मेरे शरीर को कस कर आलिङ्गित (Embraced) करो । तुम्हारे पिता के समान जो तुम्हारा यह भुजाओं का स्पर्श महान् शोक में भी शान्ति को धारण कर रहा है—शान्ति प्रदान कर रहा है (पाठान्तर में—तुम्हारे पिता के सदृश तुम्हारा यह बाहुओं का स्पर्श हमारे शोक में भी रोमाञ्चों में विकार को प्राप्त हो रहा है—रोमाञ्च के रूप में परिणत हो रहा है, रोमाञ्च पैदा कर रहा है) ॥ २६ ॥

विशेष—विकृतिमेति तनूरुहेषु—शोक तथा कृष्णा आदि आँसू बन कर बाहर छलकते हैं । क्रोध त्वोरियों पर चढ़ कर नाचता है । इसी तरह प्रिय के स्पर्श से होने वाली प्रसन्नता रोमाञ्च का रूप धारण कर बाहर प्रादुर्भूत होती है । वस्तुतः वह स्पर्श ही रोमाञ्च का रूप धारण कर प्रकट होता है । यही स्पर्श का विकृत होना कहा जाता है ॥ २९ ॥

(आलिङ्गन कर के बगल में बैठाता है)

(अश्वत्थामा आँसू बहाता है)

कर्ण—द्रोण-पुत्र, अपने को शोकरूपी अग्नि में अत्यधिक डालना व्यर्थ है (अर्थात् अत्यधिक शोक करना व्यर्थ है) ।

दुर्योधन—गुरुपुत्र, हम दोनों के इस दुःखरूपी महासागर में क्या अन्तर है ? देखिये—

वह तुम्हारे स्नेह करने वाले पिता मेरे पिता जी के मित्र (थे) । शस्त्र के विषय में वह जैसे तुम्हारे गुरु (थे) उसी तरह मेरे भी (थे) । उनके शरीरविनाश होने पर किस तरह से (अपने)

नः=हमारे, शोके=शोक में, अपि=भी, तनूरुहेषु=रोमाञ्चों में, विकृतिम्=विकार को, एति=प्राप्त हो रहा है) ॥ २९ ॥

एहीति । हे अस्मदर्थहततात-अस्मदर्थम्=मम प्रयोजनार्थम्, हतः=धातितः, तातः=पिता यस्य स तत्सम्बुद्धौ, एहि=आगच्छ, क्लान्तेः=मलिनैः, श्मैः=एतैः, स्वस्मन्निधिमिरित्यर्थः, अङ्गैः=अवयवैः, मम=दुर्योधनस्य, अङ्गम्=शरीरम्, निरन्तरम्=गाढं यथा तथा, परिष्वजस्व=आलिङ्गय । ते=तव, पितुः=तातस्य, सदृशः=तुल्यः, यः तव=भवतः, एषः=अयम्, भुजयोः=बाह्वोः, स्पर्शः=आमर्शः, महति=अपारे विशाले वा, शोके=दुःखे, अपि=च, निर्दृतिम्=शान्तिम्, आदधाति=धारयति । पाठान्तरे तु--शोकेऽपि=दुःखेऽपि, तनूरुहेषु=रोमाञ्चेषु, विकृतिम्=विकारम्, एति=गच्छति, ते भुजयोः स्पर्शः मम शरीरे रोमाञ्चभावेन प्रादुर्भवतीति भावः । रोमाञ्चं जनयतीति भावामिप्रायः । अत्र वृत्तये चरणे उपमालङ्कारः । वसन्ततिलका छन्दः ॥ २९ ॥

किं तस्यः देहनिधने कथयामि दुःखं

जानीहि तद् गुरुशुचा मनसा त्वमेव ॥३०॥ ✕

कृपः—वत्स, यथाह कुरुपतिस्तथैवेतत् ।

अश्वत्थामा—राजन्, एवं पक्षपातिन त्वयि युक्तमेव शोकभारं लवृकर्तुम् ।

किन्तु—

३८

मयि जीवति मत्तातः केशग्रहमवाप्तवान् ।

कथमन्ये करिष्यन्ति पुत्रेभ्यः पुत्रिणः स्पृहाम् ॥३१॥ ✕

कर्णः—द्रौणायन, किमत्र क्रियते यदा तेनैव सर्वपरिभवत्राणहेतुना शस्त्रसुत्सृजता तादृशीमवस्थामात्मा नीतः ।

अश्वत्थामा—अङ्गराज, किमाह भवान् किमत्र क्रियत इति । श्रूयतां यत्क्रियते ।

यो यः शस्त्रं बिभर्ति स्वभुजगुरुमदः पाण्डवीनां चमूनां

यो यः पाञ्चालगोत्रे शिशुरधिकवया गर्भशय्यां गतो वा ।

यो यस्तत्कर्मसाक्षी चरति मयि रणे यश्च यश्च प्रतीपः

क्रोधान्धस्तस्य तस्य स्वयमपि जगतामन्तकस्यान्तकोऽहम् ॥३२॥

अन्वयः—सः, तव, प्रणयवान्, तातः, मे, पितुः, सखा, (आसीत्); शस्त्रे, सः, यथा, तव, गुरुः, तथा, मम, अपि, (आसीत्); तस्य, देहनिधने, किम्, दुःखम्, कथयामि; तत्, गुरुशुचा, मनसा, त्वम्, एव, जानीहि ॥ ३० ॥

शब्दार्थः—सः=वह, तव=तुम्हारे, प्रणयवान्=स्नेह करने वाले, तातः=पिता, मे=मेरे, पितुः=पिताजी के, सखा=मित्र, (आसीत्=थे); शस्त्रे=शस्त्र के विषय में, सः=वह, यथा=जैसे, तव=तुम्हारे, गुरुः=गुरु, तथा=उसी तरह, मम=मेरे, अपि=भी, (आसीत्=थे); तस्य=उनके, देहनिधने=शरीर-विनाश होने पर, किम्=किस तरह से, दुःखम्=दुःख को, कथयामि=बतलाऊँ; तत्=उसे, गुरुशुचा=महान् शाक वाले, मनसा=मनसे, त्वम्=तुम्, एव=ही, जानीहि=समझ लो ॥ ३० ॥

तातस्तवेति । सः=जगति विदितः आचार्यः, तव=भवतः, प्रणयवान्=त्वयि स्नेहयुक्तः, तातः=जनकः, मे=मम दुर्योधनस्य, पितुः=तातस्य, धृतराष्ट्रस्येत्यर्थः, सखा=मित्रः, आसीदिति क्रियाशेषः । शस्त्रे=शस्त्रविषये, शस्त्रविद्यायामित्यर्थः, सः=पूज्यो द्रोणः, यथा=येन प्रकारेण, तव=भवतः, गुरुः=आचार्यः, तथा=तेनैव रूपेण, मम=दुर्योधनस्य, अपि=च, आसीत् । तस्य=तादृशस्य द्रोणस्येत्यर्थः, देहनिधने=देहस्य—शरीरस्य निधने=विनाशे, किम्=कथमित्यर्थः, दुःखम्=क्लेशम्, कथयामि=वदामि ? तत्=तद्दुःखमित्यर्थः, गुरुशुचा=महच्छोकेन, मनसा=हृदयेन, त्वमेव=तत्पुत्रो मत्समो दुःखानुभवने भवान् एव, जानीहि=बुध्यस्व । वसन्ततिलका छन्दः ॥ ३० ॥

अन्वयः—मयि जीवति, (सति), मत्तातः, केशग्रहम्, अवाप्तवान्, (अस्याम्, दशायाम्),

दुःख को बतलाऊँ ? उसे (तो) महान् शोक वाले मन से तुम्हीं समझ लो । (अर्थात् द्रोण के भरने पर तुम्हारी तरह ही मुझे भी महान् दुःख है) ॥ ३० ॥

कृप—वत्स, कुरुराज (दुर्योधन) जैसा कह रहे हैं यह वैसा ही है (अर्थात् ठीक कह रहे हैं) । अश्वत्थामा—राजन्, (मेरे प्रति) इस तरह पक्षपात करने वाले आपके लिये (मेरे) शोक-भार को हल्का करना ठीक ही है । किन्तु—

मेरे जीवित रहने पर (अर्थात् मेरे जीते जी) मेरे पिता जी ने केशग्रहण प्राप्त किया है । (इस अवस्था में) दूसरे पुत्रवाले पुत्रों के लिए कैसे अभिलाषा करेंगे ? ॥ ३१ ॥

कर्ण—द्रोणपुत्र, इसमें क्या किया जा सकता है, जब कि सबको अपमान से बचानेवाले उन्हीं के द्वारा शस्त्र त्याग कर वैसी दशा में अपने-आपको रख दिया गया ।

अश्वत्थामा—कर्ण, क्या कहा आपने कि—‘इसमें क्या किया जा सकता है ?’ सुनिये जो किया जा सकता है ।

पाण्डवों की सेना के मध्य में जो-जो शस्त्र धारण करता है; पाञ्चाल-कुल में जो-जो बालक अथवा अधिक अवस्था वाला (प्रौढ़) है, अथवा गर्भरूपी शय्या में वर्तमान है; जो-जो उस (घृणित) कर्म का द्रष्टा (है); युद्ध में मेरे विचरण करने पर जो-जो भी विरोधकर्ता (होगा); इस युद्ध में क्रोध से अन्धा मैं उसका-उसका (तथा विरोध करने वाले) स्वयं संसार के विनाशक (यमराज) का भी विनाशक (हूँ) ॥ ३२ ॥

अन्ये, पुत्रिणः, पुत्रेभ्यः, कथम्, स्थूहाम्, करिष्यन्ति ? ॥ ३१ ॥

शब्दार्थः—मयि=मेरे, जीवति=जीवित रहने, (सति=पर); मत्तातः=मेरे पिता जी ने, केशग्रहम्=केश-ग्रहण को, अवाप्तवान्=प्राप्त किया है, (अस्याम्=इस, दशायाम्=अवस्था में), अन्ये=दूसरे, पुत्रिणः=पुत्र वाले, पुत्रेभ्यः=पुत्रों के लिए, कथम्=कैसे; स्थूहाम्=अभिलाषा, करिष्यन्ति=करेंगे ॥ ३१ ॥

मयि जीवतीति । मयि=स्वपुत्रे अश्वत्थामिन, जीवति सति=प्राणान् धारयति सति, मत्तातः=मम पिता, केशग्रहम्=कचग्रहम्, अवाप्तवान्=प्राप्तवान् । अस्यां दशायामिति शेषः, अन्ये=इतरे, पुत्रिणः=पुत्रवन्तः, पुत्रेभ्यः=सुतेभ्यः, कथम्=कस्मात्, स्थूहाम्=अभिलाषम्, करिष्यन्ति=विधास्यन्ति । पथ्यावक्त्रं छन्दः ॥ ३१ ॥

अन्वयः—पाण्डवीनाम्, चमूनाम्, मध्ये, यः, यः, शस्त्रम्, विभक्तिः; पाञ्चालगोत्रे, यः, यः, शिशुः, वा, अधिकव्यायाः, (वा), गर्भशय्याम्, गतः; यः, यः, तत्कर्मसाक्षी, (वर्तते); रणे, मयि, चरति, (सति), यः, यः, च, प्रतीपः, (भविष्यति); इह, क्रोधान्धः, अहम्, तस्य, तस्य, (तथा, विरोधकर्तुः), स्वयम्, जगताम्, अन्तःकस्य, अपि, अन्तःकः, (अस्मि) ॥ ३२ ॥

शब्दार्थः—पाण्डवीनाम्=पाण्डवों की, चमूनाम्=सेना के, मध्ये=मध्य में, यः=जो, यः=जो, शस्त्रम्=शस्त्र को, विभक्तिः=धारण करता है; पाञ्चालगोत्रे=पाञ्चाल कुल में, यः=जो, शिशुः=बालक, वा=अथवा, अधिकव्यायाः=अधिक अवस्थावाला, (वा=अथवा), गर्भशय्याम्=गर्भरूपी शय्या में, गतः=वर्तमान है, यः=जो, यः=जो, तत्कर्मसाक्षी=उस (घृणित) कर्म का द्रष्टा, (वर्तते=है), रणे=युद्ध में, मयि=मेरे, चरति (सति)=विचरण करने पर, यः यः=

अपि च, भो जामदग्न्यशिष्य कर्ण,

देशः सोऽयमरातिशोणितजलैर्यस्मिन्हृदाः पूरिताः

क्षत्रादेव तथाविधः परिभवस्तातस्य केशग्रहः ।

तान्येवाहितशस्त्रघस्मरगुरुण्यस्त्राणि भास्वन्ति मे

यद्रामेण कृतं तदेव कुरुते द्रौणायनिः क्रोधनः ॥३३॥

दुर्योधनः—आचार्यपुत्र, तस्य तथाविधस्यानन्यसाधारणस्य ते वीरभावस्य किमन्यत्सदृशम् ।

कृपः—राजन्, सुमहान्खलु द्रोणपुत्रेण बौद्धमध्यवसितः समरभारः । तदहमेवं मन्ये भवता कृतपरिकरोऽयमुच्छेत्तुं लोकत्रयमपि समर्थः किं पुनर्युधिष्ठिरबलम् ।

जो-जो, च=मी, प्रतीपः=विरोधकर्ता (भविष्यति=होगा); इह=इस युद्ध में, क्रोधान्धः=क्रोध से अन्धा, अहम्=मैं, तस्य=उसका, तस्य=उसका, (तथा=यहाँ तक कि, विरोधकर्तुः=विरोध करनेवाले), स्वयम्=स्वयम्, जगताम्=संसार के, अन्तकाय=विनाशक (यमराज) का, अपि=भी, अन्तकः=विनाशक (अस्मि=हूँ) ॥ ३२ ॥

यो य इति । पाण्डवीनाम्—पाण्डवानाम्=पाण्डुपुत्राणां तत्पक्षपातिनाञ्च इमाः पाण्डव्यः ताताम्, पाण्डवसम्बन्धिनीनामित्यर्थः, चमूनाम्=सेनानाम्, मध्ये=अन्तराले, यः यः=यः यः जनः, शस्त्रम्=आयुधम्, विभर्ति=धारयति; पाञ्चालगोत्रे—पाञ्चालानामिदं पाञ्चालं तथाभूते गोत्रे=कुले, यः यः, शिशुः=वालः, वा=अथवा, अधिकवयाः—अधिकं वयः यस्य सः अधिकवयाः=प्रौढो-वृद्धश्च, वा, गर्भशय्याम्—गर्भः=मातुर्गर्भाशयः एव शय्या=तल्पं ताम्, गतः=प्राप्तः, वर्तते इति शेषः, यः यः तत्कर्मसाक्षी—तस्य=तादृशस्य घृणितस्येत्यर्थः, कर्मणः=कृत्यस्य साक्षी=द्रष्टा, वर्तते इति क्रियाशेषः, रणे=युद्धे, मयि=अश्वत्थामनि, चरति=विचरति सति, यः यः, च=अपि, प्रतीपः=विपरीतकारी, भविष्यतीति शेषः, इह=अत्र रणे, क्रोधान्धः=अतिकुपितः, अहम्=अश्वत्थामा, तस्य-तस्य (तथा=च, विरोधकर्तुः=युद्धे विपरीतस्य), स्वयम्, जगताम्=लोकानाम्, अन्तकस्य=विनाशकस्य यमस्य, अपि=च, अन्तकः=विनाशकः, अस्मीति शेषः । सर्वान् शत्रून् हनिष्यामीति मे दृढो निश्चय इति भावः । अत्र चतुर्थचरणे रूपकालङ्कारः । स्रग्धरा छन्दः ॥ ३२ ॥

अन्वयः—अयम्, सः, देशः, यस्मिन्, अरातिशोणितजलैः, हृदाः, पूरिताः; तातस्य, केशग्रहः, क्षत्रात्, एव, तथाविधः, परिभवः, (आस्ते) मे, तानि, एव, अहितशस्त्रघस्मरगुरुणि, भास्वन्ति, अस्त्राणि, (सन्ति); (पुरा), रामेण, यत्, कृतम्, क्रोधनः, द्रौणयनिः, तदेव, कुरुते ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः—अयम्=वह, सः=वही, देशः=देश (है), यस्मिन्=जिसमें, अरातिशोणित-जलैः=शत्रुओं के रक्त रूपी जलसे, हृदाः=तालाव, पूरिताः=भर गये थे; तातस्य=पिताजी के, केशग्रहः=शिर के बालों का पकड़ना, क्षत्रात्=अत्रिय से, एव=हो, तथाविधः=वैसा ही, परिभवः=अपमान, (आस्ते=है); मे=मेरे, तानि=वे, एव=ही, अहितशस्त्रघस्मरगुरुणि=शत्रुओं के शस्त्रों को निगल जाने वाले (अतः) महान्, भास्वन्ति=चमकीले, अस्त्राणि=अस्त्र,

और भी, हे परशुराम के शिष्य कर्ण,

विशेष—परशुरामशिष्यः—कर्ण ने भगवान् परशुराम से यह कहकर अस्त्रविद्या सीखी थी कि मैं ब्राह्मण हूँ। किन्तु परीक्षा करने पर जब परशुराम को यह बात हुआ कि यह ब्राह्मण नहीं है, तब उन्होंने श्राप दिया था कि जाओ मुझसे सीखी हुई तुम्हारी सारी विद्या निष्फल हो जायगी। सम्प्रति अश्वत्थामा कर्ण की इसी वास्त्व-निष्फलता को ओर संकेत करने के लिये उसे 'जामदग्न्य-शिष्य' कह रहा है।

यह वही देश (है) जिसमें शत्रुओं के रक्तरूपी जल से तालाब भर गये थे। पिता जी के शिर के बालों का पकड़ना क्षत्रिय से ही (होने वाला) वैसा ही अयमान (है)। मेरे वे ही शत्रुओं के शस्त्रों को निगल जाने वाले (अतः) महान् चमकीले अस्त्र (हैं)। पहले परशुराम के द्वारा जो कुछ किया गया है, क्रुद्ध द्रोणपुत्र (अश्वत्थामा) वही कर रहा है। (अर्थात् अब मैं परशुराम की ही तरह मृतल से क्षत्रियों का सफाया करने जा रहा हूँ) ॥ ३३ ॥

विशेष—प्राचीन समय में सहस्रार्जुन एक वीर क्षत्रिय राजा था। इसकी राजधानी माहिष्मती थी। इसने परशुराम के पूज्य पिता जमदग्नि की कामवेनु जबदंस्ती छीन ली थी। फलतः परशुराम ने इसका वध कर इक्कीस बार क्षत्रियों का विनाश किया था ॥ ३३ ॥

तुर्योधन—आचार्य-पुत्र, आपके जगद्धिदित, बहुशः प्रदर्शित (तयाविधस्य), अग्रतिम योद्धान के अनुरूप और क्या हो सकता है ?

कृप—राजन्, द्रोणपुत्र (अश्वत्थामा) ने युद्ध का महान् भार वहन करने का निश्चय किया

(सन्ति = हैं), (पुरा = पहले), रामेण = परशुराम के द्वारा, यत् = जो कुछ, कृतम् = किया गया है, क्रोधनः = क्रुद्ध, द्रोणायनिः = द्रोण-पुत्र (अश्वत्थामा), तदेव = वही, कुरुते = कर रहा है ॥ ३३ ॥

देशः सोऽयमिति। एषः, सः—तादृश इत्यर्थः, पूर्वस्मादभिन्नः इति भावः, देशः = मूमागः, अस्तीति शेषः, यस्मिन् = यत्र, अरातिशोगितजलैः—अरातीनाम् = शत्रूणाम् शोणितानि = रक्तानि एव जलानि = सलिलानि तैः, हृदाः = जलाशयाः, सरांसीत्यर्थः, पूरिताः = पूर्णाः जाताः, तातस्य = पितुः, केशग्रहः = कचग्रहणम्, क्षत्रात् = क्षत्रियात्, एवेति अय्ययोग्यवच्छदार्थम्, तयाविधः = तादृशः, परिभवः = तिरस्कारः, आस्ते इति शेषः, मे = मम, तानि = तादृशानोत्यर्थः, एव, अहितशस्त्रवस्मर-गुरूणि—अहितानाम् = शत्रूणाम् शस्त्राणि = आयुधानि तेषां धर्मराणि = भक्षकानि गुरूणि = महान्ति च, भास्वन्ति = प्रकाशितानि, अस्त्राणि = प्रहरणानि, सन्तीति शेषः, (पुरा = पूर्वम्), रामेण = परशुरामेण, यत् = यादृश कर्म = क्षत्रियविनाशरूपं कर्मैत्यर्थः, कृतम् = विहितम्, क्रोधनः = क्रोधनः, द्रोणायनिः = द्रोणपुत्रोऽश्वत्थामा, तदेव = तादृशमेव कर्म, कुरुते = विधास्यति, वर्तमानसामोप्येव लट्। पुरा हैहयवंशजः सहस्रार्जुनः, परशुरामस्य पितुः तिरस्कारं कृतवान्। तेन कुपितो परशुरामः सहस्रार्जुनवधेन सह क्षत्रियाणाम् पञ्चविंशतिवारं समूलोन्मूलनं चकारेति पुराणप्रसिद्ध स्मारकम् कथयत्यत्र। अत्र निदेशनालङ्कारः। शार्दूलविकारितं छन्दः ॥ ३३ ॥

अतोऽभिपिच्यतां सैनापत्ये ।

दुर्योधनः—सुष्ठु युज्यमानमभिहितं युष्माभिः । किं तु प्राक्प्रतिपन्नोऽय-
मर्थोऽङ्गराजस्य ।

कृपः—राजन्, असदृशपरिभवशोकसागरे निमज्जन्तमेवमङ्गराजस्यार्थेनैवोपेक्षितं
युक्तम् । अस्यापि तदेवारिकुलमनुशासनीयम् । अतः किमस्य पांडा न भविष्यति ।

अश्वत्थामा—राजन् कौरवेश्वर, किमद्यापि युक्तयुक्तविचारणया ।

प्रयत्नपरिवोधितः स्तुतिभिरद्य शेषे निशा-

मकेशवमपाण्डवं भुवनमद्य निःसौमकम् ।

इयं परिसमाप्यते रणकथाद्य दोःशालिना-

मपैतु नृपकाननातिगुरुरद्य भारो भुवः ॥३४॥

कर्णः—(विहस्य) वक्तुं सुकरमिदं दुष्करमध्यवसितुम् । बहवः कौरवबलेऽस्य
कर्मणः सक्ताः ।

अश्वत्थामा—अङ्गराज, एवमिदम् । बहवः कौरवबलेऽत्र शक्ताः किं तु दुःखोपहतः
शोकावेगवशाद् ब्रवीमि न पुनर्वीरजनाधिक्षेपेण ।

कर्णः—मूढ, दुःखितस्याश्रुपातः कुपितस्य चायुधद्वितीयस्य सङ्ग्रामावतरणमुचितं
नैवंविधाः प्रलापाः ।

अश्वत्थामा—(सक्तोद्यम्) अरे रे राधागर्भमारभूत सूतापसद, ममापि नामाश्व-
त्थाम्नो दुःखितस्याश्रुभिः प्रतिक्रियासुपदिशसि न शस्त्रेण । पश्य—

निर्वीर्यं गुरुशापभाषितवशात्किं मे तवेवायुधं

सम्प्रत्येव भयाद्विहाय समरं प्राप्तोऽस्मि किं त्वं यथा ।

जातोऽहं स्तुतिवंशकीर्तनविदां किं सारथीनां कुले

क्षुद्रारातिकृताप्रियं प्रतिकरोम्यस्त्रेण नास्त्रेण यत् ॥३५॥

कृप इति । सुमहान्=अतिशयितः, बोद्धुम्=धारयितुम् । कृतपरिकरः—कृतः=परिधापितः,
परिकरः=सन्नाहः यस्य तादृशः, सज्जीकृत इत्यर्थः ॥

कृप इति । असदृशपरिभवशोकसागरे—असदृशः=अनुपमः यः परिभवः=तिरस्कारः तस्मात् यः
शोकः=दुःखम् एव सागरः=समुद्रः तत्र, निमज्जन्तम्=वृद्धन्तम् । अनुशासनीयम्=दण्डनीयम् ॥

अन्वयः—अद्य, (त्वम्, पूर्णाम्), निशाम्, (तथा), शेषे, (यथा), स्तुतिभिः, प्रयत्नपरि-
बोधितः, (भविष्यति), अद्य, भुवनम्, अकेशवम्, अपाण्डवम्, निःसौमकम्, (भविष्यति); अद्य,
दोःशालिनाम्, इयम्, रणकथा, परिसमाप्यते; अद्य, भुवः, नृपकाननातिगुरुः, भारः, अपैतु ॥ ३४ ॥

शब्दार्थः—अद्य=आज, (त्वम्=आप, पूर्णाम्=पूरी), निशाम्=रात भर, (तथा=उस
तरह), शेषे=सोयेंगे, (यथा=जैसे कि), स्तुतिभिः=स्तुतिश्रौं से, प्रयत्नपरिवोधितः=बड़ी
कठिनातापूर्वक निद्रारहित, (भविष्यति=होएंगे); अद्य=आज, भुवनम्=जगत्, अकेशवम्=कृष्ण

है। अतः मैं ऐसा सोचता हूँ कि—आपके द्वारा (युद्ध के लिये) सज्जित किये गये यह तीनों लोकों को उजाड़ कर विनष्ट करने में समर्थ हूँ, तो युधिष्ठिर की सेना का क्या कहना? अतः (शनको) सेनापति के पद पर अभिषिक्त कर दिया जाय।

दुर्योधन—ठीक युक्तियुक्त कष्ट आपने। किन्तु, यह बात पहले से ही अङ्गराज (कर्ण) के लिये निश्चित कर ली गई है।

कृप—राजन्, असाधारण शोकरूपी सागर में डूबते हुए इन (अश्वत्थामा) को अङ्गराज के लिये उपेक्षित करना ठीक नहीं है। इन्हें भी वही शत्रु-समूह दण्डनीय करना है। (अर्थात् इन्हें भी उसी शत्रु-समूह को दण्ड देना है)। अतः (कर्ण के सेनापति बनाये जाने पर) क्या इन्हें पीड़ा न होगी ?

अश्वत्थामा—राजन् कुहराज, अब भी उचित-अनुचित का विचार करने से क्या (लाभ) ?

आज (आप पूरी) रात भर (उस तरह) सोयेंगे (जैसे कि) स्तुतियों से बड़ी कठिनातापूर्वक निद्रारहित (होयेंगे)। आज जगत् कृष्ण-विहीन, पाण्डवों से रहित तथा सोम-वंश से विमुक्त (होगा)। आज पृथिवी का, राजाजोरूपी वनों के कारण अतिबोझित भार दूर हो जायेगा। (अर्थात् आज कृष्ण के साथ पाण्डवों, सोमवंशियों तथा अन्य राजाजों का विनाश कर डालूँगा) ॥ ३४ ॥

कर्ण—(हँसकर) इसे कहना (तो) सरल है (किन्तु) करना सरल नहीं है। कौरव-सेना में बहुत से व्यक्ति इस कार्य के लिये समर्थ हैं।

अश्वत्थामा—अङ्गराज, यह ऐसा ही है (जैसा कि तुम कह रहे हो)। कौरव सेना में बहुत से लोग इस (कार्य) में समर्थ हैं। किन्तु दुःख से आहत होकर शोक के आवेग से कह रहा हूँ न कि वीर पुरुषों की निन्दा (के अभिप्राय) से।

कर्ण—मूर्ख, दुःखी (व्यक्ति) का आँसू बहाना तथा कुपित (व्यक्ति) का शस्त्र लेकर युद्ध-भूमि में (लड़ने के लिए) उतर जाना उचित है, इस प्रकार की वक्तव्य नहीं।

अश्वत्थामा—(क्रोधपूर्वक) अरे रे ! राधा के गर्भ के भारभूत ! रथकारों में अधम ! सुख दुःखित अश्वत्थामा को भी आँसुओं से प्रतिकार बतला रहे हो, शस्त्र से नहीं। देख—

विशेष-राधागर्भभारभूत—युधिष्ठिर की माँ कुन्ती विवाह के पूर्व ही गर्भवती हो गयी थी। उनका यह गर्भ सूर्य के संयोग से था। बालक (कर्ण) के पैदा होते ही कुन्ती ने एक काठ को सन्दूक में रख कर उसे नदी में बहा दिया था। कुछ दूर जाने पर उसे रथ बनाने वाले बड़ई दम्पति ने पाया। रथकार की पत्नी ने, जिसका नाम राधा था, उसे पाठा-पोषा तथा जगत् में उसे अपने बच्चे के रूप में विरूत किया। बड़ा होने पर कर्ण के पराक्रम से प्रसन्न दुर्योधन ने उसे 'अङ्ग' देश का राजा बना दिया। 'अङ्ग' देश का राजा होने से 'अङ्गराज' तथा रथकार का पुत्र होने से कर्ण 'सुतपुत्र' कहा जाता है।

क्या तुम्हारे समान मेरा अस्त्र गुरु के आप-वचन के कारण बरहीन है? क्या तुम जैसा (अर्थात् तुम्हारी तरह मैं भी) अमा-अमी भयवश युद्ध छोड़कर (भाग) आया हूँ? क्या मैं

कर्णः—(सक्रोधम्) अरे रे वाचाट, वृथासखग्रहणदुर्विदग्ध वटो ।

निर्वीर्यं वा सवीर्यं वा मया नोत्सृष्टमायुधम् ।

यथा पाञ्चालभीतेन पित्रा ते बाहुशालिना ॥३६॥

अपि च—

सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम् ।

दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम् ॥३७॥

अश्वत्थामा—(सक्रोधम्) अरे रे रथकारकुलकलङ्क, राधागर्भमारभूत, अरे आयु-
धानभिज्ञ, तातमप्यधिक्षिपसि । अथवा—

स भीरुः शूरो वा प्रथितभुजसारस्त्रिभुवने

कृतं यत्तेनाजौ प्रतिदिनमियं वेत्ति वसुधा ।

विहीन, अपाण्डवम् = पाण्डवों से रहित, निःसोमकम् = सोमवंश से वियुक्त, (भविष्यति = होगा);
अथ = आज, भुवः = पृथिवी का, नृपकाननातिगुरुः = राजाओं रूपी वनों के कारण अतिबोझिल,
भारः = भार, अपैतु = दूर हो जायेगा ॥ ३४ ॥

प्रयत्नपरिवोधित इति । अथ = अस्मिन्नेव दिने, (त्वम् = दुर्योधनः, पूर्णम् = निखिलम्),
निशाम् = रात्रिम्, (तथा = तेन प्रकारेण), शोषे = स्वप्स्यसि, अत्र वर्तमानसामोप्ये लट्, (यथा =
येन प्रकारेण), स्तुतिभिः = प्राभातकालिकैः चारणकृतैः प्रशंसावचनैः, प्रयत्नपरिवोधितः — प्रयत्नेन =
प्रयासेन परिवोधितः = प्रबोधितः, भविष्यतीति शेषः; अथ, भुवनम् = जगत्, अकेशवम् = कृष्णशून्यम्,
अपाण्डवम् = युधिष्ठिरादिभिर्विरहितम्, निःसोमकम् = सोमवंशशून्यम्, भविष्यतीति क्रियाशेषः; सर्वा-
नेतान् हनिष्यामीति साधिकारं वचः । अथ, दोःशालिनाम् — दोभिः = बाहुभिः शालन्ते = शोभन्ते
इति दोःशालिनः = स्वभुजबलगविताः नृपाः इत्यर्थः, तेषाम्, इयम् = एषा, रणकथा = युद्धवार्ता,
परिसमाप्यते = अवसीयते, मयेति शेषः । अथ, भुवः = पृथिव्याः, नृपकाननातिगुरुः — नृपाः = राजानः
एव काननानि = वनानि तैः अतिगुरुः = अतिविशालः, भारः = गुरुता, अपैतु = दूरीभवतु । सर्वानेतान्
पापिनः विनाश्य भुवो भारं लघूकरिष्यामीत्यभिप्रायः । अत्र रूपकालङ्कारः । पृथिवी छन्दः ॥ ३४ ॥

अन्वयः—किम्, तव, इव, मे, आयुधम्, गुरुशापभाषितवशात्, निर्वीर्यम् । किम्, त्वम्, यथा,
(अहमपि), सम्प्रति, एव, मयात्, समरम्, विहाय, प्राप्तः, अस्मि । किम्, अहम् स्तुतिवंशकोर्तन-
विदाम्, सारथीनाम्, कुले, जातः । यत्, क्षुद्रारातिवृत्ताप्रियम्, अस्त्रेण, प्रतिकरोमि, न अस्त्रेण ॥३५॥

शब्दार्थः—किम् = क्या, तव = तुम्हारे, इव = समान, मे = मेरा, आयुधम् = अस्त्र, गुरुशाप-
भाषितवशात् = गुरु के श्रापवचन के कारण, निर्वीर्यम् = बलहीन (है) । किम् = क्या, त्वम् = तुम,
यथा = जैसा, (अहमपि = मैं भी), स्तुतिवंशकोर्तनविदाम् = स्तुति तथा वंश की बड़ाई करने वाले, सार-
थीनाम् = सूतों के, कुले = वंश में, जातः = पैदा हुआ हूँ । यत् = जो कि, क्षुद्रारातिवृत्ताप्रियम् = क्षुद्र
शत्रु के द्वारा किये गये अप्रिय का, अस्त्रेण = आँसु से, प्रतिकरोमि = बदला चुकाऊँ, न = न कि,
अस्त्रेण = अस्त्र से ॥३५॥

स्तुति तथा वंश की बड़ाई करनेवाले सुनों के कुल में पैदा हुआ हूँ ? जो कि शुद्ध शत्रु के द्वारा किये गये अप्रिय का ओस् से (अर्थात् रोका) बदला चुकाऊँ, न कि अस्त्र से (बदला चुकाऊँ) ॥३५॥

कण—(क्रोधपूर्वक) अरे रे वक्तादी, निष्कलशस्त्र धारण करने से अभिमानों, वामन (ब्राह्मण) के बच्चे,

बलहीन (हो) अथवा बलशाली (हो) ; अस्त्र को मैंने नहीं छोड़ा है; जैसा कि दुपद के पुत्र से भयभीत हुये, भुजबलशाली, तुम्हारे पिता ने (किया है) ॥ ३६ ॥

और भी—

सूत अथवा, सूतपुत्र अथवा जो कोई मैं होऊँ । (किंत्वा) कुल में जन्म लेता मानव के अधीन (होता है), किन्तु पुरुषार्थ मेरे अधीन है ॥ ३७ ॥

अश्वत्थामा—(क्रोध के साथ) अरे ! रे रथकार-कुल के कलङ्क, राधा के गर्भ के भारभूत (अर्थात् नपुंसक) शस्त्रों से अपरिचित, (तुम) पिता जी पर भी दोषारोपण कर रहे हो ? अथवा—

त्रिलोकी में प्रख्यात भुजबल वाले बह (हमारे पिता जी) शूर अथवा डरपोक थे, इस को कोई बात नहीं, किन्तु प्रतिदिन उन्होंने युद्ध में जो (कुल) किया है (उसे) यह पृथिवी जानती है ।

निर्वीर्यमिति । किमिति प्रश्ने, तत्र = मन्त्रः कर्णस्य, इव = यथा, मे = मनः, आयुधम् = अस्त्रम्, गुरुशपमापितवशात्—गुरोः = शिक्षकस्य परशुरामस्य शपमापितम् = शपवचनम् तद्वशात् = तत्कारणात्, ब्राह्मणोऽहमित्युक्त्वा धनुर्विद्याग्रहणे सलग्नस्य यूतः कर्णस्य विषये यदा भगवान् परशुरामो शतवान्—नायं ब्राह्मणस्तदा शशाप—मन्त्रः शिक्षिता त्वदीया विद्या निष्कला भवतिविति । किं त्वं यथा = त्वमिव, अहमपीति शेषः, सम्प्रति = अनुता, एव = हि, भवात् = भोतेः, समरम् = युद्धम्, विहाय = त्यक्त्वा, प्राप्तः = पलायनाग्नः, अस्मि = वरं । किम् अहम् = ब्राह्मणपुत्रऽश्वत्थामा, स्तुतिर्वंश क्षीर्तन-विदाम्—स्तुतिश्च = प्रार्थना च वंशक्षीर्तनञ्च = कुलगानञ्च तथा विदाम् = शत्रूणां, सारथीनाम् = सूतानाम्, कले = वंशे जातः = उत्पन्नः । यत् = यस्मात्, क्षुरारविकृतापियम्—क्षुरः = नोचः यः अरातिः = शत्रुः तेन कृतम् = विहितम् अप्रियम् = अहितम्, अश्रेण = अश्रुणा, प्रतिकरोमि = प्रतिकारविषयं करोमि, न, अश्रेण = आयुधेन । त्वाद्दृशाः अकुलानाः नेत्रत्रलेन शत्रुकृतापराधं प्रतिकुर्वन्ति, न तु माद्दृशाः निर्मलगोत्रोत्पन्ना शूराः इति भावः । शार्दूलविक्रीडित छन्दः ॥३५॥

अन्वयः—निर्वीर्यम्, वा, सर्वीर्यम्, वा, आयुधम्, मया, न, उत्सृष्टम्; यथा, पाद्मालभोतेन, बाहुशालिना, ते, पित्रा, (कृतम्) ॥३६॥

शब्दार्थः—निर्वीर्यम् = बलहीन (हो), वा = अथवा, सर्वीर्यम् = बलशाली (हो), आयुधम् = अस्त्रको, मया = मैंने, न = नहीं, उत्सृष्टम् = छोड़ा है; यथा = जैसा कि; पाद्मालभोतेन = दुपद के पुत्र से भयभीत हुए, बाहुशालिना = भुजबलशाली, ते = तुम्हारे, पित्रा = पिता ने, (कृतम् = किया है) ॥३६॥

निर्वीर्यमिति—मामकानमायुधमित्यध्याहार्यम्, निर्वीर्यम् = बलहीनम्, वा = अथवा, सर्वीर्यम् = बलशालि, स्यादिति शेषः, आयुधम् = प्रहरणम्, मया = अथमकुलोत्पन्नेनापि कर्णेनेति भावः, न =

परित्यक्तं शस्त्रं कथमिति स सत्यव्रतधरः

पृथासूनुः साक्षी त्वमसि रणभीरो क्व नु तदा ॥३८॥

कर्णः—(विहस्य) एवं सीरुहम् । त्वं पुनर्विक्रमैकरसं पितरमुत्सृज्य किं करिष्यसीति महान्मे संशयो जातः । अपि च रे मूढ,

यदि शस्त्रमुज्झितमशस्त्रपाणयो

न निवारयन्ति किमरीनुदायुधान् ।

यदनेन मौलिदलनेऽप्युदासितं

सुचिरं स्त्रियेव नृपचक्रसंनिधौ ॥३९॥

अश्वत्थामा—(सक्रोधं सकपं च) दुरात्मन्, राजवत्सलभ, प्रगल्भ, सूतापसद, असंबद्धप्रलापिन्,

नहि, उत्सृष्टम् = परित्यक्तम्, यथा = येन प्रकारेण, पाञ्चालभीतेन = द्रुपदपुत्रत्रासेन, बाहुशालिना = भुजबलयुक्तेन, ते = तव, पित्रा = जनकेन, कृतमिति शेषः । अत्रोपमालङ्कारः । पथ्यावकत्रं छन्दः ॥३६॥

अन्वयः—सुतः, वा, सुतपुत्रः, वा, यः, वा, कः, वा, अहम्, भवामि; कुले, जन्म, दैवायत्तम्, (वर्तते), तु, पौरुषम्, मदायत्तम्, (आस्ते) ॥ ३७ ॥

शब्दार्थः—सुतः = सुत, सारथी, वा = अथवा, सुतपुत्रः = सारथिपुत्र, वा = अथवा, यः = जो, कः = कोई, अहम् = मैं, भवामि = होऊँ, कुले = वंश में, जन्म = जन्म लेना, दैवायत्तम् = भाग्य के अधीन, (वर्तते = होता है), तु = किन्तु, पौरुषम् = पुरुषार्थ, मदायत्तम् = मेरे अधीन, (आस्ते = है) ॥ ३७ ॥

सूत इति—सुतः = सारथिः, वेति विकल्पे, सुतपुत्रः = सारथिसुतः, वा = अथवा, यः कः = अविचारणीयोऽधमादधमो वेत्यर्थः, अहम् = त्वया ज्ञात्वाऽधिज्ञितः कर्णः, भवामि = अस्मि । कुले = वंशे, जन्म = उत्पत्तिः, दैवायत्तम् = भाग्याधीनम्, वर्तते इति शेषः, तु = किन्तु, पौरुषम् = पुरुषार्थः, मदायत्तम् = ममाधीनम्, आस्ते इति क्रियापरिसमाप्तिः । पथ्यावकत्रं छन्दः ॥३७॥

अन्वयः—त्रिभुवने; प्रथितभुजसारः, सः, शूरः, वा, भीरुः, (आसीत्, किन्तु), प्रतिदिनम्, तेन, आजो, यत्, कृतम्, (तत्), इयम्, वसुधा, वेत्ति; शस्त्रम्, कथम्, परित्यक्तम्, इति, सत्यव्रतधरः; सः, पृथासूनुः, साक्षी, (वर्तते), हे रणभीरो, त्वम्, तदा, क्व नु, असि ? ॥३८॥

शब्दार्थः—त्रिभुवने = त्रिलोकी में, प्रथितभुजसारः = प्रख्यात भुजबल वाले, सः = वहः, शूरः = शूर, वा = अथवा, भीरुः = डरपोक, (आसीत् = थे, किन्तु = किन्तु), प्रतिदिनम् = प्रतिदिन, तेन = उन्होंने, आजो = युद्ध में, यत् = जो, कृतम् = किया है, (तत् = उसे), इयम् = यह, वसुधा = पृथिवी, वेत्ति = जानती है; शस्त्रम् = शस्त्र, कथम् = कैसे, परित्यक्तम् = छोड़ा, इति = इस के लिये, सत्यव्रतधरः = सत्यवादी, सः = वह, पृथासूनुः = कुन्ती के पुत्र, साक्षी = गवाह, (वर्तते = हैं), हे रणभीरो = हे युद्ध से डरने वाले, त्वम् = तुम, तदा = उस समय, क्व नु = कहाँ, असि = थे ॥३८॥

स भीरुरिति । त्रिभुवने = त्रिलोक्याम्, प्रथितभुजसारः—प्रथितः = प्रख्यातः भुजसारः = भुज-

(उन्होंने) शस्त्र कैसे छोड़ा, इस के लिये सत्यवादी वह कुन्ती के पुत्र गवाह (हैं), (किन्तु) हे युद्ध से डरने वाले, तुम उस समय कहाँ थे ? ॥ ३८ ॥

विशेषः—सत्यव्रतधरः—“अश्वत्थामा इतो नरो वा कुञ्जरो” इस रूप में असत्य बोलने वाले युधिष्ठिर को अश्वत्थामा जो ‘सत्यव्रतधरः’ कह रहा है, उसका व्यङ्ग्यार्थ है—सत्यवक्ता का ढोंग रचने वाला युधिष्ठिर ।

पृथ्वासूनुः—यहाँ युधिष्ठिर के लिये प्रयुक्त यह विशेषण बड़ा ही व्यङ्ग्यार्थक है । युधिष्ठिर उस समय पैदा हुये थे, जब उनकी माता कुन्ती ने धर्मराज (यमराज) के साथ सम्भोग कर के गर्भ धारण किया था । यही कारण है कि युधिष्ठिर को धर्मपुत्र भी कहा जाता है । यहाँ ‘पृथ्वासूनुः’ का अर्थ है—‘पुंश्चली माँ का पुत्र’ ॥ ३८ ॥

कर्णः—(हँसकर) मैं ऐसा ही डरपोक हूँ । किन्तु तुम पराक्रम में ही आनन्द लेने वाले (अपने) पिता का स्मरण कर क्या करोगे—यह सोच कर (इति) मुझे महान् संशय हो रहा है । और भी रे मूर्ख,

विशेष—विक्रमैकरसम्—यद्यपि आचार्य द्रोण के लिए यह विशेषण सर्वथा उपयुक्त है । किन्तु कर्ण इसे व्यङ्ग्य के साथ कह रहा है जिसका भाव होगा—विक्रम-प्रदर्शन के समय जैसे तुम्हारे पिताजी शत्रु के सामने आत्म-समर्पण कर दिये उसी तरह तुम भी कहीं न करो—बस, यही हमें सन्देह है ।

यदि शस्त्र को छोड़ दिया था (तो क्या हुआ) ! हाथ में शस्त्र न धारण किये हुये व्यक्ति (मारने के लिए) आयुध उठाये हुए शत्रुओं को क्या नहीं रोकते हैं, जो कि राज-समूह के सामने स्त्री के समान इनके द्वारा (अपनी) गर्दन काटी जाने के विषय में भी पूर्ण रूप से उदासीन रहा गया ॥ ३९ ॥

अश्वत्थामा—(क्रोध और कम्पन के साथ) दुरात्मन्, राजा के चाडकार, ढोंग, अवम सूत, अनाप-सनाप बकवास करने वाले,

बलम् यस्य सः, सः=तादृशः, शूरः=वीरः, वा=अथवा, भीरुः=भयशीलः, (आसीत्, किन्तु), प्रतिदिनम्=दिने दिने, तेन=मत्पित्रा, आजौ=युद्धे, यत्=यादृशं कर्म, कृतम्=सम्पादितम्, तदिति शेषः, इयम्=एषा, वसुधा=पृथिवी, वेत्ति=जानाति । शस्त्रम्=आयुधम्, कथम्=केन प्रकारेण, परित्यक्तम्=न्यस्तम्, इति=पतत्, सत्यव्रतधरः=सत्यवक्ता, सः=सत्यवादित्वेन विख्यातः, पृथ्वासूनुः=कुन्तीपुत्रः, पुंश्चलीपुत्र इति ध्वनिः, साक्षी=प्रत्यक्षद्रष्टा, वर्तते इति शेषः, हे रणभीरो=हे युद्ध-भीरो, त्वम्=कर्णः, तदा=यदा दुष्टेन तादृशं कर्म कृतम्, वत् नु=कुत्र, अस्ति=आसीत् । शिखरिणी छन्दः ॥ ३९ ॥

कर्ण इति । भीरुः=भयशीलः । विक्रमैकरसम्—विक्रमे=पराक्रमे एकः=अद्वितीयः रसः=आनन्दः यस्य तम् । व्यङ्ग्यवचनमेतदिति ॥

अन्वयः—यदि, शस्त्रम्, उज्जितम्, (ततः, किम् !), अशस्त्रपाणयः, उदायुधान्, अरीन्, किम्,

कथमपि न निषिद्धो दुःखिना भोरुणा वा
द्रुपदतनयपाणिस्तेन पित्रा ममाद्य ।

तव भुजवलदपध्मायमानस्य वामः

शिरसि चरण एष न्यस्यते वारयैतम् ॥४०॥ ५
(इति तथा कर्तुमुचिष्टति) ।

कृपदुर्योधनौ—गुरुपुत्र, मर्षय मर्षय । (इति निवारयतः) ।
(अश्वत्थामा चरणपहारं नाटयति)

कर्णः—(सकोपमुत्थाय खड्गमाकृष्य) अरे दुरात्मन्, बाचाक्ष, ब्रह्मबन्धो, आत्मश्लाघ,
जात्या कामसवध्योऽसि चरणं त्वदमुद्धृतम् ।

अनेन लूनं खड्गेन पतितं द्रक्ष्यसि क्षितौ ॥४१॥ ५

अश्वत्थामा—अरे मूढ, किं नाम जात्या कामसवध्योऽहम् । इयं सा जाति परित्यक्ता ।
(इति यकोपवीतं छिनत्ति । पुनश्च सकोपम्) ।

अद्य मिथ्याप्रतिज्ञोऽसौ किरीटी क्रियते मया ।

शस्त्रं गृहाण वा त्यक्त्वा मौलौ वा रचयाञ्जलिम् ॥४२॥ ५

न, निवारयन्ति । यत्, नृपचक्रसन्निधौ, स्त्रिया, इव, अनेन, मौलिदलने, अपि, सुचिरम्, उदा-
सितम् ॥ ३९॥

शब्दार्थः—यदि=यदि, शस्त्रम्=शस्त्र को, उज्जितम्=छोड़ दिया था, (ततः=तो, किम्=क्या हुआ), अशस्त्रपाणयः=हाथ में शस्त्र न धारण किये हुए व्यक्ति, उदायुधान्=(मारने के लिए) आयुध उठाये हुए, अरीन्=शत्रुओं को, किम्=क्या, न=नहीं, निवारयन्ति=रोकते हैं ? यत्=जो कि, नृपचक्रसन्निधौ=राज-समूह के सामने, स्त्रिया=स्त्री के, इव=समान, अनेन=इनके द्वारा, मौलिदलने=गर्दन काटी जाने के विषय में, अपि=भी, सुचिरम्=पूर्ण रूप से, उदासितम्=उदासीन रहा गया ॥ ३९ ॥

यदि शस्त्रमिति । यदि=चेत्, शस्त्रम्=प्रहरणम्, उज्जितम्=परित्यक्तम्, अनेन ततः किमिति शेषः, अशस्त्रपाणयः—न विद्यते शस्त्रम्=आयुधम् पाणौ=हस्ते येषां तादृशाः, उदायुधान्=उद्यतप्रहरणान्, प्रहर्तुमुद्यतानित्यर्थः, अरीन्=शत्रून्, किं न निवारयन्ति=किं न प्रतिकुर्वन्ति ? अपि तु प्रतिकुर्वन्त्येव, यत्=यस्मात्, नृपचक्रसन्निधौ—नृपाणाम्=राशाम् चक्रस्य=समूहस्य सन्निधौ=समक्षमित्यर्थः, स्त्रिया=वनितया, इव=यथा, अनेन=तव पित्रा, मौलिदलने—मौलिः=मस्तकम् तस्य दलने=खण्डने, अपि=च, सुचिरम्=पर्याप्तम्, उदासितम्=उदासीन्यं प्रदर्शितम् । अत्रोपमाश्लक्ष्णः । भञ्जुमाषिणो छन्दः । तल्लक्षणं—सजसा जगौ च यदि भञ्जुमाषिणो ॥३९॥

ग्रन्थः—कथमपि, दुःखिना, वां, भोरुणा, तेन, मम, पित्रा, द्रुपदतनयपाणिः, न, निषिद्धः, अद्य, भुजवलदपध्मायमानस्य, तव, शिरसि, एषः, वामः, चरणः, न्यस्यते, एतम्, वारय ॥ ४० ॥

शब्दार्थः—कथमपि=जिस किसी तरह, दुःखिना=दुःखी, वा=अथवा, भोरुणा=डरपोक,

जिस किसी तरह—दुःखी अथवा डरपोक—उन मेरे पिताजी के द्वारा दुपद के पुत्र (धृष्टद्युम्न) का हाथ (अपने शिर को काटने से) नहीं रोका गया । (किन्तु) आज बाहुबल के घमण्ड से फूले हुए तुम्हारे शिर पर यह बाँया पैर रक्खा जा रहा है, (यदि ताकत हो तो) इसे रोको ॥ ४० ॥

(ऐसा कह कर बैसा करने के लिये उठता है)

कृप और दुर्बोधन—गुरुपुत्र, क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये । (ऐसा कह कर रोक्ते हैं)

(अश्वत्थामा पैर से मारने का अभिनय करता है)

कर्ण—(क्रोधपूर्वक उठकर तथा तलवार खींचकर) अरे दुष्ट, ब्रह्मवादी, अधम ब्राह्मण, अपनी प्रशंसा करने वाले,

(ब्राह्मण) जाति के कारण यद्यपि (तुम) वध न करने के पात्र हो । किन्तु उठाये गये (अनेक) इस पैर को इस (मेरी) तलवार से काटा गया (अतः) भूमि पर पड़ा हुआ देखोगे ॥ ४१ ॥

अश्वत्थामा—अरे मूर्ख, क्या कहा—‘मैं (ब्राह्मण) जाति के कारण अवध्य हूँ ।’ (लो) अभी वह जाति छोड़ दी । (ऐसा कह कर जनेक तोड़ता है । फिर भी क्रोध के साथ)

आज मेरे द्वारा (तुम्हें मार कर) वह अर्जुन झूठी प्रतिज्ञा वाला किया जा रहा है ।

विशेष-मिथ्याप्रतिज्ञः—अर्जुन ने कर्ण का वध करने के लिए प्रतिज्ञा की थी । किन्तु यदि आज अश्वत्थामा कर्ण को मार डालेगा तो अर्जुन की प्रतिज्ञा पूरी न हो सकेगी । वह झूठी प्रतिज्ञा वाला ही रह जायगा । यही भाव है ‘मिथ्याप्रतिज्ञः क्रियते’ स शब्द का ॥ ४२ ॥

तेन=उन, मम=मेरे, पित्रा=पिताजी के द्वारा, दुपदतनयपाणिः=दुपद के पुत्र (धृष्टद्युम्न) का हाथ, न=नहीं, निषिद्धः=रोका गया, अद्य=आज, भुजबलदर्पाध्मायमानस्य=बाहुबल के घमण्ड से फूले हुए, तव=तुम्हारे, शिरसि=शिर पर, एषः=यह, वामः=बाँया, चरणः=पैर, न्यस्यते=रक्खा जा रहा है, एतन्=इसको, इसे, वारय=रोको ॥ ४० ॥

कथमपीति—कथमपि = यथाकथञ्चिदपि, येन केनापि रूपेणेत्यर्थः, दुःखिना=शोकाकुलेन, वा=अथवा, भीरुणा=भीतेन, तेन=मृतेनेत्यर्थः, मम=अश्वत्थामन्, पित्रा=जनकेन, दुपदतनयपाणिः—दुपदतनस्य=धृष्टद्युम्नस्य पाणिः=करः, न=नहि, निषिद्धः=निवारितः । (किन्तु), अद्य=सम्पत्ति, भुजबलदर्पाध्मायमानस्य=भुजबलस्य=बाहुबलस्य यो दर्पः=अभिमानः तेन आध्मायमानस्य=आध्मातस्य, फुलितस्येत्यर्थः, तव=कर्णस्येत्यर्थः, शिरसि=मस्तके, एषः=अयम्, वामः=दक्षिणेतः, चरणः=पादः, न्यस्यते=स्थाप्यते, यदि शक्तोऽसि तदेति शेषः, एतन्=शिरसि स्थाप्यमानम् अमुं चरणम्, वारय=निवारय । मालिनी छन्दः । तल्लक्षणं यथा—‘न-न-म-य-य-युतेयं मालिनी भोगिलोकैः’ ॥ ४० ॥

अन्वयः—जात्या, कामम्, (त्वम्), अवध्यः, अस्ति; तु, उद्धृतम्, श्दम्, चरणम्, अनेन, खड्गेन, लूनम्, (अतः), क्षितौ, पतितम्, द्रक्ष्यसि ॥ ४१ ॥

शब्दार्थः—जात्या=जाति के कारण, कामम्=यद्यपि, (त्वम्=तुम), अवध्यः=वध न करने

(उभावपि खड्गमाकृष्यान्त्योन्यं प्रहर्तुमुद्यतौ । कृपदुर्योधनौ वारयतः)

दुर्योधनः—सखे, आचार्यपुत्र, शस्त्रग्रहणेनालम् ।

कृपः—वत्स, सूतपुत्र, शस्त्रग्रहणेनालम् ।

अश्वत्थामा—मातुल, मातुल, किं निवारयसि । अयमपि तातनिन्दाप्रगल्भः
सूतापसदो दृष्टद्युम्नपक्षपात्येव ।

कर्णः—राजन्, न खल्वहं निवारयितव्यः ।

उपेक्षितानां मन्दानां धीरसत्त्वैरवज्ञया ।

अत्रासितानां क्रोधान्धैर्भवत्येषा विकत्थना ॥४३॥ ✕

अश्वत्थामा—राजन्, मुञ्च मुञ्चैनम् । आसादयतु मदभुजान्तरनिष्पेषसुलभमसूना-
भवसादनम् । अन्यच्च, राजन्, स्नेहेन कार्येण वा यत्त्वमेवं ताताधिक्षेपकारिणं दुरा-
त्मानं मत्तः परिरक्षितुमिच्छसि तदुभयमपि वृथैव । पश्य—

पापप्रियस्तव कथं गुणिनः सखायं

सूतान्वयः शशधरान्वयसंभवस्य ।

हन्ता किरीटिनमहं नृप मुञ्च कुर्यां

क्रोधादकर्णमपृथात्मजमद्य लोकम् ॥४४॥ ✕

के पात्र, असि = हो, तु = किन्तु उद्धृतम् = उठाये गये, इदम् = इस, चरणम् = पैर को, अनेन = इस,
खड्गेन = तलवार से, लूनम् = काटा गया, (अतः = अतः), क्षिती = भूमि पर, पतितम् = पड़ा हुआ,
द्रक्ष्यसि = देखोगे ॥ ४१ ॥

जात्येति । जात्या = ब्राह्मणजात्येत्यर्थः, कामम् = यद्यपि, त्वमिति शेषः, अवध्यः = वधानर्हः,
असि = भवसि, तु = किन्तु, उद्धृतम् = प्रहर्तुमुत्थापितम्, इदम् = एतत्, चरणम्, अनेन = एतेन,
मदीयेनेत्यर्थः, खड्गेन = करवालेन, लूनम् = छिन्नं सत्, क्षिती = भूमौ, पतितं द्रक्ष्यसि = अवलोक-
यिष्यसि । पथ्यावक्त्रं छन्दः ॥ ४१ ॥

अन्वयः—अद्य, मया, असौ, किरीटी. मिथ्याप्रतिज्ञः, क्रियते; वा, शस्त्रम्, गृहाण, वा, त्यक्त्वा,
मौली, अञ्जलिम्, रचय ॥ ४२ ॥

शब्दार्थः—अद्य = आज, मया = मेरे द्वारा, असौ = वह, किरीटी = अर्जुन, मिथ्याप्रतिज्ञः =
झूठी प्रतिज्ञावाला, क्रियते = किया जा रहा है, वा = या तो, शस्त्रम् = शस्त्र, गृहाण = उठाओ,
वा = अथवा, त्यक्त्वा = फेंक कर, मौली = माथे पर, अञ्जलिम् = जुड़ा हुआ हाथ, रचय =
रक्खो ॥ ४२ ॥

अद्य मिथ्येति । अद्य = अधुना, मया = अश्वत्थाम्ना, असौ = सः, किरीटी = अर्जुनः, मिथ्या-
प्रतिज्ञः—मिथ्या = वितथा प्रतिज्ञा = प्रणः यस्य सः तादृशः, क्रियते = विधीयते । अर्जुनेन कर्णस्य वधः
प्रतिज्ञातः । किन्तु सम्प्रति अश्वत्थाम्ना तस्य वधे सञ्जाते तस्य प्रतिज्ञा वितथा भविष्यतीत्यभिप्रायः ।

(दोनों ही तलवार खींच कर एक दूसरे को मारने के लिए तत्पर होते हैं । कृप और दुर्योधन रोकते हैं)

दुर्योधन—मित्र, आचार्यपुत्र, शस्त्र उठाने की आवश्यकता नहीं ।

कृप—बेटा, सत्पुत्र, शस्त्र निकालने की जरूरत नहीं ।

अश्वत्थामा—मामा, मामा, क्यों रोक रहे हो ? पिता जी की निन्दा में दीठ, अवम यह सत् भी धृष्टद्युम्न का पक्षपाती ही है ।

कर्ण—राजन्, मुझे मत रोकें ।

गम्भीर हृदय वाले पुरुषों के द्वारा हीनता की दृष्टि से (अर्थात् हीन समझकर) उपेक्षा किये गये क्रोध से पागल व्यक्तियों के द्वारा धमकाये न गये (भयभीत न किये गये) मूर्खों की इस तरह की डींग हुआ (हो) करती है ॥ ४३ ॥

अश्वत्थामा—राजन्, छोड़ो छोड़ो इसे । (यह) मेरी बाहुओं के बीच में पीस दिये जाने से सरलतापूर्वक प्राण-नाश को प्राप्त कर ले । और दूसरी बात भी है—राजन्, प्रेम के कारण अथवा प्रयोजनवश जो आप इस (हमारे) पिता जी के निन्दक दुरात्मा को गुप्तसे बचाना चाहते हैं, वह दोनों ही निरर्थक है । देखिये—

विशेष—तदुभयमपि—अश्वत्थामा का कहना है कि—यदि आप मित्रता के कारण सम्प्रति कर्ण को रक्षा कर रहे हैं, तो इतना निश्चित समझ लीजिये कि अन्त तक वह आपका मित्र नहीं बना रह सकता, क्योंकि दोनों में मैत्री का आवश्यक अंग—समानशीलता तथा समान वंश का होना—नहीं है । आप गुणी एवं उच्चकुल के हैं तो यह पापी एवं अवम वंश का है । इस के अतिरिक्त यदि आप इसकी इसलिये रक्षा कर रहे हैं कि यह आप के शत्रु अर्जुन का नाश कर आपका हित करेगा, तो वह भी निरर्थक है क्योंकि अब मैं स्वयं ही अर्जुन का नाश करूँगा । यही माव आगे श्लोक में कहा जा रहा है ।

हे राजन्, गुणी तथा (श्रेष्ठ) चन्द्रकुल में उत्पन्न आपका पापी तथा (अवम) रथकारकुल में उत्पन्न यह कैसे मित्र (हो सकता है) ? मैं अर्जुन को मारूँगा । (अतः मुझे) छोड़ो । आज क्रोध के कारण जगत को कर्णविहीन तथा अर्जुन से रहित कर डालूँगा ॥ ४४ ॥

शस्त्रम् = प्रहरणम्, गृहाण युद्धार्थमिति शेषः, वेति पक्षान्तरे, त्यक्त्वा = शस्त्रं परित्यज्य, मौली = मस्तके, अञ्जलिम् = कासम्पुटम्, रचय = विधेहि । शस्त्रं गृहीत्वा युध्यस्व वा त्राणार्थं तत् परित्यज्य शरणागतो भवेति भावः । अत्रेत्यमपि व्याख्यातुं सुशक्तं यथा—शस्त्रं गृहाण वा त्यक्त्वा मौली अञ्जलि रचय, (किन्तु उभयथा) अथ मया किरीटी मिथ्याप्रतिज्ञः क्रियते । युद्धार्थं सम्मुखे आगते वा दीनभावेन शरणे आगतेऽपि—उभयथा—त्वां हनिष्यामीति तात्पर्यम् । परन्तुवैतद्व्याख्यानं न तथा सुबोधं यथा प्रथममिति । पथ्यावक्त्रं छन्दः ॥ ४२ ॥

अन्वयः—धीरसत्त्वैः, अवशया, उपेक्षितानाम्, क्रोधान्यैः, अत्रासितानाम्, मन्दानाम्, एषा, विकृत्यना, भवति ॥ ४३ ॥

(इति प्रहर्तुमिच्छति)

कर्णः—(रुद्धमुख्य) अरे वाचाष्ट, ब्रह्मणाधम, अयं न भवति । राजन्, सुवच सुवच ।
न खल्वहं वारयितव्यः । (हन्तुमिच्छति) ।

(दुर्योधनकृपौ निवारयतः)

दुर्योधनः—कर्ण, गुरुपुत्र, कोऽयमद्य युवयोर्व्यामोहः ।

कृपः—वत्स, अन्यदेव प्रस्तुतमन्यत्रावेग इति कोऽयं व्यामोहः । स्वबलव्यसनं
चेदमस्मिन्काले राजकुलस्यास्य युष्मत्त एव भवतीति वामः पन्थाः ।

अश्वत्थामा—मातुल, न लभ्यतेऽस्य कटुप्रलापिनो रथकारकुलकलङ्कस्य दर्पः
शातयितुम् ।

कृपः—वत्स, अकालः खलु स्वबलप्रधानविरोधस्य ।

अश्वत्थामा—मातुल, यद्येवम्,

अयं पापो यावन्न निधनमुपेयादरिशरैः

परित्यक्तं तावत्प्रियमपि मयास्त्रं रणमुखे ।

बलानां नाथेऽस्मिन्परिकुपितभीमार्जुनभये

समुत्पन्ने राजा प्रियसखबलं वेत्तु समरे ॥४५॥

(इति खड्गमुत्सृजति) ।

कर्णः—(विहस्य) कुलक्रमागतमेवैतद्भवाद्दशां यदस्त्रपरित्यागो नाम ।

शब्दार्थः—धीरसत्त्वैः=गम्भीर हृदयवाले पुरुषो के द्वारा, अवश्या=हीनता की दृष्टि से,
उपेक्षितानाम्=उपेक्षा किये गये, क्रोधान्धैः=क्रोध से पागल व्यक्तियों के द्वारा, अत्रासितानाम्=
मयभीत न किये गये, मन्दानाम्=मूर्खों की, एषा=यह, इस तरह की, विकत्थना=डींग, भवति=
हुआ करती है ॥ ४३ ॥

उपेक्षितानामिति । धीरसत्त्वैः—धीरम्=गम्भीरम् सत्त्वम्=बलम् येषां तैः, सुमदैरित्यर्थः,
अवश्या=हीनबुद्ध्या, तुच्छप्रायं शास्त्रैत्यर्थः, उपेक्षितानाम्=तिरस्कृतानाम्, अत एव क्रोधान्धैः=
कोपेन विवेकशून्यैः, अत्रासितानाम्=भीतिमप्रापितानाम्, मन्दानाम्=मूर्खानाम्, एषा=एतादृशी,
विकत्थना=प्रलापशीलता, भवति=जायते । अत एनं दण्डितं करिष्यामीति भावः । अनुष्टुप्
छन्दः ॥ ४३ ॥

अश्वत्थामा इति । महुजान्तरनिपेषसुलभम्—मदीयौ यौ भुजौ=बाहू तयोः अन्तरे=मध्ये
यः निपेषः=यन्त्रणं मर्दनं वा, तेन सुलभम्=सुखेन लभ्यम्, असूनाम्=प्राणानाम्, अवसादनम्=
समाप्तिम् । ताताधिक्षेपकारिणम्—तातरय=मम पितुः, अधिक्षेपकारिणम्=निन्दकम् ॥

अन्धयः—हे नृप, गुणिनः, शशधरान्वयसंभवस्य, तव, पार्षादयः, सूतान्वयः, अयम्, कथम्,
रखा ? अहम्, किरीटन्म्, हन्ता, (अतः, माम्), सुव्र, अद्य, क्रोधात्, लोकम्, अकर्णम्,
अपृथात्मजम्, दुर्याम् ॥ ४४ ॥

(ऐसा कह कर प्रहार करना चाहता है)

कण—(तलवार उठाकर) अरे ! बढ़-बढ़ करने वाले नीच ब्राह्मण, (समझो) अब तुम (इस दुनियाँ में) न रहे । राजन्, छोड़िये-छोड़िये । मुझे (अब) मत रोकिये । (ऐसा कह कर मारना चाहता है)

(दुर्योधन और कृपाचार्य रोकते हैं)

दुर्योधन—कर्ण, गुरुपुत्र, आज आप लोगों को यह कैसा पागलपन (सवार है) ?

कृप—वत्स, प्रस्तुत कुछ अन्यथा, क्रोध अन्यत्र हो रहा है—यह कैसा पागलपन है ? सम्प्रति इस राज-कुल का यह भक्ति-अथ तुम से ही हो रहा है, यह (कैसा) उलटा मार्ग है ।

अश्वत्थामा—मामा, कटु पलाप करने वाले, इस रथकार कुल के कलङ्क का घमण्ड चूर करने का (अवसर) नहीं मिल रहा है ।

कृप—वत्स, अपनी सेना के प्रधान के साथ विरोध करने का यह उपयुक्त अवसर नहीं है ।

अश्वत्थामा—मामा, यदि ऐसा है (तो) --

जब तक शत्रु के बाणों से यह पापी (कर्ण) मृत्यु को नहीं प्राप्त हो जाता; तब तक मेरे द्वारा संग्राम के बीच (अपना) प्रिय भी अस्त्र परित्यक्त कर दिया गया (अर्थात् परित्यक्त कर दे रहा हूँ) । इस के सेना-नायक होने पर युद्ध में अत्यन्त क्रुद्ध भीम और अर्जुन से भय उत्पन्न होने पर राजा (अपने) प्रिय मित्र (कर्ण) की ताकत को समझें (अर्थात् जान लें) ॥ ४५ ॥

(ऐसा कह कर तलवार फेंक देता है)

कर्ण—(जोर से हँस कर) जो यह अस्त्र-त्याग है (वह) आप जैसे लोगों का वंश-परम्परा से चला आ रहा है ।

शब्दार्थः—हे नृप=हे राजन्, गुणिनः=गुणी, शशधरान्वयसम्भवस्य=चन्द्रकुल में उत्पन्न, तव=आपका, पापप्रियः=पापी, सूतान्वयः=रथकार के वंश में उत्पन्न, अयम्=यह, कथम्=कैसे, सखा=मित्र (हो सकता है) ? अहम्=मैं, किरीटिनम्=अर्जुन को, हन्ता=मरूँगा, (अतः=इसलिये, माम=मुझे, सुब्र=छोड़ो, अथ=आज, क्रोधात्=क्रोध के कारण, लोकम्=जगत् को, अकर्णम्=कर्णविहीन, अपृथात्मजम्=अर्जुन से रहित, कुर्याम्=कर डालूँगा ॥ ४४ ॥

स्नेहेन कायेण वा दुर्योधनेन कर्णस्य रक्षणं निरर्थकं साधयति—पापप्रिय इति । हे नृप=हे राजन्, गुणिनः=गुणयुक्तस्य, शशधरान्वयसम्भवस्य=शशधरः=चन्द्रः तस्य अन्वयः=वंशः तत्र सम्भवस्य=जातस्य, तव=भवतः, पापप्रियः=पापकर्मा, नीचाशय इत्यर्थः, सूतान्वयः=रथकारकुल-संभूतः, अयम्=एषः, कथम्=केन प्रकारेण, सखा=मित्रम्, भवितुमर्हतीति शेषः, समानशीलान्वयेषु सख्यभावात् । अहम्=द्रोणपुत्रः, अश्वत्थामा इत्यर्थः, किरीटिनम्=अर्जुनम्, हन्ता=हनिष्यामि; अतोऽस्मात्प्रयोजनादपि रक्षणमस्य न समीचीनम्, अतः मामिति शेषः, सुब्र=अथ=अस्मिन्नेव दिने, क्रोधात्=कोपात्, लोकम्=जगत्, अकर्णम्=सूतपुत्रविहीनम्, अपृथात्मजम्=कुन्तीपुत्रार्जुनविरहितम्, कुर्याम्=सम्पादयेयम् । वसन्ततिलका छन्दः ॥ ४४ ॥

अन्वयः—यावत्, अरिशरैः, अयम्, पापः, निधनम्, न, उपेयात्, तावत्, मया, रणमुखे,

अश्वत्थामा—ननु रे, अपरित्यक्तमपि मवादृशैरायुधं चिरपरित्यक्तमेव निष्फलत्वात् ।

कर्णः—अरे मूढ,

धृतायुधो यावदहं तावदन्यैः किमायुधैः ।

यद्वा न सिद्धमस्त्रेण मम तत्केन सेत्स्यति ॥४६॥ α

(नेपथ्ये)

आः दुरात्मन्, द्रौपदीकेशास्वराकर्षणमहापातकिन्, धार्तराष्ट्रापसद, चिरस्य खलु कालस्य मत्संमुखमागतोऽसि । क्षुद्रपशो, क्वेदानीं गम्यते । अपि च । सो मो राधे-यदुर्योधनसौबलप्रभृतयः पाण्डवविद्वेषिणश्चापपाणयो मानधनाः, शृण्वन्तु भवन्तः—

स्पृष्टा येन शिरोरुहे नृपशुना पाञ्चालराजात्मजा

येनास्याः परिधानमप्यवहृतं राज्ञां गुरुणां पुरः ।

यस्योरःस्थलशोणितासवमहं पातुं प्रतिज्ञातवा-

न्सोऽयं मदभुजपञ्जरे निपतितः संरक्ष्यतां कौरवाः ॥४७॥

(सर्व आकर्णयन्ति)

प्रियम्, अपि, अन्नम्, परित्यक्तम्; अस्मिन्, बलानाम्, नाथे, (सति), समरे, परिकुपितभोमार्जुनभये, समुत्पन्ने, राजा, प्रियसखबलम्, वेत्तु ॥ ४५ ॥

शब्दार्थः—यावत्=जब तक, अरिशरैः=शत्रु के बाणों से, अयम्=यह, पापः=पापी, निधनम्=मृत्यु को, न=नहीं, उपेयात्=प्राप्त हो जाता, तावत्=तब तक, मया=मेरे द्वारा रणमुखे=संग्राम के बीच, प्रियम्=प्रिय, अपि=भी, अन्नम्=अस्त्र, परित्यक्तम्=परित्यक्त कर दिया गया, अस्मिन्=इस के, बलानाम्=सेना के, नाथे=नायक, (सति=होने पर), समरे=युद्ध में, परिकुपितभोमार्जुनभये=अत्यन्त क्रुद्ध भोम और अर्जुन से भय उत्पन्न होने पर, राजा=आप, प्रियसखबलम्=प्रिय मित्र को ताकत को, वेत्तु=समझें ॥ ४५ ॥

यदुद्दिश्य कर्णं सैनापत्ये नियुनक्षि तन्निरर्थकमेवेत्युपपादयन्नाह—अयमिति । यावत्=यावत्कालम्, अरिशरैः=अरीणाम्=शत्रूणाम् शरैः=बाणैः, अयम्=एषः, पापः=पापकर्मा कर्णः, निधनम्=मृत्युम्, न उपेयात्=न प्राप्नुयात्, तावत्=तावत्कालम्, मया=अश्वत्थाम्ना, रणमुखे=संग्राम-मध्ये, प्रियम्=प्रेमास्पदम्, अपि, अस्त्रम्=आयुधम्, परित्यक्तम्=न्यस्तम्, अस्मिन्=एतस्मिन् कर्णे, बलानाम्=सैन्यानाम्, नाथे=नायके, (सति=जाते), समरे=युद्धे, परिकुपितभोमार्जुन-भये=परिकुपितौ=क्रुद्धौ यौ भोमार्जुनौ=वृकोदरकिरीटिनौ ताभ्यां भये, समुत्पन्ने=सञ्जाते, राजा=भवान्, प्रियसखबलम्=प्रियस्य=प्रेमपात्रस्य सख्युः=मित्रस्य बलम्=शक्तिम्, वेत्तु=जानातु । शिखरिणी छन्दः ॥ ४५ ॥

अन्वयः—यावत्, अहम्, धृतायुधः, (अस्मि), तावत्, अन्यैः, आयुधैः, किम् ? मम, अस्त्रेण, यत्, न, मिद्धम्, तत्, केन, सेत्स्यति ॥ ४६ ॥

शब्दार्थः—यावत्=जब तक, अहम्=मैं, धृतायुधः=अस्त्र धारण किये हुए, (अस्मि=हूँ),

अश्वत्थामा—अरे ! आप जैसे (वीर) लोगों का धारण किया गया मी अस्त्र, (गुरु के शाप से) निष्फल होने के कारण सर्वदा के लिये परित्यक्त—(जैसा) ही है ।

कर्ण—अरे महामूर्ख,

जब तक मैं अस्त्र धारण किये हुए (हूँ) तब तक दूनरे आयुधों से क्या (प्रयोजन) ? मेरे अस्त्र से जो नहीं सिद्ध हुआ, वह किसके द्वारा सिद्ध किया जायगा ? (अर्थात् वह किसी के द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता है) ॥ ४६ ॥

(पदों के पीछे)

आह ! दुष्ट, द्रौपदी के केश एवं वस्त्र को खींचने का महापाप करने वाले, धृतराष्ट्र के नीच पुत्र, बहुत दिनों के बाद मेरे सामने आये हो । हे क्षुद्र पशु, अब (बच कर) कहाँ जाओगे ? और मी, हे हे पाण्डवों से द्वेष करनेवाले, धनुर्धारी, मान को ही धन समझने वाले, कर्ण, दुर्योधन तथा सीवल (शकुनी) आदि आप लोग सुनें—

जिस मानव-पशु के द्वारा बाल पकड़ कर पाञ्चालराज (द्रुपद) को पुत्री (द्रौपदी) खींची गई थी, राजाओं एवं बड़े वूढ़ों के सामने इस (द्रौपदी) का वस्त्र भी जिसके द्वारा खींचा गया था, जिसके वक्षःस्थल के रक्तरूपी मदिरा को पीने की मंने प्रतिज्ञा की थी, वही यह (दुःशासन) मेरो भुजाओं के पिंजड़े में (अब) आ फँसा है, हे कौरवों (आप लोगों के द्वारा अब यह), बचाया जाय ॥ ४७ ॥

(सभी सुनते हैं)

तावत्=तब तक, अन्यैः=दूसरे, आयुधैः=आयुधों से, किम्=क्या (प्रयोजन) ?, मम=मेरे, अस्त्रेण=अस्त्र से, यत्=जो, न=नहीं, सिद्धम्=सिद्ध हुआ, तत्=वह, केन=किस के द्वारा, सेत्स्यति=सिद्ध किया जायगा ? ॥ ४६ ॥

धृतायुध इति । यावत्=यावत्कालपर्यन्तम्, अहम्=शूरः कर्णः, धृतायुधः-धृत्म्=गृहीतम् आयुधम्=प्रहरणम् येन सः, अस्मीति क्रियाशेषः, तावत्=तावन्तं कालम्, अन्यैः=इतरैः, अन्य-गृहीतैरित्यर्थः, आयुधैः=प्रहरणैः, किम्=किम् प्रयोजनम् ? न किमपीति भावः । मम=कर्णस्य, अस्त्रेण=आयुधेन, यत्=यत् कर्म, न सिद्धम्=न सम्पन्नम्, तत्=तत् कर्म, केन=केन शूरेण, सेत्स्यति=सम्पन्नं भविष्यति ? न केनापि भविष्यतीति भावः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ४६ ॥

आः दुःशर्मसिति । द्रौपदीकेशाम्बराकर्षणमहापातकिन्—द्रौपद्याः=द्रुपदमुतायाः पाञ्चाल्याः केशाम्बराकर्षणैः=शिरोरुहशटिकाकर्षणैः, महापातकिन्=महान् पापी तत्समुद्धौ ॥

अन्वयः—येन, नृपशुना, शिरोरुहे, पाञ्चालराजात्मजा, कृष्टा; राशाम्, गुरुणाम्, (च), पुरः, अस्याः, परिधानम्, अपि, येन, अपहृतम्; यस्य, उरःस्थल-शोणितासवम्, पातुम्, अहम्, प्रति-शातवान्; सः, अयम्, मदनुजपञ्जरे, (सम्प्रति), निपतितः; हे कौरवाः, (युष्माभिः), संरक्ष्यताम् ॥ ४७ ॥

शब्दार्थः—येन=जिस, नृपशुना=मानव-पशु के द्वारा, शिरोरुहे=बाल पकड़ कर, पाञ्चाल-राजात्मजा=पाञ्चालराज (द्रुपद) की पुत्री, कृष्टा=खींची गई थी; राशाम्=राजाओं के, गुरुणाम्=बड़े-वूढ़ों के, (च=मी), पुरः=सामने, अस्याः=इस (द्रौपदी) का, परिधानम्=वस्त्र, अपि

अश्वत्थामा—(सोढ्यासम्) अङ्गराज, सेनापते, जामदग्न्यशिर्य, द्रोणोपहासिन्, भुजबलपरिरक्षितसकललोक, ('धृतायुधः' इति पठित्वा) इदं तदासनन्तरमेव संवृत्तम् । रक्षेनं सांप्रतं भीमाद् दुःशासनम् ।

कर्णः—आः, का शक्तिर्वृकोदरस्य मयि जीवति दुःशासनस्य छायाभ्याक्रान्तिम् । युवराज, न भेतव्यं न भेतव्यम् । अयमहमागतोऽस्मि । (इति निष्क्रान्तः) ।

अश्वत्थामा—राजन्, कौरवनाथ, अभीष्मद्रोणं संप्रति कौरवबलमालोडयन्तौ भीमार्जुनौ राधेयेनैव विधेनान्येन वा न शक्येते निवारयितुम् । अतः स्वयमेव आतुः प्रतीकारपरो भवः ।

दुर्योधनः—आः, का शक्तिरस्ति दुरात्मनः पवनतनयस्यान्यस्य वा मयि जीवति शस्त्रपाणौ वत्सस्य छायाभ्याक्रान्तिम् । वत्स, न भेतव्यं न भेतव्यम् । कः कोऽत्र भोः श्यमुपनय । (इति निष्क्रान्तः) ।

(नेपथ्ये कञ्जकलः)

अश्वत्थामा—(अग्रतोऽवलोक्य) मातुल, हा धिक्कष्टम् । एष खलु आतुः प्रतिज्ञा-भङ्गभीरु किरीटी समं दुर्योधनराधेयौ शरवर्षैर्दुर्वारैरभिद्रवति । सर्वथा पीतं दुःशासन-शोणितं भीमेन । न खलु विषहे दुर्योधनानुजस्यैनां विपत्तिमवलोकयितुम् । अनृत-मनुमतं नाम । मातुल, शस्त्र शस्त्रम् ।

सत्यादप्यनृतं श्रेयो धिक्स्वर्गं नरकोऽस्तु मे ।

भीमाद् दुःशासनं त्रातुं त्यक्तमत्यक्तमायुधम् ॥४८॥

(इति खड्गं ग्रहीतुमिच्छति)

(नेपथ्ये)

महात्मन् भारद्वाजसूनु, न खलु सत्यवचनमनुलङ्घितपूर्वमुलङ्घयितुमर्हसि ।

कृपः—वत्स, अशरीरिणी भारती भवन्तमनृतादभिरक्षति ।

अश्वत्थामा—कथमियममालुषी चाग्नानुमुते सङ्ग्रामावतरणं मम । भोः कष्टम् । आः, पक्षपातिनो देवा अपि पाण्डवानाम् । सर्वथा पीतं दुःशासनशोणितं भीमेन । भोः कष्टं कष्टम् ।

=भी, येन = जिसके द्वारा, अपहृतम् = खींचा गया था, यस्य = जिसके, उरःस्थलशोणितासवम् = वक्षःस्थल के रक्तरूपी मदिरा को, पातुम् = पीने की, अहम् = मैंने, प्रतिशतत्रान् = प्रतिशत की थी; सः = वही, अयम् = यह, मदसु नृपजरे = मेरी मुजाओं के पिंजड़े में, (सम्प्रति = अब), निपतितः = आ फँसा है; हे कौरवाः = हे कौरवों, (युष्माभिः = आप लोगों के द्वारा), संरक्षयताम् = बचाया जाय ॥ ४७ ॥

कृष्टा येनेति । येन नृपशुना—ना = पुरुषः पशुः = चतुष्पाद इव नृपशुः तेन, नृपशुना = वान-रेण वा, शिरारुहे = केशावच्छेदेन, अत्र अवच्छेदाद्यं सप्तमी, केशं गृहीत्वेत्यर्थः, पाञ्चालराजात्मजा—

अश्वत्थामा—(व्यंग्यपूर्वक) अङ्गराज, सेनानायक, परशुराम के शिष्य, द्रोण का मजाक उड़ानेवाले, (अपनी) भुजाओं से सम्पूर्ण संसार की रक्षा करनेवाले, ('धृतायुध' ३।४६ इस श्लोक को पढ़ कर) यह तो अतिशय ही आ उपस्थित, हो गया। अब भीम से दुःशासन को बचाओ।

कर्ण—आह ! मेरे जीते जी भीम को क्या शक्ति है जो कि (वे) दुःशासन की परछाईं भी देख सके। युधामाज्यन्त, डरने की आवश्यकता नहीं, डरने की आवश्यकता नहीं। यह मैं आ ही गया हूँ। (ऐसा कह कर निकल गया)।

अश्वत्थामा—राजन्, कुशराज, सम्प्रति भीम एवं द्रोण से रहित कौरव-सेना को मयवे हुए भीम और अर्जुन, कर्ण अथवा इस तरह के किसी दूसरे के द्वारा रोक नहीं जा सकते। अतः (आप) स्वयं ही (अपने) भाई की रक्षा में संलग्न होइए।

दुर्योधन—आह ! दुष्ट वायुपुत्र (भीम) की अथवा किसी दूसरे की क्या शक्ति है जो हाथ में शस्त्र धारण किये हुए मेरे जीते जी वत्स (दुःशासन) की छाया का भी अतिक्रमण कर सके। वत्स, डरना नहीं, डरना नहीं। कौन, कौन (है) यहाँ जी ! रथ लाओ। (ऐसा कह कर निकल गया)

(पदों के पीछे कोलाहल)

अश्वत्थामा—(सामने की ओर देख कर) मामा, हाथ धिक्कार है ! कष्ट है ! भाई (भीम) की प्रतिष्ठा के भङ्ग होने की आशङ्का से युक्त यह अर्जुन अमोघ बाणों की वर्षा से एक साथ ही दुर्योधन और कर्ण पर झपट कर आक्रमण कर रहा है। निश्चय ही भीम अब दुःशासन का रक्त पान कर लेगा। दुर्योधन के लघु भ्राता (दुःशासन) के इस दुःख को (मैं) नहीं देख सकता। झूठ स्वीकार है। मामा, शस्त्र, शस्त्र (दो)।

सत्य से भी असत्य अच्छा (है) ; स्वर्ग को धिक्कार है ; (मुझे मले ही) नरक मिले ; (किन्तु) भीम से दुःशासन को बचाने के लिए छोड़ा गया अस्त्र न छोड़ा गया (जैसा ही हो) ॥ ४८ ॥

(ऐसा कह कर तलवार उठा लेना चाहता है)

(पदों के पीछे)

महात्मन्, भारद्वाज-पुत्र, (आपको) पहले कभी न उल्लंघन किये गये सत्यवचन का उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

कृप—वत्स, अशरीरी (अदृश्य) बाणों आप को झूठ से बचा रही है।

अश्वत्थामा—क्या यह देव-बाणों मुझे युद्ध में उतरने की अनुमति नहीं दे रही है ! आह ! कष्ट है ! ओह ! देवता भी पाण्डवों के पक्षपाती हैं। निश्चय ही पी लिया दुःशासन के रक्त को भीम ने। आह ! कष्ट (है), कष्ट (है)।

पाञ्चालराजस्य=द्रुपदस्य आत्मजा=पुत्री, द्रौपदीत्यर्थः; दृष्टा=आकृष्टा, क्वचित्सृष्टेति पाठः; राक्षसम्=नानादिग्देशादागत्योपस्थितानां भूपालानाम्, गुरुणाम्=बृहदानां पूज्यानाञ्च, पुरः=समक्षम्, अस्याः=द्रौपद्याः, परिधानम्=वस्त्रम्, अपि=च, येन अपहृतम्=आकृतम्, यस्य उरःस्थलशोणितासवम्—उरःस्थलस्य=वक्षःस्थलस्य शोणितम्=रक्तम् एव आसवः=मयम् तम्, पातुम्=पानं कर्तुम्,

दुःशासनस्य रुधिरं पीयमानेऽप्युदासितम् ।

दुर्योधनस्य कर्तास्मि किमन्यत्प्रियमाहवे ॥४९॥ २

मातुल, राधेयक्रोधवशादनार्यमस्माभिराचरितम् । अतस्त्वमपि तावदस्य राज्ञः
पाश्वर्तवर्ती भव ।

कृपः—गच्छाम्यहमत्र प्रतिविधातुम् । भवानपि शिविरसंनिवेशमेव प्रतिष्ठताम् ।

(परिक्रम्य निष्क्रान्तौ)

ॐ इति तृतीयोऽङ्कः ॐ

अहम्=मीमः, प्रतिज्ञातवान्=प्रतिज्ञां कृतवान्, सः अयम्=एषः दुःशासन इत्यर्थः, मदभुजपञ्जरे—
मम भुजौ=बाहू एव पञ्जरम्=लौहजालकं तत्र, बाहुमध्ये इत्यर्थः, सम्प्रतीति शेषः, निपतितः=
आगतः, हे कौरवाः=हे गुरुपुत्राः, तत्पक्षपातिनश्च, (युष्माभिः=भवद्भिः), संरक्ष्यताम्=परित्राय-
ताम् । यस्मिन् भवेच्छक्तिः स दुःशासनं मत्तः रक्षितुं मम पुरतः आगच्छत्विति भावः । शार्दूलविक्री-
डितं छन्दः ॥ ४७ ॥

अन्वयः—सत्यात्, अपि, अनृतम्, श्रेयः, (अस्ति); स्वर्गम्, धिक्, नरकः, अस्तु; भीमात्,
दुःशासनम्, त्रातुम्, त्यक्तम्, आयुधम्, अत्यक्तम्, (भवतु) ॥ ४८ ॥

शब्दार्थः—सत्यात्=सत्य से, अपि=भी, अनृतम्=असत्य, श्रेयः=अच्छा, (अस्ति=है);
स्वर्गम्=स्वर्ग को, धिक्=धिवक्कार है, नरकः=नरक, अस्तु=हो, मिले; भीमात्=भीम से, दुःशा-
सनम्=दुःशासन को, त्रातुम्=बचाने के लिये, त्यक्तम्=छोड़ा गया, आयुधम्=अस्त्र, अत्यक्तम्=
न छोड़ा गया, (भवतु=हो) ॥ ४८ ॥

सत्यादिति । सत्यात्=अवितथात्, अपि=च, अनृतम्=असत्यम्, श्रेयः=श्रेष्ठम्, अस्तीति
क्रियाशेषः । स्वर्गम्=देवलोकम्, धिक्=धिवक्कारः अस्तु । नरकः=यमपुरी, अस्तु=भवतु, मामिति
शेषः । सत्यवचनस्य परिणामभूतं स्वर्गं न कामये, असत्यवचनफलभूतं नरकमनुमतं नास्तीति भावः ।
भीमात्=वृकोदरात्, दुःशासनम्=दुर्योधनानुजम्, त्रातुम्=रक्षितुम्, त्यक्तम्=न्यस्तम्, आयुधम्
=अस्त्रम्, अत्यक्तम्=अपरित्यक्तम्, भवतु=अस्तु । दुःशासनं त्रातुं शस्त्रं ग्रहीतुमिच्छामीति
भावः । पथ्यावक्त्रं छन्दः ॥ ४८ ॥

अन्वयः—दुःशासनस्य, रुधिरं, पीयमाने, अपि, (यदि), मया, उदासितम्, (तर्हि), आहवे,
दुर्योधनस्य, अन्यत्, किम्, प्रियम्, कर्ता, अस्मि ॥ ४९ ॥

शब्दार्थः—दुःशासनस्य=दुःशासन के, रुधिरं=रक्त के, पीयमाने=पिये जाने पर, अपि=भी,
(यदि=यदि), मया=मेरे द्वारा, उदासितम्=तटस्थ रहा गया, (तर्हि=तो), आहवे=युद्ध में,
दुर्योधनस्य=दुर्योधन के, अन्यत्=दूसरे, किम्=किस, प्रियम्=प्रिय को, कर्ता=सम्पादित करने
वाला, अस्मि=होऊँगा ? ॥ ४९ ॥

दुःशासन के रक्त के पिये जाने पर भी (यदि) मेरे द्वारा तटस्थ रखा गया (तो) युद्ध में दुर्योधन के किस प्रिय को सम्पादित करने वाला होऊँगा ? ॥ ४९ ॥

मामा, कर्ण के ऊपर क्रोध होने से (अस्त्र छोड़ने के कारण दुःशासन की रक्षा न कर) हमने अनुचित किया है । अतः, आप ही भला इस राजा की सहायता करें ।

कृप—जा रहा हूँ मैं इसका प्रतिकार करने । आप भी शिविर-स्थान को ही जाइये ।

(धूम कर दोनों निकल गये)

॥ तृतीय अङ्क समाप्त ॥

दुःशासनस्येति । दुःशासनस्य = दुर्योधनानुजस्य, रुधिरं = रक्ते, पीयमाने = पानकाले, अपि, यदीति शेषः, मया = दुर्योधनपक्षावलम्बिता अश्वत्थाम्ना, उदासितम् = ताटस्थ्यमवलम्बितम्, (तर्हि = तदा), आवहे = युद्धे, दुर्योधनस्य = कुरुराजस्य, स्वाश्रयदातुरित्यर्थः, अन्यत् = इतरत्, किम् = कीदृशमित्यर्थः, प्रियम् = अमीष्टम्, कर्ता = सम्पादयिता, अस्मि = मविष्यामीत्यर्थः । विपत्तौ यदि साहाय्यं न करोमि तदा कदा मे उपयोगो भविष्यतीति प्रश्नाभिप्रायः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ४९ ॥

मातुलेति । अनार्यम् = अनुचितम् । पार्श्ववर्ती = सहायकः ॥

कृप इति । अत्र = अस्मिन् विषये, प्रतिविधातुम् = प्रतिकर्तुम् ॥

॥ इति श्रीरमाशङ्करत्रिपाठिकृतायां वेणीसंहार-
व्याख्यायां रमाख्यायां तृतीयोऽङ्कः ॥

चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति प्रहारमूर्च्छितं रथस्थं दुर्योधनमपहरन् सुतः)

(सुतः ससंभ्रमं परिक्रामति)

(नेपथ्ये)

भो भो बाहुबलावलेपप्रवर्तितमहासमरदोहदाः, कौरवपक्षपातपणीकृतप्राणद्रविण-
संचया नरपतयः, संस्तभ्यन्तां संस्तभ्यन्तां निहतदुःशासनपीतावशेषशोणितस्नपित-
बीमस्सवेपवृकोदरदर्शन मयपरिस्खलप्रहरणानि रणात्प्रवृण्वन्ति बलानि ।

सुतः--(विलोच्य) कथमेष धवलचपलचामरन्तुस्वितकनककण्डलुना शिखराव-
बद्धवैजयन्तीसूचितेन हतगजवाजिनरकलेवरसहस्रसमर्द्धविषमौद्घातकृतकलकलकिङ्कि-
णीजालमालिना रथेन शरवर्षस्तस्मिन्तपरवल्परक्रमप्रसरः प्रहुतमात्मबलमाद्वासयन्कृपः
किरीटिनाभियुक्तमङ्गराजमनुसरति । हन्त, जातमस्मद्बलानामवलम्बनम् ।

(नेपथ्ये कलकलानन्तरम्)

भो भोः अस्मद्दर्शनमयस्खलितकार्मुककृपाणतोभरशक्तयः कौरवचमूयः,
पाण्डवपक्षपातिनश्च योधाः, न भेतव्यं न भेतव्यम् । अयमहं निहतदुःशासनपीव-
रोरःस्थलक्षतजासवपानमदोद्धतो रभसगामी स्तोकावशिष्टप्रतिज्ञामहोत्सवः कौरव-
राजस्य द्यूतनिर्जितो दासः पार्थमध्यमो भीमसेनः सर्वान्भवतः साक्षीकरोमि । श्रूयताम् ।

भो भो इति । बाहुबलावलेपप्रवर्तितमहासमरदोहदाः—बाहुबलस्य = भुजशक्तः अवलेपेन =
अभिमानेन ('अवलेपः स्मृतो गर्वः' इति विश्वः) प्रवर्तितः = आरब्धः यो महासमरस्य = महायुद्धस्य
दोहदः = आकांक्षा ('दोहदम् इच्छाकांक्षा' इत्यमरः) यैस्ते तत्सम्बोधने, कौरवपक्षपातपणीकृतप्राण-
द्रविणसञ्चयाः—कौरवाणाम् = दुर्योधनादीनाम् पक्षपातेन = पक्षावलम्बनेन पणीकृतः = मृत्युकृतः
प्राणाः = असवः एव द्रविणसञ्चयः = धनाराशिः यैस्ते तत्सम्बोधने, नरपतयः = राजानः, संस्तभ्यन्ताम् =
स्थिरीक्रियन्ताम्, निहतदुःशासनेत्यादिः—निहतः = धातितः यो दुःशासनः तस्य पीतावशेषम् =
पानेन अवशिष्टम् यत् शोणितम् = रक्तम् तेन स्नपितः = कृतस्नानः अत एव बीमस्सवेपः = भयानकाकृतिः
यः वृकोदरः = भीमः तस्य दर्शनेन = अवलोकनेन यद्ग्रथम् = मीतिः तेन परिस्खलन्ति = पतन्ति प्रहर-
णानि = अस्त्राणि येषां तानि, बलानि = सैन्यानि ॥

चतुर्थ अङ्क

(तदनन्तर प्रहार से मृच्छित, रथ में पड़े हुये दुर्योधन को युद्ध-स्थल से बाहर ले जाते हुये सारथी प्रवेश करता है)

(सारथी बबड़ाहट के साथ धूमता है)

(पदों के पीछे)

बाहुबल के अभिमान से महायुद्ध की प्रबल कामना करने वाले, कौरवों के प्रति पक्षपात के कारण प्राणरूपी धन-राशि को दाँव पर लगा देने वाले, हे हे राजाओं ! मारे गये दुःशासन के, पीने से अवशिष्ट रक्त से स्नान किये हुये (अतः) भयानक वेप वाले भीम के दर्शन से (उत्पन्न) मय के कारण शस्त्र गिरा देने वाली, युद्ध से मागती हुई सेनाओं को रोको, रोको ।

सूत—(देख कर) श्वेत चञ्चल चामर से लुपे गये सुवर्ण के कलश वाले, चोटी पर बैठी हुई पताका से शात होने वाले, मारे गये हाथियों, घोड़ों तथा मनुष्यों के हजारों शत्रुओं की अधिकता से ऊँची-नीची भूमि पर उछलने से झन-झनाने वाली छोटी-छोटी वंदियों के समूह की माला वाले रथ से बाणों की बौछार के द्वारा शत्रु-सेना के पराक्रम की वृद्धि को रोकने वाले, अपनी मागती हुई सेना को सान्त्वना प्रदान करते हुये, क्या यह कृपाचार्य अर्जुन द्वारा धर दबोचे गये (अक्रमण किये गये), कर्ण की ओर बढ़ रहे हैं ? बाह ! (अब) हमारी सेना को सहारा हो गया ।

(पदों के पीछे कोलाहल के बाद)

हमारे दिखलाई पड़ने से (उत्पन्न) मय के मारे गिरते हुए धनुष, तलवार, तोमर तथा शक्ति वाले, हे हे कौरव सेना के सुभटों तथा पाण्डवों के पक्षपाती योद्धाओं ! डरने की आवश्यकता नहीं, डरने की आवश्यकता नहीं । यह मैं मारे गये दुःशासन के मोटे वक्षःस्थल के फाड़ने से निःसृत रक्त रूपी मदिरा के पान से मतवाला, बेग से चलने वाला, स्वल्प ही अवशिष्ट प्रतिष्ठा रूपी महोत्सव-वाला, कौरवराज (दुर्योधन) का जुआ में जाता गया दास, मझला पाण्डव, भीमसेन आप सबको साक्षी कर रहा हूँ । सुनिधे—

विशेष—स्तोकावशिष्ट—भीमसेन ने प्रतिष्ठा की यो—दुःशासन को मार कर उसके वक्षःस्थल का रक्त—द्रौपदी के केशों में लगाऊँगा । दुःशासन को तो मार लिया है । अब उसके रक्त से द्रौपदी के बालों को सवारना बाकी है । यही है प्रतिष्ठा का बोझ-सा अवशिष्ट रह जाना ।

कृप इति । धवलचपलचामरचुम्बितकनककण्डलुना-धवलैः=श्वेतैः चपलैश्च=चञ्चलैश्च चामरैः=प्रकीर्णकैः ('प्रकीर्णकन्तु चामरम्' इत्यमरः) चुम्बिताः=स्पृष्टाः कनकस्य=सुवर्णस्य कण्डलवः=कलशाः यत्र तेन, शिखरावबद्धैजयन्तीमुचितेन—शिखरे=अग्रे, ऊर्ध्वभागे, अवबद्धा=संलग्ना

राज्ञो मानधनस्य कार्मुकभृतो दुर्योधनस्याग्रतः
प्रत्यक्षं कुरुबान्धवस्य मृपतः कर्णस्य शल्यस्य च ।
पीतं तस्य मयाद्य पाण्डववधूकेशाम्बराकर्षिणः
कोष्णं जीवत एव तीक्ष्णकरजक्षुष्णादसृग्वक्षसः ॥ १ ॥

सूतः—(श्रुत्वा समयम्) अये आलस्य एव दुरात्मा कौरवराजपुत्रमहावनोत्पातमारुते मारुतिः । अनुपलब्धसञ्ज्ञश्च तावदत्र महाराजः । भवतु । सुदूरमपहरामि स्यन्दनम् । कदाचिद्दुःशासन इवास्मिन्नप्ययमनार्योऽनार्यसाचरिष्यति । (त्वरिततरं परिगम्यावलोक्य च) अये, अयमसौ सरसीसरोजविलोलनतुरभिशीतलमातरिश्चसंवाहितसान्द्रकिसलयो न्यग्रोधपादपः । उचिता विश्रामभूरियं समरव्यापारखिन्नस्य वीरजनस्य । अत्र स्थितश्चायाचिततालवृन्तेन हरिचन्दनच्छटाशीतलेनाप्रयत्नशुरभिणा दशापरिणामयोग्येन सरसीसमीरणेनाभुना गतकलमो भविष्यति महाराजः । ललकेतुश्चायं रथोऽनिवारित एव प्रवेक्ष्यति छायाम् । (इति प्रवेशं रूपयित्वा) कः कोऽत्र भोः । (समन्तादवलोक्य) कथं न कश्चिदत्र परिजनः । नूनं तथाविधस्य वृकोदरस्य दर्शनादेवंविधस्य च स्वामिनस्त्रासेन शिविरसनिवेशमेव प्रविष्टः । कष्टं भोः, कष्टम् ।

वेज्यन्तो = पताका तथा सूचितेन = शानेन, हतयजेत्यादिः—हतानाम् = घातितानाम् गजवाजिनराणाम् = द्विपाश्वमानवानाम् कलेवरसहस्रस्य = शरीरसहस्रस्य संपर्देन = संघट्टेन, समूहेनेत्यर्थः, विपमे = उन्नतावनते प्रदेशे उत्खातेषु = उच्छ्वलनेषु कृतकलकलम् = झणझणायमानम् यत् किङ्किणीनाम् = क्षुद्रघण्टिकानाम् जालम् = समवायः तस्य माला = अवलिः अस्यास्तीति तस्माभूतेन, रथेन = स्यन्दनेन, शरवर्षस्तमितपरवलपराक्रमप्रसरः—शरवर्षेण = बाणवृष्ट्या स्तमितः = अवरुद्धः परवलस्य = शत्रुसैन्यस्य पराक्रमप्रसरः = पराक्रमवृद्धिः येन सः । हन्तेति हर्षेऽव्ययम् ॥

ओ ओ इति । अस्मद्दर्शनभयस्थूलितकार्मुककृपाणतोमरशक्त्यः—अस्मद्दर्शनेन = मम साक्षात्कारेण यत् भयम् = भीतिः तेन स्थलिताः = हस्तात्प्रस्ताः कार्मुककृपाणतोमरशक्त्यः = कोदण्डखड्गतोमरशक्तयः येषां ते तत्सम्बोधने, कौरवचमूभटाः—कौरवचमू = कौरवसेना तस्याः भटाः = योद्धारः तत्सम्बोधने । निहतदुःशासनेत्यादिः—निहतः = मारितः यो दुःशासनः तस्य पीवरम् = स्थूलम् यत् उरस्थलम् = वक्षःस्थलम् तस्य क्षतजमेव = क्षतात् जातं रक्तमेव आसवः = मधुम् तस्य पानेन यो मदः = मत्ता तेन उद्धतः = उद्धण्डः, रभसगामो = रभसेन गच्छन्, स्तोकावशिष्टेत्यादिः—स्तोकम् = स्वल्प अवशिष्टः प्रतिज्ञामहोत्सवः = प्रणानन्दः यस्य सः तादृशः ॥

अन्वयः—राज्ञः, मानधनस्य, कार्मुकभृतः, दुर्योधनस्य, अग्रतः, कुरुबान्धवस्य, मृपतः, कर्णस्य च, शल्यस्य, प्रत्यक्षम्, पाण्डववधूकेशाम्बराकर्षिणः, जीवतः, एव, तस्य, तीक्ष्णकरजक्षुष्णात्, वक्षसः कोष्णम्, अद्यक्, अद्य, मया, पीतम् ॥ १ ॥

शब्दार्थः—राज्ञः = राजा, मानधनस्य = स्वामिमान को ही धन समझने वाले, कार्मुकभृतः = धनुर्धारी, दुर्योधनस्य = (मोषण युद्ध करने वाले) दुर्योधन के, अग्रतः = सामने, कुरुबान्धवस्य =

राजा, स्वामिमान को ही धन समझने वाले, धनुर्धारी (भीषण युद्ध करने वाले) दुर्योधन के सामने, कौरवों के हितकर्ता, सहन करते हुए कर्ण और शल्य के समझ पांडवों की पत्नी (द्रौपदी) के केश एवं वस्त्र को खींचने वाले, जीते जी ही उस (दुःशान) के, तीखे नाखूनों से फाड़े गये, वक्षःस्थल से किञ्चित् गरम रक्त आज मेरे द्वारा पीलिया गया ॥१॥

विशेष—राज्ञः...दुर्योधनस्य—दुर्योधन के लिये, भीम के द्वारा प्रयुक्त, ये विशेषण-पद अपना एक विशेष अर्थ रखते हैं। इन पदों के वे ही अर्थ प्रधानतया यहाँ अमोघ भी हैं। राज्ञः—राजा का अर्थ है 'पूर्ण प्रभुतासम्पन्न' किन्तु यहाँ इसका अर्थ है 'प्रभुताविहीन'। मानधनस्य—'मानधन' का अर्थ है 'स्वामिमान को ही अपना धन समझने वाला' 'मान के लिये मर मिटनेवाला' किन्तु यहाँ इसका अर्थ है 'स्वामिमानघृण्य'। कामुकमृतः—'कामुकमृत' का अर्थ है 'सार्थक धनुष धारण करनेवाला' किन्तु यहाँ इसका अर्थ है, 'निरर्थक धनुर्धारी'। दुर्योधनस्य—'दुर्योधन' का अर्थ है—'भीषण संग्राम करनेवाला' किन्तु यहाँ इसका अर्थ है 'युद्ध से भयभीत'। कुरुबान्धवस्य—'कुरुबान्धव' का अर्थ है 'कौरवों के हितकर्ता' किन्तु यहाँ इसका अर्थ है—'कौरवों के दिखावटी हितकर्ता'। यदि ऐसी बात न होनी तो वे मर मिटे होते दुःशासन को बचाने के लिये। मृषतः—'मृष' का अर्थ है 'सहन करने वाला' किन्तु यहाँ इसका अर्थ है—'असहाय' 'असमर्थ' ॥१॥

सूतः—(सुनकर भयपूर्वक) अरे ! कौरव-राजकुमार-समूह रूप महावन के लिये प्रलम्बकाष्ठान वायु, दुष्टस्वभाववाला, (यह) वायु-पुत्र (भीम) पास में ही (आ गया) है। और अभी तक पृथ्व महाराज वेहोश पड़े हुए हैं। अच्छा, रथ को (यहाँ से) काफी दूर हटा ले चलता हूँ। शायद यह दुष्ट, दुःशासन की ही तरह, इन पर भी क्रूरता का आचरण कर डाले। (अतिशीघ्रता से घूम कर और देख कर) वाह ! यहाँ (सामने) जलाशयों के कमलों को छूने से सुगन्धित और जीतल वायु के द्वारा हिलाये जा रहे हैं सवन पत्र जिसके ऐसा यह वट का वृक्ष है। युद्ध-व्यापार से श्रान्त वीरजन के लिये यह उचित विश्रामस्थल (है)। यहाँ स्थित महाराज (दुर्योधन) स्वयं प्राप्त पंखे के सदृश, मलय चन्दन की राशि के समान शीतल, बिना परिश्रम के ही सुगन्धित, (महाराज की सूँछित) अवस्था को बदलने में समर्थ इस जलाशय के (संपर्क से ठण्डी) वायु से व्यापित-विहीन (अर्थात् स्वस्थ) हो जायेंगे। यह रथ छिन्न ध्वजा-दण्ड वाला है, अतः बिना बाधा के ही छाया के भीतर चला जायगा। (ऐसा कह कर, प्रवेश का अभिनय करके) अरे ! कौन, कौन, यहाँ (है) ? (चारों तरफ देख कर) क्या यहाँ कोई सेवक नहीं है ? निश्चय ही उस तरह (रक्त में स्नान किये हुये) भीम तथा इस अवस्था में पड़े हुये महाराज को देखकर डर के मारे शिविर स्थान में ही पूरा वर्ग-चला गया। दुःख है, ओह ! दुःख है।

कौरवों के हितकर्ता, मृषतः=सहन करते हुये, कर्णस्य=कर्ण के, च=तथा, शल्यस्य=शल्य के, प्रत्यक्षम्=समक्ष, पाण्डववधूकेशाम्बराकर्षिणः=पाण्डवों की पत्नी (द्रौपदी) के केश एवं वस्त्र को खींचनेवाले, जीवतः=जीतेजी, एव=ही, तस्य=उसके, तीक्ष्णकरजल्लुष्पात्=तीखे नाखूनों से फाड़े गये, वक्षसः=वक्षःस्थल से, कोष्णम्=किञ्चित् गरम, अचक्=रक्त, अद्य=आज, मया=मेरे द्वारा, पीतम्=पी लिया गया ॥१॥

दत्त्वा द्रोणेन पार्थादभयमपि न संरक्षितः सिन्धुराजः
 क्रूरं दुःशासनेऽस्मिन्हरिण इव कृतं भीमसेनेन कर्म ।
 दुःसाध्यामप्यरीणां लघुमिव समरे पूरयित्वा प्रतिज्ञां
 नाहं मन्ये सकामं कुरुकुलविमुखं दैवमेतावतापि ॥ २ ॥

(राजानमवलोक्य) कथमद्यापि न चेतनां लभते अहाराजः । भोः कष्टम् । (निःश्वस्य)

मदकलितकरेणुभज्यमाने विपिनं इव प्रकटकशालशेषे ।

हृतसकलकुमारके कुलेऽस्मिंस्त्वमपि विधेरवलोकितः कटाक्षैः ॥ ३ ॥

राज्ञो मानधनस्येति । राज्ञः = भूपालस्य, सर्वं कर्तुं समर्थस्येत्यर्थः, अनेन तस्य प्रभुताहीनता सूचिता, मानधनस्य—मानम् = स्वाभिमानम् एव धनम् = सम्पत्तिः यस्य तस्य, स्वाभिमानिनः इत्यर्थः, अनेन तस्य अभिमानविहीनता निर्दिष्टा, कार्मुकभृतः = धनुर्धारिणः, अनेन सायुधस्यापि तस्य अकिञ्चित्करत्वं ध्वनितम्, दुर्योधनस्य—दुःखेन योधयतीति तस्य, युद्धे भीषणस्येत्यर्थः, निरर्थकसंश्लेषेति यावत्, अग्रतः = समक्षम्, कुरुवान्धवस्य—कुरूणां वान्धवस्य = हितकर्तुः, कृत्रिमहितकर्तुरिति ध्वनिः, अन्यथा प्राणत्यागेनापि रक्षा स्यात्, मृततः = सहिष्णोः किञ्चित्कर्तुमसमर्थस्येति भावः, कर्णस्य = राधेयस्य, च = तथा, शल्यस्य प्रत्यक्षम् = समक्षम्, पाण्डवयधूकेशाम्बराकपिणः—पाण्डवानाम् = पाण्डुपुत्राणाम् वधूः = पत्नी तस्याः केशानाम् = बालानाम् श्रमवरस्य = वस्त्रस्य च आकापिणः = आकर्षकस्य अनेन तस्य पापशीलता वधाहता च ध्वनिता, जीवतः = प्राणान् धारयतः, एव = च, अनेन तस्य अकिञ्चित्करता हिदिष्टा, तस्य = दुःशासनस्य, तीक्ष्णकरजक्षुष्णात्—तीक्ष्णैः करजैः = नखैः क्षुष्णात् = मित्रात् वक्षसः = उरस्तः, कोष्णम्—ईषदुष्णम्, अस्क् = रक्तम्, अथ = सम्प्रति, मया = भीमेन, पीतम् = पीतं कृतम् । अत्र प्रथमे चरणे परिकरालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ १ ॥

सूत इति । आसन्नः = समीपे वर्तमानः, कौरवराजपुत्रेत्यादिः—कौरवराजपुत्राः = धृतराष्ट्रस्य एव महावनम् = भीषणमरण्यम् तस्य उत्पातमारुतः = प्रलयवायुः, मारुतिः = वायुपुत्रः भीमः । अनुपलब्धसंशः—अनुपलब्धा = अप्राप्ता संज्ञा चेतना यस्य सः, विगतचेतनः इत्यर्थः । अनार्यः = दुष्टः, अनार्यम् = क्रूरताम् । सरसीसरोजेत्यादिः—सरसीनाम् = जलाशयानाम् यानि सरोजानि तेषां विलोलनेन = सञ्चलनेन सुरभिः = सुगन्धिः शीतलः = सुखस्पर्श इव यः मातरिश्वा = वायुः तेन संवाहितानि = आन्दोलितानि सान्द्राणि = निविडानि किसलयानि = नूतनपत्राणि यस्य सः, न्यग्रोधपादपः = वटवृक्षः । समरव्यापारखिन्नस्य—समरस्य = युद्धस्य व्यापारेण = कार्येण खिन्नस्य = श्रान्तस्य । अयाचिततालवृत्तेन—अयाचितम् = स्वयमुपरितम् यत् तालवृत्तम् = व्यजनम् तेन, अयाचिततालवृत्तं सङ्गृह्णेत्यर्थः, हरिचन्दनच्छटाशीतलस्य—हरिचन्दनस्य = श्रीखण्डस्य छटा = समूहः तद्वत् शीतलस्य = सुखदस्येत्यर्थः, दशापरिणामयोग्येन—दशायाः = अवस्थायाः परिणामः = विपाकः अवस्थान्तरं तदयोग्येन, गतकलमः = विगतव्ययः । लूनकेतुः—लूनः = छिन्नः केतुः = ध्वजदण्डः यस्य तादृशः ॥

अन्वयः—द्रोणेन, पार्थात्, अभयम्, दत्त्वा, अपि, सिन्धुराजः, न, संरक्षितः, भीमसेनेन, अस्मिन् दुःशासने, हरिणे, इव, क्रूरम्, कर्म, कृतम्, कुरुकुलविमुखम्, दैवम्, समरे, अरोषाम्, दुःसाध्याम्

द्रोण के द्वारा, अर्जुन से (बचाने का) अमय (बचन) देकर भी, जयद्रथ नहीं बचाया गया । भीमसेन के द्वारा इस दुःशासन पर, हरिण के ऊपर-जैसा, क्रूर आचरण किया गया । कुरुकुल से सुख मोड़े हुये दैव युद्ध में शत्रुओं की दुःसाध्य प्रतिज्ञा को भी, वृण की तरह, पूरी करा कर इतने से भी पूर्ण इच्छावाला (अर्थात् संतुष्ट) नहीं हुआ है—(पेता) मैं समझता हूँ ॥२॥

(राजा को देखकर) क्या अब भी महाराज होश में नहीं आ रहे हैं ? हाय ! कष्ट है । (आह भर कर)

मतवाले हाथियों के द्वारा उजाड़े जाते हुये, स्पष्टतः अवशिष्ट एक शाल (नामक वृक्ष) वाले जङ्गल की तरह, जिसके सभी कुमार मार डाले गये हैं ऐसे इस वंश में (अब) तुम भी विधाता के (क्रूर) कटाक्षों के द्वारा देख लिये गये हो ? ॥३॥

विशेष—कटाक्षैः—जब कोई किसी व्यक्ति को मारना चाहता है या उस पर क्रोध होता है तो वह उसे कटाक्षों—टेंडों आंखों—से देखता है । कञ्चुकी के कहने का भाव यह है कि अब सबके

प्रतिशाम्, आप, लघुन्, इव, पूरयित्वा, एतावता, आप, सकामम्, न, (इति), अहम्, मन्ये ॥२॥

शब्दार्थः—द्रोणेन=द्रोण के द्वारा, पार्थात्=अर्जुन से, अमयम्=अमय, दत्त्वा=देकर, अपि=भी, सिन्धुराजः=जयद्रथ, न=नहीं, संरक्षितः=बचाया गया, भीमसेनेन=भीमसेन के द्वारा, अस्मिन्=इस, दुःशासने=दुःशासन पर, हरिणे=हरिण के ऊपर, इव=जैसा, क्रूरम्=क्रूर, कर्म=आचरण, कृतम्=किया गया, कुरुकुलविमुखम्=कुरुकुल से सुख मोड़े हुये, दैवम्=दैव, समरे=युद्ध में, अरोणाम्=शत्रुओं की, दुःसाध्याम्=दुःसाध्य, प्रतिज्ञाम्=प्रतिज्ञा को, अपि=भी, लघुम्=वृण की, इव=तरह, पूरयित्वा=पूरी कराकर, एतावता=इतने से, अपि=भी, सकामम्=पूर्ण इच्छावाला, न=नहीं (हुआ है), (इति=पेना), अहम्=मैं, मन्ये=समझता हूँ ॥ २ ॥

दत्त्वेति । द्रोणेन=द्रोणाचार्येण, पार्थात्=पृथापुत्रात् अर्जुनात्, अमयम्=रक्षावचनमित्यर्थः, दत्त्वा=कवयित्वा, आप, सिन्धुराजः=जयद्रथः, न संरक्षितः=न त्रातः, भीमसेनेन=वृकोदरेण, अस्मिन्=एतस्मिन्, सद्यो वातिने इत्यर्थः, दुःशासने=दुर्धोवनातुजे, हरिणे=मृगे, इव=यथा, क्रूरम्=निर्दयम्, कर्म=कार्यम्, हननमिति यावत्, कृतम्=सम्पादितम्, कुरुकुलविमुखम्=कुरुकुलात्=कुरुवंशात् विमुखम्=विपरीतमित्यर्थः, दैवम्=भाग्यम्, समरे=युद्धे, अरोणाम्=शत्रूणां, दुःसाध्याम्=अतिकठिनानाम्, प्रतिज्ञाम्=प्रणम्, अपि च, लघुम्=वृणम् इव=यथा, पूरयित्वा=निष्पाद्य, एतावता=अद्यावधि निष्पादितेन अहितेनेत्यर्थः, अपि, सकामम्=संतुष्टम्, न=नास्ति, (इति=इत्यम्), अहम्, मन्ये=स्वीकरोमि, विचारयामीत्यर्थः । आप त्वपरमपि करिष्यतीति भावः । अत्रोपमालङ्कारः । सगंधा छन्दः ॥ २ ॥

अन्वयः—मदकलितकरेणुमज्यमाने, प्रकटैकशालशेपे, विपिने, इव, हतसकलकुमारके, अस्मिन्, कुले, त्वम्, अपि, विषे, कटाक्षैः, अवलोकितः, (अस्ति) ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—मदकलितकरेणुमज्यमाने=मतवाले हाथियों के द्वारा उजाड़े जाते हुये, प्रकटैकशाल-शेपे=स्पष्ट अवशिष्ट एक शाल (नामक वृक्ष) वाले, विपिने=जंगल की, इव=तरह, हतसकल-कुमारके=जिसके सभी कुमार मार डाले गये हैं ऐसे, अस्मिन्=इस, कुले=वंश में, त्वम्=तुम,

ननु भो हतविधे, भरतकुलविमुख,

अक्षतस्य गदापाणे रनारूढस्य संशयम् ।

एषापि भीमसेनस्य प्रतिज्ञा पूर्यते त्वया ॥ ४ ॥

दुर्योधन—(जनैरवलम्ब्यसंशः) आः, शक्तिरस्ति दुरात्मनो वृकोदरहतकस्य मयि जीवति दुर्योधने प्रतिज्ञां पूरयितुम् । वत्स दुःशासन, न भेतव्यं न भेतव्यम् । अयम् हमागतोऽस्मि । ननु सूत, प्रापय रथं तमेवोद्देशं यत्र वत्सो मे दुःशासनः ।

सूतः—आयुष्मन्, अक्षमाः संप्रति वाहास्ते रथमुद्बोद्धुम् । (अपवार्य) मनोरथं च ।

दुर्योधनः—(रथादवतीर्थं सगर्वं साकूतं च) कृतं स्थन्दनगमनकालातिपातेन ।

सूतः—(सर्वैलक्ष्यं सकरणं च) मर्षयतु मर्षयत्वायुष्मान् ।

दुर्योधनः—भिक् सूत किं रथेन केवलमरातिविमर्दस्य दृष्टं चारी दुर्योधनः खल्वहम् । तद्गदामात्रसहायः समरभुवमवतरामि ।

सूत—आयुष्मन्, एवमेतत् । कः सन्देहः ?

दुर्योधनः—यद्येवं किमेवं भाषसे । पश्य—

बालस्य मे प्रकृतिदुर्ललितस्य पापः

पापं व्यवस्यात् समक्षमुदायुधोऽसौ ।

अपि=भी, विधेः=विधाता के, कटाक्षैः=कटाक्षों से, अवलोकितः=देखे गये, (आस=हो) ॥३॥

मदकलितेति । मदकलितकरेणुभज्यमाने—मदेन=मत्ततया कलिताः=संबद्धाः ये करेणवः=हस्तिनः तैः भज्यमाने=संमृद्यमाने, प्रकटैकशालशेषे—प्रकटः=रफुटः एकः शालः=शङ्कुतरः (‘शालः शङ्कुतरमंतः’ इति विश्वः) वृक्षमात्रं वा शेषः=अवशिष्टः यत्र तादृशे, विधिने=वन, इव=यथा, हतसकलकुमारके—हताः=विनाशिताः सकलाः=समग्राः कुमारकाः=कुमाराः=यस्य तस्मिन्, अस्मिन्=एतस्मिन्, कुले=वशे, त्वम्=भवान्, अपि=च, विधेः=दैवस्य भागस्य वा, कटाक्षैः=भृकुटिभिः, अवलोकितः=दृष्टः, असीति क्रियाशेषः । अत्र पूर्णोपमालङ्कारः । पुष्पिताग्रा छन्दः । ३ ॥

अन्वयः—गदापाणः, अक्षतस्य, संशयम्, अनारूढस्य, भीमसेनस्य, एषा, अपि, प्रतिज्ञा, त्वया पूर्यते ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—गदापाणेः=हाथ में गदा धारण किये हुये, अक्षतस्य=विना घायल हुये, संशयम्=संशय में, अनारूढस्य=विना पड़े हुये, भीमसेनस्य=भीमसेन की, इषा=यह, अपि=भी, प्रतिज्ञा=प्रण, त्वया=तुम्हारे द्वारा, पूर्यते=पूरा कर दिया जा रहा है ॥ ४ ॥

अक्षतस्येति । गदापाणेः—गदा पाणी=हस्ते यस्य तादृशस्य, अक्षतस्य=प्रहारानभिहतस्य, संशयम्=संदेहम्, मम जयो भविष्यत्यस्य वेतिरूपं संशयम्, अनारूढस्य=अप्राप्तस्य, भीमसेनस्य=भीमस्य, एषा=इयम्, अपि, प्रतिज्ञा=प्रणः, त्वया=विधात्रा, पूर्यते=समप्रीक्रियते । भीमेन प्रतिज्ञातमासीत्—उहमङ्गं कृत्वा दुर्योधनं हनिष्यामीति महाभारतीयात्र कथाऽनुसन्धेया । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ४ ॥

वाद क्या आप को भी विधाता समाप्त करना चाहते हैं ? ॥३॥

हे भरत-कुल से मुख मोड़े हुए, अधम भाग्य !

हाथ में गदा धारण किये हुये, बिना घायल हुये, (तथा) संशय में बिना पड़े हुए (ही) भीमसेन का यह भी प्रण तुम्हारे द्वारा पूरा कर दिया जा रहा है ॥४॥

विशेष—अक्षयनश्य—यदि दुर्योधन एवं भीम का गदायुद्ध हुआ होता तो निश्चय ही भीम भी कुछ-न कुछ घायल होते । किन्तु अब तो दुर्योधन इसी तरह अर्जुन के बाणों से घायल होकर मर रहा है । अतः भीम को इनसे युद्ध कर घायल होने का भी अवसर न मिला ।

संशयम् अनाकुलस्य—महाभारत संग्राम में दो ही बार गदा-युद्ध के विशेषण ये—भीम और दुर्योधन । इन दोनों के युद्ध में यह संशय हो सकता था कि विजय-श्री किस का वरण करेगी ? किन्तु भीम को इस संशय में भी न पड़ना पड़ा ।

भीमसेनस्य प्रतिज्ञा—भीमसेन ने यह प्रतिज्ञा की थी कि—गदा से मार-मार कर दुर्योधन की उन जाँधों को तोड़ कर मार डालूँगा जिन पर वह द्रौपदी को नंगी करके बैठाना चाहता था । ४॥

दुर्योधन—(धीरे-धीरे चेतना प्राप्त कर) आह ! मूर्ख दुर्योधन के जीते जो दुष्ट भीमसेन की क्या शक्ति है (दुःशासन को मार कर अपनी) प्रतिज्ञा पूर्ण करने की ? वत्स दुःशासन, डरने की आवश्यकता नहीं । यह मैं आ ही गया हूँ । अरे, सारथि, मेरे रथ को उसी स्थान पर ले चलो, जहाँ मेरा वत्स दुःशासन है ।

विशेष—प्रतिज्ञां पूरयितुम्—यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि सूत जब पीछे के चतुर्थ श्लोक की दूसरी पंक्ति पढ़ रहा था, उसी समय दुर्योधन धीरे धीरे होश में आ रहा था । उसने सूत के द्वारा कथित श्लोक के उत्तरार्द्ध को सुना है । वह सूत के समूचे वक्तव्य से अपरिचित है । अतः वह सोचता है कि अभी दुःशासन मारा नहीं गया है, बल्कि भीम अब उसे मारने ही वाला है । अतः वह इस वक्तव्य को कह उठता है ।

सूत—चिरञ्जीविन्, संप्रति आप के घोड़े रथ को बहान करने (खींचने) में समर्थ नहीं हैं । (आड़ करके दूसरी ओर) मनोरथ को भी (पूरा करने में समर्थ नहीं हैं) ।

विशेष—अक्षमा बाहाः—सारथी ने यह कहकर दुर्योधन को युद्ध में जाने से रोकने के लिये एक बहाना मात्र किया है । क्योंकि वह जानता है कि दुःशासन मर चुका है और अब दुर्योधन के लिये खतरा खड़ा है ।

विशेष—(अपवादार्थ)—यह पाठ उचित नहीं प्रतीत होता । इस के स्थान पर (स्वगतम्) अधिक समीचीन पाठ होगा ।

दुर्योधन—(रथ से उतर कर गर्व एवं अभिप्राय के साथ) रथ से चलने के लिये समय गँवाना व्यर्थ है ।

सूत—(लज्जा और करुणा के साथ) क्षमा करें, क्षमा करें चिरञ्जीविन् !

दुर्योधन—धिक् सूत, रथ से क्या (होगा) ? मैं (वह) दुर्योधन हूँ (जो) एकमात्र शत्रुओं

अस्मिन्निवारयसि किं व्यवसायिनं मां

क्रोधो न नाम करुणा न च तेऽस्ति लज्जा ॥ ५ ॥

सूतः—(सकरुणं पादयोनिपत्य) एतद्विज्ञापयामि । आयुष्मन्, संपूर्णप्रतिज्ञेन निवृत्तेन भवितव्यमिदानीं दुरात्मना वृकोदरहतकेन । अत एवं ब्रवीमि ।

दुर्योधनः—(सहसा मूमौ पतन्) हा वत्स दुःशासन; हा मदाज्ञाविरोधितपाण्डव, हा विक्रमैकरस, हा मदङ्कदुर्ललित, हा अरातिकुलगजघटामृगेन्द्र, हा युवराज, ववासि । प्रयच्छ मे प्रतिवचनम् । (इति निःश्वस्य मोहमुगतः)

सूतः—राजन्, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

दुर्योधनः—(संज्ञां लब्ध्वा निःश्वस्य)

युक्तो यथेष्टमुपभोगमुखेषु नैव
त्वं लालितोऽपि हि मया न वृथाग्रजेन ।

अस्यास्तु वत्स तव हेतुरहं विपत्ते-

र्यत्कारितोऽस्यविनयं न च रक्षितोऽसि ॥ ६ ॥

दुर्योधन इति । अरातिविमर्दसंघट्टचारी—अरातीनाम्=शत्रूणाम् विमर्दः=नैरन्तर्येणावस्थानम् तेन संघट्टः=संघर्षणम् तेन तस्मिन् वा चरितुं शीलं यस्य तादृशः । गदामात्रसहायः=केवलां गदां गृहीत्वैतथ्यः ॥

अन्वयः—उदायुधः, असौ, पापः, मे, समक्षम्, प्रकृतिदुर्ललितस्य, बालस्य, पापम्, व्यवस्यति, अस्मिन्, व्यवसायिनम्, माम्, किम्, निवारयसि ? ते, क्रोधः, न, नापि, करुणा, च, न, लज्जा, अस्ति ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—उदायुधः=आयुध उठाये हुए, असौ=वह, पापः=पापी, मे=मेरे, समक्षम्=सामने, प्रकृतिदुर्ललितस्य=स्वभावतः कोमल, बालस्य=बालक पर, पापम्=दुष्कर्म, अत्याचार, व्यवस्यति=करेगा, अस्मिन्=इसके ऊपर, व्यवसायिनम्=उद्योग करने में तत्पर, माम्=मुझको, किम्=क्यों, निवारयसि=रोक रहे हो ? ते=तुझे, क्रोधः=क्रोध, न=नहीं (आ रहा है) ? नापि=न तो, करुणा=दया, च=तथा, न=न, लज्जा=शर्म, अस्ति=है ॥ ५ ॥

बालस्येति—उदायुधस्य—उद्=उदगतम् आयुधम्=प्रहरणम् यस्य सः, असौ=सः, पापः=पापकर्मा, मे=मम, समक्षम्=प्रत्यक्षम्, प्रकृतिदुर्ललितस्य—प्रकृत्या=स्वभावेन दुर्ललितस्य=कोमलस्य, स्नेहेन पालितस्येत्यर्थः, बालस्य=अप्रौढस्य, अनेन युद्धाप्रौढता निर्दिष्टा, पापम्=नाशरूपं पापकर्म, व्यवस्यति=विधास्यति, अस्मिन्=एतस्मिन् दुष्टे, व्यवसायिनम्=उद्योगतत्परम्, आक्रमितुमुद्यतमित्यर्थः, माम्=अग्रजं दुर्योधनमित्यर्थः, किम्=कस्मात्, निवारयसि=अवरुणसि, नामिति सम्भावनायाम्, ते=तव, क्रोधः=अत्याचारं वीक्ष्य क्रोधः, न=नोत्पद्यते ? करुणा=दया, च, न=नागच्छति ? च=तथा, न लज्जा=त्रपा, अस्ति=वर्तते ? वसन्ततिलका छन्दः । तल्लक्षणम्—उक्ता वसन्ततिलका तमजा जगौ गः ॥ ५ ॥

के समूह से टकरा कर चलने वाला (है) । अतः केवल गदा को ही लेकर युद्ध-भूमि में उतर रहा हूँ ।

सूत—चिरञ्जीविन्, यह ऐसा ही है (जैसा आप कह रहे हैं) ? इसमें क्या सन्देह ?

दुर्योधन—यदि ऐसा है, (तो) क्यों इस तरह कह रहे हो ? देखो—

आशुध उठाये हुये वः पापी (भीम) मेरे सामने स्वभावतः क्रोमल (उस) बालक पर अत्याचार करेगा; (ऐसी अवस्था में) इस (भीम) के ऊपर (आक्रमणरूप) उद्योग करने में तत्पर सुझावों को क्यों रोक रहे हो ? (क्या) तुझे क्रोध नहीं (आ रहा) है ? न तो करुणा और न लज्जा (ही) है ? १५॥

सूत—(करुणा के साथ चरणों पर गिर कर) यह निवेदन कर रहा हूँ—आशुधन्, दुष्ट एवं नीच वृकोदर अब तक प्रतिष्ठा पूरी करके निवृत्त हो चुका होगा ! यही कारण है कि (मैं ऐसा) कह रहा हूँ ।

दुर्योधन—(अकस्मात् पृथिवी पर गिरता हुआ) हा ! वत्स दुःशासन, हा ! मेरी आज्ञा से पाण्डवों के साथ विरोध करने वाले, हा ! पराक्रम में ही एकमात्र आनन्द लेने वाले, हा ! मेरी गोदी के लिए आग्रह करने वाले, हा ! शत्रु-समूह रूप हाथियों की घटा के लिए सिंह सदृश, हा ! युवराज कहाँ हो ? मुझे उत्तर दो । (ऐसा विलाप करके मूर्च्छित हो जाता है)

सूत—राजन्, धैर्य धारण करें, धैर्य धारण करें ।

दुर्योधन—(चेतना पाकर तथा गहरी सांस लेकर)

हे वत्स, तुम उपभोग के सुखों में यथेच्छ नहीं ही लगाये गये, व्यर्थ बड़े भाई (बने हुये) मेरे द्वारा तुम निश्चय ही नहीं दुलारे गये हो, तुम्हारी इस विपत्ति का कारण मैं (हो हूँ)—जो कि दुष्टता को (तो) कराये गये हो (अर्थात् दुष्टता तो तुमसे मैंने करा ली), किन्तु बचाये नहीं गये हो । ६॥

अन्वयः—हे वत्स, त्वम्, उपभोगसुखेषु, यथेष्टम्, न, एव, युक्तः, वृथाग्रजेन, मया, त्वम्, हि, न, लालितः, तव, अस्याः, विपत्तेः, हेतुः, अहम्, (अस्मि), यत्, अविनयम्, कारितः, असि, तु, न, रक्षितः, च, असि ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—हे वत्स = हे प्रिय दुःशासन, त्वम् = तुम, उपभोगसुखेषु = उपभोग के सुखों में, यथेष्टम् = यथेच्छ, इच्छानुसार, न = नहीं, एव = ही, युक्तः = लगाये गये, वृथाग्रजेन = व्यर्थ बड़े भाई (बने हुये), मया = मेरे द्वारा, त्वम् = तुम, हि = निश्चय ही, न = नहीं, लालितः = दुलारे गये हो, तव = तुम्हारी, अस्याः = इस, विपत्तेः = विपत्ति का, हेतुः = कारण, अहम् = मैं, (अस्मि = हूँ) । यत् = जो कि, अविनयम् = दुष्टता को, कारितः = कराये गये, असि = हो, तु = किन्तु, न = नहीं, रक्षितः = बचाये गये, असि = हो ॥ ६ ॥

युक्त इति—हे वत्स = हे स्नेहा बन्धो, त्वम्, उपभोगसुखेषु—उपभोगस्य = ऐश्वर्यादिव्यवहारस्य सुखेषु = आनन्देषु, यथेष्टम् = यथेच्छम्, नैव युक्तः = योजितः, वृथाग्रजेन—वृथा = निष्फलम् अग्रजेन ज्येष्ठेन, मया = दुर्योधनेन, त्वं हीति निश्चये, न लालितः = न स्नेहेन पालितः, विलासं न नीतो वा,

(इति पतति) ।

सूतः—आयुष्मन्, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

दुर्योधनः—धिवसूत, किमनुष्ठितं भवता ।

रक्षणीयेन सततं बालेनाज्ञानुवर्तिना ।

दुःशासनेन भ्रात्राहमुपहारेण रक्षितः ॥ ७ ॥

सूतः—महाराज, मर्मभेदिभिरिषुतोमरशक्तिप्रासवर्षैर्महारथानामपहतचेतनत्वान्नि-
श्चेष्टः कृतो महाराज इत्यपहतो मया रथः ।

दुर्योधनः—सूत, विरूपं कृतवानसि ।

तस्यैव पाण्डवपशोरनुजद्विषो मे

क्षोभैर्गदाशनिकृतैर्न विबोधितोऽस्मि ।

तामेव नाधिशयितो रुधिरार्द्रशय्यां

दौःशासनीं यदहमाशु वृकोदरो वा ॥ ८ ॥

(निःश्वस्य नमो विलोक्य) ननु ओ हतविधे, कृपाविरहित भरतकुलविमुख,
अपि नाम भवेन्मृत्युर्न च हन्ता वृकोदरः ।

सूतः—शान्तं पापं शान्तं पापम् । महाराज, किमिदम् ।

दुर्योधनः—

घातिताशेषबन्धोर्मै किं राज्येन जयेन वा ॥ ९ ॥

तव=भवतः, अस्याः=पत्न्याः, भीमेन हननरूपायाः इत्यर्थः, विपत्तेः=आपत्तेः, हेतुः=कारणम्,
अहम्=तव ज्येष्ठभ्राता दुर्योधनः अस्मीति शेषः, यत्=यस्मात् अविनयम्=दुष्टताम्, द्रौपदीकेश-
वस्त्राकर्षणरूपां दुष्टतामित्यर्थः, कारितः=कर्तुं प्रेरितः, अत्र प्रयोज्ये कर्मणि क्तः, असि, तु=किन्तु,
न रक्षितः=न त्रातः, असि भीमादिति शेषः । अविनये नियोजनवत्तव रक्षणमपि मम कर्तव्यमासीदिति
भावः । अत्र चतुर्थचरणे विशेषोक्तिरलङ्कारः । वसन्ततिलका छन्दः ॥ ६ ॥अन्वयः—सततम्, आशानुवर्तिना, बालेन, रक्षणीयेन, भ्रात्रा, दुःशासनेन, उपहारेण, अहम्,
(त्वया), रक्षितः ॥ ७ ॥शब्दार्थः—सततम्=निरन्तर, आशानुवर्तिना=आशा का पालन करने वाले, बालेन=बालक,
रक्षणीयेन=रक्षा के योग्य, भ्रात्रा=भाई, दुःशासनेन=दुःशासन के, उपहारेण=बलिदान से,
अहम्=मैं, (त्वया=तुम्हारे द्वारा), रक्षितः=बचाया गया हूँ ॥ ७ ॥रक्षणीयेनेति । सततम्=निरन्तरम्, आशानुवर्तिना=आशापालकेन, बालेन=अप्राप्तयौवनेन,
रक्षणीयेन=रक्षायोग्येन, भ्रात्रा=अनुजेन, दुःशासनेन=दुःशासनरूपेण, उपहारेण=बलिदानेन,
अहम्=ज्येष्ठो दुर्योधनः, रक्षितः=युद्धादपसार्य त्रातः । नैतत्तव कार्यं समीचीनमिति भावः । अत्र
काव्यलिङ्गमलङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ७ ॥

सूत इति—मर्मभेदिभिः—मर्म=जीवनस्थानं भिन्दन्ति=विदारयन्तीति तैः, निश्चेतनः=

(ऐसा कह कर गिरता है)

सूत—निरञ्जीविन्, धीरज धारण करे, धीरज धारण करे ।

दुर्योधन—सारथि, (तुझे) धिक्कार है, आप ने (यह) क्या किया ?

निरन्तर आज्ञा का पालन करनेवाले, बालक (अतः) रक्षा के योग्य, माई दुःशासन के बलि-दान से मैं (तुम्हारे द्वारा) बनाया गया हूँ ॥७॥

सूत—महाराज, महारथियों के मर्मभेदी बाणों, तोंमरों, शक्तियों तथा प्रार्थों की वर्षा से चेतना का अपहरण हो जाने से महाराज मूर्च्छित का दिये गये थे । यही कारण है, मैं रथ को दूर हटा लाया ।

दुर्योधन—सूत, (तुमने) अनुचित किया है ।

मेरे छोटे माई (दुःशासन) के शत्रु, उस पशुतुल्य पाण्डव के ही गदारूपी वज्र के द्वारा किये गये क्षोभ से नहीं जगाया गया (चेतना में लाया गया) हूँ, (अथवा) दुःशासन की उसी रक्त से गीली शय्या पर मैं या भीम अतिशीघ्र नहीं सुला दिया गया हूँ ॥८॥

(गहरी सांस लेकर, आकाश की ओर देख कर) अरे रे, निर्दय, भरत कुल से सुख मोड़े हुये, दुष्ट विधाता !

क्या (यह) सम्भव है (कि मेरी) मृत्यु हो जाय, किन्तु (मुझे) मारने वाला भीम न हो ?

सूत—पाप शान्त हो, पाप शान्त हो, महाराज, यह क्या (आप कह रहे हैं) ?

दुर्योधन—(क्योंकि) मार डाले गये समग्र बन्धु वाले मेरे राज्य अथवा जय से क्या (लाभ) ? ॥९॥

मूर्च्छितः । अपहृतः = युद्धाङ्गनादत्रापीतः ॥

अन्वयः—मे, अनुजद्विषः, तस्य, पाण्डवपशोः, एव, गदाशनिवृत्तैः, क्षोभैः, न, विबोधितः, अस्मि, दौःशासनीम्, ताम्, एव, रुधिरार्द्रशय्याम्, अहम्, वा, वृकोदरः, आशु, न, अधिशयितः ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—मे=मेरे, अनुजद्विषः=छोटे माई के शत्रु, तस्य=उस, पाण्डवपशोः=पशुतुल्य पाण्डव के, एव=ही, गदाशनिवृत्तैः=गदारूपी वज्र के द्वारा किये गये, क्षोभैः=क्षोभ से, न=नहीं, विबोधितः=जगाया गया, अस्मि=हूँ, (अथवा=अथवा), दौःशासनीम्=दुःशासन की, ताम्=उस, एव=ही, रुधिरार्द्रशय्याम्=रक्त से गीली शय्या पर, अहम्=मैं, वा=अथवा, वृकोदरः=भीम, आशु=अतिशीघ्र, न=नहीं, अधिशयितः=सुला दिया गया हूँ ॥ ८ ॥

सुतस्य विरूपकृत्यं प्रतिपादयन्नाह—तस्यैवेति । मे=मम, अनुजद्विषः=लघुभ्रातृद्विद्वेषिणः, तस्य=कौरवशत्रुत्वेन प्रसिद्धस्य, पाण्डवपशोः=पाण्डवः=पाण्डुपुत्रः भीमः पशुः=चतुष्पादः इव तस्य, एव, गदाशनिवृत्तैः—गदा एव अशनिः=अजम् तेन वृत्तैः=विहितैः, क्षोभैः=प्रहारजनित-पीडाभिरित्यर्थः, न विबोधितः=प्राप्तचैतन्यः, अस्मि; अथवेत्यध्याहार्यम्, दौःशासनीम्=दुःशासन-सम्बन्धिनीम्, तामेव, रुधिरार्द्रशय्याम्=रुधिरण=रक्तेन आर्द्राम्=विलज्जाम् शय्याम्=पर्यङ्कम्, मृपयङ्कुमित्यर्थः, अहम्=दुर्योधनः, वा=अथवा, वृकोदरः=मम प्रतिपक्षी भीमः, आशु=शीघ्रम्, न अधिशयितः=शयितुं प्रेरितः । वसन्ततिलका छन्दः ॥ ८ ॥

(ततः प्रविशति शरप्रहारव्रणवद्वट्टिकालंकृतकायः सुन्दरकः)

सुन्दरकः—आर्याः, अपि नामास्मिन्नुद्देशे सारथिद्वितीयो दृष्टो दुष्प्रामिर्महाराज-
दुर्योधनो न वेति । (निरूप्य) कथं न कोऽपि मन्त्रयते । भवतु । एतेषां वद्धपरिक-
राणां पुरुषाणां समूहो दृश्यते । अत्र गत्वा प्रक्ष्यामि । (परिक्रम्य विलोक्य च) कथमेते
खलु स्वस्वामिनो गाढप्रहाराहतस्य घनसन्नाहजालदुर्भेद्यमुखैः कङ्कवदनैर्हृदयाच्छल्या-
न्युद्धरन्ति । तन्न खल्वेते जानन्ति । भवतु । अन्यतो विचेष्ट्यामि । (अग्रतोऽवलोक्य
किञ्चित्परिक्रम्य) इमे खल्वपरे प्रभूततराः संगता वीरमनुष्या दृश्यन्ते । तदत्र गत्वा
प्रक्ष्यामि । (उपगम्य) हंहो, जानीथ यूयं कस्मिन्नुद्देशे कुरुनाथो वर्तत इति । (दृष्ट्वा)
कथमेतेऽपि मां प्रेक्ष्याधिकतरं रुदन्ति । तन्न खल्वेतेऽपि जानन्ति । हा अतिकरुणं
खल्वत्र वर्तते । एषा वीरमाता समरविनिहतं पुत्रकं श्रुत्वा रक्तांशुकनिवसनया समप्र-
भूषणया बध्वा महाजुग्विचते । (सञ्ज्ञापम्) साधु, वीरमातः, साधु । अन्यस्मिन्नपि
जन्मान्तरे अनिहतपुत्रका भविष्यसि । भवतु । अन्यतो विचेष्ट्यामि । (अन्यतो विलोक्य)
अयमपरो बहुप्रहारनिहतकायोऽकृतव्रणबन्ध एव योधसमूह इमं शून्यासनं तुरङ्गममुपा-
लभ्य रोदिषि । नूनमेतेषामत्रैव स्वामी व्यापादितः । तन्न खल्वेतेऽपि जानन्ति ।
भवतु । अन्यता गत्वा प्रक्ष्यामि । (सर्वतो विलोक्य) कथं सर्व एवावस्थानुरूप व्यसन-
मनुभवन्मागधेयविमुखतया पर्याकुलो जनः । तत्कमत्र प्रक्ष्यामि । कं वोपालप्स्ये ।
भवतु । स्वयमेवात्र विचेष्ट्यामि । (परिक्रम्य) भवतु दैवमिदानीमुपालप्स्ये । हहो,
दैव, एकादशानामशौहिणीनां नाथो ज्येष्ठो भ्रातृशतस्य भर्ता गाङ्गेयद्रोणाङ्गराजशल्य-
कूपकृतवर्माश्वत्थामप्रमुखस्य राजचक्रस्य सकलपृथ्वीमण्डलैकनाथो महाराजदुर्योधनो-
ऽप्यन्विष्यते । अन्विष्यमाणोऽपि न ज्ञायते कस्मिन्नुद्देशे वर्तत इति (विचिन्त्य निःश्वस्य च)
अथवा किमत्र दैवमुपालभे । तस्य खल्विदं निर्भर्त्सितविदुरवचनबीजस्यावधीरितपिता-
महहितोपदेशाङ्कुरस्य शकुनिप्रोत्साहनादिविरूढमूलस्य जतुगृहयूतविषशाखिनः सभूत-
चिरकालसंवद्धवैरालवालस्य पाञ्चालीकेशग्रहणकुसुमस्य फलं परिणमति । (अन्यतो
विलोक्य) यथात्रैष विविधरत्नप्रभासंवलितसूर्यकिरणप्रसूतशक्रचापसहस्रसंपूरितदशदि-
शामुखो लूनकेतुवंशो रथो दृश्यते तथाहं तर्कयाम्यवश्यमेतेन महाराजदुर्योधनस्य
विश्रामोद्देशेन भवितव्यमिति । यावन्निरूपयामि (उपगम्य दृष्ट्वा निःश्वस्य च) कथमेका-

अन्वयः—अपि, नाम, (मम), मृत्युः, भवेत्, च, हन्ता, वृकोदरः, न, (स्यात्) ? (हि),
वातिनाशेषबन्धोः, मे, राज्येन, वा, जयेन, किम् ? ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—अपि = क्या, नाम = सम्भव है, (मम = मेरी), मृत्युः = मृत्यु, भवेत् = हो जाय,
च = किन्तु, हन्ता = मारने वाला, वृकोदरः = भीम, न = नहीं, (स्यात् = हो); (हि = क्योंकि),
वातिनाशेषबन्धोः = मार डाले गये समग्र बन्धु वाले, मे = मेरे, राज्येन = राज्य, वा = अथवा,
जयेन = जय से, किम् = क्या (लाभ) ॥ ९ ॥

(तदनन्तर बाणों के प्रहार से हुए घावों पर बँधी हुई पट्टियों से सुशोभित शरीरवाला सुन्दरक प्रवेश करता है)

सुन्दरक—महानुभावों, क्या आप लोगों ने इस जगह सारथि के साथ महाराज दुर्योधन को (कहीं) देखा है या नहीं ? (ध्यान से देख कर) क्या कोई भी नहीं बोल रहा है ? अच्छा, यह कमर कैसे हुये पुरुषों का समूह दिखलाई पड़ रहा है । यहाँ चल कर पूछूँगा । (घूम कर और देख कर) क्या ये लोग भयङ्कर प्रहार से ताड़ित, अपने स्वामी के वधःस्थल से, दृढ़ कवच-समूह की तरह अतिदृढ़ मुखवाली कङ्कपक्षियों की चोंच से (कंकपक्षियों की चोंच से बनी चिमटियों से) बाण के (टूटते तीखे) अग्र भाग को निकाल रहे हैं ? तो ये लोग नहीं जानते हैं । अच्छा, दूसरी ओर खोजूँगा । (सामने की ओर देख कर तथा थोड़ी दूर घूम कर) और भी अधिक एकत्रित हुये कुछ दूसरे वीरपुरुष दिखलाई पड़ रहे हैं । तो यहाँ चल कर पूछूँगा । (पास में जाकर) अजी, आप लोग जानते हैं—कौरवराज (दुर्योधन) किम जगह हैं ? (देखकर) क्या ये भी मुझे देखकर अत्यधिक रोने लगे हैं ? तो निश्चय ही ये लोग भी नहीं जानते हैं ? हाय ! यहाँ अति करुण (दृश्य) उपस्थित है । (किसी) वीर की यह माता पुत्र को संग्राम में मारा गया सुन कर, लालवस्त्र को धारण किये हुई, सम्पूर्ण आभूषणों से सज्जो-धजी (अपनी) पुत्र-वधू के साथ (चिता पर जल कर) मरने जा रही है । (प्रशंसा के साथ) धन्य हो वीरमाता, धन्य हो । दूसरे भी जन्म में न मारे गये पुत्र-वाली होओगी । अच्छा, दूसरी ओर खोजूँगा । (दूसरी ओर देख कर) अत्यधिक प्रहार से जजर शरीरवाला, बावों पर बिना भरहम पट्टी किये हुये ही यह वीरों का दूसरा समूह (पीठ के) आसन (चारजामा) से विहीन इस घोड़े को उलाहना देकर रो रहा है । निश्चय ही इन लोगों का स्वामी (नायक) यहीं पर मारा गया है । तो अवश्य ये लोग भी नहीं जानते हैं । अच्छा, दूसरी ओर जाकर पूछूँगा । (सब ओर देख कर) क्या (यहाँ) सभी ही व्यक्ति (अपनी) अवस्था के अनुरूप विपत्ति भोगते हुये, भाग्य की विमुखता के कारण, व्याकुल हो रहे हैं ? तो यहाँ किससे पूछूँ अथवा किसको उलाहना दूँ । अच्छा, अब (मैं) स्वयं ही खोजूँगा । (घूम कर) अच्छा, अब दैव को (ही) उलाहना दूँगा । वाह रे भाग्य, ग्यारह अशोहिणी (२१=७० हाथियों, २१=७० रथों, ६५६१० बाणों तथा १०९३५० पैदल सिपाहियों के समूह को अशोहिणी कहते हैं ।) के स्वामी, सौ भाइयों में सब से बड़े, भीष्म द्रोण कर्ण शल्य द्रुपदार्ज्य कृतवर्मा तथा अश्वत्थामा आदि राजसमूह के पाठक, समूचे भूमण्डल के एकमात्र स्वामी महाराज दुर्योधन भी (आज) खोजे जा रहे हैं । (और) खोजने पर नहीं मालूम पड़ रहा है कि किस जगह पर हैं । (चिन्ता के साथ सोच कर तथा गहरी साँस लेकर) अथवा, इस विषय में दैव को क्या उलाहना दूँ ? क्योंकि यह तो लाक्षा-गृह, (कपट—) द्यूत एवं विष (—दान) रूप उस वृक्ष का फल है, विदुर का तिस्स्कृत किया गया वन जिसका बीज है, भीष्म पितामह का ठुकराया गया हितकारी उपदेश जिसका अङ्कुर है, शकुनि के प्रोत्साहन आदि जिसकी मजबूत जड़ें हैं, उत्पन्न हुआ तथा काफी दिनों से बंधा हुआ वर जिसका थाला है तथा द्रौपदी का

अपीति । अपीति प्रश्ने, नामेति सम्भावनायाम्, (मम=दुर्योधनस्य), सृत्युः=मरणम्, मवेत्=स्यात्, च=तथा, हन्ता=विनाशकः, वृकोदरः=भीमः, न स्यादिति शेषः, (हि=यतः),

दशानामहोहिणीनां नायको भूत्वा महाराजो दुर्योधनः प्राकृतपुरुष इवाश्लाघनीयायां
भूमावुपविष्टिष्ठति । अथवा तस्य खल्विदं पाञ्चालीकेसगहकुसुमस्य फलं परिणमति ।

[अत्रा अवि नाम इमस्मिं उद्देशे सारहिदुश्चो दिष्टो तुम्हेहि महाराजदुज्जोहणो ण वेत्ति
कहं ण कोवि मन्वेदि । होदु । एदार्णं वद्धपरिअराणं पुरिसाणं समूहो दीसइ । एत्थ गदुअ पुच्छिस्सम् ।
कहं एदे क्खु स्वसामिणो गाढपहारहदस्स घणसण्णाहजालदुब्बेज्जमुहेहि कद्वदणेहि हिअआने
सल्लाहं उदरन्ति । ता ण क्खु एदे जाणन्ति । होदु । अण्णदो विचिणइस्सम् । इमे क्खु अवरे प्पहूद-
दरा संगदा वीरमणुस्सा दीसन्ति । ता एत्थ गदुअ पुच्छिस्सम् । हंहो जाणइ तुम्हे कस्मिं उद्देशे
कुत्थाहो वट्टइति । कहं एदे वि मं पेक्खिअ अहिअदरं रोअन्दि । ता ण हु एदे वि जाणन्ति । हा-
अदिकर्णं क्खु एत्थ वट्टइ । एसा वीलमादा समलविणिहदं पुत्तं सुणिअ रत्तघुअणवत्तणाए सम-
भूत्तणाए वट्टइ सह अणुमदि । साहु वीरमादे, साहु । अण्णस्मिं वि जम्मन्तरे अणिहदपुत्तया दुविरस्सि
होदु । अण्णदो विचिणइस्सम् । अअं अरो बहुपहारणिहदकाओ अकिदव्वणप्पडिआरो एव्व जोह-
समूहो इमं सुण्णासणं तुलङ्गम उवाल्हि रोइदि । पूण एदार्णं एत्थ एव्व सामी वावादिदो । ता ण क्खु
एदे वि जाणन्दि । होदु । अण्णदो गदुअ पुच्छिस्सम् । कहं सव्वो एव्व अवत्थाणुल्लव्वत्तणं अणु-
भवन्तो भाअधेअविमुखदाए पज्जाउलो जणो । ता कं एत्थ पुच्छिस्सम् । कं वा उवाल्हिस्सम् । होदु ।
सअं एव्व एत्थ विचिणइस्सम् । होदु । देव्वं दाणीं उवाल्हिस्सम् । हंहो देव्व, एआदसाणं अक्खो-
हिणीणं णाहो जेट्ठो भादुसदस्स भत्ता गङ्गेअदोणङ्गाअसल्लकिवक्कोदवम्मअस्सत्तामप्पमुहस्स
राअचक्कस्स सअल्लपुहवोमण्डलेक्कणाहो महाराजदुज्जोहणो वि अण्णेसीअदि । अण्णेसीअन्तो वि ण
जाणीअदिकस्मिं उद्देशे वट्टइ ति । अह वा किं एत्थ देव्वं उवाल्हामि । तस्स क्खु एदं णिअमच्छिअवि-
उरवअणवीअस्स अत्रहीरिदपिदामहहिदोवदेत्तङ्कुरस्स सउणिप्पोच्छाहणादिविरूढमूलस्स जदुगेहजूरविस-
साहिणो संभूदचिरजालसंबद्धेवालालास्स पञ्चालीकेसगहणकुसुमस्य फलं परिणमदि । जहा एत्थ एसो
विनिहरिणप्पहासंवालिदसूरकिरणप्पसूदसक्कवावसदस्ससंपूरिददसदिसामुहो लूणकेदुवंसो रहो दीस-
ता अहं तक्केमि अवस्सं एदिणा महाराजदुज्जोहणस्स विसजामुद्देशेण होदव्वम् । याव निरूपेमि । कथं
एआदहाणं अक्खोहिणीणं णाअको भविअ महाराओ दुज्जोहणो पश्दपुरिसो विअ अल्लाहणोए
भूमिए उवविट्ठो चिट्ठदि । अथ वा तस्स क्खु एदं पञ्चालीकेसगहकुसुमस्य फलं परिणमदि ।]

(उपसृत्य सूतं संशया पृच्छति)

सूतः—(दृष्ट्वा) अये, कथं सङ्ग्रामात्सुन्दरकः प्राप्तः ।

सुन्दरकः—(उपगम्य) जयतु जयतु महाराजः । [जअदु जअदु महाराओ ।]

दुर्योधनः—(विलोक्य) अये सुन्दरक ! सुन्दरक, कच्चिक्कुशलमङ्गराजस्य ।

सुन्दरकः—देव कुशलं शरीरमात्रेण । [देव कुशलं शरीरमेत्तेण ।]

दुर्योधनः—(ससंभ्रमम्) सुन्दरक, किरीटिनास्य निहता धौरेया हतः सारथि-
संग्नो वा रथः ।

धातिताशेषबन्धोः—धातिताः=विनाशिताः अशेषाः=समग्राः बन्धवः=अनुजाः पक्षावलम्बिनो
योद्धारश्च यस्य तादृशस्य, मे=बन्धुविरहिण्य दुर्योधनस्य, राज्येन=साम्राज्यलामेन, वा=तथा, जयेन=

केश-ग्रहण ही जिसका फूल है । (दूसरी ओर देख कर) उसे कि यहाँ यह विविध रत्नों की कान्तिवों से संयुक्त सूर्य की किरणों से प्रादुर्भूत हजारों इन्द्र-धनुषों से दणों दिवाघों के अग्रभागों को भर देने वाला, कटा हुआ ध्वज-दण्ड वाला रथ दिखाई पड़ रहा है—इसे मैं अनुमान करता हूँ कि अवश्य ही यह महाराज दुर्योधन का विश्राम-स्थल होगा (अर्थात् वे यहीं विश्राम करते होंगे) । अतः ध्यान से देखता हूँ । (पास में जाकर, देख जर तथा आह भ्रम कर (ग्यारह अश्विहिणी के सेनापति होकर (भी) महाराज दुर्योधन, साधारण व्यक्ति की तरह, क्या अयोग्य भूमि पर बैठे हुये हैं ? अथवा निश्चय ही वह द्रौपदी के केश-ग्रहण रूपी फूल का फल प्रस्तुत हो रहा है ।

विशेष—जतुगुह-छूत-विषशास्त्रिनः—दुर्योधन ने पाण्डवों को लाह के घर में कपट से प्रवेश करा कर आग लगवा दी थी, जुप में कपट पूर्वक हरा कर पाण्डवों का अधिकार छीना था । भोजन में विष मिला कर खाने के लिए दिलवाया था । यहाँ दुर्योधन के इन्हीं कुट्टियों की ओर संकेत है ॥

(पास में जाकर सारथी से संकेत द्वारा पूछता है)

सुत—(देख कर) अरे, क्या संग्राम-भूमि से सुन्दरक आ गया ?

सुन्दरक—(पास में जाकर) महाराज विजयी बनें विजयी बनें ।

दुर्योधन—(देख कर) अरे सुन्दरक ! सुन्दरक, अज्ञात (कर्ण) कुशल से तो हैं ?

सुन्दरक—महाराज, केवल शरीर भर से कुशल हैं ।

दुर्योधन—(धवराहट के साथ) सुन्दरक, क्या अर्जुन के द्वारा इनके (कर्ण के) घोड़े मार डाले गये, या सारथि मार डाला गया अथवा रथ (ही) तोड़ दिया गया ?

विजयेन, किम्—किं प्रयोजनम् ? न किमपीत्यर्थः । इत्येव भावनाऽस्ति व्यक्तीकृताऽर्जुनेन महामारत-प्रारम्भे—‘न कांक्षे विजयमित्यादिः’ (गीता १-३२-३३) ॥ ९ ॥

सुन्दरक इति । गाढमहाराहनस्य—गाढैः=तीव्रैः प्रहारैः आहतस्य=ताडितस्य, घनसन्नाह-जालदुर्भेद्यमुखैः—घनाः=अनिविडाः वा अतिदृढाः येः सन्नाहाः=कवचानि तस्य जालम्=समूह इव दुर्भेद्यानि=अभेद्यमायानि मुखानि=आननानि, अग्रभागाः इत्यर्थः, येषां तैः, शल्यानि=बाणशङ्कुम् । समरविनिहतम्—समरे=युद्धे विनिहतम्=मारितम् । बहुप्रहारनिहतकायः—बहुप्रहारैः निहतः=वर्जितः कायः=देहः (‘कायो देहः’ इत्यमर) यस्य सः, अकृतवन्धनः—न कृता व्रणेभ्यः=इमेभ्यः (‘व्रणो...ईमेभ्यः’ इत्यमरः) बन्धः=औषधवन्धनम् यस्य सः । सकलपृथिवीमण्डलैकनाथः—सकलस्य=समग्रस्य पृथिवीमण्डलस्य=भूवल्लस्य एकः=सर्वप्रभुतासम्पन्नः नाथः=स्वामी निर्भर्त्सितविदुरवचन-बीजस्य—निर्भर्त्सितम्=निन्दितं तिरस्कृतमित्यर्थः विदुरस्य वचनम्=वाक्यम् एव बीजम्=कारणम् यस्य तादृशस्य, अवधीरितेत्यादिः—अवधीरितः=तिरस्कृतः पितामहस्य=भीष्मस्य हितोपदेशः=हितवचनम् एव अक्षुरः=प्ररोहः यस्य तादृशस्य, शकुनिप्रोत्साहनेत्यादिः—शकुनिना दत्तः प्रोत्साहना-दिभिः विरूढम्=सुदृढम् मूलं यस्य तादृशस्य, संभूतचिरकालसंबद्धवैरालवालस्य—संभूतः=उत्पन्नः चिरकालात्=बहोः कालात् संबद्धः वैरः=शत्रुता एव आलवालः=आवापः (‘स्यादालवालम्...आवापः’ इत्यमरः) यस्य तादृशस्य, पाञ्चालीकेशग्रहणकुमुदस्य—पाञ्चाल्याः=द्रौपद्याः केशग्रहणम्=

सुन्दरकः—देव, न भग्नो रथः । अस्य मनोरथोऽपि । [देव ण भग्नो रथो । दे मणोरथो वि ।]

दुर्योधनः—(सरोपम्) किमविस्पष्टकथितैराकुलमपि पर्याकुल्यसि मे हृदयम् । अवि तदनेषतो विस्पष्टं कथ्यताम् ।

सुन्दरकः—यद्देव आज्ञापयति । अये ! देवस्य सुकुटुम्बसिम्भावेणापनीता मे रणप्रदार् वेदना । (इति साटोपं परिक्रम्य) शृणोतु देवः । अस्तीदानीं कुमारदुःशासनवध—(स्थथेति सुखमाच्छाद्य शङ्कां नाटयति ।) [जं देवो आणवेदि । अप देवस्स मउडमणिप्पहावेण अवणीदा मे रणप्पहारवेअणा । सुणादु देवो ! अत्थि दाणीं कुमालदुस्सासणवह—]

मृतः—सुन्दरक, कथय । कथितमेव दैवेन ।

दुर्योधनः—कथ्यताम् । श्रुतस्समाभिः ।

सुन्दरकः—शृणोतु देवः । अद्य तावत्कुमारदुःशासनवधामर्षितेन स्वामिनाङ्ग राजेन कृतकुटिलभृकुटीभङ्गभीषणललाटपट्टेनाविज्ञातसन्धानतीक्ष्णभोक्षशिलीमुखसघात- वर्षिणा अभियुक्तः स दुराचारो मध्यमपाण्डवो । [सुणादु देवो । अज्ज दाव कुमालदुस्सासण- वहामरिसिदेण सामिणा अङ्गरापण किदकुटिलभेउओभङ्गभोसणलिडलवट्टण अविण्णादसथाणीतीव्व- मोक्खसिलीमुहसंघादवरिसिणा अभिजुत्तो सो दुराआरो मज्झमपण्डवो ।]

उभौ—ततस्ततः

सुन्दरकः—ततो देव, उभयबलमिलद्दीप्यमानकरितुरगपदातिसमुद्भूतधूलिनि करेण पर्यस्तगजघटासंघातेन च विस्तीर्यमाणेनान्धकारेणान्धीकृतसुभयबलम् । न खलु गगनतलं लक्ष्यते । [ततो देव, उहअवलमिलन्तदीप्यन्तकरितुरअपदादि समुद्भूदधूलिणारेण पल्लत्यगअवडासंघादेण अ विस्वरन्तेण अन्धआरेण अन्धोकिदं उहअबलम् । ण हु गगणतल लस्खीअदि ।]

उभौ—ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततो देव, दूराकृष्टधनुर्गुणाच्छोटनटङ्कारेण गम्भीरभीषणेन ज्ञायते गर्जितप्रलयजलधरेणेति । [ततो देव, दूराकट्टिमधणुगुगाच्छोडणटङ्कारेण गम्भीरभोसणेण जाणी- अदि गर्जिदं पलअजलधरेण ति ।]

दुर्योधनः—ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततो देव, द्वयोरपि तयोरन्योन्यसिंहनादगर्जितपिच्छुनं विविधपरिमुक्त- प्रहरणाहतकवचसंगलितज्वलनविद्युच्छटाभासुरं गम्भीरस्तनितचापजलधरं प्रसरच्छर- धारासहस्रवर्षिं जातं समरदुर्दिनम् ।

[ततो देव, दोहिणं वि ताण अण्णोण्णमिहणादगजितदपिसुणं विविहपरिमुक्कप्पहरणाहदका- असंगलदजलविज्जुच्छटाभासुरं गम्भीरत्थणिअचापजलहरं पसरन्तसरधारासहस्सवरिसं जादं समरदुर्दिणम् ।]

कवग्रहः एव कुसुमम्=पुष्पम् यस्य तादृशस्य, जतुगृहयूतविषशाखिनः—जतुगृहम्=लाक्षागृहम् च यूतञ्च=अक्षदेवनञ्च विपञ्च=गर्लदानञ्चेत्यर्थः तान्येव शाखाः=विटपाः सन्ति अस्य इति तस्य ।

सुन्दरक—महाराज, रथ (ही) नहीं तोड़ा गया (किन्तु) मनोरथ भी (तोड़ा गया) ।
 दुर्योधन—(क्रोधपूर्वक) (पहले से ही) व्याकुल मेरे हृदय को अस्पृष्ट वाद्यों के द्वारा और अधिक व्याकुल क्यों बना रहे हो । इसलिये सारी बातें साफ-साफ कहो ।

सुन्दरक—जैसी महाराज आशा दे रहे हैं (वैसा ही कहूँगा) । अहा ! महाराज के सुकुट के मणिके प्रभाव से युद्ध में पड़ी मार को मेरी पीड़ा समाप्त हो गयी । (ऐसा कह कर, सामिमान वृत्त कर) सुनें महाराज । “आज कुमार दुःशासन के वध”—(ऐसा आशा ही कहने पर मुख ढक कर मय का अभिनय करता है) ।

सूत—सुन्दरक, कह डालो । देव ने कह ही दिया है ।

दुर्योधन—कहो । सुना है हमने ।

सुन्दरक—सुनें महाराज । आज कुमार दुःशासन के वध से क्रुद्ध हुये, चढ़ाई गयी देवी मौड़ों की वक्रता से भयानक ललाट-पट्टवाले, (धनुष पर) चढ़ाने एवं अतिशोष वाणों के समूह की वर्षा करने वाले स्वामी अहिराज (कर्ण) ने दुराचारी उस मध्यम पाण्डव (भीम) पर धावा बोल दिया ।

दोनों—उसके बाद, उसके बाद (क्या हुआ) ?

सुन्दरक—देव, उसके बाद दोनों सेनाओं के परस्पर संवर्षरत एवं क्रुद्ध हाथियों, घोड़ों तथा पैदल सिपाहियों के द्वारा उठाये गये धूल-समूह से और फैले हुये हाथियों के झुण्ड द्वारा फैलाये गये अन्धकार से दोनों तरफ की सेनाये अन्धो-सा कर दी गयी । आकाश तल न दिखलाई पड़ता था ।

दोनों—उसके बाद, उसके बाद (क्या हुआ) ?

सुन्दरक—महाराज, उसके बाद दूर तक (कान तक) खींचो गयी धनुष की डारी के छोड़ने की गम्भीर तथा भीषण टक्कार से मालूम पड़ता था कि मानो प्रलयकालीन मेघ गरज रहा हो ।

दुर्योधन—उसके बाद उसके बाद ?

सुन्दरक—महाराज, उसके बाद उन दोनों (सेनाओं) का परस्पर सिंहनादरूपी गर्जन से सूचित होनेवाला, अनेक तरह के छोड़े गये आयुधों से टकराये कवचों से निकली हुई आग रूपी विजली की चमक से प्रकाशित, गम्भीर टक्कार करनेवाले धनुषरूप बादलों वाला, (चारों ओर) फैलने वाले वाणरूपी हज़ार धाराओं की वर्षा करने वाला, संग्रामरूपी दुर्दिन (मेवाच्छन्न दिन Cloudy day) प्रारम्भ हुआ (अर्थात् उन दोनों में परस्पर भीषण युद्ध हुआ) ।

विविधरत्नप्रमेत्यादिः—विविधानि=बहुविधानि यानि रत्नानि=मणयः तेषां प्रमभिः=कान्तिभिः संवलिताः=मिश्रिताः ये सूर्यकिरणाः=दिवाकरांशवः तेष्वः प्रभूताः=उत्पन्नाः ये शक्रवापाः=इन्द्रधनुषि तेषां सहस्रेण पूरितानि=व्याप्तानि दशदिशामुखानि=दशकाष्ठाग्रमाणाः येन सः, लूनकेतु-वंशः—लूनः=छितः केतुवंशः=पताकादण्डः यस्य सः, पतादृशः रथः । प्राकृतपुरुषः=साधारणो जनः ॥

दुर्योधन इति । किरौटिना=अर्जुनेन, धौरेयाः—धुरं वहन्तीति धौरेयाः=अश्वः ॥

सुन्दरक इति—कृतकुटिलेत्यादिः—कृतः=सम्पादितः कुटिलः=वक्रः, यः भ्रुकुटिमङ्गः=भ्रुकुटिवक्रता तेन भीषणम्=मयङ्कम् ललाटपट्टम्=मालम् यस्य तेन, अविशतित्यादिः—अविशतम्=

दुर्योधन—उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—महाराज, उसके बाद इसी बीच बड़े भाई (भीम) की पराजय की आशङ्का करने-वाले अर्जुन ने, वज्रपात की ध्वनि की तरह भीषण शब्द करनेवाले पताका पर स्थित विशाल वानरसे युक्त घोड़ों को हाँकने में लगे हुये कृष्ण के शंख चक्र तलवार तथा गदा से लाञ्छित (सुशोभित) चार बाहुदण्डों के कारण दुर्निरीक्ष्य, फूँके गये (वजाये गए) पाञ्चजन्य तथा देवदत्त (नामक शंखों) की लौची ध्वनि की प्रतिध्वनि से दशों दिशाओं के मुख रूपी गुफाओं को व्याप्त कर देने वाले अपने रथ को उसी स्थान की ओर दौड़ाया (जहाँ कि भीम थे) ।

विशेष—ध्वजाग्रस्थितमहावानरः—अर्जुन के रथ की पताका पर हनुमान् जी सर्वदा विराजमान रहा करते थे ।

वासुदेव—श्रोतृष्ण अर्जुन के सारथि थे । महामारुत युद्ध में वे ही सर्वदा अर्जुन का रथ हाँका करते थे ।

पाञ्चजन्यदेवदत्त—श्रीकृष्ण की शंख का नाम पाञ्चजन्य था तथा अर्जुन को शंख का नाम देवदत्त था—‘पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः ॥ गीता ॥ १५ ॥

दुर्योधन—उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—तदनन्तर भीमसेन एवं धनञ्जय के द्वारा अपने पिता (कर्ण) को आक्रान्त देवकर जल्दी में (शर से) गिरे हुए रत्नजटित मुकुट की उपेक्षा करके कठोर धनुष की डोरी को कान तक खींचे हुए, दाहिने हाथ से निकाले हुए बाण के पुच्छ भाग के द्वारा खोदकर (उकसा कर) सारथि को शोषता करने के लिए प्रेरित करता हुआ कुमार वृषसेन (भी) उस स्थान पर पहुँचा ।

विशेष—दक्षिणहस्त—यहाँ का पाठ था तो कुछ भ्रष्ट है या कवि ने ही गलती कर दी है । वृषसेन दाहिने हाथ से धनुष को डोरी खींचे है, तथा उसी से बाण लेकर सारथि को खोद रहा है यह कैसे सम्भव है ?

दुर्योधन—(सँभल कर) उसके बाद, उसके बाद ?

सहस्रवर्षि—प्रसरन्तः=स्तस्ततो गच्छन्तः शराः=बाणाः एव धारासहस्राणि वर्षितुं शीलं यस्य तत्तादृशम् ॥

सुन्दरक इति । परामवशङ्किना—परामवम्=पराजयं शङ्कते=आशङ्कते इति तेन, धनञ्जयेन=अर्जुनेन कर्त्ता, वज्रनिर्वातेत्यादिः—वज्रस्य=अशनेः निर्वातः=वज्रपातः तस्य निर्वापः=शब्दः तद्वत् विषमम्=भीषणम् रसितम्=गर्जनम् यस्य तादृशः, ध्वजाग्रे=पताकाग्रे स्थितः=वर्तमानः महावानरः=विशालो वानरो हनुमानित्यर्थः यस्य तादृशः, तुरङ्गमेत्यादिः—तुरङ्गमाणाम्=अश्वानाम् संवाहने=सञ्चालने व्यापृताः=संलग्नाः वासुदेवस्य=श्रोतृष्णस्य शङ्खचक्रगदासिभिः लाञ्छिताः=शोभिताः चिह्निताः वा बाहुदण्डाः=भुजदण्डाः तैः दुर्दर्शः=द्रष्टुमशक्यः, आपूरितेत्यादि—आपूरितौ=मुखवायुना पूरितौ यौ पाञ्चजन्यदेवदत्तौ=पाञ्चजन्यदेवदत्तनामानौ शङ्खौ (‘शङ्खो लक्ष्मीपतेः पाञ्चजन्यः’ इत्यमरः, देवदत्तोऽर्जुनशङ्कः) तयोः ताररसितस्य=उच्चैः ध्वनेः प्रतिरवः=प्रतिध्वनिः तेन भरितानि=पूर्णानि दशदिशानाम्=दशकाष्ठानाम् मुखानि=अग्रभागाः एव कुहराणि=गहराणि येन तादृशः,

सुन्दरकः—ततश्च देव, तेनागच्छतैव कुमारवृषसेनेन विदलितसिलताश्यामलस्निग्धपुङ्खैः कठिनकङ्कपत्रैः कृष्णवर्णैः शाणशिलानिशितश्यामलशल्यबन्धैः कुसुमित इव तस्मिन् हूतेन शिलीमुखैः प्रच्छादितो धनञ्जयस्य रथवरः ।

[ततो अ देव, तेण आअच्छन्तेण एव कुमालविससेणेण विदलितसिलताश्यामलसिलनिष्ठपुङ्खैः कठिनकङ्कपत्रैर्हि किसणवर्णैर्हि शाणशिलाणिसिदसामलसल्लबन्धैर्हि कुसुमिदो विअ तरु सुहृत्तण शिलीमुहैर्हि पच्छादिदो धणञ्जयस रहवरो ।]

उभौ—(सहर्षम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततो देव, तीक्ष्णविक्षिप्तनिशितमल्लबाणवर्षिणा धनञ्जयेनेष द्विहस्तमणितम्—अरे रे वृषसेन, पितुरपि तावत्ते न युक्तं मम कुपितस्याभिमुखं स्थातुम् । किं पुनर्भवतो बालस्य । तद्गच्छ । अपरैः कुमारैः सहायुध्यस्वेति । एवं वाचं निशम्य गुरुजनाधिक्षेपेणोद्दीपितकोपोपरक्तमुखमण्डलविजृम्भितभ्रुकुटीभङ्गमीषणेन चापधारिणा कुमारवृषसेनेनापि मर्मभेदकैः परुषविषमैः श्रुतिपथकृतप्रणयैर्निर्मलितो गाण्डीवी बाणैर्न पुनर्दुष्टवचनैः । [ततो देव, तिकखविकित्तणिसिदमल्लबाणवरित्तिणा धणञ्जयण ईसि विहसि माणदम्—अरे रे विससेण, पिठुणो वि दाव दे ण जुत्तं मढ कुविदस्स अभिसुहं ठाडुम् । किं उण मवदं बालस्स । ता गच्छ । अवरेहिं कुमारैहिं सह आआधेहिंति । एवं वाअं णिसमिअ गुरुअणाहिकखेण उद्दीविअकोवोपरक्तमुहमण्डलविआम्भअभिउडोमङ्गमासणेण चावधारणा कुमालविससेणावि मम्मभेदयहिं परुसविसमेहिं सुदिवहकिदप्पणपहिं णव्भान्छिदो गण्डीवी बाणहिं ण उण दुट्ठवअणं हिं ।]

दुर्योधनः—साधु, वृषसेन, साधु । सुन्दरक, ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततो देव, निशितशराभिघातवेदनोपजातमन्युना किरीटिना चण्डगाण्डीवजीवाशब्दनिजितवज्रनिर्घातघोषेण बाणनिपतनप्रतिपिद्धदर्शनप्रसरेण प्रस्तुतशिक्षाबलानुरूपं किमप्याश्चर्यम् । [ततो देव, णिसिदसराभघादवेअणोपजादमण्णुणा किरीटिचण्डगण्डीवजाआसहणिवज्रदवज्जणिघादघोसेण बाणाणवडणपाडिसिद्धदंसणप्पसरेण पत्थुदं सिकखवलणुरूवं किं वि अच्चरिअम् ।]

दुर्योधनः—(साकूतम्) ततस्ततः ।

रथवरः = श्रेष्ठो रथः, तम् उद्देशम् = तं स्थानम्, धावतः = वेगेन गन्तुं प्रेरितः ॥

सुन्दरक इति । अभियुक्तम् = आक्रान्तम्, सम्भ्रमम् = सवेगम्, विगलितम् = स्वरथानात् अष्टम रत्नशोषकम् = रत्नखाचितं मुकुटम्, अवधूय = तिरस्कृत्य, अविगणय्येत्यर्थः, आकर्णेत्यादिः—आकर्णम् = श्रवणपर्यन्तम् आकृष्टा = आकृष्य नीता कठिनस्य = कठोरस्य कोदण्डस्य = धनुषः जीवा = प्रत्यक्षा येन सः, दक्षिणहस्तेत्यादिः—दाक्षिणहस्तेन = सव्येन करेण उक्षिप्तः = उस्थापितः यः शरः = बाणः तत् पुङ्खन = पुच्छेन यत् विधट्टनम् = प्रेरणम् तेन त्वरायितः = त्वरां कारितः सारायिः = सूतः येन तादृशः ॥

सुन्दरक इति । विदलितसिलताश्यामलस्निग्धपुङ्खैः—विदलित = खण्डित या असिलता

सुन्दरक—महाराज, तदनन्तर आते ही कुमार वृषसेन ने खण्डित तलवार के समान नीले तथा चिकनी पूँछ वाले कठोर कङ्कपत्र वाले, श्यामवर्ण वाले, श्यामवर्ण शान के पत्थर पर तेज क्रिय गये श्यामल फलक (धार) वाले बाणों से क्षण भर में, अर्जुन के रथ को (इस तरह) ढक दिया, मानों फूलों से लदा हुआ वृक्ष हो ।

विशेष—कङ्कपत्रैः—कङ्क नामक एक पक्षी होता है । इसकी पाँखें बहुत ही मजबूत होती हैं । बाणों के मूल में इसे ही लगाने की प्रथा थी ।

दोनों—(प्रसन्नता के साथ) उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—महाराज, इसके पश्चात् तेजी से चलाये हुए, तेज किये गये फलकवाले बाणों की वर्षा करनेवाले अर्जुन ने थोड़ा हँस कर कहा—‘अरे वृषसेन, कुदृष्ट मेरे सामने तुम्हारे पिता (कर्ण) के लिए स्थित होना कल्याणकर नहीं है, तो तुम बालक का क्या (कहना) ? अतः जाओ, अन्य नवयुवकों के साथ युद्ध करो ।’ इस तरह की बाणी सुनकर गुरुजन की निन्दा से भड़के हुए क्रोध के कारण लाल मुखमण्डल से बड़ी हुई भौंह की कुटिलता से मीषण, धनुर्धारी कुमार वृषसेन ने भी मर्मभेदी, कठोर एवं तीखे तथा श्रवण-पथ तक प्रेम करनेवाले (अर्थात् कान तक खींचे गये) बाणों से अर्जुन को तिरस्कृत किया, न कि कटवचनों से (अर्थात् वृषसेन ने अर्जुन के तीखे वचनों का जवाब तीखे वचनों से न देकर तीखे बाणों से दिया) ।

दुर्योधन—वाह ! वृषसेन, वाह ! सुन्दरक, उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—तदनन्तर महाराज, तीखे बाणों के प्रहार की वेदना से उत्पन्न क्रोधवाले, प्रचण्ड (अपने धनुष) गाण्डीव की प्रत्यक्षा के शब्द की ध्वनि से बिजली की कड़क को मात कर देनेवाले तथा बाणों की बौझारों से दृष्टि को अवरुद्ध कर देनेवाले अर्जुन ने (अपनी) शिक्षा एवं बल के अनुरूप कुछ आश्चर्य प्रस्तुत किया (अर्थात् आश्चर्यजनक पराक्रम दिखाया) ।

दुर्योधन—(सामिप्राय) उसके बाद, उसके बाद ।

खड्गलता तद्वत् श्यामलाः=ईषकृष्णवर्णाः स्निग्धाः=चिककषाः पुङ्खाः=शरमूलानि येषां तैः, कठिनकङ्कपत्राणि—कठिनानि=कठोराणि कङ्कपत्राणि=कङ्कनामकपक्षिपत्राणि येषां तैः, शाणशिलेत्यादिः—शाणशिलायाम्=निकषपात्राणे निशिताः=अतितीक्ष्णतां नीताः अतः श्यामलाः=श्यामवर्णाः शल्यबन्धाः=फलकबन्धाः येषां तैः, शिलीमुखैः=बाणैः (‘शिलीमुखौ बाणभृक्षौ’ इत्यमरः) ॥

सुन्दरक इति—तीक्ष्णविक्षिप्त्यादिः—तीक्ष्णम्=अतिशीघ्रं यथा तथा विक्षिप्ताः=सञ्चालिताः निशितमल्लाः=तीक्ष्णफलकाः ये बाणाः=शराः तान् वर्षितुं शीलं यस्य तेन, धनञ्जयेन=अर्जुनेन । गुरुजनाधिपेण—गुरुजनस्य = श्रेष्ठजनस्य, पितुरित्यर्थः, अधिक्षेपेण=निन्दया, उद्दीपितक्रोपेत्यादिः—उद्दीपितः=वृद्धिज्ञतः यः क्रोधः=क्रोधः तेन उपरक्तम्=रक्तम् यत् मुखमण्डलम्=आननमण्डलम् तेन विजृम्भितः=दीर्घताङ्गनः यो भ्रुकुटिभङ्गः=भ्रुकुटिकोटिलम् तेन मीषणः=मयङ्कुरः तेन ॥

सुन्दरक इति । निशितशरेत्यादिः—निशिताः=तीक्ष्णाः ये शराः=बाणाः तेषाम् अभिवातेन=प्रहारेण जातः=उत्पन्नः मन्युः=क्रोधः यस्य तेन, चण्डगाण्डीवेत्यादिः—चण्डः=मीषणः यः गाण्डीवः=अर्जुनधनुः तस्य जीवा=प्रत्यक्षा तस्याः शब्देन निजितः=तिरस्कृतः वज्रनिर्घातस्य=

सुन्दरकः—ततश्च देव, तत्तादृशं प्रेक्ष्य शत्रोः समरव्यापारचतुरत्वमविभावित-
तूणीरमुखधनुर्गुणगमनागमनशरसन्धानमोक्षचटुलकरतलेन कुमारवृषसेनेनापि सर्वशेषं
प्रस्तुतं समरकर्म । [तदो अ देव, तं तारिसं पेशिख अ सत्तुपो समरव्यापारचउवत्तणं अविभाविततूणी
मुहधणुगुणगमणागमनसरसंधानमोक्षचटुलकरअलेण कुमालविससेणेण वि सविसेसं पत्तुदं समलकम्मं

दुर्योधनः—ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततो देव, अत्रान्तरे विमुक्तसमरव्यापारो मुहूर्तविश्रमितचैरानुबन्धं
द्वयोरपि कुरुराजपाण्डवबलयोः 'साधुः कुमारवृषसेन, साधु' इति कृतकलकलो वीर-
लोकोऽवलोकयितुं प्रवृत्तः । [तदो देव, एत्यन्तरे विमुक्तसमरव्यापारो मुहूर्तविस्समिदवेरपु
बन्धोदोणं वि कुरुराजपाण्डवबलाणं 'साधु कुमालविससेण, साधु' त्ति किदकलअलो वीरलोओ अ-
लोइदुं पउत्तो ।]

दुर्योधनः—(सविस्मयम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, अवधीरितसकलधानुष्कचक्रपराक्रमशालिनः सुतस्य तथा-
विधेन समरकर्मारम्भेण हर्षरोषकरुणासंकटे वर्तमानस्य स्वामिनोऽङ्गराजस्य निपतित-
शरपद्धतिर्भीमसेने वाष्पपर्याकुला दृष्टिः कुमारवृषसेने । [तदो अ देव, अवहीरिदसअलथा
णुक्कचक्कपराक्कमसालिणो सुदरस तहाविहेण समलकम्मालम्भेण हरिसरोसकरुणासंकडे वट्टमाणस
सामिणो अङ्गराजस्स णिवडिआ सरपद्धइ भीमसेणे वाप्पपज्जाउला दिट्ठी कुमालविससेणे ।]

दुर्योधनः—(समयन्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, उभयवत्प्रवृत्तसाधुकारामर्षितेन शरवर्षप्रज्वलितेन
गाण्डीविना तुरगेषु सारथावपि रथवरे धनुष्यपि जीवायामपि नरेन्द्रलान्छने सितात-
पत्रेऽपि च व्यापारितः समं शिलीमुखासारः । [तदो अ देव, उमअवलप्पउत्तसाधुकाराम
रिसिदेण सरवरिसपज्जलिदेन गाण्डीविणा तुरगेषु सारहिं पि रहवरे धणुं पि जीआइं पि णल्लिन्द
लञ्छणे सिदादवत्ते वि व्यावारिदो समं सिलीमुहासारो ।]

दुर्योधनः—(समयम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततो देव, विरथो लूनगुणकोदण्डः परिभ्रमणव्यापारमात्रप्रतिषिद्धशर-
संपातो मण्डलैर्विचरितुं प्रवृत्तः कुमारः ! [तदो देव, विरहो लूनगुणकोदण्डो परिभ्रमणव्या
वारमेत्तप्पाडिसिद्धसरसंपादो मण्डलेहिं विअरिदुं पउत्तो कुमालो ।]

वज्रपातस्य घोषः = शब्दः येन तादृशेन, बाणेत्यादिः—बाणानाम् = शराणाम् निपतनम् = प्रक्षेपः तेन
प्रतिषिद्धः = अवरुद्धः दर्शनप्रसरः = दृष्टिशक्तिः येन तादृशेन किरीटिना = अजुं नेन ॥

सुन्दरक इति । समरव्यापारचतुरत्वम्—समरस्य = युद्धस्य व्यापारे = कार्ये चतुरत्वम् =
कौशलम्, अविभावितेत्यादिः—अविभावितम् = अप्रकाशितम्, अविदितमित्यर्थः, तूणीरमुखधनुर्गुण-
गमनागमनेषु शरसन्धानेषु मोक्षेषु च चटुलम् = चञ्चलम् करतलम् = हस्ततलम् यस्य तेन, अदृष्टं
हस्तलाघवं तस्य शरसञ्चालने आसीदिति भावः ॥

सुन्दरक—तदनन्तर महाराज, शत्रु की युद्ध-कार्य में ऐसी चातुरी को देखकर कुमार वृषसेन ने भी और अधिक युद्ध-कौशल प्रदर्शित किया, उस समय उनका हाथ तरकश के मुख तथा धनुष की प्रत्यक्षा तक आने-जाने एवं बाण चढ़ाने और छोड़ने में इतना फुर्ती से कार्य कर रहा था कि यह सब दिखलाई ही नहीं पड़ता था ।

दुर्योधन—उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—तदनन्तर महाराज, इसी बीच युद्ध कार्य छोड़ कर, क्षण भर के लिए वैर-भाव का परित्याग कर कौरव तथा पाण्डव सेनाओं के वीर जन वाह ! कुमार वृषसेन, वाह ! इस तरह की तुमुल ध्वनि करते हुए (उन दोनों के युद्ध को) देखने में प्रवृत्त हुए ।

दुर्योधन—(आश्चर्य के साथ) उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—महाराज, तदनन्तर सकल धनुर्धारियों के समूह को तिरस्कृत करने वाले पराक्रम-शाली (अपने) पुत्र के ऐसे युद्ध-कार्य की पटुता से हर्ष, क्रोध, एवं करुणा के सङ्ग में पड़े हुए स्वामी अङ्गराज (कर्ण) को बाण-पंक्ति भीमसेन पर तथा आसुओं से डबडवायो आँख कुमार वृषसेन पर पड़ी ।

दुर्योधन—(भय के साथ) उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—महाराज, तदनन्तर दोनों दलों की सेनाओं के द्वारा की गयी (वृषसेन की) प्रशंसा से क्रुद्ध तथा बाणवृष्टि से तमनमाये हुए अर्जुन ने (वृषसेन के) बोझों पर, सारथि पर, धनुष पर, प्रत्यक्षा पर तथा राज-चिह्न श्वेत-छत्र पर एक साथ ही बाणों की बौछार की ।

विशेष-नरेन्द्रलाञ्छने—पुराने जमाने में राजा लोग कमल के आकार का एक श्वेत छत्र धारण किया करते थे । इसे देखकर लोग समझ जाते थे कि यह राजा हैं ।

दुर्योधन—(भयपूर्वक) उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—महाराज, तदनन्तर रथ-हीन, कटी हुई डोरी तथा धनुष वाला तथा चक्कर काटने मात्र से (पैतरा बदलने मात्र से) बाण वृष्टि को बचाता हुआ कुमार (वृषसेन) मण्डल बना कर घूमने लगा ।

दुर्योधन—(आश्चर्य के साथ) उसके बाद, उसके बाद ।

सुन्दरक इति—विमुक्तसमरव्यापारः—विमुक्तः=परित्यक्तः समरस्य=युद्धस्य व्यापारः=कर्म येन सः, मुहूर्तविश्रमितवैरानुबन्धः—मुहूर्तम् क्षणम् विश्रमितः=शियलोकृतः वैरानुबन्धः=शत्रुभावः येन सः ॥

सुन्दरक इति—अवधोरितेत्यादिः—अवधोरितम्=पराक्रमेण तिरस्कृतम् सकलम्=निखिलम् धानुकचक्रम्=धनुर्धारिणां समवायः येन सः चामी पराक्रमशाली तस्य ॥

सुन्दरक इति—उभयबलप्रवृत्तसाधुकारामर्षितेन—उभयबलयोः=कौरवपाण्डवसैन्ययोः प्रवृत्तः=कथितः, प्रदत्त इति यावत्, यः साधुकारः तेन अर्षितः=क्रुद्धः तेन, शरवर्षप्रज्वलिनेन—शरण्याम्=बाणानाम् वर्षैः=वर्षणैः प्रज्वलिनेन=दीप्तेन । नरेन्द्रलाञ्छने—नरेन्द्रस्य=मृपालस्य लाञ्छने=चिह्ने सितातपत्रे=कमलधवलातपत्रे, श्वेतच्छत्रे इत्यर्थः ॥

दुर्योधनः—(साशङ्कम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततो देव, सुतरथविध्वंसनामर्षोद्दीपितेन स्वाभिनाङ्गराजेनागणितभी-
सेनाभियोगेन परिसुक्तो धनञ्जयस्योपरि शिलीमुखासारः । कुमारोऽपि परिजनोंपनो-
मन्यं रथमारुह्य पुनरपि प्रवृत्तो धनञ्जयेन सहायोधितुम् । [ततो देव, सुदरहविद्धसपा-
मरिसुद्धो विदेण सामिणा अङ्गारण्ण अगणिअमोसेणाभोजोण्ण परि सुद्धो धणंज अरयसे उवरि सिलीमुहा-
सारो कुमालो वि परिजणोवणीदं अण्णं रहं आरुहिअ पुणोवि पउत्तो धणंजण सह आओधेदुम् ।]

उभौ—साधु, वृषसेन, साधु । ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततो देव, भणितं च कुमारैः—‘रे रे ताताधिषेपमुखर मध्यमपाण्डव, मम
शरास्तव शरीरमुज्झिस्वान्यस्मिन् निपतान्त’ इति भणित्वा शरसहस्रैः पाण्डवशरी-
प्रच्छाद्य सिंहनादेन गजितुं प्रवृत्तः । [भणितं च कुमालेण ‘रे रे ताताहिक्खेवमुहल मज्झमपण्डव,
मह सरा तुह सरीरं उज्झव अणसि ण णिवडन्ति, त्ति भणिअ सरसहस्सेहि पणववसरीरं पच्छादिअ
सिंहणादेण गजिज्जु’ पउत्तो ।]

दुर्योधनः—(सविस्मयम्) अहो बालस्य पराक्रमो सुधस्वभावोऽपि । ततस्ततः

सुन्दरकः—ततश्च देव, तं शरसंपातं समवधूय निशितशराभिघातजातमन्युना
किरीटिना गृहीता रथोत्सङ्गाक्वणत्कनककिङ्किणीजालझङ्कारविराविणी मेघोपरोधाविमु-
क्तनस्तलनिर्मला निशितश्यामलस्निग्धमुखी विविधरत्नप्रभाभासुरभीषणरमणीयदर्शना
शक्तिः सोपहासं विमुक्ता च कुमाराभिमुखी । [ततो अ देव, तं सरसंपादं समवधूयिअ णिसि-
दसराभिषादजादमण्णुणा किरीटिणा गहिदा रुहच्छङ्गादो वणन्तकणअकिङ्किणीजालझङ्कारविराशो
मेहोवरोहविमुक्कणहत्थलणिम्मला णिसिदसामलसिणिद्धमुहो विविहरअण्णहामासुरभीसणरमणिज्जदं-
सणा सत्तो सोवहासं विमुक्का अ कुमालाहिमुहो ।]

दुर्योधनः—(सविषादम्) अहह । ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, प्रज्वलन्तीं शक्तिं प्रेक्ष्य विगलितमङ्गराजस्य हस्तात्सशरं
धनुर्हृदयाद्वीरसुलभ उत्साहो नयनाद्वाष्पसलिलं वदनाद्रसितम् । हसितं च धनञ्जयेन,
सिंहनादं विनादितं वृकोदरेण, दुष्करं दुष्करमित्याक्रन्दितं कुरुवलेन । [ततो अ देव,
पज्जलन्तीं शक्तिं पेविअ विअलिअं अङ्गराअस्स हत्थादो ससरं धणु, हिअआदो वीरसुलहो उच्छाहो,
पअणादो वाप्पसलिलं, वअणादो रसदं । हसिदं अ धणंजण, सिंहणादं विणादिदं विओदलेण,
दुक्कलं दुक्कलं त्ति आक्कन्दिदं कुरुवलेण ।]

दुर्योधनः—(सविषादम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततो देव, कुमारवृषसेनेनाकर्णकृष्टनिशितक्षुरप्रैश्चिरं निध्यायार्धपथ
एव भागीरथीव भगवतो विषमलोचनेन त्रिधा कृता शक्तिः ।

[ततो देव, कुमालविससेणेण आक्कणाविट्ठणसिदखुरप्पे हि चिरं णिज्जाअअ अउपहे पव्व माई-

सुन्दरक इति—लूनगुणकोदण्डः—लूनौ=छिन्नौ प्रत्यञ्चाकोदण्डौ यस्य सः, परिभ्रमणेत्यादिः—

सुन्दरक—महाराज, तदनन्तर पुत्र के रथ को विनष्ट किये जाने से क्रुद्ध, स्वामी अङ्गराज (कर्ण) ने, भीमसेन के आक्रमण की परवाह न करते हुए, अर्जुन के ऊपर बाणों की वृष्टि आरम्भ की। कुमार (वृषसेन) भी, सेवकों के द्वारा लाये गये दूसरे रथ पर चढ़ कर फिर से अर्जुन के साथ युद्ध करने में लग गया।

दोनों—वाह ! वृषसेन, वाह ! उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—महाराज, तदनन्तर कुमार ने कहा—“रे रे पिताजी की निन्दा करने में वाचाळ मझले पाण्डव, मेरे बाण तुम्हारे शरीर को छोड़ कर (किसी) दूसरे पर नहीं पड़ रहे हैं” ऐसा कह कर हजार बाणों से पाण्डव (अर्जुन) के शरीर को ढक कर सिंहनाद से गरजने में प्रवृत्त हुआ (अर्थात् सिंहनाद करने लगा)।

दुर्योधन—(आश्चर्यपूर्वक) बालक का पराक्रम तथा मोलापन भी आश्चर्यजनक है। उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—महाराज, तदनन्तर उस बाण-वृष्टि को उड़ाकर (अर्थात् रोककर) तीखे बाणों के प्रहार से क्रुद्ध अर्जुन के द्वारा रथ के मध्य से, झनझनाती हुई सुवर्णनिर्मित घण्टियों के समूह के झङ्कार से शब्दायमान, बादलों के आच्छादन से रहित आकाशतल की तरह निर्मल, तीक्ष्ण, श्यामवर्ण तथा चिकने मुखवाली, विविध रत्नों की कान्ति से चमचमाती हुई तथा भीषण एवं सुन्दर दिखलाई पड़ने-वाली शक्ति (एक प्रकार का अस्त्र) उठायी गयी तथा हँस कर कुमार (वृषसेन) की ओईडोड़ दी गयी।

दुर्योधन—(दुःख के साथ) अहह ! उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—महाराज, उसके बाद आग उगलती हुई शक्ति को देख कर अङ्गराज (कर्ण) के हाथ से बाण चढ़ा धनुष तथा हृदय से वीरजनोचित उत्साह एवं नेत्रों से अश्रुजल और मुख से चोत्कार छूट पड़ा। अर्जुन हँसा, भीम ने सिंहगर्जन किया तथा कौरव-सेना ने—अनर्थ हुआ, अनर्थ हुआ—ऐसा कह कर करुण-क्रन्दन किया।

दुर्योधन—(दुःख के साथ) उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—महाराज, तदनन्तर कुमार वृषसेन ने देर तक लक्ष्य साध कर कान तक खींचे गये तीखे क्षुरप्र नाम के बाणों से बीच मार्ग में ही शक्ति को (उसी तरह) तीन टुकड़ों में खण्डित कर दिया जैसे भगवान् शङ्कर ने गङ्गा को (बीच मार्ग में ही) तीन खण्डों में विभक्त कर दिया था।

परिभ्रमणव्यापार एव परिभ्रमणव्यापारमात्रम् तेन प्रतिषिद्धः=निवारितः शरसम्पातः=अर्जुनकृत बाणवृष्टिः येन सः, कुमारः=कुमारवृषसेनः ॥

सुन्दरक इति । सुतरधविध्वंसनामर्षोद्दीपितेन—सुतस्य=पुत्रस्य, कुमारवृषसेनस्येत्यर्थः, रथस्य=यानस्य विध्वंसनम्=भञ्जनम् तेन यः अमर्षः=कोपः तेन उद्दीपितेन=प्रज्वलितेन, अगणितभीम-सेनाभियोगेन—अगणितः=तिरस्कृतः भीमसेनेन=वृकोदरेण यः अभियोगः=आक्रमणम् येन सः, शिलीमुखासारः—शिलीमुखानाम्=बाणानाम् आसारः=वृष्टिः ॥

सुन्दरक इति । ताताधिक्षेपमुखर—तातस्य=पितुः अधिक्षेपे=निन्दायाम् मुखरः=वाचाळः तत्सम्बुद्धौ, मध्यमपाण्डव=अर्जुन पाण्डवशरीरम्—पाण्डवस्य=अर्जुनस्य शरीरम्=देहम् ॥

सुन्दरक इति । शरसम्पातम्=बाणवृष्टिम्, निशितशरामिघातजातमनुना—निशिताः=तीक्ष्णाः

रही विअ भवअदा विममलोअणेण तिधा किदा । सत्ती]

दुर्योधनः—साधु, वृषसेन, साधु । ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, एतस्मिन्नन्तरे कृतकलकलमुखरेण वीरलोकनाधुवादेना-
न्तरितः समरत्यरवः । सिद्धचारणगणावमुक्तकुसुमप्रकरेण प्रच्छादितं समराङ्गणम् ।

[ततो अ देव एदस्मि अन्तले किदकलकलमुखरेण वीरलोअसाधुवादेण अन्तरिदो समरतरवी-
सिद्धचारणगणविमुक्तकुसुमप्रकरेण पच्छादिदं समराङ्गणम् ।]

दुर्योधनः—अहो बालस्य पराक्रमः । ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, भणितं स्वामिनाङ्गराजेन—‘भो वृकोदर, असमास्तव
ममापि समरव्यापारः । तदनुमन्यस्व मां सुहूर्तम् । प्रेक्षावहे तावद्वत्सस्य तव भ्रातुश्च
धनुर्वेदशिक्षानिपुणत्वम् । तवाप्येतत्प्रेक्षणीयम्’—इति ।

[ततो अ देव, भणितं सामिणा अङ्गराजेण—भो विकोदल असमतो तुह मह वि समलव्वावारो ।
ता अणुमण्ण मं मुहुत्तअम् । पेक्खामहे दाव वत्सस्स तुह भादुणो अ धणुव्वेदसिक्खानिउणत्तणम् । तुह
वि एदं पेक्खणिज्जं ति ।]

दुर्योधनः—ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततो देव, विश्रमितायोधनव्यापारी सुहूर्तविश्रमितनिजवैरानुबन्धौ
द्वावपि प्रेक्षकौ जातौ भीमसेनाङ्गराजौ ।

[ततो देव, विस्समिदाओधनव्वावारा मुहुत्तविस्समिदणिअवेराणुवन्धा दुवे वि पेक्खआ जादा
भीमसेणाङ्गराजा ।]

दुर्योधनः—(सामिप्रायम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, एतस्मिन्नन्तरे शक्तिखण्डनामर्षितेन गाण्डीविना भणितम्
—अरे रे दुर्योधनप्रमुखा—(इत्यर्थोक्तं लज्जां नाटयति) ।

[ततो अ देव, एदस्मि अन्तरे सत्तिखण्डणामरिसिदेण गाण्डीविणा भणिअम्—अरे रे दुज्जोह-
ण्णमुहा—]

दुर्योधनः—सुन्दरक, कथ्यताम् । परवचनमेतत् ।

सुन्दरकः—शृणोतु देवः । ‘अरे दुर्योधनप्रमुखाः कुरुबलसेनाप्रभवः, अरे अवि-
नयनाकर्णधार कर्ण, युष्माभिर्मम पराक्षं बहुमिर्महारथैः परिवृत्यैकाकी मम पुत्रकोऽभि-
मन्युर्व्यापादितः । अहं पुनर्युष्माकं प्रक्षमाणानामेवैतं कुमारवृषसेनं स्मर्तव्यं करोमि’ ।
इति भणित्वा सगर्वमास्फालितमनेन वज्रनिघातनिर्घोषभीषणजीवारवं गाण्डीवम् ।
स्वामिनापि सज्जीकृतं कालपृष्ठम् ।

ये शराः बाणाः तेषाम् अभिघातेन = प्रहारेण जातः = उत्पन्नः मन्युः = क्रोधः (‘मन्युकोधो’ इत्यमरः)
यस्य तेन, किरीटिना = अर्जुनेन, रथोत्सङ्गात् = रथमध्यात्, वणत्कनकेत्यादिः = वणन्ति = शब्दाव-
मानानि यानि कनककिङ्किणोजालानि = सीवर्णक्षुद्रवर्णकाजालानि तेषां झङ्कारेण = झणदिति शब्देन

विशेष—भागीरथीव—अत्यन्त वेग के साथ स्वर्ग से आती हुई गङ्गा को शङ्कर जी ने अपने शिर पर रोक कर तीन भागों में विभक्त कर दिया था। उनमें एक मूल को गङ्गा भागीरथी है, दूसरी आकाशगङ्गा मन्दाकिनी हैं और तीसरी हैं शङ्कर की दिव्य जटा में भ्रान्त ॥

दुर्योधन—वाह ! वृषसेन, वाह ! उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—महाराज, तदनन्तर इसी बीच की गयी कल-कल ध्वनि से उठे हुए, वीर जनों के द्वारा प्रदत्त वाह-वाही (शाबासी) के शब्द से युद्ध के नगाड़े की ध्वनि छिप गयी। सिद्ध एवं गणों के द्वारा वर्षाये गये पुष्प-ममूह से समर-भूमि ढक गयी।

दुर्योधन—आश्चर्यजनक है बालक का पराक्रम। उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—महाराज, तदनन्तर स्वामी अङ्गराज ने कहा—‘हे भीम, आप का तथा मेरा युद्ध-कार्य (अर्थात् हम दोनों में होने वाला युद्ध-कार्य) अभी समाप्त नहीं हुआ है। तो मुझे क्षणभर के लिए अनुमति दो। (हम दोनों भी) सम्प्रति वत्स (वृषसेन) तथा आप के माई (अर्जुन) की धनुर्विद्या की निपुणता को देखें। आप के लिए भी यह दर्शनीय है।’

दुर्योधन—उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—तदनन्तर महाराज, युद्ध-कार्य को रोके हुए तथा क्षणभर के लिए अपने वैर-भाव को दबाये हुए (अर्थात् शान्त किये हुए) भीमसेन और अङ्गराज—दोनों ही—दर्शक बन गये।

दुर्योधन—(अभिप्रायपूर्वक) उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—तदनन्तर महाराज, इसी बीच शक्ति के टुकड़े-टुकड़े करने से क्रुद्ध अर्जुन ने कहा—अरे रे दुर्योधन आदि—(—ऐसा आधा ही कहने पर लज्जा का अभिनय करता है)।

दुर्योधन—सुन्दरक कहो। यह शत्रु का कथन है (तुम्हारा नहीं, अतः लज्जित होने की आवश्यकता नहीं है)।

सुन्दरक—सुनें महाराज, ‘अरे दुर्योधन आदि कोरव-सेना के नायकों, अरे उद्विग्न-रूपी नौका के कर्णधार (खेवैया) कर्ण, तुम लोगों ने मेरे न रहने पर बहुत से महारथी एकत्रित होकर असहाय मेरे पुत्र अमिमन्यु का वध किया था। किन्तु मैं तुम सबके देखते ही इस कुमार वृषसेन को स्मरणमात्र से अवशिष्ट (अर्थात् विनष्ट) कर रहा हूँ—ऐसा कह कर अमिमान के साथ इसने वज्रपात के शब्द की तरह भीषण प्रत्यक्षा के शब्द वाले गाण्डीव का टक्कर किया। स्वामी (कर्ण) ने भी ‘कालपृष्ठ’ (नामक अपने धनुष) को सँभाला।

विराटिणी = शब्दायमाना, मेघोपरोषेत्यादिः—मेघैः = जलदैः यः उपरोषः = आच्छादनम् तस्मात् विमुक्तम् = विहीनम् यत् नमस्तलम् = गगनतलम् तद्वत् निर्मला = स्वच्छा, निशितश्यामलस्निग्ध-मुखो—निशितम् = अतितीक्ष्णम् स्निग्धम् = चिक्कणम् मुखम् = अग्रभागः यस्याः सा, विविधरत्ने-त्यादिः—विविधानाम् = अनेकवर्णानाम् रत्नानाम् = मणानाम् प्रभाभिः = कान्तिभिः मासुरा = प्रकाशमाना सा चासौ भीषणम् = भयङ्करम् रमणीयम् = मनोहरम् दर्शनं यस्याः सा तादृशी, कुमाराभि-मुखी = कुमारमुद्दिश्येत्यर्थः ॥

सुन्दरक इति। आकर्षकृष्टनिशितक्षुरप्रैः—आकर्षम् = आश्रवणम् कृष्टाः = आनीताः निशिताः = तीक्ष्णाः ये क्षुरमाः = क्षुरप्रवाणाः तैः, विषमलोचनेन = शङ्करेण, शक्तिः = आयुधविशेषः ॥

[सुणातु देवो । अरे दुज्जोहणप्पमुहा कुरुवल्लसेणापहुणो, अरे अविणअणोकण्णधार कण्ण, तुम्हेहि मह परोक्खं बहुहि महारहेहि पडिवारिअ एआई मम पुत्तओ अहिमण्णु वावादिदो । अहं उण तुष्माणं पेक्खन्ताणं एव्व एदं कुमालविससेणं सुमरिदव्वसेसं करोमि, त्ति भणिअ सगव्वं आप्फालिदं गेण वज्जणिग्वादिणिग्गोसमीसणजोआरवं गाण्डीवम् । सामिणा वि सज्जीकिदं कालपुट्ठम्]

दुर्योधनः—(सावहित्यम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, प्रतिषिद्धमीमसेनसमरकर्मारम्भेण गाण्डीविना विरचिते अङ्गराजवृषसेनरथकूलक्षेपे द्वे बाणनद्यौ । ताभ्यामपि द्वाभ्यासन्योन्यस्तेहृदशितशिखा-विशेषाभ्यामभियुक्तः स दुराचारो मध्यमपाण्डवः ।

[तदो अ देव, पडिसिद्धमीमसेणसमलकम्मालम्भेण गण्डीविणा विरइदा अङ्गराजविससेणरहकूल-कसाओ दुवे वाणपदोओ । तेहि वि दुवेहि अणोण्णसिणेहदंसिदसिक्खाविसेसेहि अभिजुत्तो सो दुराआरो मज्झमपण्डवो ।]

दुर्योधनः—ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, गाण्डीविना ताररसितजीवानिर्घोषमात्रविज्ञातवाणवर्षेण तथाचरितं पन्निभिर्यथा न नमस्तत्तलं न स्वामी न रथो न धरणी न कुमारी न केतुवंशो न बलानि न सारथिर्न न दिशो न वीरलोकश्च लक्ष्यते ।

[तदो अ देव, गाण्डीविणा ताररसिदजीआणिग्गोसमेत्तविण्णादवाणवरिसेण तह आअरिदं पत्तिहि जह ण पण्डत्तलं ण सामी ण रहो ण धरणी ण कुमालो ण केदुवंसो ण बलाइ ण सारही ण तुरङ्गमा ण दिसाओ ण वीरलोओ अ लक्खीअदि ।]

दुर्योधनः—(सविस्मयम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, अतिक्रान्ते शरवर्षे क्षणमात्रमेव सहर्षसिंहनादे पाण्डवसैन्ये सविषादमुक्ताक्रन्दे कौरवबले समुत्थितो महान् कलकलः 'हा हतः कुमारवृषसेनः' इति ।

[तदो अ देव, अदिकन्ते सरवरिसे कल्लणमेत्तं एव्व सहरिससिंहणादे पाण्डवसेण्ये सविषाद-मुक्ताक्रन्दे कौरवबले समुत्थितो महन्तो कलअलो हा हदो कुमाल विससेणोत्ति ।]

दुर्योधनः—(सवाष्परोधम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततो देव, प्रेक्षे कुमार हतसारथितुरङ्गं ललातपत्रचापचामरकेतुवंशं स्वर्गभ्रष्टमिव सुरकुमारमेकैव हृदयमर्मभेदिना शिलीमुखेन भिन्नदेहं रथमध्ये पर्यस्तम् ।

[तदो देव, पेक्खामि कुमालं हदसारहितुलङ्गं लूणादवत्तचावचामरकेदुवंसं सगग्गमट्ठं विअ मुलकुमालं एक्केण ज्जेव हिअअमम्मभेदिणा सिलीमुहेण मिण्णदेहं रहमज्जे पाल्लत्थं ।]

दुर्योधनः—(साधम्) अहह, कुमार वृषसेन । अलमतः परं श्रुत्वा । हा वत्स, हा मदङ्कदुर्ललित, हा मदाज्ञाकर, हा गदायुद्धप्रियशिष्य, हा शौर्यसागर, हा राधेय-

सुन्दरक इति । विश्रामतायोधनव्यापारौ—विश्रमितः=त्यक्त शरयर्थः व्याधनस्य=युद्धस्य व्यापारः=कार्यम् याभ्यां तौ, मुहूर्तविश्रमितनिजवेरानुबन्धौ—मुहूर्तम्=क्षणम् विश्रमितः=उपशान्तः

दुर्योधन—(मुख के भाव को छिपा कर) उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—तदनन्तर महाराज, भीमसेन के युद्ध-कार्य को रोक कर अर्जुन ने अश्वराज (कर्ण) एवं वृषसेन के रथ रूपी तटों को विदीर्ण करनेवाली दो बाण-नदियों की रचना की (अर्थात् दोनों की ओर बाणों की धारा चला दी) । परस्पर स्नेह के कारण (धनुर्विद्या विषयक) अपनी-अपनी विशिष्ट शिक्षा प्रदर्शित करने वाले उन दोनों (कर्ण एवं वृषसेन) के द्वारा भी मझला पाण्डव (अर्जुन) आक्रान्त (Attacked) किया गया ।

दुर्योधन—उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—तदनन्तर महाराज, प्रचण्ड शब्द करने वाली प्रत्यक्षा के गर्जनमात्र से विघात हो रही थी बाण-वर्षा जिसकी ऐसे अर्जुन ने बाणों से ऐसा (अद्भुत कौशल) प्रदर्शित किया जिससे कि न आकाश दिखलाई पड़ता था, न स्वामी, न रथ, न पृथिवी, न कुमार, न पताका का दण्ड, न सेनायें, न सारथी, न दिशाएँ और न वीरों का समूह ही ।

दुर्योधन—(आश्चर्य के साथ) उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—तदनन्तर महाराज, बाणवृष्टि के समाप्त होने पर क्षणभर के लिए पाण्डव-सेना के प्रसन्नतापूर्वक सिंहगर्जन करने पर तथा पाण्डव-सेना के विषादपूर्वक आक्रन्दन करने पर महान् कोलाहल उत्पन्न हुआ—‘हाय ! कुमार वृषसेन मार डाले गये ।’

दुर्योधन—(आँसुओं को रोकते हुए) उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—तदनन्तर महाराज, (मैंने) मारे गये सारथि तथा धोड़ेवाले, कटे हुए श्वेत छत्र चामर तथा पताका-दण्डवाले, हृदय के मर्म-स्थल को वीध देने वाले एक ही बाण से विदीर्ण शरीर-वाले कुमार (वृषसेन) को, स्वर्ग से गिरे हुए देवकुमार की तरह, रथ के मध्य में पड़ा हुआ देखा ।

दुर्योधन—(आँसु भरकर) अहह ! कुमार वृषसेन, इसके आगे सुनने की आवश्यकता नहीं ! हाय ! वत्स, हाय ! मेरी गोदी के आग्रही, हाय ! मेरी आज्ञा को सम्पादित करने वाले, हाय ! गदा-

निजवैरस्य = स्वशत्रुतायाः अनुबन्धः = आवेगः याभ्यां तौ, प्रेक्षकी = दर्शकी ॥

सुन्दरक इति ।—दुर्योधनप्रमुखाः—दुर्योधनः = सुयोधनः प्रमुखः = प्रधानः येषु ते, कुरुवल-सेनाप्रभवः—कुरुवलानाम् = कौरवशक्तीनाम् सेनानाम् = बलानाम् प्रभवः = स्वामिनः, अविनय-नौकर्णधारः—अविनयः = उद्धृता एव नीः = तरणिः तस्याः कर्णधारः = सञ्चालकः तत्सम्बुद्धौ । स्मर्तव्यशेषम् = स्मरणमात्रेणैवावशिष्टं करोमि, व्यापादयामौत्यर्थः । वज्रेत्यादिः = वज्रनिर्घातः = पताकापातः तस्य निर्घोषः = ध्वनिः तद्वत् मोघणः भयङ्करः जीवायाः = प्रत्यक्षाया रवः = शब्दः यस्य तत्, एतादृशं गाण्डीवम् = स्वधनुः । कालपृष्ठम् = कर्णधनुषः संशेयम् ॥

सुन्दरक इति ।—प्रतिषिद्धभीमसेनसमरकर्मारम्भेण—प्रतिषिद्धः = निषिद्धः भीमसेनस्य = स्वप्र-जस्य वृकादिरस्य समरकर्मारम्भः = युद्धकार्यप्रसरः येन तादृशेन, गाण्डीविना = अर्जुनेन; अश्वराजवृष-सेनरथकूलङ्घने—अश्वराजवृषसेनयोः = कर्णतत्पुत्रयोः रथौ = स्यन्दने एव कूले = तटे ते कपतः = विदार्य प्रवहतः इति, बाणनद्यौ—बाणाः = शराः एव नद्यौ इति बाणनद्यौ अन्योन्येति—अन्योन्यम् = परस्परम् स्नेहेन = प्रेम्णा दर्शितः—प्रदर्शितः शिक्षाविशेषः = धनुर्विद्यानिपुणत्वम् याभ्यां ताभ्याम्, मध्यम-

कुलप्ररोह, हा प्रियदर्शन, हा दुःशासननिर्विशेष, हा सर्वगुरुवत्सल, प्रयच्छ मे प्रतिवचनम् ।

पर्याप्तनेत्रमचिरोदितचन्द्रकान्त-

मुद्ग्लिद्यमाननवयौवनरम्यशोभम् ।

प्राणापहारपरिवर्तितदृष्टि दृष्टं

कर्णेन तत्कथमिवाननपङ्कजं ते ॥ १० ॥

सूतः—आयुष्मन्, अन्नमत्यन्तदुःखावेगेन ।

दुर्योधनः—सूत, पुण्यवन्तो हि दुःखमाजो भवन्ति । अस्माकं पुनः

प्रत्यक्षं हतबन्धूनामेतत्परिभवाग्निना ।

हृदयं दह्यतेत्यर्थं कुतो दुःखं कुतो व्यथा ॥ ११ ॥

(इति मोहमुपगतः)

सूतः—समाश्वसितु समाश्वसितु महाराजः । (इति पटान्तेन बीजयति)

दुर्योधनः—(लब्धसंशः) मद्र सुन्दरक, ततो वयस्येन किं प्रतिपन्नमङ्गराजेन ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, तथाविधस्य पुत्रस्य दर्शनेन संगलितमश्रुजलमुज्जित्वा अनवेक्षितपरप्रहरणाभियोगेन स्वामिनाङ्गराजेनाभियुक्तो धनञ्जयः । तं च सुतवधामर्षो-
द्दीपितराक्रमं विमुक्तजीविताशं तथा पराक्रामन्तं प्रेक्ष्य भीमनकुलसहदेवपाञ्चालप्रमुखै-
रन्तरितो धनञ्जयस्य रथवरः ।

[तदो अ देव, तथाविधस्य पुत्रस्य दंसणेन संगलितं अश्रुजलं उज्जितम् अपवेक्षितपरप्रहरणाभि-
जोषणं सामिणा अङ्गरायेण अभिजुक्तो धनञ्जयो । तं अ सुदवहामरिसुदीविदपरक्कमं विमुक्तजीविदाशं
तह परक्कमन्तं पेक्खिअ भीमणउलसहदेवपाञ्चालप्पमुहेहि अन्तरिदो धणञ्जयस्स रहवरो ।]

पाण्डवः = अर्जुनः ॥

सुन्दरक इति । ताररसितेत्यादिः—तारम् = उच्चैः रसितम् = गर्जनम् यस्याः सा तादृशी या
जोवा = प्रत्यक्षा तस्याः निर्धोषमात्रेण = टङ्कारमात्रेण विशातः = सूचितः बाणवर्षः = शरवृष्टिः यस्य
तादृशेन, गाण्डीविना = अर्जुनेन, पत्रिभिः = बाणैः, केतुवंशः = ध्वजादण्डः ॥

सुन्दरक इति । हतसारथितुरङ्गम्—हताः धातिताः सारथितुरङ्गाः = सुतारवाः यस्य तम्, लूना-
तपत्रचापचामरकेतुवंशम्—लूनाः = छिन्नाः आतपत्रचापचामरकेतुवंशाः = छत्रधनुः प्रकीणकध्वजदण्डाः
यस्य तम्, हृदयमर्ममेदिना—हृदयस्य मर्म = प्राणधारकं स्थलं भिनत्तीति तेन, शिलीमुखेन = बाणेन,
पर्यस्तम् = पतितम् ॥

अन्वयः—कर्णेन, ते, पर्याप्तनेत्रम्, अचिरोदितचन्द्रकान्तम्, उद्ग्लिद्यमाननवयौवनरम्यशोभम्,
प्राणापहारपरिवर्तितदृष्टि, तत्, आननपङ्कजम्, कथमिव, दृष्टम् ॥ १० ॥

शब्दार्थः—कर्णेन = कर्ण के द्वारा, ते = तुम्हारा पर्याप्तनेत्रम् = बड़ी-बड़ी आँखों वाला, अचिरोदित-
चन्द्रकान्तम् = तत्काल निकले हुए चन्द्रमा की तरह सुन्दर, उद्ग्लिद्यमाननवयौवनरम्यशोभम् = उमड़ती

युद्ध के प्रिय शिष्य, हाय ! शूरता के समुद्र, हाय ! कर्ण-कुल के अंकुर, हाय, देखने में प्रिय लगनेवाले, हाय ! दुःशासन—अभिन्न, हाय ! सभी गुरुओं के प्रेमी, मुझे उत्तर दो ।

कर्ण के द्वारा तुम्हारा बड़ी-बड़ी आँखोंवाला, तत्काल निकले हुए चन्द्रमा की तरह सुन्दर, उभड़ती हुई नयी जवानों के कारण मनोहर शोभा से सम्पन्न, प्राणों के निकल जाने से पलटी हुई दृष्टिवाला वह मुख कमल किस तरह देखा गया होगा ? ॥ १० ॥

सूत—चरञ्जीविन्, अत्यन्त दुःख का आवेग मत बढ़ने दे—

दुर्योधन—सूत, पुण्यशाली व्यक्ति ही दुःख का अनुभव करते हैं । किन्तु हमारा—

सामने ही मारे गये स्वजनवाले (हम लोगों) का हृदय अपमानरूपी अग्नि से अत्यन्त जल रहा है; (इस लिए) कहीं से दुःख और कहीं से पीड़ा (हो सकती है) ॥ ११ ॥

(ऐसा कह कर मूर्च्छित हो जाता है)

सूत—धैर्य धारण करें, धैर्य धारण करें, महाराज । (ऐसा कह कर वध के अञ्चल से हवा हाँकता है) ।

दुर्योधन—(चेतना प्राप्त कर) मले व्यक्ति सुन्दरक, तदनन्तर मित्र अङ्गराज (कर्ण) ने क्या किया ?

सुन्दरक—महाराज, तदनन्तर उस तरह पड़े हुए पुत्र को देख कर बहते हुए अश्रु-जल को बन्द कर शत्रुओं के प्रहार के उद्योग की परवाह न करते हुए स्वामी अङ्गराज (कर्ण) के द्वारा अर्जुन पर धावा बोल दिया गया । पुत्र के वध के क्रोध से उद्भिष्ट पराक्रम वाले, जीवन की आशा छोड़े हुए उनको उस तरह (भीषण) पराक्रम करते हुए देख कर भीम, नकुल, सहदेव तथा पाञ्चाल आदि के द्वारा अर्जुन का रथ आड़ में कर दिया गया ।

हुई नयी जवानों के कारण मनोहर शोभा से सम्पन्न, प्राणापहारपरिवर्तितदृष्टि = प्राणों के निकल जाने से पलटी हुई दृष्टिवाला, तत् = वह, आननपङ्कजम् = मुखकमल, कथमिव = किस तरह, दृष्टम् = देखा गया होगा ॥ १० ॥

पर्याप्तनेत्रमिति । कर्णेन = त्वत्पित्रा राधेयेनेत्यर्थः, ते = तव, पर्याप्तनेत्रम् = पर्याप्तम् = विशालम् नेत्रम् = लोचनम् यस्मिन् तत्, अचिरोदितचन्द्रकान्तम् = अचिरात् = तत्कालमित्यर्थः उदितः = निर्गतः चन्द्रः = चन्द्रमा इव कान्तम् = मनोहरम्, उद्भिद्यमाननवयौवनरम्यशोभम् = उद्भिद्यमानम् = उद्गच्छत् नवम् = नवीनम् यत् यौवनम् = युवावस्था तेन रम्या = मनोहारिणी शोभा = कान्तिः यस्य तत्, प्राणा-पहारपरिवर्तितदृष्टि—प्राणानाम् = अस्सनाम् ('प्राणार्थैव जीवोऽसुधारणम्' इत्यमरः) अपहारेण = विनाशेन परिवर्तिता = विपरीता, विपर्यस्तैत्यर्थः, दृष्टिः = लोचनम् यत्र तत्, तत् = तादृशम्, अति-सुन्दरमिति भावः, आननपङ्कजम् = आननम् = मुखम् पङ्कजम् = कमलम् इति आननपङ्कजम्, कथमिव = केन प्रकारेण, दृष्टम् = अवलोकितम् । अत्र चतुर्थे चरणे लुप्तोपमाङ्कारः । वसन्ततिलका छन्दः ॥ १० ॥

अन्वयः—प्रत्यक्षम्, हतबन्धूनाम्, (अस्माकम्), हृदयम्, परिमवाग्निना, अत्यर्यम्, दह्यते; (अतः), कुतः, दुःखम्, कुतः, व्यथा ? ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—प्रत्यक्षम् = सामने ही, हतबन्धूनाम् = मारे गये स्वजनवाले, (अस्माकम् = हम

दुर्योधनः—ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततो देव, शल्येन भणितम्—‘अङ्गराज, हततुरङ्गमो मग्नकूबरस्ते रथः । तन्न युक्तं भीमाजुनाभ्यां सहायोद्भुम् ।’ इति भणित्वा निवर्तितो रथोऽवतारितः स्वामी स्यन्दनाद् बहुप्रकारं च समाश्वासितः ।

[ततो देव, सल्लेप भणितम्—अङ्गराज, हततुरङ्गमो मग्नकूबरो दे रहो ता ण जुत्तं भीमाजुणेहि सह आजुज्झिदुं । त्ति भणित्वा निवर्त्तिदो रहो ओदारिदो सामी सन्दणादो बहुप्पआर अ समस्सासिदो ।]

दुर्योधनः—ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च स्वामिना सुचिरं विलप्य परिजनोपनीतमन्यं रथं प्रेक्ष्य दीर्घनिःश्वस्य मयि दृष्टिर्विनिक्षिप्ता । सुन्दरक एहीति भणितं च । ततोऽहमुपगतः स्वामि-समीपम् । ततोऽपनीय शीघ्रस्थानात्पट्टिकां शरीरसंगलितैः शोणितविन्दुभिल्लिसमुत्सृज्य बाणं कृत्वाभिलिख्य प्रेषितो देवस्य संदेशः । (इति पट्टिकामर्पयति) । [ततो अ सामिना सुशरं विद्विज्य परिभ्रमोवणादं अण्णं रहं पेक्खिअ दीहं निस्ससिअ मइ दिट्ठी विणिक्खिदिदा । सुन्दरअ, पट्टि त्ति भणितं अ । तदो अहं उवगदा सामिसमीवम् । तदो अवणोअ सीसट्ठाणादो पट्टिअं सरीरसंगलिदेहि सोणिअविदुहि लिच्चमुहं बाणं कटुअ अहिहलिहअ पेसिदो देवस्स देवस्स संदेसो ।]

(दुर्योधनो गृहीत्वा वाचयति यथा)

स्वस्ति । महाराजदुर्योधनं समराङ्गणात्कर्ण एतदन्तं कण्ठे गाढमालिङ्ग्य विज्ञापयति ।

अस्त्रग्रामविधौ कृती न समरेष्वस्यास्ति तुल्यः पुमान्

भ्रातृभ्योऽपि समाधिकोऽयममुना जेयाः पृथासूनवः ।

यत्संभावित इत्यहं न च हतो दुशासनारिर्मया

त्वं दुःखप्रतिकारमेहि भुजयोर्वीर्येण बाष्पेण वा ॥ १२ ॥

लोगो का), हृदयम्=हृदय, परिभवाग्निना=अपमान रूपी अग्नि से, अत्यर्थम्=अत्यन्त, दहते=जल रहा है; (अतः=इतलिय), कुतः=कहाँ से, दुःखम्=दुःख, कुतः=कहाँ से, व्यथा=पीडा (हो सकती है) ॥ ११ ॥

प्रत्यक्षमिति—प्रत्यक्षम्=समक्षम्, हतवन्धूनाम्—हताः=विनाशिताः बन्धवः=स्वजनः। येषां तेषाम्, अस्माकमिति शेषः, हृदयम्=चेतः, परिभवाग्निना—परिभवः=अवमानना एव अग्निः=वह्निः तेन, अत्यर्थम्=अत्यधिकम्, दहते=दाहवत्क्रियते; (अतः), कुतः=कस्मात्, दुःखम्=कष्टम्, कुतः=कस्मात्, व्यथा=पीडा, भवितुमर्हतीति शेषः । सति स्वास्थ्ये सुखानुभूतिर्दुःखानुभूतिश्चेति । समायाते च प्रबले दुःखे साधारणदुःखानुभवोऽपि न प्रतीयते इत्यभिप्रायः । अत्र द्वितीये चरणे रूपका-लङ्कारः । पथ्यावक्त्रं छन्दः ॥ ११ ॥

सुन्दरक इति । अनवेक्षितपरप्रहरणभियोगेन—अनवेक्षिताः=अगणिताः परेषाम्=शत्रूणां प्रहरणानाम्=आयुधानाम् अभियोगाः=उद्योगाः येन तादृशेन, अमियुक्तः=आक्रान्तः । सुतवधा-

दुर्योधन—उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—महाराज, तदनन्तर शल्य ने कहा—‘अङ्गराज, तुम्हारे रथ के घोड़े मार डाले गये हैं तथा कूबर टूट चुका है। इसलिये भीम और अर्जुन—दोनों के साथ युद्ध करना ठीक नहीं है।’ ऐसा कह कर रथ लौटा लिया गया, स्वामी (कर्ण) रथ से उतार लिये गये तथा अनेक प्रकार से ढाँढस बँधाये गये।

विशेष-शल्येन—शल्य एक राजा तथा जाने-माने योद्धा थे। वे रथ हाँकने की क्रिया में भी बहुत निपुण थे। कर्ण अर्जुन का भलो-मति सुकावला कर सकें पतदर्यं शल्य उनका रथ हाँक रहे थे।

कूबरः—गाड़ी की बल्ली या स्थूल-भुजा जिसमें जूआ बाँधा जाता है ॥

दुर्योधन—उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—तदनन्तर स्वामी (कर्ण) ने काफी देर तक विलाप करके सेवकों के द्वारा लाये गये दूसरे रथ को देख कर लम्बी साँस लेकर मेरे ऊपर निगाह डाली और कहा भी—सुन्दरक आओ। तदनन्तर मैं स्वामी के पास गया। इसके बाद शिर की पट्टी हटा कर शरीर से बहते हुये रक्त-बिन्दुओं से भीगे मुखवाले बाण से (अर्थात् बाण का मुख भिगोकर) लिखकर महाराज ने (आप) को सन्देश भेजा है।

(दुर्योधन लेकर बाँचता है)

स्वस्ति, कर्ण युद्ध-स्थल से महाराज दुर्योधन का यह अन्तिम कण्ठालिङ्गन करके निवेदन करता है—यह (कर्ण) शस्त्र-समूह के प्रयोग में कुशल (है; कोई भी) पुरुष युद्ध में इसकी बराबरी का नहीं है, (यह) मेरे भाइयों से भी अधिक (सहारा) है, इसके माध्यम से कुन्ती के पुत्र (युधिष्ठिर आदि) जीते जायेंगे—ऐसा कह कर मैं आपके द्वारा यतः सम्मानित किया गया हूँ। किन्तु मेरे द्वारा दुःशासन का शत्रु (भीम) नहीं मारा गया। (इसलिये अब) आप (अपनी) भुजाओं के पराक्रम से अथवा आँसुओं से दुःख के प्रतिकार का प्राप्त होओ अर्थात् दुःख का प्रतिकार करो ॥१२॥

मर्षोद्दीपितपराक्रमम्—सुतस्य = पुत्रस्य यो वधः = विनाशः तेन यो अमर्षः = कोपः तेन उद्दीपितः = वृद्धिद्वस्तः पराक्रमः = बलेनाक्रमणम् यस्य स तम्, विमुक्तजीविताशम्—विमुक्ता = परित्यक्ता जीवितस्य = जीवनस्य आशा येन तम्। अन्तरितः = आच्छादितः ॥

सुन्दरक इति। हततुरङ्गमः—हताः = मारिताः तुरङ्गमाः = अश्वाः यस्य सः, भग्नकूबरः—भग्नः = ध्वस्तः कूबरः = रथस्थूणा यस्य सः ॥

स्वस्तीति। समराङ्गणात् = युद्धस्थलात्, पतदन्तम्—एतत् = आलिङ्गनमित्यर्थः अन्तम् = अन्त्यामित्यर्थः यस्मिन् कर्मणि यथा तथा, विज्ञापयति = निवेदयति ॥

अन्वयः—अयम्, अस्त्रग्रामविधौ, कृती, (वर्तते, कश्चिदपि), पुमान्, समरेषु, अस्य, तुल्यः, न, अस्ति; (अयम्), मम भ्रातृभ्योः, अपि, अधिकः, (अस्ति); अमुना, पृथासूत्रः, जेयाः; इति, अहम्, यत्, सम्भावितः; च, मया, दुःशासनारिः, न, हतः; (अतः, सम्प्रति), त्वम्, भुजयोः, वीर्येण, वा, बाष्पेण, दुःखप्रतिकारम्, एहि ॥ १२ ॥

दुर्योधनः—वयस्य कर्ण, किमिदं भ्रातृशतवधदुःखितं मामपरेण वाक्शलेषु
वदथासि । मद्र सुन्दरक, अथेदानीं किमारम्भोऽङ्गराजः ।

सुन्दरकः—देव, अपनीतशरीरावरण आत्मवधकृतनिश्चयः पुनरपि पार्थेन सह
समरं मार्गयते । [देव, अवणीदसरोरावरणो अप्पवहकिदणिच्चओ पुणो वि पत्थेण सह सम
मगदि ।]

दुर्योधनः—(अवेगादासनादुत्तिष्ठन्) सूत, रथमुपनय । सुन्दरक, त्वमपि मद्र-
नात्वरिततरं गत्वा वयस्यमङ्गराजं प्रतिबोधय अलमतिसाहसेन । अस्मिन्न एवायमावयो-
संकल्पः । न खलु भवानेको जीवितप्राप्त्यागाकाङ्क्षी । किं तु

हत्वा पार्थान्सलिलमशिवं बन्धुवर्गयि दत्त्वा

मुक्त्वा बाष्पं सह कतिपयैर्मन्त्रिभिश्चारिभिश्च ।

कृत्वान्योन्यं सुचिरमपुनर्भावि गाढोपगूढं

सत्यक्ष्यावो हततनुमिमां दुःखितौ निर्वृतां च ॥ १३ ॥

अथ च शोकं प्रति मया न किञ्चित्संदेष्टव्यम् ।

शब्दार्थः—अयम् = यह, अन्नग्रामविधौ = शस्त्र-समूह के प्रयोग में, कृती = कुशल, (वर्तते = है,
कश्चिदपि = कोई भी), पुमान् = पुरुष, समरेषु = युद्ध में, अस्य = इसकी, तुल्यः = बराबरी का, न =
नहीं, अस्ति है; (अयम् = यह) मम = मेरे, भ्रातृभ्यः = भाइयों से, अपि = भी, अधिकः = अधिक,
(अस्ति = है); अमुना = इसके माध्यम से, पृथासुनवः = कुन्ती के पुत्र, जेयाः = जीते जायेंगे; इति =
ऐसा कह कर, अहम् = मैं, यत् = जो कि, सम्भावितः = आपके द्वारा सम्मानित किया गया हूँ, च =
किन्तु, मया = मेरे द्वारा, दुःशासनारिः = दुःशासन का शत्रु (भीम), न = नहीं, हतः = मारा गया,
(अतः = इसलिये, सम्प्रति = अब), त्वम् = आप, भुजयोः = भुजाओं के, वीर्येण = पराक्रम से, वा =
अथवा, बाष्पेण = आँसुओं से, दुःखप्रतिकारम् = दुःख के प्रतिकार को, एहि = प्राप्त होओ ॥ १२ ॥

अस्त्रग्रामविधाविति । अयम् = एषः, कर्ण इत्यर्थः, अस्त्रग्रामविधौ = अस्त्राणाम् = आयुधानाम्
ग्रामस्य = समूहस्य, विधौ = क्रियायाम्, आयुधसञ्चालने इत्यर्थः, कृती = कुशलः, वर्तते, कश्चिदपीति
शेषः, पुमान् = पुरुषः, समरेषु = युद्धेषु, अस्य = एतस्य, तुल्यः = समः, न अस्ति = न वर्तते; अयम्,
मम = दुर्योधनस्य, भ्रातृभ्यः = अनुजेभ्यः, अपि, अधिकः = विशिष्टः, अस्तीति शेषः; अमुना = एतेन,
पृथासुनवः = पृथायाः = कुन्त्याः सुनवः = पुत्राः, पाण्डवा इति यावत्, जेयाः = वशीकर्तुं योग्याः;
इति = इति विचार्य, अस्माद्धेतोर्वा, अहम् = कर्णः, यत्, सम्भावितः = सत्कृतः, च = किन्तु, मया =
त्वया सत्कृतेन कर्णेनेत्यर्थः, दुःशासनारिः = दुःशासनहन्ता भीमः, न हतः = न विनाशितः; अतः
सम्प्रतीति शेषः, त्वम् = भवान्, भुजयोः = बाह्वोः, वीर्येण = बलेन, वेति विकल्पे, बाष्पेण = अश्रूणां
दुःखप्रतिकारम् — दुःखस्य प्रतिकारम् = प्रतीकारम्, पारमिति यावत्, एहि = प्राप्तुहि । यदि
बलं तदा वीर्येण शत्रुया रोदनेन दुःख स्वल्पं विधेहीति भावः । अहं तव शत्रुविनाशनेऽशक्तो मर्तुमुद्यत
इति गूढरहस्यम् । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ १२ ॥

विशेष—वीर्येण बाष्पेण वा—पराक्रमी व्यक्ति शत्रुओं के अपमान का बदला पराक्रम से चुकाता है तथा निर्बल रोकर। कर्ण के कहने का भाव यह है कि यदि आप में शक्ति हो तो शत्रुओं के पत्थर का जवाब पत्थर से देकर सुखी बनें और यदि शक्ति न हो तो रोकर अपने दुःख को कम करें ॥ १२ ॥

दुर्योधन—मित्र कर्ण, सौ भाइयों के बच से दुःखित मुझे यह बचनरूपी दूमरे बाण से क्यों बीच रहे हो? भले सुन्दरक, अच्छा, अब अक्षराज क्या कर रहे हैं?

सुन्दरक—महाराज, शरीर के आवरण (अर्थात् कवच) को हटाकर अपने बच का निश्चय करते हुए फिर से अर्जुन के साथ युद्ध की कामना कर रहे हैं।

दुर्योधन—(आवेग पूर्वक आसन से उठते हुये) स्त, रय लाओ। सुन्दरक, तुम भी अतिशीघ्र जाकर मेरे वचनों से (अर्थात् मेरी ओर से) मित्र अक्षराज को सान्त्वना प्रदान करो—अत्यधिक साहस की आवश्यकता नहीं। हम दोनों का सङ्कल्प समान (एक) ही है। न केवल आप ही पाणों को छोड़ने की इच्छा कर रहे हैं, बल्कि—

कुन्ती के पुत्रों को (अर्थात् पाण्डवों को) मार कर, बान्धवों को अमङ्गल जल (अर्थात् तिआ-ज्जल) देकर, (बचे हुये) कुछ मन्त्रियों तथा सेवकों के साथ आँसु बहा कर आपस में काफी देर तक पुनः न प्राप्त होने वाले गाढ़ आलिङ्गन को करके दुःखी तथा सन्तुष्ट (होते हुये) इस अवम शरीर को छोड़ेंगे ॥ १३ ॥

विराट-अपुनर्मात्रि—यतः हम दोनों मर जायेंगे, अतः यह आपस का आलिङ्गन हम दोनों को पुनः न प्राप्त होगा।

दुःखितौ, निवृत्तौ च—दुःखित एवं सन्तुष्ट होते हुए। दुःखित इसलिए कि समूचा बन्धुवर्ग तथा अपना पक्ष एवं परिवार आदि विनष्ट हो गया रहेगा। सन्तुष्ट इसलिए कि शत्रुओं का नाश कर डाले रहेंगे ॥ १५ ॥

श्रीर शोक के प्रति तो कुछ कहलवाना ही नहीं है—

दुर्योधन इति। भ्रातृशतवधदुःखितम्—भ्रातृशतस्य वधेन=विनाशेन दुःखितम्=खिन्नम्, षट्स्यसि=योजयसि। किमारम्भः—कः आरम्भः=कार्य यस्य सः ॥

सुन्दरक इति। अनीतशरीरावरणः—अनीतम्=दूरीकृतम् शरीरस्य=देहस्य आवरणम्=रसकम्, कवचमित्यर्थः, येन सः, आत्मवधकृतनिश्चयः—आत्मनः=स्वस्य वधाय=नाशाय कृतः=चिन्तितः निश्चयः=इडा धारणा येन सः, मार्गयते=अन्वेषयति, वाञ्छते इत्यर्थः ॥

दुर्योधन इति। अभिन्नः=एकः, समानः। जावितपरित्यागाकांक्षो—जोवितस्य=जोवनस्य परित्यागम्=विसर्जनम् आकांक्षते=अभिलषतोति तादृशः ॥

अन्वयः—पार्यान्, हस्ता, बन्धुवर्गाय, अशिवम्, सलिलम्, दस्त्रा, (अवशिष्टैः), कतिपयैः, मन्त्रिभिः, च, चारिभिः, सह, बाष्पम्, मुक्त्वा, परस्परम्, सुचिरम्, अपुनर्मात्रि, गाढोपगूढम्, कृत्वा, दुःखितौ, च, निवृत्तौ, (सन्तौ), इमाम्, हततनुम्, सन्त्यक्ष्यावः ॥ १३ ॥

वृषसेनो न ते पुत्रो न मे दुःशासनोऽनुजः ।

त्वां बोधयामि किमहं त्वं मां संस्थापयिष्यसि ॥ १४ ॥

सुन्दरकः—यद्देव आज्ञापयति (इति निष्क्रान्तः) । [जं देवो आणवेदि ।]

दुर्योधनः—तूर्णमेव रथमुपस्थापय ।

सूतः—(कर्ण दत्त्वा) देव, हे षासंबलितो नेमिध्वनिः श्रूयते । तथा तर्कयामि नूनं परिजनोपनीतो रथः ।

दुर्योधनः—सूत, गच्छ त्वं सज्जीकुरु ।

सूतः—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविशति)

दुर्योधनः—(विलोक्य) किमिति नारुढोऽसि ।

सूतः—एष खलु तातोऽम्बा च सञ्जयाधिष्ठितं रथमारुह्य देवस्य समीपमुपगतौ ।

दुर्योधनः—किं नाम तातोऽम्बा च संप्राप्तौ । कष्टमतिबीभत्समाचरितं देवेन । सूत, गच्छ त्वं स्यन्दनं तूर्णमुपहर । अहमपि तातदर्शनं परिहन्नेकान्ते तिष्ठामि ।

सूतः—देव, त्वदेकशेषवान्धवावेतौ कथमिव न समाश्वासयसि ।

शब्दार्थः—पार्थान्=कुन्ती के पुत्रों को, हत्वा=मारकर, बन्धुवर्गाय=बान्धवों को, अशिवम्=अमङ्गल, सलिलम्=जल, दत्त्वा=देकर, (अवशिष्टैः=बचे हुए), कतिपयैः=कुछ, मान्त्रभिः=मन्त्रियों, च=तथा, चारिभिः=सेवकों के, सह=साथ, बाष्पम्=आँसू, मुक्त्वा=बहा कर, परस्परम्=आपस में, सुचिरम्=काफी देर तक, अपुनर्मावि=पुनः न प्राप्त होने वाले, गाढोपगूढम्=गाढ़े आलिङ्गन को, कृत्वा=करके, दुःखितौ=दुःखी, च=तथा, निर्वृतौ=सन्तुष्ट, (सन्तौ=होते हुए), श्माम्=इस, हततनुम्=अधम शरीर को, सन्त्यक्ष्यावः=छोड़ेंगे ॥ १३ ॥

हत्वेति । पार्थान्=पृथायाः पुत्रान्, पाण्डवानित्यर्थः, पृथा पाण्डवमातुः संज्ञा, हत्वा=विनाश्य, बन्धुवर्गाय=बान्धवैभ्यः, अशिवम्=अमङ्गलम्, सलिलम्=जलम्, तिलाञ्जलिमित्यर्थः, दत्त्वा=समर्प्य, अवशिष्टैः=उर्वरितैः, कतिपयैः=स्वल्पैरिति यावत्, मान्त्रभिः=सचिवैः, च=तथा, चारिभिः=सेवकैः, सह=साकम्, बाष्पम्=अश्रु, मुक्त्वा=त्यक्त्वा, रुदित्वेत्यर्थः, परस्परम्=अन्योन्यम्, सुचिरम्=चिरम्, अपुनर्मावि=भाविनि काले न प्राप्तव्यम्, गाढोपगूढम्=गाढालिङ्गनम्, कृत्वा=विधाय, दुःखितौ=वर्गविनाशेन दुःखमनुभवन्तौ, च=तथा, निर्वृतौ=शत्रुविनाशेन सन्तोषमनुभवन्तौ, श्माम्=पतम्, हततनुम्=अधमं शरीरम्, सन्त्यक्ष्यावः=हास्यावः, आवामिति शेषः । मन्दाक्रान्ता छन्दः ॥ १३ ॥

अन्वयः—वृषसेनः, ते, पुत्रः, न, दुःशासनः, न, मे, अनुजः; (अत्र), अहम्, त्वाम्, किम्, बोधयामि ?, (वा), त्वम्, माम्, (किम्), संस्थापयिष्यसि ? ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—वृषसेनः=वृषसेन, ते=तुम्हारा, पुत्रः=पुत्र, न=नहीं था, दुःशासनः=दुःशासन, न=न तो, मे=मेरा, अनुजः=भाई था, (अत्र=इस विषय में), अहम्=मैं, त्वाम्=तुझे, किम्

वृषसेन तुम्हारा पुत्र नहीं था और दुःशासन न तो मेरा भाई था (यदि ऐसी बात न होती तो वे लोग हम लोगों का इस विपत्ति में साथ छोड़ कर चल न देते) । (इस विषय में) मैं तुझे क्या ढाढस बँधाऊँ ? (अथवा) तुम मुझे (क्या) धैर्य धारण कराओगे (जब संसार को हो यह गति है) ॥ १४ ॥

सुन्दरक—जैसी महाराज आज्ञा दे रहे हैं (ऐसा कह कर निकल गया)

दुर्योधन—अति शीघ्र ही रथ लाओ ।

सूत—(कान लगा कर) महाराज, बोड़ों की हिनहिनाहट से युक्त रथ के पहिये के छोर की आवाज सुनाई पड़ रही है । इससे अनुमान करता हूँ कि निश्चय ही रथ परिजनों के द्वारा लाया जा रहा है ।

दुर्योधन—सुत, जाओ तुम (उसे) सजाओ ।

सूत—जैसी महाराज आज्ञा दे रहे हैं (ऐसा कह कर निकल कर फिर प्रवेश करता है)

दुर्योधन—(देख कर) क्यों (रथ पर) नहीं चढ़े हो ?

सूत—यह पिताजी तथा माताजी सञ्जय के द्वारा हाँके जाते हुए रथ पर बैठ कर महाराज (आप) के पास आ गये हैं ।

दुर्योधन—क्या पिताजी और माताजी आ गये ? आह ! दैव ने बड़ा घृणित आचरण किया । सुत, जाओ तुम रथ को अतिशीघ्र लाओ । मैं भी पिताजी तथा माताजी की आँखों (वस्तुतः सञ्जय की आँखों) को बचाता हुआ एकान्त में खड़ा हो जाता हूँ ।

सूत—महाराज आप ही एकमात्र बचे हुए जिनके सगे सम्बन्धी हैं, ऐसे इन दोनों को क्यों नहीं धोरज बँधाते हैं ?

= क्या, बोधयामि = ढाढस बँधाऊँ ? (वा = अथवा), त्वम् = तुम्, माम् = मुझे, किम् = क्या), संस्थापयिष्यसि = धैर्य धारण कराओगे ॥ १४ ॥

वृषसेन इति । वृषसेनः = वृषसेन, ते = तव, पुत्रः = सुतः, न = न आसीत्, दुःशासनः, न मे = मम, अनुजः = कनिष्ठः, (अत्र = अस्मिन् विषये), अहम् = दुर्योधनः, त्वाम् = भवन्तं कर्णम्, किं बोधयामि = आश्वासयामि, (वा = अथवा), त्वम् = भवान्, माम् = दुर्योधनम्, (किम्), संस्थापयिष्यसि = बोधयिष्यसि ? नश्वरस्य संसारस्य गतिरेवेदुशी अत्र किं वक्तव्यमिति भावः । वृषसेनो न ते पुत्रोऽपितु ममापि, दुःशासनो ममैव न कनिष्ठोऽपितु तवाऽसीति व्याख्या प्रकरणविषयासाद्धेया । अनुशुप् छन्दः ॥ १४ ॥

सूत इति । त्वदेकशेषवान्धवौ—त्वम् एकः शेषः = जीवितः इत्यर्थः बान्धवः = स्वजनः ययोः तौ ॥

दुर्योधनः--सूत, कथमिव समाश्वासयामि त्रिमुखसागधेयः । पश्य--

अद्यैवावां रणमुपगतौ तातमम्बां च दृष्ट्वा
घ्रातस्ताभ्यां शिरसि विनतोऽहं च दुःशासनश्च ।
तस्मिन्बाले प्रसभमरिणा प्रापिते तामवस्थां
पार्श्वं पित्रोरपगतघृणः किं नु वक्ष्यामि गत्वा ॥ १५ ॥

तथाप्यवश्यं वन्दनीयौ गुरु ।

(इति निष्क्रान्तौ)

❀ इति चतुर्थोऽङ्कः ❀

अन्वयः—तातम्, च, अम्बाम्, दृष्ट्वा, अद्य, एव, रणम्, उपगतौ; विनतः, अहम्, च, दुःशासनः, च, शिरसि, ताभ्याम्, घ्रातः; तस्मिन्, बाले, अरिणा, प्रसभम्, ताम्, अवस्थाम्, प्रापिते, अपगतघृणः, (अहम्), पित्रोः, पार्श्वम्, गत्वा, किन्तु, वक्ष्यामि ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—तातम् = पिताजी को, च = और, अम्बाम् = माता जी को, दृष्ट्वा = देख कर, अद्य = आज, एव = ही, आवाम् = हम दोनों, रणम् = युद्धभूमि को, उपगतौ = गये थे, विनतः = झुका हुआ, अहम् = मैं, च = तथा, दुःशासनः = दुःशासन, च = भी, शिरसि = मस्तक पर, ताभ्याम् = उन दोनों के द्वारा, घ्रातः = सूँघा गया था, तस्मिन् = उस, बाले = बालक के ऊपर, अरिणा = शत्रु के द्वारा, प्रसभम् = दृष्टात्, ताम् = उस, अवस्थाम् = अवस्था को, प्रापिते = प्राप्त करा दिये जाने पर, अपगतघृणः = निर्दय, (अहम् = मैं), पित्रोः = माता पिता के, पार्श्वम् = पास, गत्वा = जाकर, किं नु = क्या, वक्ष्यामि = कहूँगा ? ॥ १५ ॥

दुर्योधन—युत, विपरीत-भाग्यवाला (मैं) किस तरह धीरज बँधाऊँ ? देखो—

पिता तथा माता जी को देखकर आज ही हम दोनों युद्ध-भूमि को गये थे । (प्रणाम करने के लिए) झुका हुआ मैं तथा दुःशासन भी मस्तक पर उन दोनों के द्वारा सूँधा गया था । उस बालक के ऊपर शत्रु के द्वारा हठाव उस (अनुचिन) अवस्था को प्राप्त करा दिये जाने पर निर्दय (मैं) माता-पिता के पास जाकर क्या कहूँगा ? ॥ १५ ॥

तो भी माता-पिता अवश्य वन्दनीय हैं ।

विशेष—शिरसि घ्रातः=शिर पर सूँधा गया था । प्राचीन काल में कहीं जाने के समय या कहीं से आने पर बड़े-बूढ़े छोटे जनों के शिर को सूँध कर अपना स्नेह-प्रदर्शित किया करते थे ॥ १५ ॥

(इस तरह दोनों निकल गये)

॥ चतुर्थ अङ्क समाप्त ॥

अद्यैवेति । तातम् = पितरम्, च = तथा, अम्बाम् = मातरम्, दृष्ट्वा = अवलोकयित्वा, अथ = अस्मिन् दिने, एव = हि, आवाम् = अहं दुःशासनश्च, रणम् = युद्ध-भूमिम्, उपगतौ = उपयातौ; विनतः = प्रणामार्थं नम्रः; अहम् = दुर्योधनः, च = तथा, दुःशासनः, च = अपि, शिरसि = मस्तके, ताभ्याम् = पितृभ्याम्, घ्रातः = नासिकाविषयोऽकृतः; तस्मिन् = तादृशे, बाले = बालके, दुःशासने इत्यर्थः, अरिणा = शत्रुणा, प्रसमम् = बलात्, ताम् = तादृशीम्, अनुचितां मरणरूपमित्यर्थः, अवस्थाम् = दशाम्, प्रापिते = संयोजिते सति; अपगतघृणः = अपगता = दूरीभूता घृणा = दया (‘जुगुप्सा कर्षणा घृणा’ इत्यमरः) यस्मात् स तादृशः, अहमिति शेषः, पित्रोः = जननी वनकयोः, पित्रोरित्यत्र ‘पिता मात्रा’ इत्येकशेषः, पार्श्वम् = समीपम्, गत्वा = यात्वा, किं नु = किम्, वक्ष्यामि = कथयिष्यामि । मन्दाक्रान्ता छन्दः ॥ १५ ॥

॥ इति रमाशङ्करत्रिपाठिकृतायां वेष्ठीसंहारव्याख्यायां
रमाख्यायां चतुर्थोऽङ्कः ॥

पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति रथयानेन गान्धारी संजयो धृतराष्ट्रश्च)

धृतराष्ट्रः—वत्स संजय, कथय कथय कस्मिन्नुद्देशे कुरुकुलकाननैकशेषप्रवालो वत्सो मे दुर्योधनस्तिष्ठति । कच्चिज्जीवति वा न वा ।

गान्धारी—जात, यदि सत्यं जीवति मे वत्सस्तत्कथय कस्मिन्देशे वर्तते ।

[जाद, जइ सच्चं जीवदि मे वच्छो ता कहेहि कस्सि देसे वट्टदि ।]

संजयः—नन्वेष महाराज एक एव न्यग्रोधच्छायायामुपविष्टिष्ठति ।

गान्धारी—(सकरुणम्) जात, एकाकीति भणसि । किं नु खलु सांप्रतं भ्रातृगत-
मस्य पार्श्वे मविष्यति । [जाद, एआइ ति भणसि । किं णु कखु संपदं भादुसदं से पास्से
मविस्सदि ।]

संजयः—तात, अम्ब, अवतरतं स्वैरं रथात् ।

(उभाववतरणं नाटयतः)

(ततः प्रविशति समीढमुपविष्टो दुर्योधनः)

संजयः—(उपसृत्य) विजयतां महाराजः । नन्वेष तातः अम्बया सह प्राप्तः । किं
न पश्यति महाराजः ।

(दुर्योधनो वैलक्ष्यं नाटयति)

धृतराष्ट्रः—

शल्यानि व्यपनीय कङ्कवदनैरुन्मोचिते कङ्कटे

बद्धेषु व्रणपट्टकेषु शनकैः कर्णे कृतापाश्रयः ।

दूरान्निर्जितसान्त्वितान्नरपतीनालोकयल्लीलया

सह्या पुत्रक वेदनेति न मया पापेन पृष्टो भवान् ॥ १ ॥ २

(धृतराष्ट्रो गान्धारी च स्वशेनोपेत्यालिङ्गतः)

कुरुकुलकाननैकशेषप्रवालः—कुरुकुलम् = कुरुवंशः एव काननम् = अरण्यम् तस्य एकः = केवलः
शेषः = अवशिष्टः वर्तमानः प्रवालः = अङ्कुरः । ('प्रवालमङ्कुरेऽप्यञ्जो' इत्यमरः) । कच्चिदिति प्रश्ना-
वबोधकमव्ययपदम् ॥

अन्वयः—कङ्कटे, उन्मोचिते, कङ्कवदनैः, शल्यानि, व्यपनीय, व्रणपट्टकेषु, बद्धेषु, कर्णे, कृतापा-
श्रयः, निर्जितसान्त्वितान्, नरपतीन्, लीलया, दूरात्, आलोकयन्, भवान्, मया, पापेन, हे पुत्रक,
वेदना, सह्या' इति, न, पृष्टः ॥ १ ॥

शब्दार्थः—कङ्कटे = कवच, उन्मोचिते = उतार देने पर, कङ्कवदनैः = कङ्कपक्षी की चोंच से,

पञ्चम अङ्क

(तदनन्तर रथ नामक यान से गान्धारी, सञ्जय और धृतराष्ट्र प्रवेश करते हैं) ।

धृतराष्ट्र—बेटे सञ्जय, बतलाओ—बतलाओ किस स्थान में कुरु-वंशरूपो जङ्गल का एकमात्र अवशिष्ट अङ्कुर, मेरा बेटा दुर्योधन स्थित है ? जीवित है अथवा नहीं ?

विशेष—गान्धारी तथा धृतराष्ट्र दुर्योधन के माता-पिता थे । सञ्जय धृतराष्ट्र के सारथी थे ।

गान्धारी—बेटा, यदि मेरा बेटा सन्मुख जीवित है तो बतलाओ—किस स्थान में है ?

सञ्जय—यह महाराज अकेले ही वटवृक्ष की छाया में बैठे हुए हैं ।

गान्धारी—(कर्णपूर्वक) बेटा, 'अकेले (हैं)'—ऐसा कह रहे हो ? सम्भवतः सम्प्रति इस (मेरे बेटे) के अगल-बगल सौ माई होंगे ।

विशेष—किन्तु खलु—सम्भवतः, गान्धारी के बहुत से पुत्र मर चुके हैं । एक मात्र दुर्योधन ही अवशिष्ट है । किन्तु उसे सारी सच्ची बातों का ज्ञान नहीं है । यही कारण है कि वह ऐसा कह रही है ।

सञ्जय—पिता जी, माताजी, धीरे से रथ से उतरिये ।

(दोनों उतरने का अभिनय करते हैं)

(तदनन्तर वैठा हुआ, लज्जित दुर्योधन प्रवेश करता है)

सञ्जय—(पास में जाकर) महाराज विजयी बनें । माताजी के साथ यह पिता जी आये हुए हैं । महाराज क्या नहीं देख रहे हैं ? (क्योंकि उठ नहीं रहे हैं) ।

(दुर्योधन लज्जा का अभिनय करता है) ।

धृतराष्ट्र—कवच उतार देने पर कङ्कपक्षी को चोंच से (कङ्कपक्षी की चोंच से बनी चिमटी से) बाणों की कीलों को हटा कर घाव पर पट्टियों के बाँध दी जाने पर कर्ण के ऊपर सहारा लिए हुए तथा पहले जीते गये और बाद में सान्त्वना प्रदान किये गये राजाओं को, लीलापूर्वक दूर से देखते हुए आप मुझ पापी के द्वारा—हे प्रिय बेटे व्यथा सहन करने के लायक तो है ?—ऐसा नहीं पूछे गये हैं ॥ १ ॥

(धृतराष्ट्र एवं गान्धारी टटोल कर, पास में जाकर आलिङ्गन करते हैं)

विशेष—धृतराष्ट्र जन्मान्ध थे । सुन्दरी गान्धारी ने जब अपने जन्मान्ध पति को देखा तो उसने भी जीवन-मर ओखों पर पट्टी बाँधे रहने का संकल्प किया । यही कारण है कि वे दोनों टटोल कर दुर्योधन के पास जा रहे हैं ।

शल्यानि=बाणों की कीलों को, व्यपनीय=हटाकर, व्रणपट्टकेषु=घाव पर पट्टियों के, बद्धेषु=बाँध दी जाने पर, कर्ण=कर्ण के ऊपर, कृताश्रयः=सहारा लिये हुये, निजितसान्वितान्=पहले जीते गये और बाद में सान्त्वना प्रदान किये गये, नरपतीन्=राजाओं को, लीलया=लीलापूर्वक (शान से),

गान्धारी—वत्स, अतिगाढप्रहारवेदनापर्याकुलस्यास्मासु सन्निहितेष्वपि न प्रसरति ते वाणी । [वच्छ, अदिगाढप्रहारवेदनापञ्जाउलस अहसु नाष्णहिदेसु वि ण पसरदि दे वाणी ।]

धृतराष्ट्रः—वत्स दुर्योधन, किमकृतपूर्वः सप्रति मय्यप्ययमव्याहारः ।

गान्धारी—वत्स, यदि त्वमप्यस्मान्नालपसि तर्हि सांप्रतं वत्सो दुःशासन आलपति दुर्मर्षणो वाधान्यो वा । [वच्छ, जइ तुमं वि अहो णालपसि ता किं सपद वच्छो दुस्तासणो आलवदि दुम्मरिसणो वा अध ण्णो वा ।] (इति रोदिति) ।

दुर्योधनः—

पापोऽहमप्रतिकृतानुजनाशदर्शी

तातस्य वाष्पपयसां तव चाम्ब हेतुः ।

दुर्जातिमत्र विमले भरतान्वये वः

किं मां सुतक्षयकरं सुत इत्यवैषि ॥ २ ॥

गान्धारी—जात, अलं परिदेवितेन । त्वमपि तावदेकोऽस्यान्धयुगलस्य मार्गोपदेशकः । तच्चिरं जीव । किं मे राज्येन जयेन वा । [जाद, अलं परिदेविदेण । तुमं वि दाव पक्को इमस्स अन्धजुअलस मागोवदेसओ । ता चिरं जीव । किं मे रज्जेण जएण वा ।]

दुर्योधनः—

मातः किमप्यसदृशं कृपणं वचस्ते

सुक्षत्रिया क्व भवती क्व च दीनतैषा ।

निर्वत्सले सुतशतस्य विपत्तिमेतां

त्वं नानुचिन्तयसि रक्षसि मामयोग्यम् ॥ ३ ॥

दूरात्=दूर से, आलोकयन्=देखते हुये, भवान्=आप, मया=मुझ, पापेन=पापी के द्वारा, हे पुत्रक=हे प्रिय बेटे, वेदना=व्यथा, सद्धा=सहन करने के लायक है ? इति=ऐसा, न=नहीं, पृष्ठः=पूछे गये हैं ॥ १ ॥

शल्यानीति । कङ्कटे=कचचे ('कङ्कटोऽजगरः कचचोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः), उन्मोचिते=शरीरान्निःसारिते सति, कङ्कवदनैः=कङ्कपाक्षचन्दुपुटैः, शल्यानि=बाणशङ्कून्, व्यपनीय=निःसार्य, व्रणपट्टकेषु=औषधसंलिप्तव्रणवस्त्रेषु बद्धेषु=संयोजितेषु सत्सु, कर्णे=राधेये, विहिताश्रयः=कृताश्रयः, निजितसान्वितान्=आदौ निजिताः=बलात् वशीकृताः पश्चात् सान्विताः=सान्वितानां प्रदत्ताः तान्, नरपतीन्=भूपालान्, लीलया=विलासेन, दूरात्=विपकृष्टात्, आलोकयन्=पश्यन्, भवान्=मम पुत्रस्त्वमित्यर्थः, मया पापेन=पापशीलेन धृतराष्ट्रेत्यर्थः, हे पुत्रक=हे प्रियपुत्र, वेदना=व्यथा, सद्धा=सोझुं योग्या ? इति=इत्थम्, न पृष्ठः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ १ ॥

गान्धारीति । अतिगाढेयादिः—अतिगाढः=अतिप्रबलः यः प्रहारः=आघातः तस्य वेदना=व्यथा तथा पर्याकुलस्य=व्यथितस्य, प्रसरति=वक्तुमुपक्रमते, वाणी=जिह्वा ॥

धृतराष्ट्र इति । अकृतपूर्वः=पूर्वं न कृतः, अव्याहारः=अप्रवचनम्, मोनधारणमिति यावत् ॥

गान्धारी—बेटा, अति प्रबल प्रहार को पीडा से व्याकुल तुम्हारी जवान (हम लोगों के पास आने पर भी) नहीं खुल रही है ? (अर्थात् क्या तुम इतना अधिक पीड़ित हो कि पास में आने पर भी हम लोगों का अभिनन्दन नहीं कर रहे हो) ।

धृतराष्ट्र—बेटा दुर्योधन, पहले कभी न किया गया मेरे प्रति तुम्हारा यह मौन क्यों ?

गान्धारी—बेटा, यदि तुम भी हम लोगों से नहीं बोलते हो तो क्या अब दुःशासन, दुर्मर्षण अथवा कोई दूसरा (बेटा) बोलेगा ? (ऐसा कह कर रोती है) ।

विशेष—दुःशासन तथा दुर्मर्षण आदि गान्धारी के पुत्र थे, जो अब मर चुके हैं ।

दुर्योधन—हे माता, बिना बदला लिए गये अनुज-विनाश का द्रष्टा पापी मैं पिताजी के तथा आपके औसुओं का कारण (हूँ) । निर्मल इस भरत-वंश में कुपुत्र के रूप में उत्पन्न, आप लोगों के पुत्रों का नाश करनेवाले मुझको 'पुत्र' ऐसा क्यों समझ रही हो (अर्थात् पुत्र क्यों समझ रही हो) ॥ २ ॥

गान्धारी—पुत्र, विलाप करना व्यर्थ है । अब अकेले तुम्हीं इस अन्ध-जोड़ी के मार्ग-प्रदर्शक हो । श्रुतः बहुत दिनों तक जीवित रहो । मुझे राज्य अथवा जय से क्या (अब लेना-देना) ?

दुर्योधन—हे माँ, (यह) तुम्हारा विलक्षण अयोग्य दीन वचन (है) । कुलीन क्षत्रिय वीराङ्गना आप कहाँ ? और यह दीनता कहाँ ? (दोनों में मेल नहीं बैठता है) । हे पुत्र-स्नेह से विहीन, तुम सौ पुत्रों के इस विनाश को नहीं सोच रही हो, मुझ अयोग्य को बचा रही हो ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे अम्ब, अप्रतिकृतानुजनाशदर्शी, पापः, अहम्, तातस्य, च, तव, वाष्पयसाम्, हेतुः, (अस्मि) ; विमले, अत्र, भरतान्वये, दुर्जातम्, वः, सुतक्षयकरम्, माम्, सुतः, इति, किम्, अवैषि ? ॥ २ ॥

शब्दार्थः—हे अम्ब = हे माता, अप्रतिकृतानुजनाशदर्शी = बिना बदला लिये गये अनुज-विनाश का द्रष्टा, पापः = पापी, अहम् = मैं, तातस्य = पिताजी के, च = तथा, तव = आपके, वाष्पयसाम् = अश्रुजल का, औसुओं का, हेतुः = कारण, (अस्मि = हूँ), विमले = निर्मल, अत्र = इस, भरतान्वये = भरतवंश में, दुर्जातम् = कुपुत्र के रूप में उत्पन्न, वः = आपलोगों के, सुतक्षयकरम् = पुत्रों का नाश करने वाले, माम् = मुझको, सुतः = पुत्र, इति = ऐसा, किम् = क्यों, अवैषि = समझ रहे हो ॥ २ ॥

पापोऽहमिति । हे अम्ब = हे माता, अप्रतिकृतानुजनाशदर्शी—अप्रतिकृतः = अप्रतिकारविषयी-कृतः अनुजानाम् = भ्रातृणाम् नाशः = क्षयः तं पश्यतीति तादृशः, पापः = पापकर्मा, अहम् = पाण्डवैः सह शत्रुताकारणभूतोऽहं दुर्योधन इत्यर्थः, तातस्य = पितुः, च = तथा, तव = भवत्याः, वाष्पयसाम् = अश्रुजलानाम्, हेतुः = निमित्तः, अस्मीति क्रियाशेषः, विमले = निर्मले, अत्र = अस्मिन्, भरतान्वये = भरतवंशे, दुर्जातम् = कुपुत्ररूपेण उत्पन्नम्, वः = युष्माकम्, सुतक्षयकरम्—सुतानाम् = पुत्राणाम् क्षयम् = नाशम् करोतीति तादृशम्, माम् = दुर्योधनम्, सुत इति = पुत्र इति, किम् = कस्मात्, अवैषि = जानासि । कुत्रचित् 'पापोऽहम्' इत्यत्र 'जातोऽहम्' तथा 'भरतान्वये वः' इत्यत्र 'भरतान्वयाये' इति पाठः । नाहं पुत्रयोग्य इति भावः । वसन्तविलका छन्दः ॥ २ ॥

गान्धारीति । परिदेवितेन = विलपितेन ('विलापः परिदेवनम्' इत्यमरः) । मार्गोपदेशकः = सहायकः ॥

नूनं विचेष्टितमिदं सुतशोकस्य ।

सञ्जयः—महाराज, किं वायं लोकवादो वितथः—‘न घटस्य कूपपाते रञ्जुरपि तत्र प्रक्षेप्तव्या’ इति ।

दुर्योधनः—अपुष्कलमिदम् । उपक्रियमाणाभावे किमुपकरणेन । (इति रोदिति) ।

धृतराष्ट्रः—(दुर्योधनं परिष्वज्य) वत्स, समाश्वसिहि । समाश्वसय चास्मानि माम् । तिदीनां मातरं च ।

दुर्योधनः—तात, दुर्लभः समाश्वस इदानीं युष्माकम् । किं तु

कुन्त्या सह युवामद्य मया निहतपुत्रया ।

विराजमानौ शोकेऽपि तनयाननुशोचतम् ॥ ४ ॥

गान्धारी—जात, एतदेव सांप्रतं प्रभूतं यत्त्वमपि तावदेको जीवसि । तज्जात, अकालस्ते समरस्य । प्रसीद । एष ते शीर्षाञ्जलिः । निवर्त्यतां समरव्यापारात् । अप-
श्चिगं कुरु पितुर्वचनम् ।

[जाद एदं एव संपदं प्पमूदं जं तुमं वि दाव एवको जीवसि । ता जाद अकालो दे समरस्स । प्पसीद । एसो दे सीसञ्जली । णिवट्ठीअहु समरव्वावारादो । अपच्छिमं करेहि पिहुणो वअणम् ।]

धृतराष्ट्रः—वत्स, शृणु वचनं तवास्त्राया मम च निहताशेषबन्धुवर्गस्य । पश्य ।

अन्वयः—हे मातः, (एतत्), ते, किमपि, असदृशम्, कृपणम्, वचः, (अस्ति), सुक्षत्रिया, भवती, क्व ? च, एषा, दीनता, क्व ? हे निर्वत्सले, त्वम्, सुतशतस्य, एताम्, विपत्तिम्, न, अनुचिन्तयसि, माम्, अयोग्यम्, रक्षसि ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—हे मातः = हे माँ, (एतत् = यह), ते = तुम्हारा, किमपि = विलक्षण, असदृशम् = अयोग्य, कृपणम् = दीन, वचः = वचन, (अस्ति = है), सुक्षत्रिया = कुलीन क्षत्रिय वीराङ्गना, भवती = आप, क्व = कहाँ ? च = और, एषा = यह, दीनता = दीनता, क्व = कहाँ ? हे निर्वत्सले = हे पुत्र स्नेह से विहीन, त्वम् = तुम, सुतशतस्य = सौ पुत्रों के, एताम् = इस, विपत्तिम् = विपत्तिको, विनाश को, न = नहीं, अनुचिन्तयसि = सोच रही हो, माम् = मुझ, अयोग्यम् = अयोग्य को, रक्षसि = बचा रही हो ॥ ३ ॥

मातरिति । हे मातः = हे जननि, एतदिति शेषः, ते = तव, किमपि = अनिर्वचनीयम्, विलक्षण-
मिति यावत्, असदृशम् = अयोग्यम्, कृपणम् = दीनम्, वचः = वचनम्, अस्तीति क्रियाशेषः, सुक्ष-
त्रिया = सुकुले जाता वीराङ्गना, भवती = श्रीमती, क्व = कुत्र ? च = तथा, एषा = इयम्, दीनता =
दैन्यम्, क्व = कुत्र ? उभयमेकत्र न संबटते इति भावः । हे निर्वत्सले = हे पुत्रस्नेहवञ्चिते, त्वम् =
भवती, सुतशतस्य = पुत्रशतस्य, एताम् = उपगतामिमाम्, विपत्तिम् = नाशरूपां विपत्तिमित्यर्थः, न
= नहि, अनुचिन्तयसि = विचारयसि, माम् = सुतशतस्य निधने हेतुमित्यर्थः, अतः अयोग्यम् = अपा-
त्रम्, रक्षसि = त्रायसे । वसन्ततिलका छन्दः ॥ ३ ॥

निश्चय ही यह पुत्रशोक का कार्य है (जिससे कि आप ऐसा कह रही हैं) ।

सञ्जय—महाराज, क्या यह लोकवाद (संसार में प्रचलित कहावत) झूठा है कि—‘घट के कुएँ में गिर जाने पर रस्ती भी उस में नहीं फँक दी जाती ।’

दुर्योधन—यह (कथन) श्रेष्ठ (पूर्णरूप से सत्य) नहीं है । भोग करने वाले (व्यक्ति) के अभाव में भाग-सामग्री से क्या (मतलब) ? (ऐसा कहकर रोता है) ।

धृतराष्ट्र—(दुर्योधन को गले लगाकर) बेठा, धीरज धारण करो और हम लोगों को तथा अत्यन्त दुःखों इस (अपनी) मौ की भी धीरज बँधाओ ।

दुर्योधन—पिताजी, अब आप लोगों को धीरज धारण करना कठिन है । किन्तु—

आज मेरे द्वारा मारे गये पुत्रों वाली (अर्थात् जिसके पुत्र मेरे द्वारा मार डाले गये हैं, ऐसी) कुन्ती के साथ दुःख में भी वर्तमान आप दोनों (हम) पुत्रों के प्रति अफसोस करें (अर्थात् आज मैं कुन्ती के पुत्रों को मार कर स्वयं भी मर जाऊँगा, तब कुन्ती के साथ ही आप लोग भी पुत्रों के लिये चिन्ता करियेगा) ॥ ४ ॥

गान्धारी—पुत्र, यही अब बहुत है, जो कि मला अकेले भी तुम जोड़ित हो । तो बेठा, (सत्रों के साथ) तुम्हारे युद्ध का (यह) समय नहीं है । प्रसन्न होओ । तुझे यह हाथ जोड़ती हूँ । युद्ध-व्यापार से निवृत्त हो जाओ । पिता के वचन का पालन करो ।

धृतराष्ट्र—बेठा, अपनी माँ के तथा मारे गये समस्त स्वजनवाले मेरे वचन को सुनो (अर्थात् मानो) । देखो—

सञ्जय इति । लोकवादः = जनचर्चा, वितयः = मिथ्या ॥

दुर्योधन इति । अपृक्कलम् = अपर्याप्तम्, अश्रेष्ठमित्यर्थः (‘श्रेयान् श्रेष्ठः पुष्कलः स्यात्’ इत्यमरः) । उपक्रियमाणामावे—उपक्रियमाणस्य = उपकार्यस्य अमावे = अनुपस्थितौ, उपकरणेन = मोग्येन, किम् = किं प्रयोजनम्, न किमपीत्यर्थः ॥

अन्वयः—अथ, मया, निहतपुत्रया, कुन्त्या, सह, शोके, अपि, विराजमानौ, युवाम्, तनयान्, अनुशोचतम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—अथ = आज, मया = मेरे द्वारा, निहतपुत्रया = मारे गये पुत्रोंवाली, कुन्त्या = कुन्ती के, सह = साथ, शोके = दुःख में, अपि = भी, विराजमानौ = वर्तमान, युवाम् = आप दोनों, तनयान् पुत्रों के प्रति, अनुशोचतम् = अफसोस करें ॥ ४ ॥

कुन्त्येति । अथ = अस्मिन्नेव दिने, मया = दुर्योधनेन, निहतपुत्रया—निहताः = वधिताः, पुत्राः = सुताः यस्याः सा तथा, कुन्त्या = पृथया, सह = साकम्, शोके = दुःखे, अपि = च, विराजमानौ = वर्तमानौ, युवाम्, तनयान् = स्वपुत्रान्, अनुशोचतम् = चिन्तयतम् । अथ पाण्डवान् हत्वा स्वयं प्राणान् त्यक्ष्यामीति भावः “सन्त्यक्ष्यान्नो हततनुमिमां दुःखितौ निवृत्तौ च” (४।१४) । अत्र सहोक्तिरलङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ४ ॥

गान्धारीति । प्रभूतम् = पर्याप्तम् । अकालः = अनवसरः । अपरिचमम् = अलङ्घ्यम् ॥

दायादा न ययोर्वलेन गणितास्तौ द्रोणभीष्मौ हतौ
कर्णस्यात्मजमग्रतः शमयतो भीतं जगत्फाल्गुनात् ।
वत्सानां निधनेन मे त्वयि रिपुः शेषप्रतिज्ञोऽधुना
मानं वैरिषु मुञ्च तात पितरावन्धावमौ पालय ॥ ५ ॥

दुर्योधनः—समरात्प्रतिनिवृत्त्य किं मया कर्तव्यम् ।

गान्धारी—जात, यत्पिता ते विदुरो वा भणति ।

[जाद जं पिदा दे विदुरो वा भणदि ।]

सञ्जयः—देव, एवमिदम् ।

दुर्योधनः—सञ्जय, अद्याप्युपदेष्टव्यमस्ति ।

सञ्जयः—देव, यावत्प्राणिनि तावदुपदेष्टव्यभूमिर्विजिगीषुः प्रज्ञावताम् ।

दुर्योधनः—(सक्रोधम्) शृणुमस्तावद्भवत एव प्रज्ञावतः संप्रत्यस्मादनुरूपमुप-
देशम् ।

धृतराष्ट्रः—वत्स, युक्तवादिनि संजये किमत्र क्रोधेन । यदि प्रकृतिसापक्षसे तदह-
मेव भवन्तं ब्रवीमि । श्रूयताम् ।

दुर्योधनः—कथयतु तातः ।

धृतराष्ट्रः—वत्स, किं विस्तरेण । संघत्तां भवानिदानीमपि युधिष्ठिरमीप्सितपण-
बन्धेन ।

अन्वयः—ययोः, वलेन, दायादाः, न, गणिताः, तौ, द्रोणभीष्मौ, हतौ; कर्णस्य, आत्मजम्,
(तस्य), अग्रतः, शमयतः, फाल्गुनात्, जगत्, भीतम्; मे, वत्सानाम्, निधनेन, अधुना, रिपुः,
त्वयि, शेषप्रतिज्ञः, (आस्तेः); (अतः), हे तात, वैरिषु, मानम्, मुञ्च, अन्धौ, शमौ, पितरौ,
पालय ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—ययोः=जिन दोनों के, वलेन=बल से, दायादाः=हिस्सेदार लोग, न=नहीं,
गणिताः=गिने गये, कुछ समझे गये, तौ=वे दोनों, द्रोणभीष्मौ=द्रोण एवं भीष्म, हतौ=मार डाले
गये; कर्णस्य=कर्ण के, आत्मजम्=पुत्र को, (तस्य=उसके), अग्रतः=सामने ही, शमयतः=समाप्त
करने वाले, फाल्गुनात्=अर्जुन से, जगत्=संसार, भीतम्=डर गया था; मे=मेरे, वत्सानाम्=
बच्चों के, निधनेन=समाप्त हो जाने के कारण, अधुना=सम्प्रति, रिपुः=शत्रु, त्वयि=तुम्हारे ही
विषम में, शेषप्रतिज्ञः=अवशिष्ट प्रतिज्ञावाला, (आस्ते=है); (अतः=इसलिए), हे तात=हे
बेटा, वैरिषु=शत्रुओं के प्रति, मानम्=अभिमान को, मुञ्च=छोड़ दो; अन्धौ=अन्धे, शमौ=शम,
पितरौ=माता-पिता को, पालय=सँभालो ॥ ५ ॥

दायादा इति । ययोः=द्रोणभीष्मयोः, वलेन=शक्त्या, दायादाः=बान्धवाः, पाण्डवा इत्यर्थः,
('दायादा सुतबान्धवौ' इत्यमरः), दायमत्ति दायपूर्वकाद् 'अद् भक्षणे' अस्मात् 'कर्मण्यप्' इत्यपि,
आदत्ते इति विग्रहे तु आङ्पूर्वकाद्दादेः कर्तरि "आतश्चोपेति" के आलोपे च आदः दायस्य आदः

जिन दोनों के बल से हिस्सेदार (पाण्डव) लोग नहीं कुछ समझे गये वे दोनों द्रोण एवं भीष्म मार डाले गये । कर्ण के पुत्र को (उसके) सामने ही समाप्त करने वाले अर्जुन से संसार डर गया था । (अतः कर्ण का भी भरोसा निरर्थक है) । बच्चों के समाप्त हो जाने के कारण सम्प्रति शत्रु (भीम) तुम्हारे ही विषय में अवशिष्ट प्रतिज्ञा वाला (है) । हे वेटा, शत्रुओं के प्रति अभिमान को छोड़ दो, अन्ये इन माता-पिता को सँभालो ॥ ५ ॥

विशेष—शेषप्रतिज्ञा:—भीम ने प्रतिज्ञा की थी—‘धृतराष्ट्र के सभी पुत्रों का विनाश करूँगा ।’ उन्होंने किया भी वैसा ही । अब तक धृतराष्ट्र के १६ पुत्र उनके हाथों मारे जा चुके हैं । केवल दुर्योधन भर बाकी है । अब यदि यह भी भीम के हाथों मारा जाय तब तो उनकी प्रतिज्ञा पूर्ण हो जाय । दुर्योधन के जीवित रहते अभी उनकी प्रतिज्ञा १ प्रतिशत बाकी है । यही है उनकी प्रतिज्ञा का अवशिष्ट रहना ॥ ५ ॥

दुर्योधन—संग्राम से लौट कर मैं क्या करूँगा ?

गान्धारी—वेटा, (वही करना) जो तुम्हारे पिताजी अथवा विदुर कहते हैं ।

सञ्जय—महाराज, यह ऐसा ही है (अर्थात् यह ठीक है) ।

दुर्योधन—सञ्जय अब भी उपदेश का अवसर है ?

सञ्जय—महाराज, विजय की अभिलाषा करने वाला व्यक्ति जब तक जीवित रहता है, तब तक बुद्धिमानों के उपदेश का पात्र होता है ।

दुर्योधन—(क्रोधपूर्वक) मुझे अच्छा आप ही बुद्धिमान् से इस समय अपने योग्य उपदेश ।

धृतराष्ट्र—वेटा, यद्यपि कहनेवाले इस सञ्जय पर क्रोध करने से क्या (लाभ) ? यदि सुस्थिर हो जाओ तो मैं ही आप से कहूँगा । सुनिये ।

दुर्योधन—कहें पिता जी ।

धृतराष्ट्र—वेटा, विस्तार में जाने की क्या आवश्यकता ? सन्धि कर लीजिये आप इस समय भी युधिष्ठिर से मनचाही शर्त के साथ ।

दायाद इति वेति शब्दसिद्धिः, न गणिताः=न ज्ञाताः, तृणवदपि न ज्ञाता इत्यर्थः, तौ=त्यू, द्रोणभीष्मौ=आचार्यपितामहौ, हतौ=विनाशितौ, कर्णस्य=राधापुत्रस्य, आत्मजम्=पुत्रम्, तस्येति शेषः, अग्रतः=समक्षम्, शमयतः=विनाशयतः, फाल्गुनात्=अर्जुनात्, जगत्=संसारः, मीतम्=भयाक्रान्तं जातम् ; अतः तस्मिन्नपि न विश्रम्भः कार्यः, मे=मम, वत्सानाम्=पुत्राणाम्, निधनेन=विनाशेन, अधुना=सम्प्रति, रिपुः=शत्रुः, भीम इत्यर्थः, त्वयि=मवति दुर्योधने, शेषप्रतिज्ञाः—शेषा=अवशिष्टा प्रतिज्ञा=प्रणः यस्य तादृशः, भीमेन प्रतिज्ञातमासीत्—धृतराष्ट्रस्य पुत्रशतं हनिष्यामीति, आस्ते इति शेषः । अतः हे ताव=हे जात, वैरिपु=शत्रुपु, मानम्=अभिमानम्, सुख=त्यज, अन्धौ=नेत्ररहितौ, श्मौ=पतौ, पितरौ=जननीजनकौ, पालय=सेवस्वेति । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः । तल्लक्षणम्—‘सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्’ ॥ ५ ॥

सञ्जय इति । प्राणिति=जीवति, उपदेष्टव्यमूमिः=उपदेशभाजनम्, विजिगीषुः=विजयेच्छुः, प्रशवताम्=बुद्धिमताम् ॥

दुर्योधनः—तात, तनयस्नेहवैकल्यव्यादस्या बालिशत्वात्संजयश्च काममेवं ब्रवीतु । युष्माकमप्येवं व्यामोहः । अथवा प्रभवति पुत्रनाशजन्मा हृदयज्वरः । अन्यच्च तात, अस्वलितभ्रातृशतोऽहं यदा तदावधीरितवासुदेवसामोपन्यासः । संप्रति हि दृष्टपिता-महाचार्यानुजराजचक्रविपत्तिः स्वशरीरमाग्नस्नेहादुदात्तपुरुषब्रीडावहमसुखावसानं च कथमिव करिष्यति दुर्योधनः सह पाण्डवैः सन्धिम् । अन्यच्च । नयवेदिन् संजय,

हीयमानाः किल रिपोर्नृपाः संदधते परान् ।

दुःशासने हतेऽहीनाः सानुजाः पाण्डवाः कथम् ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्रः—वत्स, एवं गतेऽपि मत्प्रार्थनया न किञ्चिन्न करोति युधिष्ठिरः । अन्यच्च । सर्वदैवाप्रकृष्टमात्मानं मन्यते युधिष्ठिरः ।

दुर्योधनः—कथमिव ।

धृतराष्ट्रः—वत्स, श्रूयतां प्रतिज्ञा युधिष्ठिरस्य नाहमेकस्यापि भ्रातृर्विपत्तौ प्राणा-न्धारयामीति । बहुच्छलत्वात्सङ्ग्रामस्यानुजनाशमाशङ्कमानो यदैव भवते रोचते तदै-वासौ सज्जः संधातुम् ।

सञ्जयः—एवमिदम् ।

गान्धारी—जात, उपपत्तियुक्तं प्रतिपद्यस्व पितुर्वचनम् ।

[जाद, उपपत्तिज्जुतं पटिवज्जस्त पिदुणो वअणम् ।]

दुर्योधनः—तात, अम्ब, संजय,

धृतराष्ट्र इति । विस्तरेण = विस्तारेण । ईप्सितपणवन्धेन = ईप्सितस्य = युधिष्ठिरापेक्षितस्य अथवा स्वापेक्षितस्य, अत्र द्वितीय-व्याख्याने युधिष्ठिरस्योदायं दुर्योधनस्य च क्रौर्यं ध्वनितम्, पणस्य = मूल्यस्य बन्धेन = निबन्धनेन ॥

दुर्योधन इति । तनयस्नेहवैकल्यव्यात्—तनयानाम् = पुत्राणाम् स्नेहस्य वत्सलतायाः वैकल्यव्यात् = विकलताहेतोः, अम्बा = जननी गान्धारी, बालिशत्वात् = मूर्खतया । व्यामोहः = बुद्धि-विभ्रमः । हृदयज्वरः = हृदयदाहः, शोक इति यावत् । अस्वलितभ्रातृशतः—अस्वलितम् = समग्रम् भ्रातृशतम् = शतसंख्यकानां भ्रातॄणां समवायः यस्य तादृशः, अवधीरितवासुदेवसामोपन्यासः—अव-अवधीरितः = तिरस्कृतः वासुदेवस्य = कृष्णस्य सामोपन्यासः = शान्तिप्रस्तावः येन तादृशः । दृष्टेत्यादिः—दृष्टा = अवलोकिता पितामहस्य = मोक्षस्य आचार्यस्य = गुरोः द्रोणस्य अनुजानाम् = भ्रातॄणाम् राज-चक्रस्य = राजसमवायस्य च विपत्तिः = मरणरूपापत्तिः येन तादृशः, उदात्तपुरुषब्रीडावहम्—उदात्त-पुरुषाणाम् = श्रेष्ठजनानाम् ब्रीडाम् = लज्जाम् आवहतीति तम्, असुखावसानम्—असुखम् = दुःख-मित्यर्थः अवसानम् = फलम् यस्य तम्, सन्धिम् = सन्धानम् । नयवेदिन्—नयम् = नीतिम् वेत्तीति तत्सम्बुद्धौ ॥

अन्वयः—रिपोः, हीयमानाः, नृपाः, परान्, सन्दधते, किल; दुःशासने, हते, अहीनाः, सानुजाः, पाण्डवाः, कथम्, (सन्धिम्, करिष्यन्ति) ? ॥ ६ ॥

दुर्योधन—पिताजी, पुत्र स्नेह की विकलता के कारण माताजी तथा मूर्खता के कारण सञ्जय मले हो ऐसा कहें। (किन्तु) आपका जो यह बुद्धि-विभ्रम (कैसे हो गया है) ? अथवा पुत्रों के नाश से होने वाला हृदय-दाह (शोक ही यह अपना) प्रभाव दिखला रहा है। पिताजी इसके, अतिरिक्त और भी दूसरी बात है—जब मैं सौ भाइयों से भरा-पूरा था, उस समय कृष्ण के द्वारा रक्खी गयी शान्ति-प्रस्तावना को ठुकरा दिया था। तो अब पितामह (भीष्म) आचार्य (द्रोण), भाइयों तथा राज-समूह का विनाश देख चुकने वाला दुर्योधन एकमात्र अपने शरीर के मोहवश श्रेष्ठ पुरुषों के लिए लज्जा कर, भविष्य में दुःख ही प्रदान करनेवाली, पाण्डवों के साथ 'सन्धि' को कैसे करेगा ? और दूसरी बात है, नौतिश सञ्जय,

शत्रु से निर्बल राजा लोग शत्रुओं से सन्धि करते हैं। दुःशासन के मारे जाने पर भरे-पूरे (अक्षत) भाइयों समेत पाण्डव लोग कैसे (सन्धि करेंगे) ? ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्र—वेटा, ऐसा होने पर भी मेरी प्रार्थना से युधिष्ठिर कुछ भी नहीं कहेगा (ऐसी बात) नहीं है (अर्थात् अवश्य हो वह मेरी बात मान जायगा)। दूसरी बात यह भी है कि युधिष्ठिर सर्वदा ही अपने-आपको बहुत ऊँचा नहीं मानता है।

दुर्योधन—कैसे ?

धृतराष्ट्र—वेटा, सुनो प्रतिज्ञा युधिष्ठिर की—“मैं एक भी भाई की विपत्ति में (अर्थात् एक भी भाई की मृत्यु होने पर प्राणों को नहीं धारण करूँगा। ” संग्राम के बहुविध छल से पूर्ण होने के कारण भाइयों के विनाश से डरने वाला वह (युधिष्ठिर) जमी आपको अच्छा लगे तभी सन्धि करने के लिए तैयार है।

सञ्जय—यह ऐसा ही है (जैसा कह रहे हैं)।

गान्धारी—वेटा, पिता के युक्ति-युक्ति वचन को मान लो।

दुर्योधन—पिता जी, माता जी एवं सञ्जय,

शब्दार्थः—रिपोः = शत्रु से, हीयमानाः = निर्बल, नृपाः = राजा लोग, परान् = शत्रुओं से, सन्दधते = सन्धि करते हैं, दुःशासने = दुःशासन के, हते = मारे जाने पर, अहीनाः = भरे-पूरे, सानुजाः = भाइयों समेत, पाण्डवाः = पाण्डव लोग, कथम् = कैसे, (सान्धम् = सन्धि, करिष्यन्ति = करेंगे) ॥ ६ ॥

हीयमाना इति। रिपोः = शत्रोः हीयमानाः = निर्बलाः, नृपाः = राजानः, परान् = शत्रून्, सन्दधते = सन्धि कुर्वन्ति, किलेति सामान्ये, दुःशासने = समानुजे, हते = विनाशिते सति, अहीनाः = अक्षताः, सम्पूर्णा इत्यर्थः, सानुजाः = सबान्धवाः, पाण्डवाः = युधिष्ठिरादयः, कथम् = केन कारणेन, सन्धि करिष्यन्तीति शेषः। अतः सन्धिप्रस्तावोऽपि निरर्थक एवेति नीतिः। काव्यलिङ्गमलङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः ॥ ६ ॥

अन्वयः—पार्थः, एकेन, अपि, अनुजेन, विना, मरणम्, प्रतिज्ञातवान्; दुर्योधनः, भ्रातृणाम्, शते, निहते, (अपि), जीवितुम्, अमिलषते; अहम्, दुःशासनशोषिताशनम्, तम्, अरिम्, भीमम्,

एकेनापि विनानुजेन मरणं पार्थः प्रतिज्ञातवान्-
 भ्रातृणां निहते शतेऽभिलषते दुर्योधनो जीवितुम् ।
 तं दुःशासनशोणिताशनमरिं भिन्नं गदाकोटिभि-
 र्भीमं दिक्षु न विक्षिपामि कृपणः सन्धिं विदध्यामहम् ॥ ७ ॥

गान्धारी—हा जात दुःशासन, हा मदक्कुदुल्ललित, हा युवराज, अश्रुतपूर्वा खलु
 कस्यापि लोक ईदृशी विपत्तिः । हा वीरशतप्रसविनी हतगान्धारि, दुखशतं प्रसूतासि,
 न पुनः सुतशतम् । [हा जाद दुस्तासण, हा मदक्कुदुल्ललित, हा जुअराअ, अस्सुदपुव्वा क्खु
 कस्स वि लोए ईदिसी विपत्ती । हा वीरसदप्पसविणि हदगान्धारि दुक्खसदं प्पसूदासि । प उण
 सुदसदम् ।]

[सर्वे रुदन्ति]

सञ्जयः—(बाष्पमुत्सृज्य) तात, अम्ब, प्रतिबोधयितुं महाराजभिमां भूमिं युवा-
 मागतौ । तदात्मापि तावत्संस्तभ्यताम् ।

धृतराष्ट्रः—वत्स दुर्योधन, एवं विमुखेषु मागधेयेषु त्वयि चामुञ्चति सहजं मान-
 मरिषु त्वदेकशेषजीवितालम्बनेयं तपस्विनी गान्धारी कमवलम्बतां शरणमहं च ।

दुर्योधनः—श्रूयतां यत्प्रतिपत्तुमिदानीं प्राप्तकालम् ।

कलितभुवना भुक्तैश्वर्यास्तिरस्कृतविद्विषः

प्रणतशिरसां राज्ञां चूडासहस्रकृतार्चनाः ।

अभिमुखमरीन् घ्नन्तः संख्ये हताः शतमात्मजा

वहतु सगरेणोढां तातो धुरं सहितोऽम्बया ॥ ८ ॥

गदाकोटिभिः, भिन्नम्, (कृत्वा), दिक्षु, न, विक्षिपामि ? कृपणः, (भूत्वा), सन्धिम्, विदध्याम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—पार्थः=कुन्तीपुत्र (युधिष्ठिर), एकेन=एक, अपि=भी, अनुजेन=लघु-भ्राता के,
 विना=विना, मरणम्=मरने को, प्रतिज्ञातवान्=ठान रक्खा है; दुर्योधनः=दुर्योधन, भ्रातृणाम्=
 भाइयों के, शते=सी संख्यावाले समुदाय के, निहते=मारे जाने पर, (अपि=भी), जीवितुम्=
 जीने के लिये, अभिलषते=अभिलाषा करता है, अहम्=मैं, दुःशासनशोणताशनम्=दुःशासन के
 रक्त को पीनेवाले, तम्=उस, अरिम्=शत्रु, भीमम्=भीम को, गदाकोटिभिः=गदा को नोक से,
 भिन्नम्=विदोर्ण, (कृत्वा=करके,) दिक्षु=दिशाओं में, न=नहीं, विक्षिपामि=फेंक दूँ ?
 कृपणः=दीन, (भूत्वा=होकर), सन्धिम्=सन्धि, विदध्याम्=कर लूँ ? ॥ ७ ॥

एकेनापीति । पार्थः=पृथायाः=कुन्त्याः पुत्रः=सुतः पार्थः=कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः, एकेन=
 अद्वितीयेन, अपि=च, अनुजेन=लघुभ्रात्रा, विना=पृथक्, मरणम्=प्राणत्यागम्, प्रतिज्ञातवान्=
 निश्चितमकरोत्; कीदृशी प्रशंसाहार्ति स्निग्धबन्धुभावना वतैते; दुर्योधनः भ्रातृणाम्=अनुजानाम्,
 शते=शतावयवे समुदाये, निहते=विनाशिते, अपीति शेषः, जीवितुम्=प्राणान् धारयितुम्, अभि-

कुन्ती-पुत्र (युधिष्ठिर,) ने एक भी लघु भ्राता के बिना मरने को ठान रक्खा है (अर्थात् एक भी भाई के न रहने पर मरने की प्रतिज्ञा कर रखी है); दुर्योधन भाइयों के सौ सख्यावाले समूह के (अर्थात् सौ भाइयों के, वस्तुतः नित्यानवे भाइयों के) मारे जाने पर (भी) जीने के लिये अभिलाषा करता है (यह किननी विलक्षण बात है) । मैं दुःशासन के रक्त को पीने वाले उस = शत्रु भीम को गदा को नोक से विदीर्ण (करके) दिशाओं में न फेंक दूँ ? दोन (होकर) सन्धि कर लूँ ? ॥७॥

गान्धारी--हाय बेटा दुःशासन ! हाय मेरी गोदी के हठो ! हाय युवराज ! संसार में किसी की भी ऐसी विपत्ति (मृत्यु) इसके पहले नहीं सुनी गयी है । हाय वीरों को पैदा करनेवाली अभागिन गान्धारी ! तूने सौ दुःख पैदा किया है, सौ पुत्र नहीं ।

(सभी रोते हैं)

सञ्जय--(आँसु बहाकर) तात, अम्ब, महाराज को सान्त्वना देने इस जगह आप लोग आये हैं । तो मला अपने आप को भी सँभालें ।

धृतराष्ट्र--बेटा दुर्योधन, माग्य के इस तरह विमुख हो जाने पर, शत्रुओं के विषय में स्वभाविक अभिमान को तुम्हारे न छोड़ने पर, एकमात्र तुम्हीं अवशिष्ट हो जीने का सहारा जिसके ऐसी बेचारी गान्धारी और मैं किस रक्षक का आश्रय लूँ ?

दुर्योधन--सुनिये, जो करने का यह समय है--

संसार को वश में करनेवाले, ऐश्वर्य का उपभोग करनेवाले, शत्रुओं की अभिभूत करनेवाले, झुके हुए शिरवाले राजाओं के सहस्रों मुकुट-मणियों से पूजित, शत्रुओं को सामने होकर मारते हुए, युद्ध में (आप के) सौ पुत्र मारे जा चुके हैं । (इसलिए अब) माताजी के सहित पिताजी सगर के द्वारा धारण की गयी (पृथिवी की) धुरा को सँभालें ॥ ८ ॥

विशेष--शतमात्मजाः--दुर्योधन को लेकर धृतराष्ट्र के सौ पुत्र थे । यतः दुर्योधन मरने के लिए वृद्ध निश्चय कर चुका है, अतः वह अपनी भी गणना धृतराष्ट्र के मरे पुत्रों में करते हुए कइ रहा है--सौ पुत्र ।

सगरेयोढासू--वृद्धावस्था में सगर के एक सहस्र पुत्र महामुनि कपिल की क्रोधाग्नि में जल मरे थे । उस समय सगर ने ही पृथिवी का शासन किया था । अतः आप भी धैर्य धारण कर शासन करें ॥ ८ ॥

लपते = वाञ्छति; कीदृशी निन्दार्हा क्रूरबन्धुभावना वर्तते । अहम् = दुर्योधनः, दुःशासनशोणिताशनम्--दुःशासनस्य शोणितम् = रक्तम् अश्नातीति तम्, तम् = अतिनुशंसत्वेन प्रसिद्धमित्यर्थः; अरिम् = शत्रुम्, भीमम् = वृकोदरम्, गदाकोटिभिः--गदायाः कोटिभिः = प्रान्तभायैः, भिन्नम् = विदीर्णम्, कृत्वेति शेषः; दिक्षु = दिशासु, न विक्षिपामि = निक्षिपामि ? कुपणः = अतिदीनः, मृत्वेति शेषः; सन्धिम् = शान्तिप्रक्रियाम्, विदध्याम् = कुर्याम् ? नाहं सन्धिं करिष्याम्यपि तु गदाकोटिभिः भिन्नं वृकोदरं दिक्षु विक्षिपिष्यामीति मे निश्चयः । अत्र यमकालङ्कारः । शार्दूलविकीर्णं छन्दः ॥ ७ ॥

धृतराष्ट्र इति--मागधेयेषु = माग्येषु, सहजम् = स्वाभाविकम्, त्वदेकशेषजीवितालम्बना--त्वमेव एकः = केवलः शेषः = अवशिष्टः जीवितस्य = जीवनस्य अवलम्बनम् = साहाय्यम् यस्याः सा,

विपर्यये त्वस्याधिपतेरुल्लङ्घितः क्षात्रधर्मः स्यात् ।

(नेपथ्ये महाङ्कलकलः)

गान्धारी—(आकर्ण्य समयम्) जात, कुत्रैतत् हाहाकारमिश्रं तूर्यरसितं श्रूयते ।
[जाद, कहिं पदं हाहाकारमिस्सं तूररसिदं सुणीआद ।]

सञ्जयः—अम्ब, भूमिरियमेवंविधानां भीरुजनत्रासनानां महानिनादानाम् ।

धृतराष्ट्रः—वत्स सञ्जय, ज्ञायतामतिभैरवः खलु विस्तारी हाहारवः । कारणेनास्य महता भवितव्यम् ।

दुर्योधनः—तात, प्रसीद । पराङ्मुखं खलु दैवमस्माकम् । यावदपरमपि किञ्चिद्व्याहितं न श्रावयति तावदेवाज्ञापय मां सङ्ग्रामावतरणाय ।

गान्धारी—जात, मुहूर्तं तावन्मां मन्दभाग्यां समाश्वासय ।

[जाद, मुहुत्तअं दाव मं मन्दभाशणीं समस्सासेहि ।]

धृतराष्ट्रः—वत्स, यद्यपि भवान्ममराय कृतनिश्चयस्तथापि रहः परप्रतीघातोपायश्चिन्त्यताम् ।

दुर्योधनः—

प्रत्यक्षं हतबान्धवा मम परे हन्तुं न योग्या रहः

किं वा तेन कृतेन तैरिव कृतं यन्न प्रकाश्यं रणे ।

गान्धारी—जात, एकाकी त्वम् । कस्ते साहाय्यं करिष्यति ।

[जाद, एआइ तुमम् । को दे सहाअत्तणं करिस्सदि ।]

दुर्योधनः—

एकोऽहं भवतीमुत्तक्षयकरो मातः कियन्तोऽस्यः

साम्यं केवलमेतु दैवमधुना निष्पाण्डवा मेदिनी ॥ ९ ॥

तपस्विनी=वराकी ('तपस्वी तापसे चानुकम्पाहं च तपस्विनि' इति विश्वः), शरणम्=रक्षकम् ('शरणं गृहरक्षित्रोः' इत्यमरः) ॥

अन्वयः—कलितभुवनाः, भुक्तैश्वर्याः, तिरस्कृतविद्विषः, प्रणतशिरसाम्, राशाम्, चूडास्रकृतार्चनाः, अरीन्, अभिमुखम्, ध्वन्तः, संख्ये, शतम्, आत्मजाः, हताः; (अतः, सम्प्रति), अम्बया, सहितः, तातः, सगरेण, ऊढाम्, धुरम्, बहत् ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—कलितभुवनाः=संसार को वश में करने वाले, भुक्तैश्वर्याः=ऐश्वर्य का उपभोग करने वाले, तिरस्कृतविद्विषः=शत्रुओं को अभिमूत करनेवाले, प्रणतशिरसाम्=झुके हुए शिर वाले, राशाम्=राजाओं के, चूडास्रकृतार्चनाः=सहस्रों मुकुट मणियों से पूजित; अरीन्=शत्रुओं को, अभिमुखम्=सामने होकर, ध्वन्तः=प्रहार करते हुए, संख्ये=युद्ध में, शतम्=सौ, आत्मजाः=पुत्र, हताः=मारे जा चुके हैं; (अतः=इसलिए, सम्प्रति=अब), अम्बया=माताजी के, सहितः=

इसके विपरीत होने पर राजा के सत्रिय-धर्म का उल्लंघन होगा ।

(पदों के पीछे महान् कोलाहल होता है)

गान्धारी—(सुनकर भयपूर्वक) बेटा, हाहाकार से मिली हुई यह वाद्यध्वनि कहाँ सुनाई पड़ रही है ?

सञ्जय—माँ, भीरु लोगों को डराने वाले इस प्रकार के महान् कल-कलों का यह (युद्ध-क्षेत्र) स्थान ही है ।

धृतराष्ट्र—बेटा सञ्जय, मालूम करो (इसे, क्योंकि यह) अतिमोषण तथा (चारों ओर) फैलनेवाला हाहाकार है । इसका (कोई) महान् कारण होना चाहिए ।

दुर्योधन—पिताजी, अमा कीजिये । निश्चय ही देव हम लोगों के विपरीत है । जब तक (वह) दूसरे किसी महान् भय (महान् अनर्थ) को नहीं सुना देता तब तक मुझे संग्राम में उतरने की आशा दें ।

गान्धारी—बेटा, क्षणभर जरा मुझ अभागिनी को आश्वस्त करो ।

धृतराष्ट्र—बेटा, यद्यपि आप युद्ध के लिए निश्चय किये हुए हैं, तो भी गुप्तरूप से शत्रु के वध का उपाय सोचिये ।

दुर्योधन—मेरे समझ (मेरे) बन्धुओं को मारनेवाले शत्रु लोग गुप्त रूप से मारने के योग्य नहीं हैं । अथवा उस कार्य से क्या (लाभ) ? जो कि उन्हीं की तरह युद्ध में प्रकट रूप से नहीं किया गया हो ।

गान्धारी—बेटा, तुम अकेले हो । कौन तुम्हारी सहायता करेगा ?

दुर्योधन—हे माँ ! मैं अकेला आपके (सौ) पुत्रों को विनष्ट करने वाला (हूँ, फिर) शत्रु कितने हैं ? (एकमात्र पाँच), सम्पत्ति केवल भाग्य समान (निष्पक्षता को प्राप्त) हो जाय (तो) पृथ्वी पाण्डवों से विहीन (हो जायगी) ॥ ६ ॥

सहित, तातः = पिताजी, सगरेण = सगर के द्वारा, ऊढाम् = धारण की गयी, सँमाली गयी, धुरम् = बुरा (भार) को, बहतु = सँमालें ॥ ८ ॥

कलितभुवना इति । कलितम् = अधिगतम्, वशोऽकृतमित्यर्थः, भुवनम् = जगत् यैस्ते, भुक्तैः श्वर्याः = भुक्तम् = सेवितम् ऐश्वर्यम् = सम्पत्तिः प्रमुखं वा यैस्ते, तिरस्कृतविद्विषः = तिरस्कृताः = अभिमूढाः विद्विषः = शत्रवः यैस्ते, प्रणतशिरसाम् = प्रणतानि = प्रणामार्थं नम्रीकृतानि शिरांसि = मस्तकानि येषां तेषाम्, राजान् = भूपालानाम्, चूडासहस्रकृतांचनाः = चूडानाम् = मुकुटमणीनाम् सहस्रैः = समुदायैरित्यर्थः कृतम् = सम्पादितम् अर्चनम् = पूजनम्, वन्दनमित्यर्थः, येषां ते, अरीन् = शत्रून्, अभिमुखम् = सम्मुखम् = धनन्तः = प्रहरन्तः, संख्ये = युद्धे, शतम् आत्मजाः = शतं पुत्राः, मर्तुं कृतनिश्चयोऽहमतो मामपि गृहीत्वैति भावः, हताः = विनाशिताः, अतः सम्प्रतीति शेषः, अम्बवा = मात्रा, सहितः = संयुक्तः, तातः = पिता, सगरेण = सगरनामकसूर्यवंशीयेन नृपेण, ऊढाम् = धृताम्, धुरम् = भुवो भारम्, बहतु = धारयतु । यथा सगरः पुत्राणां षष्टिसहस्रे विनष्टे भुवः पालनं चकार,

(नेपथ्ये कलकलानन्तरम्)

मो भो योधाः, निवेदयन्तु भवन्तः कौरवेश्वराय इदं महत्कदनं प्रवृत्तम् । अलम-
प्रियश्रवणपराङ्मुखतया । यतः कालानुरूपं प्रतिविधातव्यमिदानीम् । तथा हि ।

त्यक्तप्राजनरश्मिरङ्किततनुः पार्थारङ्कितैर्मर्गणै-

वर्हिः स्यन्दनवत्सर्पनां परिचयादाकृष्णमाणः शनैः ।

वार्तामङ्गपतेर्विलोचनजलैरावेदयन्पृच्छतां

शून्येनैव रथेन याति शिविरं शल्यः कुरूच्छलयन् ॥ १० ॥

तथैव तातोऽपि करोत्विति भावः । अत्र निदर्शनालङ्कारः । हरिणी छन्दः । छन्दलक्षणम्—‘नसमा-
सलागः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता’ ॥ ८ ॥

दुर्योधन इति । पराङ्मुखम्=विपरीतम्, दैवम्=भाग्यम् । अत्याहितम्=महद्भयम् (‘अत्या-
हितं महद्भयम्’ इत्यमरः), संग्रामावतरणाय=युद्धभूमौ गमनाय ॥

धृतराष्ट्र इति । कृतनिश्चयः—कृतः=विहितः निश्चयः=दृढभावना येन सः; रहः=एकान्ते,
परप्रतिधातोपायः—परस्य=शत्रोः प्रतिधातः=वधः तस्य उपायः=विधिः ॥

अन्वयः—मम, प्रत्यक्षम्, हतबान्धवाः, परे, रहः, हन्तुम्, योग्याः, न; वा, तेन कृतेन, किम्? यत्, तैः, श्व, रणे, प्रकाशम्, न, कृतम्? हे मातः, अहम्, एकः, भवतीसुतक्षयकरः; (अस्मि), अरयः; कियन्तः, (सन्ति), अधुना, केवलम्, दैवम्, साम्यम्, एतु, मेदिनी, निष्पाण्डवः; (भविष्यति) ॥ ९ ॥

शब्दार्थः—मम=मेरे, प्रत्यक्षम्=समक्ष, हतबान्धवाः=(मेरे) बन्धुओं को मारने वाले, परे=शत्रु लोग, रहः=एकान्त में, गुप्तरूप से, हन्तुम्=मारने के, योग्याः=योग्य, न=नहीं हैं । वा=अथवा, तेन=उस, कृतेन=कार्य से, किम्=क्या (लाभ) ? यत्=जो कि, तैः=उन्हीं की, श्व=तरह, रणे=युद्ध में, प्रकाशम्=प्रकट रूप से, न=नहीं, कृतम्=किया गया हो ? हे मातः=हे माँ, अहम्=मैं, एकः=अकेला, भवतीसुतक्षयकरः=आप के पुत्रों को विनष्ट करने वाला, (अस्मि=हूँ), अरयः=शत्रु, कियन्तः=कितने, (सन्ति=हैं), अधुना=सम्प्रति, केवलम्=केवल, दैवम्,=भाग्य, साम्यम्=समान भाव को, निष्पक्षता को, एतु प्राप्त हो जाय, मेदिनी=पृथिवी, निष्पाण्डव=पाण्डवों से विहीन, (भविष्यति=हो जायेगी) ॥ ९ ॥

प्रत्यक्षमिति—मम=दुर्योधनस्येत्यर्थः, प्रत्यक्षम्=समक्षम्, हतबान्धवाः—हताः=प्राणैर्वि-
योजिताः बान्धवाः=समाजुजाः येस्ते, परे=शत्रुवः, रहः=एकान्ते, हन्तुम्=विनाशयितुम्, योग्याः=अर्हाः, न=न सन्तीत्यर्थः; वा=अथवा तेन=तादृशेन, कृतेन=सम्पादितेन कार्येण, किम्=को लाभः, यत्=कृतमित्यर्थः, तैः=परैः, श्व=यथा, रणे=युद्धे, प्रकाशम्=सर्वजनविदितम्, न कृतम्=न सम्पादितम्, यथा सर्वजनसमक्षं तैर्दुःशासनस्य वधः कृतस्तथैव मयाऽपि तेषां वधः सर्वजन-
समक्षं विधेयः इति भावः । अहम्=पापः दुर्योधनः, हे मातः=हे जननि, एकः=एकाकी एव,

(पदों के पीछे कोलाहल के बाद)

हे हे योद्धाओं आप कुरराज (दुर्योधन) से हो रहे इस महान् नर-संहार को बतला दें । अप्रिय सुनने से मुँह मोड़ना व्यर्थ है । क्योंकि सम्प्रति समय के अनुरूप बदले का कार्य करना चाहिये । क्योंकि—

चाबुक और लगाम की डोरी छोड़े हुए, अर्जुन (के नाम) से अङ्कित बाणों से विद्वशरीर वाला, रथ के मार्गों के परिचित होने के कारण घोड़ों के द्वारा धीरे-धीरे खींच कर ले जाया जाता हुआ, पूछने वालों को अश्रुओं से कर्ण के समाचार को बतलाता हुआ, कुराओं को काँटे के समान बीधता हुआ, शल्य खाली ही रथ से छावनी की ओर जा रहा है ॥ १० ॥

विशेष—पार्थाङ्कितैः मार्गणैः—बाणों के ऊपर योद्धाओं का नाम इसलिये लिखा रहता था कि लक्ष्य-मेद करने पर तथा किसी शत्रु को मारने पर यह भ्रम न हो कि यह किसका बाण था । यही कारण है कि अर्जुन के भी बाणों पर उनका नाम अङ्कित था ।

शल्यः याति—महाभारत युद्ध में शल्य कर्ण का सारथि था । कर्ण मारा जा चुका है । शल्य अकेले ही कर्ण-विहीन रथ लेकर लौट रहा है । लोग पूछते हैं—“कर्ण कहाँ है ?” अत्यन्त दुःखित शल्य कुछ बोल नहीं पा रहा है । वह केवल डबडबाई आँखों से पूछनेवालों को देख भर देता है । इससे पूछने वाले जान जाते हैं कि कर्ण मारा जा चुका है ॥ १० ॥

भवतामुत्तम्यकरः—भवत्याः = श्रीमत्यास्तव, सुतानाम् = पुत्राणाम्, क्षयकरः = विनाशकर्ता, एकोनशत-पुत्राणां विनाशकर्ता इति भावः, तदा अरयः = शत्रवः, कियन्तः = कति, केवलं पञ्चैवतिभावः, सन्तोति शेषः, अधुना = सम्प्रति, केवलम्, दैवम् = माग्यम्, साम्यम् = समानताम्, एतु = प्राप्नोतु, मेदिनी = पृथिवी, निष्पाण्डवा = पाण्डवाविराहता, भविष्यतीति शेषः । प्रत्यक्षं हतबान्धवस्य न परान् हन्तुं रहो मे क्षमः” इत्यपि पाठः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ ९ ॥

ओ भो योधा इति । कदनम्—पापं भीषणं वा (‘कदनं भीषणे पापे’ इति विश्वः) नरसंहार इत्यर्थः । अप्रियश्रवणपराङ्मुखतया—अप्रियस्य = अनभ्यस्तित्येत्यर्थः, दुःखपूर्णस्येति यावत्, श्रवणात् = आकर्षणात् पराङ्मुखः = परावृत्तः तस्य भावः तथा, कालानुरूपम् = समयानुसारम्, प्रतिविधातव्यम् = प्रतिकर्तव्यम् ॥

अन्वयः—त्यक्तपाजनरश्मिः, पार्थाङ्कितैः, मार्गणैः, अङ्किततनुः, स्यन्दनवर्त्मनाम्, परिचयात्, वाहैः, शनैः, आकृष्यमाणः, पृच्छताम्, विलोचनजलैः, अङ्गपतैः, वार्ताम्, आवेदयन्, कुरून्, शल्ययन्, शल्यः, शून्येन, एव, रथेन, शिविरम्, याति ॥ १० ॥

शब्दार्थः—त्यक्तपाजनरश्मिः = चाबुक और लगाम की डोरी छोड़े हुए, पार्थाङ्कितैः = अर्जुन (के नाम) से अङ्कित, मार्गणैः = बाणों से, अङ्किततनुः = चिह्नित शरीर वाला, विद्वशरीर वाला, स्यन्दनवर्त्मनाम् = रथ के मार्गों के, परिचयात् = परिचित होने के कारण, वाहैः = घोड़ों के द्वारा, शनैः = धीरे-धीरे, आकृष्यमाणः = खींच कर ले जाया जाता हुआ, पृच्छताम् = पूछने वालों को, विलोचनजलैः = अश्रुओं से, अङ्गपतैः = कर्ण के, वार्ताम् = समाचार को, आवेदयन् = बतलाता हुआ, कुरून् = कुराओं को, शल्ययन् = काँटे के समान बीधता हुआ, शल्यः = शल्य, शून्येन = खाली, एव =

दुर्योधनः—(श्रुत्वा साशङ्कम्) आः केनेदमविस्पष्टमशनिपातदारुणमुद्धोषितम् ।
कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य संभ्रान्तः)

सूतः—हा हताः स्मः । (इत्यात्मानं पातयति)

दुर्योधनः—अयि, कथय कथय ।

धृतराष्ट्रसञ्जयौ—कथ्यतां कथ्यताम् ।

सूतः—आयुष्मन्, किमन्यत् ।

शल्येन यथा शल्येन मूर्च्छितः प्रविशता जनौघोऽयम् ।

शून्यं कर्णस्य रथं मनोरथामवाधिरूढेन ॥ ११ ॥ ✕

दुर्योधनः—हा वयस्य कर्ण । (इति मोहमुपगतः)

गान्धारी—जात, समाश्वसिहि समाश्वसिहि । [जाद, समस्तस समस्तस ।]

सञ्जयः—समाश्वसितु समाश्वसितु देवः ।

धृतराष्ट्रः—भोः कष्टं कष्टम् ।

भीष्मे द्रोणे च निहते य आसीदवलम्बनम् ।

वत्सस्य मे सुहृच्छूरो राधेयः सोऽप्ययं हतः ॥ १२ ॥ ✕

ही, रथेन = रथ से, शिविरम् = छावनी की ओर, याति = जा रहा है ॥ १० ॥

त्यक्तप्राजनरश्मिरिति । त्यक्तौ = मुक्तो प्राजनरश्मो = तोत्रप्रग्रही, ('प्राजनं तोदनं तोत्रम्' इत्यमरः) रश्मिरत्र वल्गा, येन सः, पार्थाङ्कितैः अर्जुननामोदृङ्कितैः मार्गणैः = बाणैः, ('मार्गणौ याचकशरी' इति विश्वः), अङ्किततनुः—अङ्कितः चिह्निता तनुः = शरीरम्, यस्य सः, स्यन्दनवत्सनाम्—स्यन्दनस्य = रथस्य वत्सनाम् = मार्गाणाम्, परिचयात् = संस्तवात्, ('संस्तवः स्यात् परिचयः' इत्यमरः) बाहैः = अश्वैः, शनैः = मुहुः, आकृष्यमाणः = नीयमानः, पृच्छताम् = जिज्ञासमानानां जनानाम्, विलोचनजलैः = अश्रुभिः, अङ्गपतेः = कर्णस्य, वार्ताम् = वृत्तान्तम् ('वार्ता प्रवृत्तिवृत्तान्तः' इत्यमरः), आवेदयन् = कथयन्, तथा च कर्णो मृत इति रोदननेनैव सूचयन्नित्यर्थः, कुरून् = कौरवान्, शल्ययन् = दुःखितान् कुर्वन्, शल्यः = महाभारते कर्णस्य रथसञ्चालको राजा, शून्येन = कर्णविरहितेन, एव = च, रथेन = स्वन्दनेन, शिविरम् = सैन्यनिवासस्थानम्, याति = गच्छति । अत्र यमकालङ्कारः ।
शार्दूलविकीर्णितं छन्दः ॥ १० ॥

दुर्योधन इति । अविस्पष्टः = सन्दिग्धम्, अशनिपातदारुणम्—अशनिः = वज्रम् तस्य पातः = पतनम् तद्वत् दारुणम् = भयङ्करम्, उद्धोषितम् = उच्चैः शब्दः कृतः ॥

अन्वयः—मनोरथम्, श्व, कर्णस्य, शून्यम्, रथम्, अधिरूढेन, प्रविशता, शल्येन, यथा, शल्येन अयम्, जनौघः, मूर्च्छितः ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—मनोरथम् = मनोरथ की, श्व = तरह, कर्णस्य = कर्ण के, शून्यम् = खाली, रथम् =

दुर्योधन—(सुन कर भयपूर्वक) आह ! किसके द्वारा यह अस्पष्ट तथा वज्रपात के समान मयङ्कर घोषणा की गई है ? कौन, कौन है यहाँ जो ?

(प्रवेश करके घबड़ाया हुआ)

सुत—हाय ! हम मारे गये । (ऐसा कह कर अपने-आपको गिराता है) ।

दुर्योधन—अरे बतलाओ, बतलाओ ।

धृतराष्ट्र और सञ्जय—बतलाओ, बतलाओ ।

सुत—चिरञ्जीविन्, दूसरा क्या ?

मनोरथ की तरह कर्ण के खाली रथ पर सवार (होकर) प्रवेश करते हुए, बछों की तरह, (कर्ण के सारथि) शल्य के द्वारा यह जनसमूह बेहोश कर दिया गया है ॥ ११ ॥

विशेष-शल्येन—प्राचीन काल के लोग जिस बच्छों का प्रयोग करते थे उसका फलक विषबुद्धा रहता था । यही कारण है कि जिसको वह लगती थी वे बेहोश हो जाते थे । आज भी जङ्गली जातियाँ इस प्रकार के अस्त्रों का प्रयोग करती हैं ॥ ११ ॥

दुर्योधन—हाय रे मित्र कर्ण ! (ऐसा कह कर मूर्च्छित हो गया) ।

गान्धारी—बेटा, धीरज रखो, धीरज रखो ।

सञ्जय—धैर्य धारण करें, धैर्य धारण करें महाराज ।

धृतराष्ट्र—आह ! महान् कष्ट है ।

भीष्मपितामह तथा आचार्य द्रोण के मारे जाने पर जो (हम लोगों का) सहारा था वह मेरे बेटे (दुर्योधन) का मित्र वीर यह कर्ण भी मार डाला गया ॥ १२ ॥

रथ पर, अधिरूढेन = सवार, प्रविशता = प्रवेश करते हुये, शल्येन = बछों की, यथा = तरह, शल्येन = (कर्ण के सारथि) शल्य के द्वारा, अयम् = यह, जनोषः = जनसमूह, मूर्च्छितः = बेहोश कर दिया गया है ॥ ११ ॥

शल्येनेति । मनोरथम् = मनोऽभिलाषम्, इव = यथा, कर्णस्य = राधेयस्य, शून्यम् = रिक्तम्, कर्णविरहितमित्यर्थः, रथम् = स्यन्दनम्, अधिरूढेन = आरूढेन, शल्येन = शङ्कुनामकास्त्रविशेषेण, 'लोके बछों' इति प्रसिद्धेन, यथा = इव, शल्येन = कर्णसारथिभूतेन नृपेण, अयम् = एषः, जनोषः = जनसमवायः, मूर्च्छितः = विगतचेतनः कृतः । अत्र यमकं पूर्णोपमा चालङ्कारौ । आर्या छन्दः ॥ ११ ॥

अन्वयः—भीष्मे, च, द्रोणे, निहते, यः, (अस्माकम्), अवलम्बनम्, आसीत्; सः, मे, वत्सस्य, सुहृत्, शूरः, अयम्, राधेयः, अपि, हतः ॥ १२ ॥

शब्दार्थः—भीष्मे = भीष्मपितामह, च = तथा, द्रोणे = आचार्य द्रोण के, निहते = मारे जाने पर, यः = जो, (अस्माकम् = हम लोगों का), अवलम्बनम् = सहारा, आसीत् = था, सः = वह, मे = मेरे वत्सस्य = बेटे का, सुहृत् = मित्र, शूरः = वीर, अयम् = यह, राधेयः = कर्ण, अपि = भी, हतः = मार डाला गया ॥ १२ ॥

वत्स, समाश्वसिहि समाश्वसिहि । ननु मो हतविधे,

अन्धोऽनुभूतशतपुत्रविपत्तिदुःखः

शोच्यां दशामुपगतः सह भार्ययाहम् ।

अस्मिन्नशेषितसुहृद्गुरुबन्धुवर्गे

दुर्योधनेऽपि हि कृतो भवता निराशः ॥ १३ ॥ २

वत्स दुर्योधन, समाश्वसिहि समाश्वसिहि । समाश्वसय तपस्विनीं मातरं च ।

दुर्योधनः—(लब्धसंशः) ।

अयि कर्ण कर्णसुखदां प्रयच्छ मे

गिरमुदिगरन्निव मुदं मयि स्थिराम् ।

सततावियुक्तमकृताप्रियं प्रियं

वृषसेनवत्सल विहाय यासि माम् ॥ १४ ॥

(पुनर्मोहमुपगतः)

(सर्वे समाश्वसयन्ति)

भीष्म इति । भीष्मे = पितामहे इत्यर्थः, च = तथा, द्रोणे = आचार्ये इति यावत्, निहते = विनाशिते, यः = कर्णः, अस्माकमिति शेषः, अवलम्बनम् = साहाय्यकर्ता, आसीत् = अभूत्, सः = तादृशः इत्यर्थः, मे = मम, वत्सस्य = पुत्रस्य दुर्योधनस्येत्यर्थः, सुहृत् = मित्रम्, शूरः = वीरः, अयम् = एषः, राधेयः = राधापुत्रः कर्णः, अपि = च, हतः = निहतः, शत्रुणेति शेषः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ १२ ॥

अन्वयः—अनुभूतशतपुत्रविपत्तिदुःखः, अन्धः, अहम्, भार्यया, सह, (इमाम्), शोच्याम्, दशाम्, उपगतः, (सम्प्रति), अशेषितसुहृद्गुरुबन्धुवर्गे, अस्मिन्, दुर्योधने, अपि, भवता, हि, निराशः, कृतः, ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—अनुभूतशतपुत्रविपत्तिदुःखः = सौ पुत्रों की (मृत्यु रूप) विपत्ति के दुःखका मोका, अन्धः = अन्धा, अहम् = मैं, भार्यया = पत्नी के, सह = साथ, (इमाम् = इस), शोच्याम् = शोचनीय, दशाम् = अवस्था को, उपगतः = प्राप्त हो चुका हूँ; (सम्प्रति = अब), अशेषितसुहृद्गुरुबन्धुवर्गे = विनष्ट हो गया है मित्र, गुरु तथा सुहृद्-वर्ग जिसका ऐसे, अस्मिन् = इस, दुर्योधने = दुर्योधन के विषय में, अपि = भी, भवता = आपके द्वारा, हि = यह श्लोक के चरण की पूर्ति के लिये आया है, निराशः = निराश, कृतः = कर दिया गया ? ॥ १३ ॥

अन्ध इति । अनुभूतशतपुत्रविपत्तिदुःखः—अनुभूतम् = अनुभवविषयीकृतम् शतपुत्राणाम् = शतपुत्रानाम् विपत्तेः = आपत्तेः, मरणरूपापत्तेरित्यर्थः, दुःखम् = कष्टम् येन सः, अन्धः = नेत्रविहीनः, अहम् धृतराष्ट्रः, भार्यया = पत्न्या गान्धार्या, सह = साकम्, (इमाम् = एताम्), शोचितुं योग्यां शोच्याम् = शोचनीयाम्, कष्टपूर्णा इत्यर्थः, दशाम् = अवस्थाम्, उपगतः = प्राप्तः । (सम्प्रति = अधुना), अशेषितसुहृद्गुरुबन्धुवर्गे—अशेषितः = विनष्टः सुहृद्गुरुबन्धुवर्गः = मित्राचार्यस्वजनसमवायः यस्य तस्मिन्,

बेटा, धीरज रखो, धीरज रखो । अरे अथम भाग्य !

सौ पुत्रों की (मृत्युरूप) विपत्ति के दुःख का भोक्ता, अन्धा मैं पत्नी के साथ (इस) शोचनीय अवस्था को प्राप्त हो चुका हूँ । (अब) विनष्ट हो गया है मित्र गुरु और सुहृद्गं जिसका ऐसे इस दुर्घोषन के विषय में मो आपके द्वारा निराश कर दिया गया ? ॥ १३ ॥

बेटा दुर्घोषन, धैर्य धारण करो, धैर्य धारण करो तथा कातर (अपनी) माता को धीरज बँधाओ ।

दुर्घोषन—(चेतना में आकर)

हे कर्ण, मुझमें स्थायी प्रसन्नता को उड़ेलते हुए-से, (तुम) कानों को प्रिय लगने वाली वाणी मुझे प्रदान करो । हे वृषसेन पर स्नेह करने वाले, कभी भी न बिछुड़े हुए, (तुम्हारा) अप्रिय न करने वाले, प्रिय मुझको छोड़ कर जा रहे हो ? (अर्थात् मुझको इस तरह छोड़ कर जाना उचित नहीं) ॥ १४ ॥ (फिर मूर्च्छित हो जाता है)

(सभी लोग सान्त्वना देते हैं)

अस्मिन् = पुरःस्थिते. एतस्मिन्नित्यर्थः, दुर्घोषने = सुघोषने, आशावलम्बने सुघोषने इत्यर्थः, अपि = च, भवता = त्वया, हीति पादपूर्वा, निराशः = आशाविहीनः, कृतः = सम्पादितः ? । अत्र काव्यलिङ्गमलङ्कारः । वसन्ततिलका छन्दः ॥ १३ ॥

अन्वयः—अयि कर्ण, मयि, स्थिरान्, सुदम्, उद्गिरन्, इव, (त्वम्), कर्णसुखदाम्, गिरम्, मे, प्रयच्छ, हे वृषसेनवत्सल ! सततावियुक्तम्, अकृताप्रियम्, प्रियम्, माम्, विहाय, यासि ? ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—अयि कर्ण = हे कर्ण, मयि = मुझमें, स्थिराम् = स्थायी, सुदम् = प्रसन्नता को, उद्गिरन् = उड़ेलते हुये, इव = से, (त्वम् = तुम्), कर्णसुखदाम् = कानों को प्रिय लगने वाली, गिरम् = वाणी, मे = मुझे, प्रयच्छ = प्रदान करो; हे वृषसेनवत्सल = हे वृषसेन पर स्नेह करने वाले, सततावियुक्तम् = कभी भी न बिछुड़े हुए, अकृताप्रियम् = अप्रिय न करने वाले, प्रियम् = प्रिय, माम् = मुझको, विहाय = छोड़कर, यासि = जा रहे हो ? ॥ १४ ॥

अयीति । अयि कर्ण = हे राधेय, मयि = दुर्घोषने, भवन्मित्रे इत्यर्थः, स्थिराम् = स्थायिनीम्, सुदम् = प्रसन्नताम्, (‘मुत्प्रीतिः प्रमदो हर्षः प्रमोदामोदसंमदाः’ इत्यमरः) उद्गिरन् = उद्गमन्, इव = यथा, त्वमिति शेषः, कर्णसुखदाम्-कर्णयोः = श्रावयोः सुखं ददातीति तां सुखदाम् = आह्लादिनीम्, गिरम् = वाणीम्, मे = ममाम्, प्रयच्छ = देहि, वृषसेनवत्सल = हे वृषसेने = स्वपुत्रे वृषसेने इत्यर्थः वत्सलः = स्नेहप्रवणः तत्सम्बुद्धौ, सततावियुक्तम् = सततम् = निरन्तरम् अवियुक्तम् = अव्ययभूतम्, अकृताप्रियम् = अकृतम् = असम्पादितम् अप्रियम् = अनभिलषितम् येन तम्, प्रियम् = प्रेमभाजनम्, माम् = एतादृशं मित्रं दुर्घोषनमित्यर्थः, विहाय = त्यक्त्वा, यासि = गच्छसि ? अनया रीत्या तव गमनं न समीचीनमिति भावः । अत्र यमकमुपमा चालङ्कारौ । मञ्जुभाषिणो छन्दः । तत्तलक्षणम्—‘सजसा जगौ च यदि मञ्जुभाषिणी’ ॥ १४ ॥

दुर्योधनः—

मम प्राणाधिके तस्मिन्नङ्गानामधिपे हते ।

उच्छ्वसन्नपि लज्जेऽहमाश्वासे तात का कथा ॥ १५ ॥

अपि च—

शोचामि शोच्यमपि शत्रुहृतं न वत्सं

दुःशासनं तमधुना न च बन्धुवर्गम् ।

येनातिदुःश्रवमसाधु कृतं तु कर्णे

कर्तास्मि तस्य निधनं समरे कुलस्य ॥ १६ ॥

गान्धारी—जात, शिथिलय तावक्षणमात्रं बाष्पमोक्षम् ।

[जाद, सिढिलेहि दाव वखणमेत्तं बाष्पमोक्खम् ।]

धृतराष्ट्रः—वत्स, क्षणमात्रं परिमार्जयाश्रूणि ।

दुर्योधनः—

मामुद्दिश्य त्यजन्प्राणान्केनचिन्न निवारितः ।

तत्कृते त्यजतो बाष्पं किं मे दीनस्य वार्यते ॥ १७ ॥

अन्वयः—हे तात ! अङ्गानाम्, अधिपे, मम, प्राणाधिके, तस्मिन्, हते (सति), उच्छ्वसन्, अपि, अहम्, लज्जे, आश्वासे, का, कथा ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—हे तात = हे पिताजी, अङ्गानाम् = अङ्गदेश के, अधिपे = शासक, मम = मेरे, प्राणाधिके = प्राणों से भी अधिक (प्रिय), तस्मिन् = उसके, हते (सति) = मारे जाने पर, उच्छ्वसन् = श्वास लेता हुआ, अपि = भी, अहम् = मैं, लज्जे = लज्जित हो रहा हूँ, आश्वासे = धैर्य धारण करने की, का = क्या, कथा = बात, कथा, हालत ? ॥ १५ ॥

ममेति । हे तात = हे पितः, अङ्गानाम् = अङ्गदेशप्रजानाम्, अधिपे = शासके, तस्मिन् = तादृशे इत्यर्थः, कर्णे इति शेषः, हते (सति) = विनाशते सति; उच्छ्वसन् = श्वासं गृह्णन्, अपि = च, अहम् = दुर्योधनः, लज्जे = ब्रीडामनुभवामि, आश्वासे = धैर्यावलम्बने, का कथा = कीदृशी वार्ता ? अपितु न कापीत्यर्थः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ १५ ॥

अन्वयः—अधुना, शत्रुहृतम्, शोच्यम्, वत्सम्, दुःशासनम्, च, तम्, बन्धुवर्गम्, न, शोचामि; (किन्तु), येन, कर्णे, अतिदुःश्रवम्, असाधु, कृतम्, समरे, तस्य, कुलस्य, निधनम्, कर्ता, अस्मि ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—अधुना = अब, शत्रुहृतम् = शत्रु के द्वारा मारे गये, शोच्यम् = शोक किये जाने के योग्य, अपि = भी, वत्सम् = प्रिय, वत्स, दुःशासनम् = दुःशासन के लिये, च = तथा, तम् = उस, बन्धुवर्गम् = बन्धुवर्ग के लिए, न = नहीं, शोचामि = शोक करता हूँ । (किन्तु = किन्तु), येन = जिसके द्वारा, कर्णे = कर्ण के विषय में, अतिदुःश्रवम् = बिलकुल न सुना जा सकने वाला, सुनने के अयोग्य, असाधु = अनुचित, कृतम् = किया गया है, समरे = संग्राम में, तस्य = उसके, कुलस्य = कुलका, निधनम् =

दुर्योधन—हे पिताजी, अङ्गदेशके शासक, मेरे प्राणों से भी अधिक (प्रिय) उस (कर्ण) के मारे जाने पर श्वास लेता हुआ भी मैं लज्जित हो रहा हूँ, (तो) धैर्य धारण करने की क्या बात ? ॥ १५ ॥

और भी—

अब (मैं) शत्रु के द्वारा मारे गये (अतः) शोक किये जाने के योग्य भी वत्स दुःशासन तथा उस बन्धु वर्ग के लिए नहीं शोक करता हूँ; (किन्तु) जिसके द्वारा कर्ण के विषय में विलकुल न सुना जा सकने वाला (most Unpleasant to hear) अनुचित (wrong) किया गया है, संग्राम में उस के कुल का विनाश करने वाला हूँ ॥ १६ ॥

गान्धारी—बेटा, अब क्षण भर के लिये आँसू बहाना कम करो ।

धृतराष्ट्र—बेटा, क्षण भर (जरा) आँसुओं को पोंछो ।

दुर्योधन—मुझे उद्देश्य कर के (अर्थात् मेरे लिए) प्राणों को छोड़ता हुआ (कर्ण) किसी के भी द्वारा नहीं रोका गया । (अब) उसके लिये आँसू बहाते हुए मुझ दोन को क्यों रोका जा रहा है ? ॥ १७ ॥

विनाश, कर्ता=करने वाला, अस्मि=हूँ ॥ १६ ॥

शोचामीति । अधुना=सम्प्रति, शत्रुहृत्=शत्रुणा=अरिणा हृत्=निधनं प्रापितम्, अतः शोच्यम्=शोचितुं योग्यम्, अपि=च, वत्सम्=वत्सवराललनायम्, दुःशासनम्=स्वानुजम्, च=तथा, तम्=तादृशम्, अतिदुर्लभं तमित्यर्थः, बन्धुवर्गम्=स्वजनसमवायम्, न शोचामि=न हार्दिकं दुःखमनुभवामि, किन्तु, येन=येन शत्रुणेत्यर्थः, कर्णं=राधेये, अतिदुःश्रवम्=दुःखेन श्रोतुं योग्यं दुःश्रवम् अत्यन्तं दुःश्रवम् अतिदुःश्रवम्=अत्यर्थं दुःखश्राव्यम्, असाधु=अशुभम् कृतम्=विहितम्, समरे=युद्धे, तस्य, कुलस्य=वंशस्य, निधनम्=विनाशम्, कर्ता=सम्पादकः, अस्मि । सम्प्रति, पाण्डवानेव हनिष्यामीति भावः । वसन्ततिलका छन्दः ॥ १६ ॥

अन्वयः—माम्, उद्दिश्य, प्राणान्, त्यजन्, (केनचित्; न, निवारितः, तत्कृते, बाष्पम्, त्यजतः, मे, दोनस्य, किम्, वार्यते ॥ १७ ॥

शब्दार्थः—माम्=मुझे, उद्दिश्य=उद्देश्य करके, प्राणान्=प्राणों को, त्यजन्=छोड़ता हुआ, (कर्णः=कर्ण), केनचित्=किसी के भी द्वारा, न=नहीं, निवारितः=रोका गया; तत्कृते=उसके लिये, बाष्पम्=आँसू, त्यजतः=बहाते हुये, मे=मुझ, दोनस्य=दोन को, किम्=क्यों, वार्यते=रोका जा रहा है ? ॥ १७ ॥

मामुद्दिश्येति—माम्=मां मित्रं सुयोधनमित्यर्थः, उद्दिश्य=लक्ष्यीकृत्य, प्राणान्=असन्, त्यजन्=मुञ्चन्, कर्णं इति शेषः, केनचित्=केनाऽपि जनेनेत्यर्थः, न निवारितः=न वारितः; तत्कृते=तस्य=कर्णस्य कृते=हेतो, बाष्पम्=अश्रु, त्यजतः=मुञ्चतः, मे=मम, दोनस्य=वराकस्य, दुःखितस्येत्यर्थः, किम्=कस्मात्, वार्यते=निवार्यते, भवतेति शेषः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ १७ ॥

सूत, केनैतदसंभावनीयमस्मत्कुलान्तकरं कर्म कृतं स्यात् ।

सूतः—आयुष्मन्, एवं किल जनः कथयति ।

भूमौ निमग्नचक्रश्चक्रायुधसारथेः शरैस्तस्य ।

निहतः किलेन्द्रसूनोरस्मत्सेनाकृतान्तस्य ॥ १८ ॥

दुर्योधनः—

कर्णानिनेन्दुस्मरणात्क्षुभितः शोकसागरः ।

वाढवेनेव शिखिना पीयते क्रोधजेन मे ॥ १९ ॥

तात, अम्ब, प्रसीदतम् ।

ज्वलनः शोकजन्मा मामयं दहति दुःसहः ।

समानायां विपत्तौ मे वरं संशयितो रणः ॥ २० ॥

धृतराष्ट्रः—(दुर्योधनं परिष्वज्य रुदन्)

भवति तनय लक्ष्मीः साहसेष्वीदृशेषु

द्रवति हृदयमेतद्भीममुत्प्रेक्ष्य भीमम् ।

अनिकृतिनिपुणं ते चेष्टितं मानशौण्ड

छलबहुलमरीणां सङ्गरं हा हतोऽस्मि ॥ २१ ॥

अन्वयः—चक्रायुधसारथेः, अस्मत्सेनाकृतान्तस्य, तस्य, इन्द्रसूनोः, शरैः, भूमौ, निमग्नचक्रः, (कर्णः), निहतः, किल ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—चक्रायुधसारथेः=कृष्ण जिसके सारथि हैं ऐसा, अस्मत्सेनाकृतान्तस्य=हमारी सेनाके लिए यमराज, तस्य=उस, इन्द्रसूनोः=इन्द्रपुत्र के, शरैः=बाणों से, भूमौ=पृथिवी में, निमग्नचक्रः=धँसी हुई (रथ की) पहिया वाला, (कर्णः=कर्ण), निहतः=मारा गया, किल=ऐसी प्रसिद्धि है ॥ १८ ॥

भूमाविति । चक्रायुधसारथेः—चक्रायुधः=चक्रप्रहरणः श्रीकृष्णः सारथिः=रथसञ्चालकः यस्य तस्य, अस्मत्सेनाकृतान्तस्य—अस्माकं सेनायाः=वाहिन्याः कृतान्तस्य=यमराजस्य, विनाशकस्येति यावत्, तस्य=जगद्धितस्येत्यर्थः, इन्द्रसूनोः=इन्द्रपुत्रस्य, अर्जुनस्य, शरैः=बाणैः, भूमौ=पृथिव्याम्, निमग्नचक्रः—निमग्नम्=बुडितम् चक्रम्=रथाङ्गम् यस्य सः कर्ण इति शेषः, निहितः=विनाशितः, किलेति प्रसिद्धौ । भूमौ निमग्नचक्रस्य रथोत्थोद्धरणे यदा संलग्नः आसीत् कर्णस्तदाऽर्जुनस्तं जघानेति महाभारतीया कथा । आर्या छन्दः ॥ १८ ॥

अन्वयः—कर्णानिनेन्दुस्मरणात्=क्षुभितः, शोकसागरः, वाढवेन, इव, मे, क्रोधजेन, शिखिना, पीयते ॥ १९ ॥

शब्दार्थः—कर्णानिनेन्दुस्मरणात्=कर्ण के मुखरूपी चन्द्रमा के स्मरण से, क्षुभितः=उफना हुआ (Agitated), शोकसागरः=शोक का सागर, वाढवेन=वढवानल के, इव=समान, मे=मेरे, क्रोधजेन=क्रोध से उत्पन्न हुये, शिखिना=अग्नि के द्वारा, पीयते=पी लिया जा रहा है ॥ १९ ॥

सुत, हमारे कुल का विनाशक यह असम्भव कार्य किसने किया होगा ?

सुत—आयुधम्न ऐसा लोग कहते हैं—

कृष्ण जिस के सारथि हैं ऐसे, हमारी सेना के लिए यमराज, उस इन्द्रपुत्र (अर्जुन) के बाणों से पृथ्वी में धँसी हुई रथ की पहियावाला (कर्ण) मारा गया ऐसी प्रसिद्धि है ॥ १८ ॥

विशेष-इन्द्रसुनोः—कुन्ती के पति पाण्डु रोगी थे । अतः कुन्ती ने यमराज से युधिष्ठिर को, वायु से भीम को, इन्द्र से अर्जुन को तथा अश्विनी-कुमारों से नकुल और सहदेव को उत्पन्न किया था । यही कारण है कि अर्जुन 'इन्द्रपुत्र' कहे जाते हैं ॥ १८ ॥

दुर्योधन—कर्ण के मुखरूपी चन्द्रमा के स्मरण से उफना (Agitated) हुआ शोक का सागर, बड़बानल के समान, मेरे क्रोध से उत्पन्न हुये अग्नि के द्वारा पी लिया जा रहा है ॥ १९ ॥

विशेष-वाडवेन—समुद्र के बीच 'बड़वा'—एक घोड़ी रहती है, जो अपने मुख से सर्वदा आग उगलती रहती है । सागर का जल इसी आग से भस्म होकर मर्यादा (तटों) के भीतर ही रहता है ॥ १९ ॥

पिताजी एवं माताजी, कृपा कीजिये ।

दुःसह, शोकसे उत्पन्न, आग मुझे जला रही है । (इस तरह) समान (रूप से) मृत्यु के (निश्चित) होने पर (भी) मेरा (विजय के बारे में) सन्देहास्पद युद्ध (ही) श्रेष्ठ है ॥ २० ॥

धृतराष्ट्र—(दुर्योधन को गले लगाकर रोता हुआ) ।

हे पुत्र, इसी तरह के साहसों में लक्ष्मी निवास करती है । (किन्तु) भीषण भीम को याद करके (मेरा) यह कलेजा पसोज रहा है (Is melting) । हे विख्यात स्वामिमानिन्, तुम्हारा कार्य वञ्चना (Treachery) की निपुणता से रहित (है) । शत्रुओं का युद्ध कपट से भरा हुआ है । (अतः) हाय ! (मैं तो) मारा गया ॥ २१ ॥

कर्णाननेति । कर्णाननेन्दुस्मरणात्=कर्णस्य=राधेयस्य आननमेव=मुखमेव इन्द्रः=चन्द्रः तस्य स्मरणात्=बुद्धावारोहात्, क्षुभितः=वृद्धिज्ञतः, शोकसागरः—शोकः=सन्तापः एव सागरः=समुद्रः, वाडवेन=वाडवजातेन, इव=यथा, क्रोधजेन=क्रोधजातेन, शिखिना=अग्निना, पीयते=शोष्यते । अत्रोपमालङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ १९ ॥

अन्वयः—दुःसहः, शोकजन्मा, अयम्, ज्वलनः, माम्, दहति, (एवम्), समानायाम्, विपत्तौ, मे, संशयितः, रणः, वरम् ॥ २० ॥

शब्दार्थः—दुःसहः=दुःसह, शोकजन्मा=शोक से उत्पन्न, अयम्=यह, ज्वलनः=आग, माम्=मुझे, दहति=जला रहो है, (एवम्=इस तरह), समानायाम्=समान, विपत्तौ=विपत्ति के, मृत्यु के होने पर (भी), मे=मेरा, संशयितः=सन्देहास्पद, रणः=युद्ध, वरम्=श्रेष्ठ है ॥ २० ॥

ज्वलन इति । दुःसहः=दुःखेन सोढुं योग्यः, शोकजन्मा—शोकात्=अनुतापात् जन्म=उत्पत्तिः यस्य सः, अयम्=एषः, ज्वलनः=वह्निः, सन्ताप इत्यर्थः, माम्=दुर्योधनम्, दहति=भस्मीकरोति, (एवम्=इत्यम्), समानायाम्=तुल्यायाम्, विपत्तौ=दाहमरणविपदि सत्याम्, मे=मम, संशयितः=सन्दिग्धः, अये भङ्गे च सन्दिग्धोऽप्रात्यर्थः, रणः=युद्धम्, वरम्=श्रेष्ठ इत्यर्थः । वरं

गान्धारी—जात, तेनैव सुतशतकृतान्तेन वृकोदरेण समं समरं मार्ग्यसे ।

[जाद, तेण एव सुतसदकदन्तेण विओदलेण समं समलं मरगसि ।]

दुर्योधनः—तिष्ठतु तावद् वृकोदरः ।

पापेन येन हृदयस्थमनोरथो मे

सर्वाङ्गचन्दनरसो नयनामलेन्दुः ।

पुत्रस्तवाम्ब तव तात नयैकशिष्यः

कर्णो हतः सपदि तत्र शराः पतन्तु ॥ २२ ॥

सूत, अलमिदानीं कालातिपातेन । सज्जं मे रथमुपाहर । मयं चेत् पाण्डवेभ्य-
स्तिष्ठ । गदामात्रसहाय एव समरभुवमवतरामि ।

सूतः—अलमन्यथा संभावितेन । अयमहमागत एव । (इति निष्क्रान्तः)

धृतराष्ट्रः—वत्स दुर्योधन, यदि स्थिर एवास्मान्दग्धुमयं ते व्यवसायस्तत्सन्निहि-
तेषु वीरेषु सेनापतिः कश्चिदभिषिच्यताम् ।

दुर्योधनः—नन्वभिषिक्त एव ।

गान्धारी—जात, कतरः पुनः स यत्रेमां हताशामवलम्बिष्ये ।

[जाद, कदरो उण सो जहि एदं हदासं ओलम्बिस्सम् ।]

धृतराष्ट्रः—किं वा शल्य उत वाश्वत्थामा ।

सञ्जयः—हा कष्टम् ।

गते भोष्मे हते द्रोणे कर्णे च विनिपातिते ।

आशा बलवती राजन् शल्यो जेष्यति पाण्डवान् ॥ २३ ॥

शब्दो मनागर्थे वा । अष्टप् छन्दः ॥ २० ॥

अन्वयः—हे तनय, ईदृशेषु, साहसेषु, लक्ष्मीः, भवति; (परम्), भीमम्, भीमम्, उत्प्रेक्ष्य,
एतत्, हृदयम्, द्रवति; हे मानशौण्ड, ते, चेष्टितम्, अनिकृतिनिपुणम्, (वर्तते); अरीणाम्,
सङ्गरम्, छलबहुलम्, (अस्ति), (अतः), हा, हतः, अस्मि ॥ २१ ॥

शब्दार्थः—हे तनयः=हे पुत्र, ईदृशेषु=इसी तरह के, साहसेषु=साहसों में, लक्ष्मीः=लक्ष्मी
भवति=निवास करती है; (परम्=किन्तु) भीमम्=भीषण, भीमम्=भीम को, उत्प्रेक्ष्य=याद
करके, एतत्=यह, हृदयम्=कलेजा, द्रवति=पसीज रहा है, पिघल रहा है; हे मानशौण्ड=हे
विख्यातस्वामिमानिन्, ते=तुम्हारा, चेष्टितम्=कार्य, अनिकृतिनिपुणम्=वञ्चना को निपुणता से
रहित, (वर्तते=है); अरीणाम्=शत्रुओं का, सङ्गरम्=युद्ध, छलबहुलम्=कपट से भरा हुआ,
(अस्ति=है); (अतः=इसलिये), हा=हाय, हतः=मारा गया, अस्मि=हूँ ॥ २१ ॥

भवतीति । हे तनय=हे पुत्र, ईदृशेषु=एतादृशेषु, साहसेषु=शौर्येषु, लक्ष्मीः=श्रीः, भवति=
प्रतिवसति,—तदुक्तम्—‘न साहसमनारुह नरो भद्राणि पश्यति’ ‘साहसे श्रीः प्रतिवसति’ । (परम्=

गान्धारी—बेटा, (तुम) उसी मोम के साथ युद्ध करने की इच्छा कर रहे हो, (जो मेरे) सौ पुत्रों के लिए यमराज है ? (अर्थात् मेरे सौ पुत्रों का हन्ता है) ?

दुर्योधन—वृकोदर की बात छोड़ो ।

जिस पापी के द्वारा मेरे हृदय का मनोरथ, सभी अङ्गों का चन्दन-रस, नेत्रों का निर्मल चन्द्र और हे मातः, तुम्हारा बेटा तथा हे पिताजी, आपका नीति-शास्त्र का प्रमुख शिष्य कर्ण मारा गया है, उसी पर (मेरे) बाण अति शीघ्र पड़ें ॥ २२ ॥

सुत, अब समय गँवाना व्यर्थ है मेरे रथ को तैयार करके लाओ । यदि पाण्डवों से भय हो तो रुको । केवल गदा के सहारे ही (अर्थात् केवल गदा ही लेकर) संग्राम-भूमि में उतरता हूँ ।

सुत—दूसरा (कुछ) सोचने की आवश्यकता नहीं । वह मैं आ ही गया । (ऐसा कह कर निकल गया) ।

धृतराष्ट्र—बेटा दुर्योधन, यदि पूर्ण निश्चित ही है, हम लोगों को जलाने के लिए, तुम्हारा यह कार्य तो उपस्थित वीरों में किसी को सेनापति (के रूप में) अभिषिक्त करो ।

दुर्योधन—पहले ही अभिषिक्त है ।

गान्धारी—बेटा, वह कौन (अभिषिक्त) है, जिस पर इस मरी आशा को लगाऊँ ?

धृतराष्ट्र—क्या शल्य है अथवा अश्वत्थामा ?

सञ्जय—हाय ! कष्ट है ।

भीष्म के चले जाने पर, द्रोण के मारे जाने पर तथा कर्ण के मार कर गिरा दिये जाने पर, हे राजन् ! आशा बड़ी प्रबल है, (कि) शल्य पाण्डवों को जीतेगा । (अर्थात् शल्य के मरोसे पाण्डवों को जीतने की आशा दुराशामात्र है) ॥ २३ ॥

किन्तु), भीमम्=भीषणम्, भीमम्=वृकोदरम्, उत्प्रेक्ष्य=विचिन्त्य, एतत्=इदं मदीयम्, हृदयम्=चेतः, द्रवति=चपलं चिन्तितं वा भवति । हे मानशौण्ड=हे मानख्यात, (‘शौण्डो मत्ते च विख्याते’ इति विश्वः), ते=तव, चेष्टितम्=कर्म, अनिकृतिनिपुणम्—निकृती=परक्षेपे, शत्रुवञ्चने इति यावत्, निपुणम्=चतुरम् न भवतीति तयामूतम्, परवञ्चनारहितमित्यर्थः, वर्तते इति क्रियाशेषः, अरीणाम्=शत्रूणाम्, सङ्गरम्=युद्धम्, छलबहुलम्=कपटपूर्णम्, अस्ति । (अतः=अस्मात् कारणात्) हा इति खेदे अव्ययपदम्, हतः=विनष्टः, अस्मि=भवामि । मालिनी छन्दः ॥ २१ ॥

अन्वयः—येन, पापेन, मे, हृदयस्य, मनोरथः, सर्वाङ्गचन्दनरसः, नयनामलेन्दुः; हे अम्ब, तव, पुत्र; हे तात, तव, नयैकशिष्यः, कर्णः, हतः, तत्र, शराः, सपदि, पतन्तु ॥ २२ ॥

शब्दार्थः—येन=जिस, पापेन=पापी के द्वारा, मे=मेरे, हृदयस्य=हृदय का, मनोरथः=मनोरथ, सर्वाङ्गचन्दनरसः=सभी अङ्गों का चन्दन-रस, नयनामलेन्दुः=नेत्रों का निर्मल चन्द्र, हे, अम्ब=हे मातः, तव=तुम्हारा, पुत्रः=बेटा, हे तात=हे पिताजी, तव=आपका, नयैकशिष्यः=नीतिशास्त्र सा प्रमुख शिष्य, कर्णः=कर्ण, हतः=मारा गया है, तत्र=उसी पर, शराः=बाण, सपदि=अति शीघ्र, पतन्तु=पड़ें ॥ २२ ॥

दुर्योधनः—किं वा शल्येनोत वाञ्छन्त्याम्ना ।

कर्णालिङ्गनदायो वा पार्थप्राणहरोऽपि वा ।

अनिवारितसंपातैरयमात्माश्रुवारिभिः ॥ २४ ॥ ✕

(नेपथ्ये कलकलानन्तरम्)

भो भोः कौरवबलप्रधानयोधाः, अलमस्मानवलोक्य भयादितस्ततो गमनेन ।
कथयन्तु भवन्तः, कस्मिन्नुद्देशे सुयोधनस्तिष्ठतीति ।

(सर्वे ससंभ्रममाकर्णयन्ति)

(प्रविश्य संभ्रान्तः)

सूतः—आयुष्मन्,

प्राप्तावेकरथारूढौ पृच्छन्तौ त्वामितस्ततः ।

सर्वे—कश्च कश्च ।

सूतः—

स कर्णारिः स च क्रूरो वृककर्मा वृकोदरः ॥ २५ ॥ ✕

गान्धारी—(समयम्) जात, किमत्र प्रतिपत्तव्यम् ।

[जाद, किं एतय पडिपजिजद्वम् ।]

दुर्योधनः—ननु संनिहितैवेयं गदा ।

गान्धारी—हा हतास्मि मन्दभागिनी । (हा हृदक्षि मन्दमाशुणी ।)

दुर्योधनः—अम्ब, जलमिदानीं कार्पण्येन । संजय, रथामारोप्य पितरौ शिविरं
प्रतिष्ठस्व । प्राप्तोऽस्मच्छोकापनोदी जनः ।

धृतराष्ट्रः—वत्स, क्षणमेकं प्रतीक्षस्व यावदनयोर्भावमुपलभे ।

दुर्योधनः—तात, किमनेनोपलब्धेन ।

(ततः प्रविशतो रथारूढौ भीमार्जुनौ)

पापेनेति । येन पापेन = येन पापकर्मणा, मे = मम, हृदयस्य = चेतसः, मनोरथः = अभिलाषा,
सर्वाङ्गचन्दनरसः—सर्वाङ्गेषु = सर्वावयवेषु चन्दनरसः = मलयजरसः, नयनामलेन्दुः—नयनयोः = नेत्रयोः,
अमलः = निर्मलः इन्दुः = चन्द्रः; हे अम्ब = हे मातः, तव = भवत्याः, पुत्रः = सुतः, सुतकल्प इत्यर्थः;
हे तात = हे पितः, तव = भवतः, नयैकशिष्यः—नये = नीतौ एकः = प्रमुखः शिष्यः = छात्रः, कर्णः =
राधापुत्रः, हतः = विनष्टः कृतः, तत्र = तस्मिन्, अर्जुने इत्यर्थः, शराः = बाणाः, सपदि = झटिति,
पतन्तु = निपतन्तु । भीमं परित्यज्यार्जुनमेवाधुना हनिष्यामीति भावः । अत्र रूपकमलङ्कारः । वसन्त-
तिलका छन्दः ॥ २२ ॥

अन्वयः—भीष्मे, गते; द्रोणे, हते; च, कर्णे, त्रिनिपातिते; हे राजन्, आशा, बलवती, (यत्)
शल्यः, पाण्डवान्, जेष्यति ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—भीष्मे = भीष्म के, गते = चले जाने पर; द्रोणे = द्रोण के, हते = मारे जाने पर; हे

दुर्योधन—शल्य अथवा अश्वत्थामा से क्या (प्रयोजन) ?

कर्ण को आलिङ्गन प्रदान करने वाला अथवा अर्जुन के प्राणों को लेने वाला यह स्वयं अपने ही अनवरत बहने वाले अश्रुजलों से (अभिषिक्त हुआ हूँ) ॥ २४ ॥

(पदों के पीछे कोलाहल के बाद)

हे हे कौरव सेना के प्रधान वीरों, हम लोगों को देख कर भयवश इधर-उधर भागने की आवश्यकता नहीं। आप लोग बतलावें कि किस स्थान पर दुर्योधन स्थित है ?

(सभी लोग घबराहट के साथ सुनते हैं)

(प्रवेश करके घबड़ाया हुआ)

सूत—चिरञ्जीविन्,

इधर उधर आपको पूछते हुए, एक (ही) रथ पर चढ़े हुए आ गये हैं।

सर्भल्लोभ—कौन-कौन ?

सूत—प्रसिद्ध वह कर्ण-शत्रु तथा मेड़िया की तरह कार्यवाला वह क्रूर भीम ॥ २५ ॥

गान्धारी—(भय के साथ) वेदा, इस, विषय में क्या करना चाहिए ?

दुर्योधन—अरे यह गदा पास में ही स्थित है।

गान्धारी—हाय ! मारी गयी (मैं) अमागिन।

दुर्योधन—माँ, सम्प्रति दीनता की आवश्यकता नहीं। सजय, माता-पिता को रथ पर चढ़ा कर छावनी को ग्रस्थान करो। हमारे शोक को दूर करने वाला व्यक्ति आ गया है।

शोकापनोदी जनः—यहाँ दो भाव छिपा है—(१) यदि मैं भीम और अर्जुन को मार सकूँगा तो अपने बन्धुओं एवं कर्ण के विषय का शोक दूर हो जायेगा। यदि वे ही हमें मार डालेंगे तो भी हमारा शोक समाप्त हो जायेगा।

धृतराष्ट्र—वेदा, एक क्षण प्रतीक्षा करो, जब तक इन दोनों के भाव को परखता हूँ।

दुर्योधन—पिताजी, इसे जान लेने से क्या (मिलेगा) ?

(तदनन्तर रथ पर चढ़े हुये भीम और अर्जुन प्रवेश करते हैं)

राजन्=हे महाराज, आशा=आशा, बलवती=बड़ी प्रबल है, (यत्=कि), शल्यः=शल्य, पाण्डवान्=पाण्डवों को, जेध्यति=जीतेगा ॥ २३ ॥

गत इति। भीष्मे=भीष्मपितामहे गाङ्गेये वा, गते=हारीभूते, मृते इत्यर्थः; द्रोणे=गुरो द्रोणाचार्ये, हते=विनष्टे सति, च=तथा, कर्णे=राधापुत्रे, विनिपातिते=वातिते सति; हे राजन्=हे महाराज, आशा=तृष्णा, बलवती=प्रबला, भवतीति शेषः, (यत्), शल्यः=साधारणो वीरः, इति भावः, पाण्डवान्=युधिष्ठिरादीन्, जेध्यति=पराजयं दास्यति। अत्र विपरीतलक्षणया—शल्यः पाण्डवान् जेध्यतीति दुराशैवेति बोध्यम्। अनुष्टुप् छन्दः ॥ २३ ॥

अन्वयः—कर्णालिङ्गनदायो, वा, पार्थप्राणहरः, अपि, वा, अयम्, आरमा, अनिवारितसम्पातेः, अश्रुवारिभिः, (अभिषिक्तः) ॥ २४ ॥

मीमः—भो भोः सुयोधनानुजीविनः, किमिति संभ्रमादयथायथं चरन्ति भवन्तः ।
अलमावयोः शङ्कया ।

कर्ता द्यूतच्छलानां जतुमयशरणोद्दीपनः सोऽभिमानी
कृष्णाकेशोत्तरीयव्यपनयनमरुत्पाण्डवा यस्य दासाः ।

राजा दुःशासनादेर्गुरुरनुजशतस्याङ्गराजस्य मित्रं
क्वास्ते दुर्योधनोऽसौ कथयत न रूपा द्रष्टुमभ्यागती स्वः ॥ २६ ॥

धृतराष्ट्रः—संजय, दारुणः खलपक्षेपः पापस्य ।

संजयः—तात, कर्मणा कृतनिःशेषविप्रियाः संप्रति वाचा व्यवस्यन्ति ।

दुर्योधनः—सूत, कथय गत्वोभयोरयं तिष्ठतीति ।

सूतः—यथाज्ञापयति देवः । (ताडुपसृत्य) भो वृकोदरार्जुनौ, एष महाराजस्ताते-
नाम्बया च सह न्यग्रोधच्छायायाऽनुपविष्टस्तिष्ठति ।

अर्जुनः—आर्य, प्रसीद । न युक्तं पुत्रशोकपीडितौ पितरौ पुनरस्मद्दर्शनेनोद्वेज-
यितुम् । तद्गच्छावः ।

शब्दार्थः—कर्णालिङ्गनदायो = कर्ण को आलिङ्गन प्रदान करने वाला, वा = अथवा, पार्यप्राण-
हरः = अर्जुन के प्राणों को लेने वाला, अपि, वा = ये दोनों श्लोक पूर्ण करने के लिये हैं, यहाँ इनका
कोई अपना अर्थ नहीं है, अयम् = यह, आत्मा = स्वयं अपने ही, अनिवारितसम्पातैः = अनवरत बहने
वाले, अश्रुवारिमिः = अश्रुजलों से, (अभिषिक्तः = अभिषिक्त हुआ हूँ) ॥ २४ ॥

कर्णति । कर्णालिङ्गनदायो—कर्णस्य = राधेयस्य आलिङ्गनं ददातीति तादृशः, वेति विकल्पे,
पार्यप्राणहरः—पार्यस्य = अर्जुनस्य प्राणान् = अशून् हरति = अपहरतीति तादृशः, अपि वेति पादपूर्तौ,
अयम् = एषः, आत्मा = स्वयमहमित्यर्थः, अनिवारितसम्पातैः—अनिवारितः = अनवरतः सम्पातः =
प्रवाहः येषां तैः, अश्रुवारिमिः = अश्रुजलैः, अभिषिक्त इति शेषः । अहमेवाधुना सेनापतिः शत्रु-
मारयितुं मर्तुं वेति भावः । अत्र रूपकमलङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २४ ॥

अन्वयः—इतस्ततः, त्वाम्, पृच्छन्तौ, एकरथारूढौ, प्राप्तौ; सः, कर्णारिः, च, वृककर्मा, सः,
क्रूरः, वृकोदरः ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—इतस्ततः = इधर-उधर, त्वाम् = आप को, पृच्छन्तौ = पूछते हुये, एकरथारूढौ = एक
रथ पर चढ़े हुए, प्राप्तौ = आ गये हैं; सः = प्रसिद्ध वह, कर्णारिः = कर्ण-शत्रु, च = तथा, वृककर्मा =
मेड़िया की तरह कार्यवाला, सः = वह, क्रूरः = क्रूर, वृकोदरः = भीम ॥ २५ ॥

प्राप्ताविति । इतस्ततः = चतुर्दिक्ष्वित्यर्थः, त्वाम् = मवन्तम्, पृच्छन्तौ, एकरथारूढौ—एकरथम् =
अभिन्नस्यन्दनम् आरूढौ = स्थितौ, प्राप्तौ = आगतौ । पृच्छन्तु सर्वेषु उत्तरयति—सः = प्रख्यातः,
कर्णारिः कर्णशत्रुरर्जुनः, च = तथा, वृककर्मा—वृकवत् = मृगविशेषवत् कर्म = कार्यम्, युद्धक्रियेत्यर्थः,
यस्य सः, सः = शत्रुत्वेन प्रसिद्धः, क्रूरः = निर्धृणः, वृकोदरः = भीमः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २५ ॥

भीम इति । सुयोधनानुजीविनः—सुयोधनस्य = दुर्योधनस्य अनुजीविनः = आश्रिताः जनाः

भीम—हे हे दुर्योधन के आश्रितों, क्यों इस तरह भयवश अस्त-व्यस्त रूप से भाग रहे हैं आप लोग ? हम दोनों से डरने की आवश्यकता नहीं ? ।

धृत्-कपटों का कर्ता; लाह-निर्मित भवन को जलाने वाला; द्रौपदी के केश एवं शिर तथा वक्षःस्थल को ढकने वाले वस्त्र (Upper cloth) को दूर हटाने में वायु-तुल्य; घमण्डी; पाण्डव लोग जिसके दास हैं; दुःशासन आदि सौ माइयों के समूह का (में) श्रेष्ठ; कर्ण का मित्र, राज्य का अधिपति वह दुर्योधन कहाँ है ? (तुम लोग) बतलाओ, क्रोध से नहीं, (अपितु) दर्शन करने के लिए (हम दोनों) आये हुए हैं ॥ २६ ॥

विशेष-धृतच्छलानाम्—दुर्योधन ने अपने मामा शकुनि की सहायता से कपटपूर्वक जुआ खेल कर पाण्डवों को हरा कर उन का हिस्सा हड़प लिया था ।

जतुमयशरणोद्दीपनः—दुर्योधन ने प्रयाग के पास लाह का एक विशाल भवन बनवा कर छलपूर्वक उसमें पाण्डवों को टिकवा कर आग लगवा दी थी । उस समय भीम ने भवन के पीछे गुप्त रूप से बने तथा ढके हुए द्वार से अपने माइयों तथा माँ कुन्ती का उद्धार कर सब की रक्षा की थी । इस स्थान को आज भी 'लाझागृह' के ही नाम से जाना जाता है ।

द्रष्टुम्—सेवक जब अपना विशाल उत्तरदायित्व पूर्ण कर लेता है, तब स्वामी का दर्शन करता है । हमने दुःशासन को मारने की अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर ली है । अतः अपने स्वामी दुर्योधन का दर्शन करना चाहता हूँ । यह एक व्यङ्ग्य (Irony) है । इस श्लोक का प्रत्येक पद विशिष्ट भावों से भरा हुआ है । यह श्लोक 'रोद्र' रस का भव्य निदर्शन है ॥ २६ ॥

धृतराष्ट्र—सज्ज, (इस) पापी का भोषण विशेष दोषारोपण है ।

सज्जय—तात, कार्य के द्वारा समग्र अभिय (कार्य) कर चुकने वाले (ये लोग) अब वचन द्वारा (अभिय) करना चाहते हैं ।

दुर्योधन—सुन, कहो जाकर दोनों को—यहाँ बैठे हैं ।

सूत—जैसी महाराज की आज्ञा । (उन दोनों के पास जाकर) हे भीम और अर्जुन यह महाराज श्रिता-माता के साथ बट की छाया में बैठे हुये हैं ।

अर्जुन—आर्य, प्रसन्न हों । पुत्रों के शोक से पीड़ित माता-पिता को अपने साक्षात्कार से और अधिक उद्विग्न करना नहीं उचित है । तो (यहाँ से) वापस चले चलें ।

सम्भ्रमात् = भयात्, अययाययम् = इतस्ततः । शङ्कया = भयेन ॥

अस्वयः—धृतच्छलानाम्, कर्ता; जतुमयशरणोद्दीपनः; कृष्णाकेशोत्तरीयव्यपनयनमरुत्; अभिमानी; पाण्डवाः, यस्य, दासाः; दुःशासनादेः, अनुजगतस्य, गुरुः; अङ्गराजस्य, मित्रम्; राजा; असौ; दुर्योधनः; क्व, आस्ते ? (यूयम्), कथयत; रूपा, न; (किन्तु), द्रष्टुम्, अभ्यागतौ, स्वः ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—धृतच्छलानाम् = धृत्-कपटों का, कर्ता = कर्ता, जतुमयशरणोद्दीपनः = लाह-निर्मित भवन को जलाने वाला; कृष्णाकेशोत्तरीयव्यपनयनमरुत् = द्रौपदी के केश एवं शिर तथा वक्षःस्थल को ढकने वाले वस्त्र (Upper cloth) को दूर हटाने में वायु-तुल्य; अभिमानी = घमण्डी; पाण्डवाः—

मीमः—मूढ, अनुलङ्घनीयः सदाचारः । न युक्तमनमिवाद्य गुरुन् गन्तुम् ।
(उपसृत्य) संजय, पित्रोर्नमस्कृतिं श्रावय । अथवा तिष्ठ । स्वयं विश्राव्य नाम कर्मणी
वन्दनीया गुरवः । (इति रथादवतरतः)

अर्जुनः—(उपगम्य) तात, अम्ब,

सकलरिपुजयाशा यत्र बद्धा सुतैस्ते

तृणमिव परिभूतो यस्य गर्वेण लोकः ।

रणशिरसि निहन्ता तस्य राधासुतस्य

प्रणमति पितरौ वां मध्यमः पाण्डवोऽयम् ॥ २७ ॥

मीमः—

चूर्णिताशेषकौरव्यः क्षीवो दुःशासनासृजा ।

भङ्क्ता मुयोधनस्योर्वोर्भीमोऽयं शिरसाञ्चति ॥ २८ ॥

पाण्डव लोग, यस्य = जिसके, दासाः = दास हैं, दुःशासनादेः = दुःशासन आदि, अनुजशतस्य =
सौ साश्यों के समूह का, गुरुः = श्रेष्ठ, अङ्गराजस्य = कर्ण का, मित्रम् = मित्र, राजा = राज्य
का अधिपति, असौ = वह, दुर्योधनः = दुर्योधन, क्व = कहाँ, आस्ते = है ? (यूयम् = तुम लोग),
कथयत = बतलाओ; रुषा = क्रोध से, न = नहीं, (किन्तु = अपितु), द्रष्टुम् = दर्शन करने के लिए,
अभ्यागतौ = आये हुए, स्वः = हैं ॥ २६ ॥

कर्तेति । धूतच्छलानाम्—धूते = अक्षक्रीडायाम् छलानि = कपटानि तेषाम्, कर्ता = कारकः;
जनुमयशरणोद्दीपनः—जनुनः = लाक्षायाः विकारः जनुमयम् = लाक्षानिमित्तम् शरणम् = भवनम्
('शरणं गृहरक्षित्रोः' इत्यमरः) तस्य उद्दीपनः = प्रज्वालनहेतुरित्यर्थः; दुर्योधनः पुरोचनद्वारा तल्लाक्षा-
गृहं प्रजज्ज्वालेति महाभारतीया कथा । कृष्णेत्यादिः—कृष्णायाः = द्रौपद्याः केशाश्च = शिरोरुहाश्च
उत्तरीयञ्च = ऊर्ध्ववस्त्रञ्च तेषां व्यपनये = दूरीकरणे मरुत् = वातः, वायुतुल्य इत्यर्थः; अभिमानो =
अतिमानो, पाण्डवाः = युधिष्ठिरादयः, यस्य, दासाः = सेवकाः, दुःशासनादेः = दुःशासनप्रमुखस्य,
अनुजशतस्य = भ्रातृशतस्य, गुरुः = श्रेष्ठः, अङ्गराजस्य = कर्णस्य, मित्रम् = सुहृद्; राजा = राज्या-
धिकारी; असौ = सः, दुर्योधनः, क्व = कुत्र, आस्ते = स्थितो वर्तते ? कथयत = ब्रूत, यूयमिति शेषः,
रुषा = क्रोधेन, न = नहि, अपि त्विति शेषः, द्रष्टुम् = दर्शनं कर्तुम्, अभ्यागतौ = प्राप्तौ, स्वः ।
दासैश्च कृतकृत्यः स्वाम्यवश्यं द्रष्टव्य इति राजानं तं द्रष्टुं दासौ आवामागतौ स्वः इति भावः । अत्र
कर्तेत्यादिभिः सर्वैः पदार्थैः रौद्ररसः प्रस्फुटतां याति । प्रतिपदमत्र व्यङ्ग्यमुत्प्रेक्षितुं शक्यमिति । स्रग्वरा
छन्दः ॥ २६ ॥

धृतराष्ट्र इति । दारुणः = भीषणः, उपक्षेपः = विशेषेण दोषारोपणम्, निन्देत्यर्थः ॥

सञ्जय इति । कर्मणा = हननादिकार्येणेत्यर्थः, कृतनिःशेषविप्रियाः—कृतानि = सम्पादितानि
निःशेषानि = सम्पूर्णानि विप्रियाणि = अप्रियाणि यैस्ते, वाचा = कथनेन ॥

अन्वयः—यत्र, ते, सुतैः, सकलरिपुजयाशा, बद्धा; यस्य, गर्वेण, लोकः, तृणम्, इव, परिभूतः,

भीम—सूर्य, सदाचार का उल्लङ्घन नहीं करना चाहिए । बड़े जनों को बिना प्रणाम किये जाना उचित नहीं । (पास में जाकर) सज्ज, माता-पिता को (हम लोगों का) नमस्कार कहो । अथवा रुको । स्वयं (अपना) नाम एवं काम सुना कर बड़े लोग नमस्कार करने के योग्य होते हैं । (ऐसा कह कर रथ से उतरते हैं) ।

अर्जुन—(पास में जाकर) पिताजी, माताजी !

जिसके ऊपर (अर्थात् जिसके सहारे) आपके पुत्रों के द्वारा सभी शत्रुओं को जीतने की आशा बाँधी गयी थी; जिसके अभिमान से सत्तार तिनके की तरह तिरस्कृत किया गया था, उस राधा-पुत्र (कर्ण) को संग्राम के मध्य मारने वाला यह मझला पाण्डव आप दोनों माता-पिता को प्रणाम कर रहा है ॥ २७ ॥

भीम—सभी कौरवों को पीस डालने वाला, दुःशासन के खून से मतवाला, दुर्योधन की जाँवों को (शीघ्र ही) तोड़ने वाला, वह भीम शिर से प्रणाम कर रहा है ॥ २८ ॥

तस्य, राधासुतस्य, रणशिरसि, निहन्ता, अयम्, मध्यमः, पाण्डवः, वाम्, पितरौ, प्रणमति ॥ २७ ॥

शब्दार्थः—यत्र = जिसके ऊपर, ते = आपके, सुतैः = पुत्रों के द्वारा, सकलरिपुजयाशा = सभी शत्रुओं को जीतने की आशा, बद्धा = बाँधी गयी थी, की गई थी; यस्य = जिसके गर्वण = अभिमान से, लोकः = संसार, तृणम् = तिनके की, इव = तरह, परिभूतः = तिरस्कृत किया गया था; तस्य = उस, राधासुतस्य = राधा-पुत्र (कर्ण) को, रणशिरसि = संग्राम के मध्य, निहन्ता = मारने वाला, अयम् = यह, मध्यमः = मझला, पाण्डवः = पाण्डव, वाम् = आप दोनों, पितरौ = माता-पिता को, प्रणमति = प्रणाम कर रहा है ॥ २७ ॥

सकलेति । यत्र = यस्मिन्, यस्य बले इत्यर्थः, ते = तव, सुतैः = पुत्रैः, सकलरिपुजयाशा—सकलेषु = समग्रेषु रिपुषु = शत्रुषु जयस्य = विजयस्य आशा = वृष्णा, बद्धा, अवलम्बितेति यावत्; यस्य = राधापुत्रस्येत्यर्थः, गर्वण = अभिमानेन, लोकः = संसारः, तृणमिव = घासमिव, परिभूतः = तिरस्कृतः; तस्य = तादृशस्येत्यर्थः, राधासुतस्य = कर्णस्य, रणशिरसि = संग्राममध्ये, निहन्ता = घातकः, अयम् = एषः, मध्यमः, पाण्डवः = पाण्डुपुत्रः, अर्जुन इत्यर्थः, वाम् = युवाम्, द्वितीयाद्विवचनान्तम्, पितरौ = जननी-जनकौ, जननी-जनकतुल्यावित्यर्थः, प्रणमति = नमस्करति । अत्र वीरो रसः । मालिनी छन्दः । तल्लक्षणम्—‘ननमययुतेयं मालिनी मोगिलोकैः’ ॥ २७ ॥

अन्वयः—चूणिताशेषकौरव्यः, दुःशासनाऽसृजा, क्षीवः, सुयोधनस्य, ऊर्वोः, भङ्क्ता, अयम्, भीमः, शिरसा, अञ्चति ॥ २८ ॥

शब्दार्थः—चूणिताशेषकौरव्यः = सभी कौरवों को पीस डालने वाला, दुःशासनाऽसृजा = दुःशासन के खून से, क्षीवः = मतवाला, सुयोधनस्य = दुर्योधन को, ऊर्वोः = जाँवों को, भङ्क्ता = तोड़ने वाला, अयम् = यह, भीमः = भीम, शिरसा = शिर से, अञ्चति = प्रणाम कर रहा है ॥ २८ ॥

चूणितेति । चूणिताशेषकौरव्यः—चूणिताः = मृदिताः अशेषाः = समग्राः कौरव्याः = कौरवाः

धृतराष्ट्रः—दुरात्मन्वृकोदर, न खल्विदं भवतैव केवलं सपत्नानामपकृतम् । यावत्क्षत्रं तावत्समरविजयिनो जिता हताश्च वीराः । तत्किमेवं विकत्थनाभिरस्मानु-
द्वेजयसि ।

भीमः— तात, अलं मन्युना ।

कृष्ण केशेषु कृष्णा तव सदसि वधूः पाण्डवानां नृपयैः

सर्वे ते क्रोधवह्नौ कृशशलभकुलावज्ञया येन दग्धाः ।

एतस्माच्छ्रावयेऽहं न खलु भुजबलश्लाघया नापि दर्पा-

त्पुत्रैः पौत्रैश्च कर्मण्यतिगुरुणि कृते तात साक्षी त्वमेव ॥ २९ ॥

दुर्योधनः—अरे रे मरुत्तनय, किमेवं वृद्धस्य राज्ञः पुरतो निन्दितव्यमात्मकर्म
श्लाघसे । अपि च—

कृष्ण केशेषु भार्या तव तव च पशोस्तस्य राज्ञस्तयोर्वा

प्रत्यक्षं भूपतीनां मम भुवनपतेराज्ञया द्यूतदासी ।

अस्मिन्वैरानुबन्धे वद किमपकृतं तैर्हता ये नरेन्द्रा

बाह्वोर्वीर्यातिरेकद्रविणगुरुमदं मामजित्वैव दर्पः ॥ ३० ॥

(भीमः क्रोधं नाटयति)

येन सः, दुशासनाऽसृजा—दुःशासनस्य असृजा=रक्तेन, श्रौवः=मत्तः; अतिशीघ्रं सुयोधनस्य=
दुर्योधनस्य, ऊर्वोः=सक्थनोः, मङ्क्ता=भग्नकर्ता; वयम्=एव; भीमः=वृकोदरः, शिरसा=मस्तकेन,
अव्रति=प्रणमति । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २८ ॥

धृतराष्ट्र इति । सपत्नानाम्=वैरीणाम्, (‘रिपौ वैरिसपत्नारिद्विषदुर्दुहदः’ इत्यमरः) । विकत्थ-
नाभिः=आत्मप्रशंसाभिः ॥

अन्वयः—पाण्डवानाम्, पुरः, तव, सदसि, यैः, नृपैः, केशेषु, कृष्णा, कृष्ण, ते, सर्वे, येन,
क्रोधवह्नौ, कृशशलभकुलावज्ञया, दग्धाः; खलु, एतस्मात्, अहम्, श्रावये; भुजबलश्लाघया, न, नापि,
दर्पात्, (श्रावये), तात, पुत्रैः, च, पौत्रैः, अतिगुरुणि, कर्मणि, त्वम्, एव, साक्षी ॥ २९ ॥

शब्दार्थः—पाण्डवानाम्=पाण्डवों के, पुरः=सामने, तव=आपकी, सदसि=सभा में, यैः=
जिन, नृपैः=राजाओं के द्वारा, केशेषु=शिर का बाल पकड़ कर, कृष्णा=द्रौपदी, कृष्ण=खींची
गई, ते=वे, सर्वे=सभी, येन=जिससे, क्रोधवह्नौ=क्रोधरूपी आग में, कृशशलभकुलावज्ञया=
दुर्बल फतिझों के समूह (के प्रति की गई) जैसी वेपरवाही के साथ, दग्धाः=भस्म कर दिये गये;
खलु=वस्तुतः, एतस्मात्=इसी लिये, अहम्=मैं, श्रावये=सुना रहा हूँ; भुजबलश्लाघया=बाहुबल
की प्रशंसा से, न=नहीं, नापि=न तो, दर्पात्, =घमण्ड से, (श्रावये=सुना रहा हूँ); तात=
हे पिताजी, पुत्रैः=पुत्रों, च=तथा, पौत्रैः=पौत्रों के द्वारा, कृते=किये गये, अतिगुरुणि=अति-
महान्, कर्मणि=कार्य में, त्वम्=आप, एव=ही, साक्षी=साक्षी हैं ॥ २९ ॥

धृतराष्ट्र—दुष्ट वृकोदर, केवल आपने ही शत्रुओं का यह अपकार नहीं किया है। जब से अश्विन हैं तब से समर-विजयो वीर जीते गये तथा मारे गये हैं। तो क्यों इस तरह आत्म-प्रशंसा से हम लोगों को उद्विग्न कर रहे हो ?

भीम—तात क्रोध की आवश्यकता नहीं।

पाण्डवों के सामने आपकी सभा में जिन राजाओं के द्वारा शिर का बाल पकड़कर द्रौपदी खींची गई, वे सभी जिससे क्रोधरूपी आग से दुर्बल फतिहों के समूह (के प्रति की गई) जैसी वेपरवाही के साथ मरम कर दिये गये, वस्तुतः इसीलिये मैं (आपको) सुना रहा हूँ; (अपने) बाहुबल की प्रशंसा से नहीं और न तो घमण्ड से (ही सुना रहा हूँ)। हे तात, पुत्रों तथा पौत्रों के द्वारा किये गये अतिमहान् कार्य में आप ही साक्षी हैं ॥ २६ ॥

विशेष—यैः नृपैः—राजाओं ने द्रौपदी का केश—वस्त्र नहीं खींचा था। यह कार्य दुर्योधन की आशा से अकेले दुःशासन ने ही किया था। किन्तु जो लोग मूक द्रष्टा थे, इस अन्याय को रोकने का साहस न कर सकते थे, उन सब को भीम उस कुकृत्य का कर्ता बतला रहे हैं।

त्वमेव...साक्षी—आपके परिवार ने जो कुछ अन्याय किया उसे आपने कभी नहीं रोका। इसका माने हैं—वह सब कुकृत्य आपको भी अनुमत था। साक्षी के सामने कर्म-फल का आना आवश्यक है—यही कारण है मैं आपको यह सब सुना रहा हूँ। अथवा छोटे लोग यदि कोई महान् कार्य करते हैं तो वे उसे अपने बड़ों को सुनाते हैं। मैं आपके पुत्र के तुल्य हूँ। आप ही अब परिवार के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति हैं। यही कारण है कि मैं आपको अपना कृत कार्य सुना रहा हूँ ॥ २९ ॥

दुर्योधन—भरे रे वायुपुत्र, क्यों इस तरह वृद्ध राजा के सामने निन्दा के योग्य अपने कर्म को प्रशंसा कर रहे हो ? और भी—

मुझ जगत्पति की आशा से, राजाओं के समक्ष जुए में (In gambling) जीती गई दासी, तुझ पशु की, (अर्जुन की ओर इशारा करके) तेरी तथा उस राजा (युधिष्ठिर) की अथवा उन दोनों (नकुल सहदेव) की पत्नी शिर का बाल पकड़ कर खींची गई; इस वर के प्रसङ्ग में जो राजा मारे गये हैं, बतलाओ उन लोगों के द्वारा क्या अपकार किया गया था ? भुजाओं के बल के आधिक्य-रूप धनके महान् मद से युक्त मुझको जिना जीते ही अभिमान (हो गया है) ? ॥ ३० ॥

विशेष—कृष्ण...दर्पः—इस श्लोक में दुर्योधन द्रौपदी के बाल तथा वस्त्र को खींचने का औचित्य सिद्ध कर रहा है। उसका कहना है कि द्रौपदी को नंगी करने का मेरा प्रयास अनुचित न था, क्योंकि (१) वह जुए में जीती गई मेरी दासी थी। एक दासी पर स्वामी का पूर्ण अधिकार होता है। वह उसे किसी भी तरह रखने का अधिकारी है। (२) वह तुम लोगों में किसी एक की पत्नी नहीं है। पाँच-पाँच व्यक्ति एक साथ उसके दावेदार हैं। ऐसी स्त्री वेश्या से अधिक मूल्य नहीं रखती। अतः द्रौपदी को सभा के मध्य पकड़ कर खींचने का प्रयास अनुचित न था ॥ ३० ॥

(भीम क्रोध का अमिनय करते हैं)

कृषेति । पाण्डवानाम् = पाण्डुपुत्राणाम् युधिष्ठिरादीनाम्, पुरः = समक्षम्, तव = भवतः, सदसि = सभायाम्, यैः = यैः, नृपैः = राजभिः, केशेषु = केशावच्छेदेत्यर्थः, अवच्छेदेऽत्र सप्तमो,

अर्जुनः—आर्य प्रसीद । किमत्र क्रोधेन ।

अप्रियाणि करोत्येष वाचा शक्तो न कर्मणा ।

हतभ्रातृशतो दुःखी प्रलापैरस्य का व्यथा ॥ ३१ ॥

भीमः—अरे रे भरतकुलकलंक,

अत्रैव किं न विशसेयमहं भवन्तं

दुःशासनानुगमनाय कटुप्रलापिन् ।

विघ्नं गुरुं कुरुते यदि मदगदाग्र-

निभिद्यमानरणितास्थनि ते शरीरे ॥ ३२ ॥

कृष्णा=द्रौपदी, कृष्टा=आकृष्टा, ते सर्वे=निखिलाः, येन=यत्कारणेन, क्रोधवह्नौ=कोपाग्नी, कुशशलमकुलावशया—कुशम्=दुर्बलम् यत् शठमकुलम्=क्षुद्रपनङ्गसमूहः तद्दवशया=अपमानेन अनायासेन वा, दग्धाः=भस्मीकृताः, खल्विति निश्चये, एतस्मात्=अनेन हेतुना, अहम्=भीमः, श्रावये=भवन्तं कथयामि, भुजवलश्लाघया—भुजयोः=बाह्वोः यत् बलं तस्य श्लाघया=प्रशंसया, न श्रावये, नापि=न तु, दर्पात्=अभिमानात्, श्रावये; हे तात=हे पितः, पुत्रैः=सुतैः, च=तथा, पौत्रैः=तत्सुतैः, कृते=सम्पादिते, अतिगुरुणि=महति, कर्मणि=कृत्ये, त्वमेव=भवानेव, साक्षी=साक्षाद्द्रष्टा । तवानुमत्या तव जनैः यत् कृतं तस्य अवश्यप्राप्तव्यं फलं श्रावये वा लघवः महत् कर्म कृत्वा गुरुणां पुरः स्थापयन्ति इति श्रावये स्तम्भरा छन्दः ॥ २६ ॥

अन्वयः—मम, भुवनपतेः, अशया, भूपतीनाम्, प्रत्यक्षम्, द्यूतदासी, तव, पशोः, तव, च, तस्य, राशः, वा, तयोः, भार्या, केशेषु, कृष्टा, आस्मिन्, वैरानुबन्धे, ये, नरेन्द्राः, हताः, वद, तैः, किम्, अपकृतम्; बाह्वोः, वीर्यातिरेकद्रविणगुरुमदम्, माम्, अजित्वा, एव, दर्पः ? ॥ ३० ॥

शब्दार्थः—मम=मुझ, भुवनपतेः=जगतपति की, आशया=आशा से, भूपतीनाम्=राजाओं के, प्रत्यक्षम्=समक्ष, द्यूतदासी=जुए में जीता गई दासी, तव=तुझ, पशोः=पशु की, तव=तेरी च=तथा, तस्य=उस, राशः=राजा की, वा=अथवा, तयोः=उन दोनों की, भार्या=पत्नी, केशेषु=शिर का बाल पकड़ कर, कृष्टा=खींची गई; अस्मिन्=इस, वैरानुबन्धे=वैर के प्रसङ्ग में, ये=जो, नरेन्द्राः=राजा, हताः=मारे गये हैं, वद=बतलाओ, तैः=उन लोगों के द्वारा, किम्=क्या, अपकृतम्=अपकार किया गया था; बाह्वोः=भुजाओं के, वीर्यातिरेकद्रविणगुरुमदम्=बल के आधिक्यरूप धन के महान् मद से युक्त, माम्=मुझको, अजित्वा=बिना जीते, एव=ही, दर्पः=अभिमान (हो गया है) ?

कृष्टेति । मम, भुवनपतेः—भुवनस्थ=जगतः, पतेः=स्वामिनः, आशया=आदेशन; भूपतीनाम्=राशाम्, प्रत्यक्षम्=समक्षम्, अनेन द्यूते युधिष्ठिरेण द्रौपद्याः पराजयः सर्वजनविदित इति निर्दिष्टः, द्यूतदासी—द्यूते=अक्षक्रीडायाम् निजिता दासी=सेविका; केशाधाकर्षणे इदं प्रथममौचित्यमिति सूचितम्, तव पशोः=पशुतुल्यस्य तव भीमस्येत्यर्थः, तव=अर्जुनस्येत्यर्थः, च=तथा, तस्य=अथार्यस्येत्यर्थः, राशः=अधिपतेः, वा=अथवा, तयोः=नकुलसहदेवयोरित्यर्थः, भार्या=स्त्री,

अञ्जुन—आर्य, प्रसन्न होइये । इस पर क्रोध करने से क्या (लाम) ?

मारे गये सौ भाइयों वाला, (अतः) दुःखी यह, (दुर्योधन) वचन (मात्र) से अप्रिय कर रहा है, (क्योंकि) कार्य से (अप्रिय करने में) नहीं समर्थ है । (अतः) इसकी बकवासों से क्या व्यथा ? (अर्थात् इसकी बकवासों से व्यथा नहीं होनी चाहिये) ॥ ३१ ॥

भीम—अरे रे भरतकुल के कलङ्क,

हे कटु बकवास करने वाले, मेरी गदा की नोक से तोड़ी जाती हुई (अतः) शब्दायमान हड्डियों वाले तुम्हारे शरीर के विषय में यदि माता-पिता बाधा नहीं करते तो दुःशासन का अनुसरण करने के लिये मैं आपको यहीं क्यों न बिनष्ट कर देता ? (अर्थात् यदि माता-पिता यहाँ उपस्थित न होते तो मैं तुम्हें अवश्य ही अभी समाप्त कर देता) ॥ ३२ ॥

बहुजनस्त्रीत्वेन तस्याः पण्यस्त्रीभावो निर्दिष्टः, अतो न दोषास्पदं तत्कृत्यमिति च सूचितम्, केशेषु = शिरोरुहेषु, केशावच्छेदेनेत्यर्थः, कृष्टा, अस्मिन् = एतस्मिन्, वैरानुबन्धे = शत्रुताप्रसङ्गे, ये नरन्द्राः = राजानः, हताः = घातिताः, वद = ब्रूहि, तैः = युस्माभिर्हतैरित्यर्थः, किम् अपकृतम् = किमनिष्टमाचरितम् ? वस्तुतस्तु बाहोः = भुजयोः, वीर्यत्यादिः—वीर्यस्य = बलस्य, अतिरेकः = आधिक्यम् एव द्रविणम् = धनम् तेन गुरुः = महान् मदः = अहङ्कारः यस्य तन्, माम् = दुर्योधनम्, अजिता = पराजयमदत्त्वा, एवेति दाह्ये, दर्पः = अभिमानः ? त्वयि जात इति शेषः । स्रग्धरा छन्दः । तल्लक्षणम्—‘‘ब्रम्हैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ॥’’ ३० ॥

अन्वयः—हतभ्रातृशतः, दुखी, एषः, वाचा, अप्रियाणि, करोति, (यतः), कर्मणा, न, शक्तः, (अतः), अस्य, प्रलापैः, का, व्यथा ? ॥ ३१ ॥

शब्दार्थः—हतभ्रातृशतः=मारे गये हैं सौ भाई जिसके ऐसा, दुःखी=दुःखी, खिन्न, एषः=यह, वाचा=वचन से, अप्रियाणि=अप्रिय, चित्त को खिन्न करनेवाला कार्य, करोति=कर रहा है, (यतः=क्योंकि), कर्मणा=कार्य से, न=नहीं, शक्तः=समर्थ है, (अतः=इसलिये), अस्य=इसकी, प्रलापैः=बकवासों से, का=कैसी, व्यथा=पीड़ा ? ॥ ३१ ॥

अप्रियाख्याति । हतभ्रातृशतः—हतम्=घातितम् भ्रातृशतम्=अनुजशतम् यस्य सः, (अतः) दुःखीः=खिन्नः, एषः=अयम्, दुर्योधन इत्यर्थः, वाचा=वचनेन, अप्रियाणि=अहितानि, करोति=विदधातिः (यतः), कर्मणा=कार्येण, सामर्थ्येनेति भावः, अप्रियेषु न शक्तः=न समर्थः, (अतः), अस्य=वचननात्रैकसामर्थ्यस्येत्यर्थः, प्रलापैः=अनर्थकैः वचोभिः (‘प्रलापोऽनर्थकं वचः’ इत्यमरः), का=कोदृशी, व्यथा=पीड़ा । निरर्थकैरस्य वचोभिर्न कार्या व्ययेति भावः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ३१ ॥

अन्वयः—हे कटुप्रलापिन्, मदगदाग्रनिर्मितमानरणितास्वनि, ते, शरीरे, यदि, गुरुः, विघ्नम्, न, कुरुते, तदा, दुःशासनानुगमनाय, अहम्, भवन्तम्, अत्र, एव, किम्, न, विशसेयम् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थः—हे कटुप्रलापिन्=हे कटु बकवास करने वाले, मदगदाग्रनिर्मितमानरणितास्वनि=मेरी गदा की नोक से तोड़ी जाती हुई (अतः) शब्दायमान हड्डियों वाले, ते=तुम्हारे, शरीरे=शरीर के विषय में—यदि=यदि, गुरुः=माता-पिता, विघ्नम्=बाधा, न=नहीं, कुरुते=करते, तदा

अन्यच्च मूढ,

शोकैः स्त्रीवन्नयनसलिलं यत्परित्याजितोऽसि

भ्रातुर्वक्षःस्थलविघटने यच्च साक्षीकृतोऽसि ।

आसीदेतत्तव कुनृपतेः कारणं जीवितस्य

कुद्धे युष्मत्कुलकमलिनीकुञ्जरे भीमसेने ॥ ३३ ॥

दुर्योधनः—दुरात्मन्, भरतकुलापसद, द्यूतदास, पाण्डवपक्षो, नाहं भवानिव
विकथनाप्रगल्भः । किन्तु—

द्रक्ष्यन्ति न चिरात्सुप्तं बान्धवास्त्वां रणाङ्गणे ।

मद्गदाभिन्नवक्षोऽस्थिवेणिकाभीमभूषणम् ॥ ३४ ॥

भीमः—(विहस्य) यद्येवं नाश्रद्धेयो भवान् । तथापि प्रत्यासन्नमेव कथयामि ।

पीनाभ्यां मद्भुजाभ्यां भ्रमितगुरुगदाघातसंचूर्णितोरोः

= तो, दुःशासनानुगमनाय = दुःशासन का अनुसरण करने के लिये, अहम् = मैं, भवन्तम् = आपको,
अत्र = यहाँ, एव = ही, किम् = क्यों, न = न, विशसेयम् = विनष्ट कर देता ? ॥ ३२ ॥

अत्रैवेति । हे कटुप्रलापिन् = हे अप्रियनिरर्थक-भाषणिन्, मद्गदाग्रेत्यादिः—मम गदायाः अग्रेण
= अग्रभागेण निर्भिद्यमानानि अत एव रणितानि = शब्दायमानानि अस्थोनि = कुल्यानि ('कोकसं
कुल्यमस्थि च ।' इत्यमरः) यत्र तादृशे, ते = तव, शरीरे = देहे, शरीरविषये इत्यर्थः, अत्र विषयसप्तमी,
यदि = चेत्, गुरुः = श्रेष्ठो जनः, माता, पिता च, विधनम् = अन्तरायम्, न कुरुते = न विदधाति;
अत्र विधनस्तु उपरिथत्येव शेषः, तदा = तर्हि, दुःशासनानुगमनाय—दुःशासनस्य अनुगमनाय =
अनुसरणाय; अहम् = भीमः, भवन्तम् = त्वाम्, अत्र = अस्मिन् स्थले, एव, किम् = कथम्, न,
विशसेयम् = हन्याम्, हन्यामेवेति भावः वसन्ततिलका छन्दः ॥ ३२ ॥

अन्वयः—शोकैः, स्त्रीवत्, नयनसलिलम्, यत्, परित्याजितः, असि; च, भ्रातुः, वक्षःस्थल-
विघटने, यत्, साक्षीकृतः, असि; एतत्, (द्वयम्), युष्मत्कुलकमलिनीकुञ्जरे, भीमसेने, कुद्धे, (सति),
तव, कुनृपतेः, जीवितस्य, कारणम्, आसीत् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः—शोकैः = बार-बार के सन्ताप के कारण, स्त्रीवत् = स्त्री की भाँति, नयनसलिलम् =
नेत्र-जल, आँसू, यत् = जो कि, परित्याजितः = वहायाये गये, असि = हो; च = तथा, भ्रातुः = भाई की,
वक्षःस्थलविघटने = छाती फाड़ने में, यत् = जो कि, साक्षीकृतः = प्रत्यक्षदृष्टा बनाये गये, असि = हो,
एतत् = यह, (द्वयम् = दो), युष्मत्कुलकमलिनीकुञ्जरे = तुम्हारे कुलरूपी कमल-लता के लिये हाथी,
भीमसेने = भीमसेन के, कुद्धे (सति) = कुपित होने पर, तव = तुझ, कुनृपतेः = दुष्ट राजा के, जीवि-
तस्य = जीवित रहने का, कारणम् = कारण, आसीत् = था ॥ ३३ ॥

शोकैरिति । शोकैः = भ्रातृवधजनितैः दुःखैः, स्त्रीवत् = अवलंब, नयनसलिलम् = नयनयोः = नेत्रयोः
सलिलम् = जलम्, अश्रु इत्यर्थः, यत्, परित्याजितः = मोचितः, असि, च = तथा, भ्रातुः = अनुजस्य
दुःशासनस्य, वक्षःस्थलविघटने = वक्षःस्थलस्य = उरःस्थलस्य विघटने = विदारणे, यत्, साक्षीकृतः =

और भी मूढ़,

बार-बार के सन्ताप के कारण स्त्री की भाँति आँसु जो कि बहवाये गये हो, तथा माई की छाती फाड़ने में जो कि प्रत्यक्षद्रष्टा बनाये गये हो—यह (दो), तुम्हारे कुलरूपी कमल-लता के लिये हाथी भीमसेन के कुपित होने पर, तुझे दुष्ट राजा के जीवित रहने का कारण था (अन्यथा तुझे मैं पहले ही समाप्त कर दिया होता) ॥ ३३ ॥

दुर्योधन—दुष्ट प्रकृति वाले, भरतकुल में नोच, जुए में जीते गये दास, पाण्डवपुत्र, मैं तुम्हारी तरह ढींग ढींग करने में ढीठ नहीं हूँ। किन्तु—

(तुम्हारे) बन्धुजन युद्ध-स्थल में मेरी गदा से टूटी हुई छाती की हड्डियों की माला रूप मयानक आमूषण वाले (इसीलिये, सोये हुये तुझे अतिशीघ्र देखेंगे । (अर्थात् शीघ्र ही मैं गदा से मार कर तुझे जमीन पर सुला दूँगा) ॥ ३४ ॥

श्रीम—(हँस कर) यदि ऐसा है (तो) आप पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है। तो भी, जो शीघ्र ही वदित होने वाला है उसे कह रहा हूँ।

कल प्रातःकाल देखनेवाले राजाओं के (समझ) मोटी मेरी भुजाओं से घुमाई गई विशाल गदा

प्रत्यक्षद्रष्टा कृतः; अस्ति, एतत् = इदम्, द्रव्यमिति शेषः, युष्मत्कुलकमलिनीकुञ्जरे—युष्मत्कुलम् = तव वंशः एव कमलिनी = कमललता तस्याः कुञ्जरे = गजराजे, भीमसेने = वृकोदरे, मयि भीमे, क्रुद्धे = कुपिते सति, तव कुनृपतेः = दुष्टनृपतेः, जीवितस्य = जीवन्स्य, कारणम् = हेतुः, आसीत् = अभूत्। उभयं चेतद्भूतं तदा मया त्वमपि वातवितव्य इति भावः। मन्दाक्रान्ता छन्दः। छन्दोलक्षणम्—मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मौ मनौ ती गयुग्मम् ॥ ३३ ॥

दुर्योधन इति। विकत्यनाप्रगल्भः—विकत्यनायाम् = असत्यश्लाघाकथने प्रगल्भः = धृष्टः ॥

अन्वयः—(ते), बान्धवाः, रणाङ्गणे, मद्गदामिन्नवक्षोऽस्थिवेणिकामीमभूषणम्, (अत एव), सुप्तम्, त्वाम्, नचिरात्, द्रक्ष्यन्ति ॥ ३४ ॥

शब्दार्थः—(ते = तुम्हारे), बान्धवाः = बन्धु-जन, रणाङ्गणे = युद्ध-स्थल में, मद्गदामिन्नवक्षो-ऽस्थिवेणिकामीमभूषणम् = मेरी गदा से टूटी हुई छाती की हड्डियों की माला रूप मयानक आमूषण वाले; (अतएव = इसी लिये), सुप्तम् = सोये हुये, त्वाम् = तुझे, नचिरात् = अति शीघ्र, द्रक्ष्यन्ति = देखेंगे ॥ ३४ ॥

द्रक्ष्यन्तीति। (ते = तव), बान्धवाः = स्वजनाः, रणाङ्गणे = युद्ध-स्थले, मद्गदेत्यादिः—मम = दुर्योधनस्येत्यर्थः गदया भिन्नम् = भग्नम् वक्षः तस्य यानि अस्थीनि तेषां वेणिका = मालिका सा एव भीमम् = भीषणम् भूषणम् = अलङ्कारः यस्य स तम्, अत एव, सुप्तम् = मूर्मी निपतितम्, त्वाम् = वृकोदरम्, नचिरात् = अतिशीघ्रम्, द्रक्ष्यन्ति = अवलोकयिष्यन्ति। त्वां युद्धस्थले हनिष्यामीति भावः। अनु०डुप् छन्दः ॥ ३४ ॥

अन्वयः—स्वः, प्रमाते, पश्यताम्, नृपाणाम्, (अग्रे), पीनाभ्याम्, मद्भुजाभ्याम्, भ्रमित-गुरुगदाघातसन्वृषितोरोः, तव, क्रूरस्य, शिरसि, पादम्, आधाय, स्थानेन, च, आद्रेण, त्वन्मुख्यभ्रातृ-

क्रूरस्याधाय पादं तव शिरसि नृणां पश्यतां श्वः प्रभाते ।
 त्वन्मुख्यभ्रातृचक्रोदलनगलदसूक्चन्दनेनानखाग्रं
 स्त्यानेनार्द्रेण चाक्तः स्वयमनुभविता भूषणं भीममस्मि ॥ ३५ ॥
 (नेपथ्ये)

ओ ओ भीमसेनार्जुनौ, एष खलु निहताशेषारातिचक्र आक्रान्तपरशुरामाभि-
 रामयशाः प्रतापतापितदिङ्मण्डलस्थापितस्वजनः श्रीमानजातशत्रुर्देवो युधिष्ठिरा
 समाज्ञापयति ।

उमौ—किमाज्ञापयत्यार्यः ।

(पुनर्नेपथ्ये)

कुर्वन्त्वाप्ता हतानां रणशिरसि जना वह्निसाद्देहभारा-
 नश्रून्मिश्रं कथञ्चिद्दत्तु जलममी बान्धवा बान्धवेभ्यः ।
 मार्गन्तां ज्ञातिदेहान्हतनरगहने खण्डितान्गृध्रकङ्क-
 रस्तं भास्वान्प्रयातः सह रिपुभिरयं संह्रियन्तां बलानि ॥ ३६ ॥

चक्रोदलनगलदसूक्चन्दनेन, आनखाग्रम्, अक्तः, स्वयम्, (अहम्), भीमम्, भूषणम्, अनुभविता,
 अस्मि ॥ ३५ ॥

शब्दार्थः—श्वः=कल, प्रभाते=प्रातःकाल, पश्यताम्=देखनेवाले, नृपाणाम्=राजाओं के,
 (अग्रे=समझ), पीनाभ्याम्=मोटी, मदभुजाभ्याम्=मेरी भुजाओं से, अभितगुरुगदाघातसञ्चि-
 तोरोः=बुमाई गई विशाल गदा के प्रहार से चूर-चूर हुई जोंधोंवाले, तव=तुझ, क्रूरस्य=क्रूर के,
 शिरसि=शिर पर, पादम्=पैर, आधाय=रखकर, स्त्यानेन=गाढ़े, च=तथा, आर्द्रेण=ताजे,
 त्वन्मुख्यभ्रातृचक्रोदलनगलदसूक्चन्दनेन=तुम प्रधान हो जिसमें ऐसे तेरे भाइयों के समूह के कुचलने
 से निकलने वाले रक्त रूपी चन्दन से, आनखाग्रम्=नख से शिर तक, अक्तः=पुता हुआ, स्वयम्=
 खुद, (अहम्=मैं), भीमम्=भीषण, भूषणम्=आभूषण का, अनुभविता=अनुभव करने वाला,
 अस्मि=बनूँगा ॥ ३५ ॥

पीनाभ्यामिति । श्वः=आगामिनि दिने, प्रभाते=प्रातःकाले, पश्यताम्=अवलोकयताम्,
 नृपाणाम्=भूपालानाम्, अग्रे इति शेषः, पीनाभ्याम्=पीवराभ्याम्, मदभुजाभ्याम्=मम बाहूभ्याम्,
 अभितेत्यादिः—अभिता=सञ्चालिता गुर्वी=महती या गदा तस्याः आघातेन=प्रहारेण, सञ्चिपितौ=
 भग्नौ करू=जंघे यस्य तस्य, तव=मवतः, क्रूरस्य=दुष्टस्य, शिरसि=मस्तके, पादम्=चरणम्,
 आधाय=स्थाप्य, स्त्यानेन=पिण्डीभूतेन, च=तथा, आर्द्रेण=विलम्बेन. त्वन्मुख्येत्यादि०—त्वम्=
 दुर्योधनः मुख्यः=प्रधानः यस्य तादृशं यत् भ्रातृणाम्=सहोदराणाम् चक्रम्=समूहः तस्य उदलेन
 =खण्डनेन यत् गलत्=खवद् असूक्=रक्तम्, तदेव चन्दनम्=मलयजः तेन, आनखाग्रम्=नखा-
 ग्रपर्यन्तम्, अक्तः=व्याप्तः, स्नात इति यावत्, स्वयम्, अहमिति शेषः, भीमम्=भयङ्करम्,
 भूषणम्=आभूषणम्, अनुभविता=अनुभवकर्ता, धारणकर्तृत्थः, अस्मि=मविष्यामीति यावत् ।

के प्रहार से चूर-चूर हुई जाँवों वाले तुझ कर के शिर पर पैर रख कर गाढ़े तथा ताजे, तुम प्रधान हो जिनमें ऐसे तेरे माइयों के समूह के कुचलने से निकलने वाले रक्तरूपी चन्दन से नख से शिर तक पुता हुआ (Painted) स्वयं (मैं) भीषण भूषण का अनुभव करने वाला बूँगा ॥ ३५ ॥

(पदों के पीछे)

हे हे भीम और अर्जुन, समस्त शत्रु-समूह नष्ट करने वाले, परशुराम के मनोहर यश को अभिमूत (Overcome) करने वाले, प्रताप से सन्तप्त की गई दिशाओं में स्वजनों को प्रतिष्ठापित करने वाले, यह श्रीमान् अज्ञातशत्रु युधिष्ठिर आशा दे रहे हैं ।

दोनों—क्या आशा दे रहे हैं आर्य ?

(फिर पदों के पीछे)

सम्बन्धी व्यक्ति (Relatives) युद्ध-स्थल में मारे गये (वीरों) के शवसमूह को अग्नि-दग्ध करें; ये बन्धुजन सम्बन्धियों के लिए, किसी प्रकार; आँसुओं से मिला हुआ (तर्पण-) जल दें; (लोग) मारे गये मनुष्यों की ढेर में गोधों तथा कङ्क पक्षियों के द्वारा खण्डित किये गये बन्धुओं के देहों को खोजें; यह स्वयं शत्रुओं के साथ अस्त को जा चुका है (अर्थात् डूब चुका है); इसलिये सेनाएँ लौटा ली जाँय ॥ ३६ ॥

स्रग्धरा छन्दः ॥ ३५ ॥

भो भो हति । निहताशेषारातिचक्रः—निहतम्=घातितम् अशेषम्=समग्रम् अरातीनाम्=शत्रूणाम् चक्रम्=समूहः यस्य येन वा सः, आक्रान्तपरशुरामाभिरामयशाः—आक्रान्तम्=अतिक्रान्तम्, परशुरामस्य=जामदग्न्यस्य अभिरामम्=मनोहरम् यशः येस सः, प्रतापेत्यादिः—प्रतापेन=तेजसा तापितेषु=सन्तपेषु दिङ्मण्डलेषु=दिक्चक्रेषु स्थापिताः=नियुक्ताः स्वजनाः=स्वपक्षावलम्बिनः पुरुषाः येन सः॥

अन्वयः—आप्ताः, जनाः, रणशिरसि, हतानाम्, देहभारान्, वह्निषात्, कुर्वन्तु; अमो, बान्धवाः, बान्धवेष्वभ्यः, कथञ्चित्, अश्रून्मिश्रम्, जलम्, ददतु; हतनरगहने, गृध्रकङ्कैः, खण्डितान्, शतिदेहान्, मार्गन्ताम्; अयम्, मास्वान्, रिपुभिः, सह, अस्तम्, प्रायातः, (अतः), बलानि, संहयन्ताम् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थः—आप्ताः=सम्बन्धी, जनाः=व्यक्ति, रणशिरसि=युद्धस्थल में, हतानाम्=मारे गये (वीरों) के, देहभारान्=शव—समूह को, अग्निषात्=अग्नि-दग्ध, कुर्वन्तु=करें; अमो=ये, बान्धवाः=बन्धुजन, बान्धवेष्वभ्यः=सम्बन्धियों के लिये, कथञ्चित्=किसी प्रकार, अश्रून्मिश्रम्=आँसुओं से मिला हुआ, जलम्=(तर्पण-) जल, ददतु=दें, हतनरगहने=मारे गये मनुष्यों की ढेर में, गृध्रकङ्कैः=गोधों तथा कङ्क पक्षियों के द्वारा, खण्डितानाम्=खण्डित किये गये, शतिदेहान्=बन्धुओं के देहों को, मार्गन्ताम्=खोजें; अयम्=यह, मास्वान्=स्वयं, रिपुभिः=शत्रुओं के, सह=साथ, अस्तम्=अस्त को, प्रायातः=जा चुके हैं; (अतः=इसलिये), बलानि=सेनाएँ, संहयन्ताम्=लौटा ली जाँय ॥ ३६ ॥

कुर्वन्तिवति । आप्ताः=बान्धवादयः, जनाः=व्यक्तयः, रणशिरसि=युद्धमध्ये, हतानाम्=घातितानाम्, देहभारान्=शवसमूहान्, वह्निषात्=अग्निषात्, कात्स्न्येन वह्निदेयानित्यर्थः, 'शतिः

उभौ—यदाज्ञापयत्यार्यः । (इति निष्क्रान्तौ)
(नेपथ्ये)

अरे रे गाण्डीवाकर्षणबाहुशालिन् अर्जुन, कवेदानीं गम्यते ।

कर्णक्रोधेन युष्मद्विजयि धनुरिदं त्यक्तमेतान्यहानि
प्रौढं विक्रान्तमासीद्वन इव भवता शूरशून्ये रणेऽस्मिन् ।

स्पर्शं स्मृत्योत्तमाङ्गे पितु रनवजितन्यस्तहेतेरूपेतः

कल्पाग्निः पाण्डवानां द्रुपदसुतचमूधस्मरो द्रौणिरस्मि ॥ ३७ ॥

धृतराष्ट्रः—(आकर्ष्य सहर्षम्) वत्स दुर्योधन, द्रोणवधपरिभवोद्दीपितक्रोधपावकः
पितुरपि समधिकबलः शिक्षावानसरोपसश्चायमश्वत्थामा प्राप्तः । तत्प्रत्युपगमनेन
तावदयं संभाव्यतां वीरः ।

गान्धारी—जात, प्रत्युद्गच्छेन महाभागम् ।

[जाद, पच्छिगच्छ एदं महाभागम् ।]

दुर्योधनः—तात, अस्व, किमनेनाङ्गराजवधाशंसिना वृथायौवनशस्त्रबलभरेण ।

धृतराष्ट्रः—वत्स, न खल्वस्मिन्काले पराक्रमवतामेवंविधानां बाढ्मात्रेणापि
विरागमुत्पादयितुमर्हसि ।

कात्स्न्यं' इति देयार्थं सातिप्रत्ययः, कुर्वन्तु = विदधतु; अमा = एते, बान्धवाः = शतयः,
बान्धवेभ्यः = स्वजनेभ्यः, कथञ्चित् = येन केनापि रूपेण, हृदयमवलम्ब्येत्यर्थः, अश्रून्मिश्रम् = अश्रुभिः
= नेत्रजलैः उन्मिश्रम् = युक्तम्, जलम् = तर्पणसलिलम्, ददतु = समर्पयन्तु; हतनरगहने = हतानाम्
= घातितानाम् नाराणाम् = नृणाम् गहने = सङ्कुलिते समवाये, गृध्रकङ्कैः = मांसपक्षकैः पक्षिभिरित्यर्थः,
खण्डितान् = खण्डशः कृतान्, शातिदेहान् = स्वजनशरीराणि, मार्गन्ताम् = गवेषयन्ताम्, जनाः इति
शेषः; अयम् = एषः, मास्वान् = सूर्यः, रिपुभिः = शत्रुभिः, सह = साकम्, अस्तम् = दर्शनाभावम्,
सूर्योऽस्ताचलं रिपवो नाशमित्यर्थः, प्रयाताः = प्राप्ताः, अतः, बलानि = सैन्यानि, संहयन्ताम् = उपसं-
हयन्ताम् । सहोक्तिरलङ्कारः स्रग्धरा छन्दः ॥ ३६ ॥

अन्वयः—एतानि, अहानि, युष्मद्विजयि, इदम्, धनुः, कर्णक्रोधेन, त्यक्तम्, (अत एव), शूर-
शून्ये, वने, इव, अस्मिन्, रणे, भवताम्, विक्रान्तम्, प्रौढम्, आसीत्, अनवजितन्यस्तहेतेः, पितुः,
उत्तमाङ्गे, स्पर्शम्, स्मृत्वा, पाण्डवानाम्, कल्पाग्निः, द्रुपदसुतचमूधस्मरो, द्रौणिः, उपेतः, अस्मि ॥ ३७ ॥

शब्दार्थः—एतानि = इतने, अहानि = दिनों तक, युष्मद्विजयि = तुम लोगों को जीतने वाला,
इदम् = यह, धनुः = धनुष, कर्णक्रोधेन = कर्ण के ऊपर क्रोध होने के कारण, त्यक्तम् = छोड़ा गया
था, (अत एव = इसी लिए), शूरशून्ये = वीर-विहीन, वने = जङ्गल की, इव = तरह, अस्मिन् = इस,
रणे = युद्ध में, भवताम् = आप का, विक्रान्तम् = विक्रम, प्रौढम् = बढ़ा हुआ, आसीत् = था, अनव-
जितन्यस्तहेतेः, = अपराजित शत्रु को त्याग किए हुए, पितुः = पिता के, उत्तमाङ्गे = शिर पर, स्पर्शम्
= स्पर्श को, स्मृत्वा = याद कर, पाण्डवानाम् = पाण्डवों के लिए, कल्पाग्निः = प्रलयकालीन अग्नि,

दोनों—आर्य जैसी आशा दे रहे हैं । (ऐसा कह कर दोनों निकल गये) ।

अरे रे गाण्डीव (नामक धनुष) को खींचने वाली प्रशस्त मुञ्जाओं वाले अर्जुन, कहाँ अब जा रहे हो ?

इतने दिनों तक तुम लोगों को जीतने वाला यह धनुष कर्ण के ऊपर क्रोध के कारण छोड़ा गया था । (इसी लिये) वीर-विहीन, जङ्गल की तरह, इस युद्ध में आप का विक्रम बढ़ा हुआ था । अपराजित शत्रु को त्याग किये हुये पिता (द्रोण) के शिर पर (किये गये) स्पर्श को याद कर पाण्डवों के लिये प्रलयकालीन अग्नि, दुपदपुत्र (धृष्टद्युम्न) की सेना का मक्षक, द्रोणपुत्र (अश्वत्थामा) आ गया हूँ ॥ ३७ ॥

धृतराष्ट्र—(सुनकर प्रसन्नतापूर्वक) बेटा दुर्योधन, द्रोणाचार्य के वधरूपी अपमान के कारण भड़की हुई क्रोधाग्नि वाला, (अपने) पिता से भी अधिक बलशाली, शिक्षासम्पन्न एवं देवतुल्य यह अश्वत्थामा आ गया है । तो अगवानी करके सम्प्रति इस वीर का सम्मान करें ।

गान्धारी—बेटा, इस महाभाग की अगवानी करो ।

दुर्योधन—पिताजी, माताजी, अङ्गराज (कर्ण) के वध की अभिलाषा करने वाले, अर्थ यौवन एवं शक्त के बल वाले इस (अश्वत्थामा) से क्या (लाभ) ?

धृतराष्ट्र—बेटा, इस समय में इस तरह के पराक्रमशाली (वीरों) का वचनमात्र से भी वैराग्य (Disaffection) उत्पन्न करना उचित नहीं है ।

दुपदसुतचमूधरम्बरः = दुपद-पुत्र की सेना का मक्षक, द्रौणिः = द्रोण-पुत्र, उपेतः = आ गया, अस्मि = हूँ ॥ ३७ ॥

कर्णक्रोधेनेति । एतानि = इमानि, अहानि = दिनादि, युष्मद्विजयि = युष्मान् विजितुं शीलमस्येति, युष्मान्वशीकर्तुं समर्थमित्यर्थः, इहम् = एतत्, धनुः = कोदण्डम्, कर्णक्रोधेन-कर्णे = रोषेये, क्रोधः = कोपः तेन, त्यक्तम् = न्यस्तम्, अत एवेति शेषः, शूशून्ये = वीरविहीने, वने = अरण्ये, इव = यथा, अस्मिन् = एतस्मिन्, रणे = युद्धे, मक्षताम् = युष्माकमित्यर्थः, विक्रान्तम् = पराक्रमः, विक्रान्तमिति भावे क्तः, प्रौढम् = प्रबलमिति यावत्, आसीद्, अनवजितस्यस्तथेतिः—अनवजिता = अपराजिता न्यस्ता = पुत्रशोकेन परित्यक्ता हेतिः = अन्तम् येन तस्य, पितुः = तातस्य, उत्तमाङ्गे = शिरसि, स्पर्शम् = जघ्नुभिः आमर्शनम्, स्मृत्वा = बुद्धौ आनीय, पाण्डवानाम् = युधिष्ठिरादीनाम्, कल्पाग्निः = प्रलयार्त्तिनः, प्रलयार्त्तिरिव विनाशक इत्यर्थः, दुपदसुतचमूधरम्बरः—दुपदसुतस्य = दुपदपुत्रस्य धृष्टद्युम्नस्येत्यर्थः, चम्पाः = सेनायाः धरम्बरः = मक्षकः, नाशक इत्यर्थः, वसितुं शीलमस्येति धरम्बरः, वसुधातोः 'वृष्यदः कमरच्' इति कमरच् प्रत्ययः, द्रौणिः = द्रोणपुत्रः अश्वत्थामा, उपेतः = प्राप्तः, अस्मि । स्रग्धरा छन्दः ॥ ३७ ॥

धृतराष्ट्र इति । द्रोणवधपरिमत्रोदीपितक्रोधपावकः—द्रोणस्य वधः = हननम् एव परिमत्रः = अपमानम् तेन उदीपितः = वृद्धिप्लवः क्रोधः = कोप एव पावकः = अग्निः यस्य सः । प्रत्युद्गमनेन = पुरःसरणेन, सम्भाव्यताम् = सत्क्रियताम् ॥

वेणीसंहारे

(प्रविश्य)

अश्वत्थामा—विजयतां कौरवाधिपतिः ।

दुर्योधनः—(वत्याय) गुरुपुत्र, इत् आस्यताम् । (इत्युपवेशयति)

अश्वत्थामा—राजन् दुर्योधन,

कर्णं कर्णसुभगं बहु यत्तदुक्त्वा

यत्सङ्गरेषु विहितं विदितं त्वया तत् ।

द्रौणिस्त्वधिज्यधनुरापतितोऽभ्यमित्र-

मेषोऽधुना त्यज नृप प्रतिकारचिन्ताम् ॥ ३८ ॥

दुर्योधनः—(साम्यस्यम्) आचार्यपुत्र,

अवसानेऽङ्गराजस्य योद्धव्यं भवता किल ।

ममाप्यन्तं प्रतोक्षस्व कः कर्णः कः सुयोधनः ॥ ३९ ॥

अश्वत्थामा—(स्वगतम्) कथमद्यापि स एष कर्णपक्षपातः, अस्मासु च परिभवा ।
(प्रकाशम्) राजन् कौरवेश्वर, एवं भवतु । (इति निष्क्रान्तः)धृतराष्ट्रः—वत्स, क एष ते व्यामोहो यदस्मिन्नपि काले एवंविधस्य महाभाग-
स्याश्वत्थाम्नो वाक्पारुष्येणापरागमुत्पादयसि ।

दुर्योधनः—किमस्याप्रियमनृतं च मयोक्तम् । किं वा नेदं क्रोधस्थानम् । पश्य—

अकलितमहिमानं क्षत्रियैरात्तचापैः

समरशिरसि युष्मद्भाग्यदोषाद्विपन्नम् ।

अन्वयः—कर्णेन, यत्, कर्णसुभगम्, तत्, बहु, उक्त्वा, सङ्गरेषु, यत्, विहितम्, तत्, त्वया, विदितम्, अधुना, अधिज्यधनुः, एषः, द्रौणिः, अभ्यमित्रम्, आपतितः, (अतः), हे नृप, प्रतिकार-
चिन्ताम्, त्यज ॥ ३८ ॥शब्दार्थः—कर्णेन = कर्ण के द्वारा, यत् = जो, कर्णसुभगम् = कानों को अच्छा लगने वाला था, तत् = उसे, बहु = बहुत अधिक, उक्त्वा = कह कर, सङ्गरेषु = युद्धों में, यत् = जो, विहितम् = किया गया है, तत् = वह, त्वया = तुम्हें, विदितम् = ज्ञात है, अधुना = इस समय, अधिज्यधनुः = धनुष चढ़ाये हुये, एषः = यह, द्रौणिः = द्रोणपुत्र (अश्वत्थामा), अभ्यमित्रम् = शत्रुओं के सम्मुख, आप-
तितः = आ गया है, (अतः = इसलिये), हे नृप = हे राजन्, प्रतिकारचिन्ताम् = बदला लेने की चिन्ता को, त्यज = छोड़ो ॥ ३८ ॥

कर्णेनेति । कर्णेन = राधेयेन, यत् = यद्वचनमिति भावः, कर्णसुभगम् = श्रोत्रसुखदम्, तत् = तादृशं वचनमित्यर्थः, बहु = पारम्परमिति यावत्, उक्त्वा = कथयित्वा, सङ्गरेषु = युद्धेषु, यत् = यत्कर्म, विहितम् = सम्पादितम्, तत् = तत्कर्म, त्वया = राजा दुर्योधनेन, विदितम् = ज्ञातम् । अधुना = सम्प्रति, अधिज्यधनुः = ज्याम् = प्रत्यञ्चाम् अधिगतम् अधिज्यम् = समौर्वीकम् धनुः = कोदण्डम् यस्य सः, एषः = अयम्, द्रौणिः = द्रोणपुत्रः अश्वत्थामा, अभ्यमित्रम् = अमित्राणाम् = शत्रूणाम् अभि =

(प्रवेश करके)

अश्वत्थामा—कौरव-अधिपति विजयी बनें ।

दुर्योधन—(उठकर) गुरुपुत्र, यहाँ बैठें । (ऐसा कह कर बैठाता है) ।

अश्वत्थामा—राजन् दुर्योधन,

कर्ण के द्वारा, जो कानो को अच्छा लगनेवाला था उसे बार-बार कह कर, युद्धों में जो किया गया है, वह तुम्हें विदित है । इस समय धनुष चढ़ाए हुए यह द्रोण-पुत्र (अश्वत्थामा) शत्रुओं के सम्मुख आ गया है । (अतः) हे राजन्, बदला लेने की चिन्ता छोड़ो ॥ ३८ ॥

दुर्योधन—(ईर्ष्या के साथ) आचार्यपुत्र,

कर्ण के समाप्त हो जाने पर आपके द्वारा युद्ध करना है—यह निश्चय है । (तब) मेरे भी अन्त की प्रतीक्षा करो, क्या कर्ण ? क्या दुर्योधन ? (अर्थात् कर्ण और दुर्योधन में कुछ भी मेद नहीं है) ॥ ३९ ॥

अश्वत्थामा—(अपने आप) क्या आज भी कर्ण के प्रति वही पक्षपात तथा हम लोगों के प्रति अन्याय ? (प्रकट रूप में) राजन्, कौरवाधिपति, ऐसा ही हो । (ऐसा कह कर निकल गया) ।

धृतराष्ट्र—वेदा, कैसा यह तुम्हारा बुद्धि-विभ्रम है, जो कि इस समय में मो इस तरह के (अप्रतिम योद्धा) महाशय अश्वत्थामा में वचन की रक्षता से विराग उत्पन्न कर रहे हो ?

दुर्योधन—मैंने इनसे अभिय और असत्य क्या कहा है ? अथवा क्या यह क्रोध की जगह नहीं है ? देखिये—

धनुर्धारी क्षत्रियों के द्वारा न जानी जा सकी महिमा जिसकी ऐसे तथा समराक्षण में, आप लोगों

सम्मुखम् इति, आपतितः = सम्प्राप्तः, (अतः) हे नृप = हे राजन्, प्रतिकारचिन्ताम्—प्रतिकारस्य = प्रतिविहितस्य चिन्ताम् = चिन्तनम् शुचं वा, त्यज = मुञ्च । मयैव सर्वत्र प्रतिकारः कर्तव्य इत्यभिप्रायः । वसन्ततिलका छन्दः । 'उक्ता वसन्ततिलका तमजा जगौ गः ॥' ३८ ॥

अन्वयः—अङ्गराजस्य, अवसाने, भवता, योद्धव्यम्, किल, (तदा), मम, अपि, अन्तम्, प्रतीक्षस्व, कः, कर्णः, कः, सुयोधनः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थः—अङ्गराजस्य = कर्ण के, अवसाने = समाप्त हो जाने पर, भवता = आप के द्वारा, योद्धव्यम् = युद्ध करना है, किल = यह निश्चय को सूचित करने वाला अव्यय है । (तदा = तब), मम = मेरे, अपि = भी, अन्तम् = अन्त की, प्रतीक्षस्व = प्रतीक्षा करो, कः = क्या, कर्णः = कर्ण है, कः = क्या, सुयोधनः = दुर्योधन है ॥ ३९ ॥

अवसान इति । अङ्गराजस्य = कर्णस्य, अवसाने = समाप्ती, भवता = त्वया, योद्धव्यम् = युद्धं कर्तव्यमास्ते, किलेति निश्चयेऽशुचौ वा, तदेति शेषः, मम = दुर्योधनस्य, अपि = च, अन्तम् = अवसानम्, प्रतीक्षस्व, यतः कः कर्णः कः सुयोधनः = कर्णसुयोधनयोर्नास्ति विशेष इति भावः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ३९ ॥

अन्वयः—आत्तचापैः, क्षत्रियैः, अकलितमहिमानम्, रणशिरसि, युष्मद्भाग्यदोषात्, विपन्नम् ; मित्रम्, अङ्गराजम्, मम, समक्षम्, परिवदति, कथय, खलु, अस्मिन्, वा; अजुने, कः,

परिवदति समक्षं मित्रमङ्गाधिराजं

मम खलु कथयास्मिन्को विशेषोऽर्जुने वा ॥ ४० ॥ २

धृतराष्ट्रः—वत्स, तथापि कोऽत्र दोषः । अवसानमिदानीं भरतकुलस्य । सञ्जय, किमिदानीं करोमि मन्दभाग्यः (विचिन्त्य) भवत्त्वेवं तावत् । संजय, मद्बचनाद् ब्रूहि आरद्वाजमश्वत्थामानम् ।

स्मरति न भवान्पीतं स्तन्यं विभज्य सहामुना

मम च मृदितं क्षौमं बाल्ये त्वदङ्गविवर्तनैः ।

अनुजनिधनस्फीताच्छोकादतिप्रणयाच्च य-

द्वचनविकृतिष्वस्य क्रोधो मुधा क्रियते त्वया ॥ ४१ ॥

सञ्जयः—यदाज्ञापयति तावः । (श्लुत्तिष्ठति)

धृतराष्ट्रः—अपि चेदमन्यस्त्वया वक्तव्यम् ।

यन्मोचितस्तव पिता वितथेन शस्त्रं

यत्तादृशः परिभवः स तथाविधोऽभूत् ।

विशेषः ॥ ४० ॥

शब्दार्थः—आत्तचापैः=धनुर्धारी, क्षत्रियैः=क्षत्रियों के द्वारा, अकलितमहिमानम्=न जानी जा सकी महिमा जिसकी ऐसे, रणशिरसि=समराङ्गण में, युष्मद्भाग्यदोषात्=आप लोगों के भाग्य के दोष से, विपन्नम्=मेरे दुये, मित्रम्=मित्र, अङ्गराजम्=कर्ण को, मम=मेरे, समक्षम्=सामने, परिवदति=अनाप-शनाप बक रहा है, कथय=बतलाइये, खलु=निश्चय ही, अस्मिन्=इसमें, वा=अथवा, अर्जुने=अर्जुन में, कः=क्या, विशेषः=अन्तर है ॥ ४० ॥

अकलितेति । आत्तचापैः—आत्तः=गृहीतः चापः=धनुः यैस्तैः, क्षत्रियैः=योद्धृभिरित्यर्थः, अकलितमहिमानम्=अकलितः=सम्यक्तया न विज्ञातः महिमा=महत्त्वम् यस्य तम्, रणशिरसि=सुदाङ्गणे, युष्मद्भाग्यदोषात्—युष्माकं भाग्यदोषात्=अदृष्टवैपरीत्यात्, विपन्नम्=विनष्टम्, मित्रम्=सुहृदम्, अङ्गराजम्=कर्णम्, मम=दुर्योधनस्य, समक्षम्=पुनः, परिवदति=अधिक्षिपति, कथय=ब्रूहि, खल्विति निश्चये, अस्मिन्=मम मित्रस्य शत्रौ अश्वत्थामनि, वा अर्जुने=मम शत्रौ पृथापुत्रे, कः=कीदृशः, विशेषः=भेदः ? न कोऽपीति भावः । मालिनी छन्दः । तल्लक्षणम्—‘ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोके’ ॥ ४० ॥

अन्वयः—अमुना, सह, विभज्य, स्तन्यम्, पीतम्; बाल्ये, त्वदङ्गविवर्तनैः, मम, क्षौमम्, मृदितम्; च, भवान्, न, स्मरति ? अनुजनिधनस्फीतात्, शोकात्, (कर्णे), अतिप्रणयात्, च, अस्य, वचनविकृतिषु, यत्, क्रोधः, त्वया, क्रियते, (तत्), मुधा ॥ ४१ ॥

शब्दार्थः—अमुना=इस (दुर्योधन) के, सह=साथ, विभज्य=बाँट कर, स्तन्यम्=दूध, पीतम्=पिया गया था, बाल्ये=बचपन में, त्वदङ्गविवर्तनैः=तुम्हारे अङ्गों की लोट-पोट से, मम=

के मान्य के दोष से, मेरे हुए मित्र कर्ण को मेरे सामने अनाप-शानाप बक रहा है (Defames, Reviles) । वतलाइये, निश्चय ही, इसमें अथवा अर्जुन में क्या अन्तर है ? (अर्थात् कुछ नहीं) ॥ ४० ॥

धृतराष्ट्र—वेदा, इसमें तुम्हारा क्या दोष ? अब मरतकुल की समाप्ति (ही है) । सञ्जय, अमागा मैं अब क्या करूँ ? (सोच कर) अच्छा, सम्प्रति ऐसा हो । सञ्जय, मेरी ओर से मरदाज-कुलोत्पन्न अश्वत्थामा से (जाकर) कहो—

इस (दुर्योधन) के साथ बौट कर (इसकी माँ गान्धारी का) दूध पिया गया था तथा वचन में तुम्हारे अङ्गों की लोट-पोट से मेरा रेशमी वस्त्र रौंदा गया था—इसको आप नहीं याद कर रहे हो ? माई (दुःशासन) की मृत्यु से बड़े हुए शोक से अथवा (कर्ण के विषय में) अधिक प्रेम होने के कारण भी (कहे गये इसके) अनुचित वचनों पर जो क्रोध तुम्हारे द्वारा किया जा रहा है, (वह) व्यर्थ है ॥ ४१ ॥

सञ्जय—जैसी तात की आशा (वैसा ही करने जा रहा हूँ) (ऐसा कह कर उठता है) ।

धृतराष्ट्र—और यह दूसरा (सन्देश) भी तुम्हें कहना है ।

जो कि आप के पिता असत्य वचन के द्वारा शस्त्र छुड़वा दिये गये थे, जो कि (उनका) वैसा

मेरा, क्षौमम्=रेशमी वस्त्र, मृदितम्=रौंद दिया गया था, च=इसको, भवान्=आप, न=नहीं, स्मरति=याद कर रहे हो ? अनुजनिधनस्फीतात्=माई की मृत्यु से बड़े हुए, शोकात्=शोक से, (कर्ण=कर्ण के विषय में), अतिप्रणयात्=अधिक प्रेम होने के कारण, च=भी, अस्य=इसके, वचनविकृतिषु=अनुचित वचनों पर, यत्=जो कि, क्रोधः=क्रोध, त्वया=तुम्हारे द्वारा, क्रियते=किया जा रहा है, (तत्=वह), सुधा=व्यर्थ है ॥ ४१ ॥

स्मरतीति । अनुना=अनेन, दुर्योधनेन, सह=साकम्, विभाग्य=विभागं कृत्वा, स्तन्यम्—स्तने=पयोधरे भवं स्तन्यम्=मातृदुग्धम्, पीतम्=पानं कृतम्; बाल्ये=शैशवे, त्वदङ्गविवर्तनैः—तव=भवतः अङ्गानाम्=अवयवानाम्, विवर्तनैः=परिवर्तनैः, मम=दुर्योधनपितुः धृतराष्ट्रस्येत्यर्थः, क्षौमम्=दुकूलम्, पटवस्त्रमित्यर्थः, मृदितम्=मलिनोक्तम्, च=अपि, भवान्, न, स्मरति=चिन्तयति ? अनुजनिधनस्फीतात्—अनुजस्य=आतुः दुःशासनस्य निधनेन=मरणेन, स्फीतात्=वृद्धिज्ञात्, शोकात्=शुचः, (कर्ण=राधेये), अतिप्रणयात्=प्रगाढनेहात्, च=अपि, अस्य=एतस्य, दुर्योधनस्येत्यर्थः, वचनविकृतिषु=विकृतेषु वचनेष्वेत्यर्थः, यत्, क्रोधः=क्रोधः, त्वया=मवता, क्रियते=विधीयते, तदिति शेषः, सुधा=व्यर्थम्, त्वया कोपो न कर्तव्य इत्यर्थः । हरिषो छन्दः ॥ ४१ ॥

अन्वयः—यत्, तव, पिता, वितथेन, शस्त्रम्, मोचितः; यत्, तादृशः, सः, तथाविधः, परिभवः, अपात्, एतत्, विचिन्त्य, दुर्योधनोक्तम्, अपहाय, आत्मनि, बलम्, च, (विचिन्त्य), पौरुषम्, विधास्यसि ॥ ४२ ॥

शब्दार्थः—यत्=जो कि, तव=आप के, पिता=पिता, वितथेन=असत्य वचन के द्वारा,

एतद्विचिन्त्य बलमात्मनि पौरुषं च

दुर्योधनोक्तमपहाय विधास्यसीति ॥ ४२ ॥

सञ्जयः—यदाज्ञापयति तातः । (इति निष्क्रान्तः)

दुर्योधनः—सूत, साङ्ग्रामिकं मे रथमुपकल्पय ।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । (इति निष्क्रान्तः)

धृतराष्ट्रः—गान्धारि, इतो वयं मद्राधिपतेः शल्यस्य शिविरमेव गच्छावः ।
वत्स, त्वमप्येवं कुरु ।

(इति परिक्रम्य निष्क्रान्ताः सर्वे)

❀ इति पञ्चमोऽङ्कः ❀

शस्त्रम्=शस्त्र, मोचितः=छुड़वा दिये गये थे; यत्=जो कि, तादृशः=वैसा; सः=वह, तथा-
विधः=उस तरह का, परिमवः=अपमान, अमृत=हुआ, एतत्=यह, विचिन्त्य=विचार कर,
दुर्योधनोक्तम्=दुर्योधन के कथन को, अपहाय=भुला कर, आत्मनि=अपने में स्थित, बलम्=
बल को, च=मो, (विचिन्त्य=समझ कर), पौरुषम्=पुरुषार्थ, विधास्यति=करेंगे ॥ ४२ ॥

यन्मोचितेति । यत्, तव=भवतः, पिता=जनकः, द्रोणाचार्यः, वितथेन=अनृतेन वचनेन,
शस्त्रम्, मोचितः=त्याजितः, ध्यन्तान्मुच् धातोः प्रयोज्ये कर्मणि क्तः; यत्, तादृशः=अमृतपूर्वः

वह (धृषित) उस तरह का अपमान हुआ—यह विचार कर तथा दुर्योधन के कथन को भुलाकर अपने बल को समझ कर पुरुषार्थ करेंगे ॥ ४२ ॥

सञ्जय—तात की जैसी आशा । (ऐसा कह कर निकल गया)

दुर्योधन—सुत, मेरे युद्ध सम्बन्धी रथ को लाओ ।

सूत—आयुष्मान् की जैसी आशा (ऐसा कह कर निकल गया) ।

धृतराष्ट्र—गान्धारि, यहाँ से हम लोग मद्र देश के अधिपति शल्य के शिविर में ही चलें ।
बेटा, तुम भी ऐसा ही करो ।

(इस तरह घूम कर सभी निकल गये)

॥ पञ्चम अङ्क समाप्त ॥

इत्यर्थः, सः, तथाविधः = तादृशः, परिभवः = अपमानम्, अमूत् = जातम्, एतत् = इदम्, विचिन्त्य = विचार्य, दुर्योधनोक्तम् = दुर्योधनकथितम्, अपहाय = विस्मृत्येत्यर्थः, आत्मनि = स्वस्मिन्, बलम् = शक्तिम्, च = अपि, (विचिन्त्येति शेषः) . पौरुषम् = पुरुषार्थम्, विधास्यसि = करिष्यसि, त्वमिति शेषः । केचित्तु विधास्यतीत्यत्र प्रतिकारमिति शेषः इत्युचुः । वसन्ततिलका छन्दः । तल्लक्षणम्—‘उक्ता वसन्ततिलका तमजा जगौ गः’ ॥ ४२ ॥

धृतराष्ट्र इति । इतः = अस्मात् स्थानात्, मद्राधिपतेः = मद्रदेशशासकस्य, शिविरम् = वस्त्र-निमित्तं वासस्थानम् । एवम् = इत्यम्, तत्रैव गमनमित्यर्थः ॥

॥ इति रमाशङ्करत्रिपाठिकृतायां वेणीसंहारव्याख्यायां रमाख्यायां पञ्चमोऽङ्कः ॥

षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशत्यासनस्थो युधिष्ठिरो द्रौपदी चेटी पुरुषश्च)

युधिष्ठिरः—(विचिन्त्य निःश्वस्य च)

तीर्णे भीष्ममहोदधौ कथमपि द्रोणानले निर्वृते
कर्णाशीविषभोगिनि प्रशमिते शल्ये च याते दिवम् ।

भीमेन प्रियसाहसेन रमसात्स्वल्पावशेषे जये
सर्वे जीवितसंशयं वयमभी वाचा समारोपिताः ॥ १ ॥

द्रौपदी—(सवाष्पम्) महाराज, पाञ्चाल्येति किं न भणितम् ।

[महाराज, पाञ्चाल्येति किं न भणितम् ।]

युधिष्ठिरः—कृष्णे, ननु मया । (पुरुषमवलोक्य) बुध्दक,

पुरुषः—देव, आज्ञापय ।

युधिष्ठिरः—उच्यतां सहदेवः—क्रुद्धस्य वृकोदरस्यापर्युपितदारुणां प्रतिज्ञासुपलभ्य
प्रनष्टस्य मानिनः कौरवराजस्य पदीमन्वेष्टुमतिनिपुणमतयस्तेषु तेषु स्थानेषु परमार्था-
भिज्ञाश्चराः सुसचिवाश्च भक्तिमन्तः पटुपटहरव्यक्तघोषणाः सुयोधनसंचारवेदिनः
प्रतिश्रुतधनपूजाप्रत्युपक्रियाश्चरन्तु समन्तात्समन्तपञ्चकम् । अपि च ।

अन्वयः—शब्दार्थः—कथमपि, भीष्ममहोदधौ, तीर्णे; द्रोणानले, निर्वृते; कर्णाशीविषभोगिनि,
प्रशमिते; च, शल्ये, दिवम्, याते; (इत्यम्), जये, स्वल्पावशेषे, (सति); प्रियसाहसेन, भीमेन,
रमसात्, वाचा, अभी, सर्वे, वयम्, जीवितसंशयम्, समारोपिताः ॥ १ ॥

शब्दार्थः—कथमपि = किसी तरह, भीष्ममहोदधौ = भीष्मरूपी महासागर के, तीर्णे = पार कर
लिप जाने पर, द्रोणानले = द्रोण रूपी धधकती अग्नि के, निर्वृते = शान्त हो जाने पर, बुझ जाने पर,
कर्णाशीविषभोगिनि = कर्णरूपी विषैले नाग के, प्रशमिते = शान्त कर दिये जाने पर, च = तथा,
शल्ये = शल्य के, दिवम् = स्वर्ग, याते = चले जाने पर, (इत्यम् = इस तरह), जये = विजय के,
स्वल्पावशेषे = थोड़ा बाकी, (सति = रहने पर), प्रियसाहसेन = साहसप्रिय, भीमेन = भीम के
द्वारा, रमसात् = शीघ्रतावश, वाचा = वाणी से, अभी = यह, सर्वे = सभी, वयम् = हम लोग, जीवित-
संशयम् = प्राण-संशय पर (में), समारोपिताः = चढ़ा दिये गये हैं, डाल दिये गये हैं ॥ १ ॥

तीर्णं इति । कथमपि = यथाकथञ्चित्, भीष्ममहोदधौ = भीष्मः = पितामहः एव महोदधिः =
महासागर-तस्मिन्, तीर्णे = अतिव्रान्ते, द्रोणानले = द्रोणः = आचार्यः एव अनलः = प्रज्वलितो
वह्निः तस्मिन्, निर्वृते = उपशान्ते, कर्णाशीविषभोगिनि = आशीः = अर्पदंष्ट्रा तत्र विषम् = गरलः
यस्य तादृशः यो भोगी = सर्पः इति आशीविषभोगी ('आशीरास्यहिदंष्ट्रायाम्' इति शब्दभेदः,
'भोगः सुखे रम्यादिभृतावहेश्च फणकाययोः' इति विश्वः), यद्यप्यत्रैकतरपदेनैव अपरं गतार्थं तथापि

षष्ठ अङ्क

(तदनन्तर आसन पर स्थित युधिष्ठिर, द्रौपदी, चेटी तथा पुरुष प्रवेश करते हैं)

युधिष्ठिर—(सोच कर तथा लम्बी साँस लेकर)

किसी तरह भीष्मरूपी महासागर के पार कर लिए जाने पर, द्रोण-रूपी वधवती अग्नि के बुझ जाने पर, कर्णरूपी विपैले नाग के शान्त कर दिये जाने पर तथा शल्य के स्वर्ग चले जानेपर (इस तरह) विजय के थोड़ा (हो) बाकी रहने पर साहस-प्रिय भीम के द्वारा शीघ्रतावश (अपनी) बाणी से यह सभी हम लोग प्राण-संशय में डाल दिये गये हैं ॥ १ ॥

विशेष—पञ्चम अङ्क के १५ वे श्लोक में भीम ने प्रतिज्ञा की है कि—कल प्रातःकाल दुर्योधन का वध करूँगा । दुर्योधन एक विशेष प्रकार की सिद्धि के लिए जल के भीतर छिपा हुआ है । किसी को कुछ पता नहीं कि वह कहाँ है । ऐसी दशा में प्रतिज्ञा पूरी न होने पर भीम का जीवित रहना कठिन होगा । उनके न रहने पर युधिष्ठिर आदि जीवित न रह सकेंगे । यही है सबका प्राण-संशय में डाल दिये जाने का रहस्य ॥ १ ॥

द्रौपदी—(आँसू भर कर) महाराज, द्रौपदी के द्वारा (प्राण संशय में डाल दिये गये हैं)—ऐसा क्यों नहीं कहा गया ।

युधिष्ठिर—द्रौपदी निश्चय ही मेरे द्वारा (सभी लोग प्राण-संशय में डाल दिये गये हैं) । (पुरुष को देख कर) बुधक,

पुरुष—महाराज, आशा दीजिये ।

युधिष्ठिर—सहदेव से कहो—क्रुद्ध हुये भीम की आज ही पूरी होने वाली (अतः) दारुण प्रतिज्ञा को जानकर छिपे हुये अभिमानों कौरवराज (दुर्योधन) के चरण-निहों से युक्त मार्ग (Track) का पता लगाने के लिए अत्यन्त चालाक बुद्धिवाले, उन-उन स्थानों की सही स्थितियों से परिचित, (हमारे प्रति) भक्ति रखने वाले, तीव्र नगाड़े की ध्वनि से धोषणा करते हुये, दुर्योधन की गतिविधियों को जानने वाले, जिन्हें (दुर्योधन को खोज निकालने पर) सम्पत्ति एवं सम्मान से बदला (Rewards) चुकाने का वचन दिया गया है ऐसे, गुप्तचर और सुयोग्य मन्त्री समन्त-पञ्चक (नामक तालाब) के चारों ओर घूमें । ओर भी—

सर्वव्यापकविषयशान्तार्थं तदुक्तिः, यद्वा आश्या विषं यत्र=भोगे शरीरे सोऽस्यारतीत्याशोविषमोगी विषपर इति व्युत्पत्तिः । कर्णः=राधेयः एव आशोविषमोगी तस्मिन्, प्रशमिते=प्रतिशिते, च=तथा, शल्ये=महाधिपे, दिवम्=स्वर्गम्, याते=प्रयाते, (इत्यम्=अनया रीत्या), जये=विजये, स्वल्पावशेषे=स्वल्पम् अवशिष्टे सति, प्रियसाहसेन=प्रियः=अमोघः साहसः=बलकर्म यस्य तेन, भीमेन=वृकोदरेण, रमसात्=वेगात् ('रमसो वेगहर्षयो' इत्यमरः), वाचा=प्रतिशारूपया स्वः प्रभाते त्वां हनिष्यामीतिरूपया वाण्या, सर्वे=निखिलाः, वयम्=युधिष्ठिरादयः, जीवितसंशयम्—

पङ्के वा सैकते वा सुनिभृतपदवीवेदिनो यान्तु दाशाः
कुञ्जेषु क्षुण्णवीरुन्निचयपरिचया बल्लवाः सञ्चरन्तु ।
नागव्याघ्राटवीषु स्वपचपुरविदो ये च रन्ध्रेष्वभिज्ञा
ये सिद्धव्यञ्जना वा प्रतिमुनिनिलयं ते च चाराश्चरन्तु ॥ २ ॥

पुरुषः—यथाज्ञापयति देवः ।

युधिष्ठिरः—तिष्ठ । एवं च वक्तव्यः सहदेवः ।

ज्ञेया रहः शङ्कितमालपन्तः सुप्ता रुगार्ता मदिराविधेयाः ।

त्रासो मृगाणां वयसां विरावो नृपाङ्कपादप्रतिमाश्च यत्र ॥ ३ ॥

पुरुषः—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य सहर्षम्) देव, पाञ्चालकः

प्राप्तः ।

जीविते = जीवने संशयम् = सन्देहम्, समारोपिताः = प्रापिताः । अत्र रूपकालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ १ ॥

युधिष्ठिर इति । अपर्युषितदारुणाम्—अपर्युषिताम् = तद्दिने एव पूर्यमाणाम् अतः दारुणाम् = भीषणाम्, प्रनष्टस्य = गुप्तस्य, पदवीम् = चरणचिह्नयुक्तां पद्वतिम्, अतिनिपुणमतयः—अतिनिपुणा = अतिप्रवीणा मतिः = बुद्धिः येषां ते, परमार्थाभिज्ञाः—परमार्थस्य = यथार्थस्थितेः अभिज्ञाः = शतारः, पटुपटङ्गव्यक्तघोषणाः = पटुभिः = तीक्ष्णैः पटहैः = दुन्दुभिः व्यक्ता = कृता घोषणा = उच्चैः कथनम् यैस्ते, सुयोधनसञ्चारवेदिनः = सुयोधनस्य = दुर्योधनस्य सञ्चारम् = गतिम् विदन्तीति ते, प्रतिश्रुतधनपूजा-प्रत्युपक्रियाः—प्रतिश्रुता = प्रतिज्ञाता धनेन = द्रविणेन, द्रविणदानेनेत्यर्थः, पूजया = संस्कारेण च प्रत्युपक्रिया = प्रत्युपकरणम् येषां ते ॥

अन्वयः—सुनिभृतपदवीवेदिनः, दाशाः, पङ्के, वा, सैकते, वा, यान्तु; क्षुण्णवीरुन्निचयपरिचया; बल्लवाः, कुञ्जेषु, सञ्चरन्तु; स्वपचपुरविदः, नागव्याघ्राटवीषु, च, ये, रन्ध्रेषु, अभिज्ञाः, वा, सिद्धव्यञ्जनाः, (सन्ति) ते, चाराः, प्रतिमुनिनिलयम्, सञ्चरन्तु ॥ २ ॥

शब्दार्थः—सुनिभृतपदवीवेदिनः = गुप्त मार्गो को जाननेवाले, दाशाः = दास, धोवर, पङ्के = दलदल में, वा = और, सैकते = बालुकामय तटों में, यान्तु = जायें; क्षुण्णवीरुन्निचयपरिचयाः = कुचली हुई लताओं के समूह से परिचित, बल्लवाः = ग्वाल, कुञ्जेषु = झुरमुटों में, सञ्चरन्तु = विचरण करें, जायें; स्वपचपुरविदः = चाण्डालों की वस्तियों के जानकार, नागव्याघ्राटवीषु = हाथियों एवं व्याघ्रों से पूर्ण घने जङ्गलों में, च = तथा, ये = जो लोग, रन्ध्रेषु = कन्दराओंसे, अभिज्ञाः = परिचित, वा = तथा, सिद्धव्यञ्जनाः = सिद्धों के वेशधारी, (सन्ति = हैं), ते = वैसे, चाराः = गुप्तचर, प्रतिमुनिनिलयम् = प्रत्येक मुनि के निवास-स्थान में, सञ्चरन्तु = घूमें, खोजें ॥ २ ॥

पङ्के वेति । सुनिभृतपदवीवेदिनः—सुनिभृता = गुप्ता या पदवी = पद्वतिः तस्याः वेदिनः = शतारः, दाशाः = धोवराः ('कैवर्ते दाशधोवरी, श्यमरः), पङ्के = कदमे, कदमबहुले प्रदेशे इत्यर्थः, वा = तथा, सिकतानाम्—बालुकानाम् समूहः सैकतं तस्मिन्, यान्तु = व्रजन्तु । क्षुण्णवीरुन्निचयपरिचयाः—

गुप्त मार्गों को जानने वाले धीवर दलदल में और बलुकामय तटों में जाय । कुचलो हुई लताओं के समूह से परिचित ग्वाले झुरमुटों में विचरण करें (जाय) । चाण्डालों की बस्तियों के जानकार हाथियों एवं व्याघ्रों से पूर्ण घने जङ्गलों में तथा जो लोग कन्दराओं से परिचित तथा सिद्धों के वेशधारी (हैं), वे गुप्तचर प्रत्येक मुनि के निवास-स्थान में घूमें (खोजें) ॥ २ ॥

पुरुष—जैसी महाराज की आशा ।

युधिष्ठिर—ठहरो सहदेव से ऐसा कहना—

एकान्त में शङ्कापूर्वक बात-चीत करते हुये, सोये हुए, रोग से पीडित तथा मदिरा से मतवाले (व्यक्ति) छान-बीन करने के योग्य हैं । जिस स्थान पर मृगों का भय-भीत होना, पक्षियों का कोलाहल तथा राजलक्ष्णों से युक्त पैरों के चिह्न (हों, वहाँ ढूँढना चाहिये) ॥ ३ ॥

पुरुष—महाराज जैसी आशा दे रहे हैं (वैसा ही होगा) । ऐसा कहकर, निकल कर तथा फिर प्रवेश करके प्रसन्नतापूर्वक) महाराज, पाञ्चालक आया है ।

क्षुण्णः = मृदितः यः वीरुन्निचयः = लतासंघः तस्य परिचयः = ज्ञानम् येषां ते, बल्लवाः = गोपाः, कुञ्जेषु लतासंघातेषु सञ्चरन्तु = भ्रमन्तु । श्वपचपुरविदः = चाण्डालपुरवेदिनः, नागव्याघ्राटवीषु = नागव्याघ्र-प्रधानाः अटव्यः = वचानि तासु, च = तथा, ये = चाराः इत्यर्थः, रन्ध्रेषु = कन्दरासु, परछिद्रेषु वा अमिश्राः = परिचिताः, वा = तथा, सिद्धव्यञ्जनाः = सिद्धानाम् = सिद्धपुरुषाणाम् व्यञ्जनम् = चिह्नम् येषां ते, सिद्धवेशधारिण इत्यर्थः, सन्तीति शेषः, ते = ताडशाः, चाराः = चराः, चरा एव चाराः प्रशा-दिवात् स्वायंशङ्, प्रतिमुनिनिलयम् = प्रतियतिवासस्थानम्, वीक्षायामव्ययीभावसमासः, सञ्चरन्तु = भ्रमन्तु, भ्रमणं विधायान्वेषयन्तिवत्यर्थः । स्रग्धरा छन्दः ॥ २ ॥

अन्वयः—रहः, शङ्कितम्, आलपन्तः, सुप्ताः, रूगार्ताः, मदिराविषेयाः, श्लेयाः, यत्र, मृगाणाम्, त्रासः, वयसाम्, विरावः, च, नृपाङ्गपादप्रतिमाः, (तत्र, विचेयाः) ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—रहः = एकान्त में, शङ्कितम् = शङ्कापूर्वक, आलपन्तः = बातचीत करते हुये, सुप्ताः = सोये हुये, रूगार्ताः = रोग से पीडित, मदिरा-विषेयाः = मदिरा से मतवाले, श्लेयाः = छान बीन करने के योग्य हैं; यत्र = जिस स्थान पर, मृगाणाम् = मृगों का, त्रासः = भयभीत होना, वयसाम् = पक्षियों का, विरावः = कोलाहल, च = तथा, नृपाङ्गपादप्रतिमाः = राजलक्ष्णों से युक्त पैरों के चिह्न हों, तत्र = वहाँ, विचेयाः = ढूँढना चाहिये ॥ ३ ॥

ज्ञेया इति । रहः = एकान्ते, शङ्कितम् = साशङ्कम्, समयमित्यर्थः, आलपन्तः = परस्परं वार्ता कुर्वन्तः, सुप्ताः = शयानाः, रूगा आर्ताः रूगार्ताः = रोगपीडिताः, मदिराविषेयाः = मदिरामत्ताः, श्लेयाः = शत्रुं योग्याः, सन्ति; यत्र = यस्मिन् स्थाने, मृगाणाम् = वन्यपशूनाम्, त्रासः = भीतिः, वयसाम् = पक्षिणाम्, विरावः = कोलाहलम्, च = तथा, नृपाङ्गपादप्रतिमाः = नृपस्य = राज्ञः अङ्काः = चिह्नानि येषु तेषां पादानाम् = चरणानाम् प्रतिमाः = चिह्नानि येषु ते, प्रदेशाः इत्यध्याहार्याः, तत्र विचेयाः । जातिश्छन्दः ॥ ३ ॥

युधिष्ठिरः—त्वरितं प्रवेशय ।

पुरुषः—(निष्क्रम्य पाञ्चालकेन सह प्रविश्य) एष देवः । उपसर्पतु पाञ्चालकः ।

पाञ्चालकः—जयतु जयतु देवः । प्रियमावेदयामि महाराजाय देव्यै च ।

युधिष्ठिरः—मद्र पाञ्चालक, कञ्चिदासादिता तस्य दुरात्मनः कौरवाधमस्य पदवी ।

पाञ्चालकः—देव, न केवलं पदवी । स एव दुरात्मा देवीकेशाम्बराकर्षणमहापातकप्रधानहेतुरुपलब्धः ।

युधिष्ठिरः—लाभु । मद्र, प्रियमावेदितम् । अथ दर्शनगोचरं गतः ।

पाञ्चालकः—देव, समरगोचरं पृच्छ ।

द्रौपदी—(सभयम्) कथं समरगोचरो वर्तते मे नाथः ।

[कहं समरगोचरो बट्ट मे नाहो]

युधिष्ठिरः—(साशङ्कम्) सत्यं समरगोचरो मे वत्सः ।

पाञ्चालकः—सत्यम् । किमन्यथा वक्ष्यते महाराजाय ।

युधिष्ठिरः—

व्रस्तं विनापि विषयादुरुविक्रमस्य

चेतो विवेकपरिमन्थरतां प्रयाति ।

जानामि चोद्यतगदस्य वृकोदरस्य

सारं रणेषु भुजयोः परिशङ्कितश्च ॥ ४ ॥

(द्रौपदीमवलोक्य) अयि सुव्रत्रिये,

गुरुणां बन्धूनां क्षितिपतिसहस्रस्य च पुरः

पुराभूदस्माकं नृपसदसि योऽयं परिभवः ।

प्रिये प्रायस्तस्य द्वितीयमपि पारं गमयस्मि

क्षयः प्राणानां नः कुरुपतिपशोर्वाद्य निधनम् ॥ ५ ॥

पाञ्चालकेति—पदवी=पदपद्धतिः । देवीकेशाम्बराकर्षणमहापातकप्रधानहेतुः—देव्याः=महाराज्ञ्याः केशाम्बराणाम्=कचवस्त्राणाम् आकर्षणम्=हरणम् एव महापातकम्=महापापम् तस्य प्रधानहेतुः=मूलकारणम् ॥

युधिष्ठिर इति । दर्शनगोचरम्=दर्शनयोः=लोचनयोः गोचरम्=विषयम्, गतः=प्राप्तः ॥
अन्वयः—विषयात्, विना, अपि, व्रस्तम्, मे, चेतः, विवेकपरिमन्थरताम्, प्रयाति; उरुविक्रमस्य, उद्यतगदस्य, च, वृकोदरस्य, रणेषु, सारम्; जानामि, (तयापि), परिशङ्कितः, च, (अस्मि) ॥४॥

शब्दार्थः—विषयात्=कारण के, विना=विना, अपि=भी, व्रस्तम्=मयभीत, म=मेरा, चेतः=चित्त, विवेकपरिमन्थरताम्=विचार करने में शिथिलता को, प्रयाति=प्राप्त कर रहा है ।
उरुविक्रमस्य=महान् पराक्रमी, उद्यतगदस्य=गदा उठाये हुये, वृकोदरस्य=भीम के, रणेषु=

युधिष्ठिर—अतिशीघ्र लिवा आओ ।

पुरुष—(निकल कर पाञ्चालक के साथ प्रवेश करके) यह महाराज (हैं) । पाञ्चालक पास जायें ।

पाञ्चालक—महाराज, विजयी वनें, विजयी वनें महाराज के लिए तथा महारानी के लिए प्रिय निवेदन कर रहा हूँ ।

युधिष्ठिर—मले पाञ्चालक, क्या उस दुरात्मा कौरवाधम को पद-पंक्ति से युक्त मार्ग मिल गया ।

पाञ्चालक—महाराज, न केवल पद पंक्ति से युक्त मार्ग (मिला, अपितु) महारानी के केश और बर्कों के हरणरूपी महान् पातक का मूल कारण वह दुष्ट व्यक्ति ही मिल गया ।

युधिष्ठिर—वाह ! मले व्यक्ति, प्रिय सूचना दी गई । अच्छा, दिखाइए पद गया ?

पाञ्चालक—महाराज, युद्ध का विषय (हुआ कि नहीं)—यह पूछिये । (अर्थात् उसके साथ भीम का युद्ध हुआ कि नहीं—यह पूछिये) ।

द्रौपदी—(भयपूर्वक) क्या मेरे स्वामी (भीम) युद्ध में लगे हुए हैं ?

युधिष्ठिर—सच, मेरा वत्स युद्ध में लगा हुआ है ?

पाञ्चालक—सचमुच । क्या महाराज से अन्यथा (अर्थात् झूठ) कहा जायगा ?

युधिष्ठिर—कारण के बिना भी भयभीत मेरा चित्त विचार करने में शिथिलता को प्राप्त कर रहा है (अर्थात् शिथिल हो रहा है) । महान् पराक्रमी, गदा उठाये हुये भीम के, युद्ध में बल को जानता हूँ, (तो भी जीत-हार के विषय में) आशङ्कित (हूँ) ॥ ४ ॥

(द्रौपदी को देखकर) अरी शत्रियकुलाङ्गने,

हे प्रिये, बड़े-बड़ों के तथा भाई-पट्टोदारों एवं हजारों राजाओं के समक्ष राजसभा में हम लोगों का जो यह अपमान पहले हुआ था, उसके पार प्रायः दोनों ही पहुँचा देंगे—(१) आज हम लोगों के प्राणों का विनाश अथवा (२) पशुतुल्य, कुरुराज का मरण ॥ ५ ॥

युद्ध में सारम्भ=बल को, जानामि=जानता हूँ, (तथापि=तो भी), परिशङ्कितः=आशङ्कित, (अस्मि=हूँ), ॥ ४ ॥

अस्मत्प्रति। विषयात्=कारणादित्यर्थः, विना, अपि=च, व्रतम्=भीतम् मे=मम, ज्येष्ठभ्रातु-युधिष्ठिरस्येत्यर्थः, चेतः=चित्तम्, विवेकपरिमन्यरताम्—विवेके=कर्तव्यनिर्णये परिमन्यरताम्=शिथिलताम्, प्रयाति=गच्छति; उरुविक्रमस्य=उरुः=महान्, विक्रमः=पराक्रमः यस्य तस्य, उद्यतगदस्य=उद्यता=उत्तोलिता गदा येन तस्य, वृकोदरस्य=भीमस्य, रणेषु=युद्धेषु, सारम्भ=उद्यतगदस्य—उद्यता=उत्तोलिता गदा येन तस्य, वृकोदरस्य=भीमस्य, रणेषु=युद्धेषु, सारम्भ=बलम्, जानामि=वेदि, तथापीति शेषः, परिशङ्कितः=आशङ्कितः, च=अपि, अस्मति क्रियाशेषः । सानुषा मम भ्राता जेतुं न शक्यः इति विजानामि तथापि स्नेहान्मम चित्तं मान्यं प्रयातीति भावः । अत्र विशेषोक्तिरलङ्कारः । वसन्ततिलका छन्दः ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे प्रिये, गुरुणाम्, बन्धूनाम्, अतिपतिसहस्रस्य, च, पुरः, नृपसदसि, अस्माकम्, यः, अयम्, परिभवः, पुरा, अमूत्, तस्य, पारम्, द्वितयम्, अपि, प्रायः, गमयति, बल, नः, प्राणानाम्, क्षयः, वा, कुरुपतिपशोः, निधनम् ॥ ५ ॥

अथवा कृतं संदेहेन ।

नूनं तेनाद्य वीरेण प्रतिज्ञाभङ्गभीरुणा ।

वध्यते केशपाशस्ते स चास्याकर्षणक्षमः ॥ ६ ॥

पाञ्चालक, कथय कथय कथमुपलब्धः स दुरात्मा कस्मिन्नुद्देशे किं वाङ्मना प्रवृत्तमिति ।

द्रौपदी—मद्र, कथय कथय । [मद्र, कहहि कहहि]

पाञ्चालकः—शृणोतु देवो देवी च । अस्तीह देवेन हते मद्राधिपतौ शल्ये गान्धारराजकुलशलभे सहदेवशस्त्रानलं प्रविष्टे सेनापतिनिधननिराक्रन्दविरलयोधोज्ज्वलासु समरभूमिषु रिपुव्रलपराजयोद्धतवर्लितविचित्रपराक्रमासादितत्रिमुखारातिचक्रासु धृष्टद्युम्नाधिष्ठितासु च युष्मत्सेनासु प्रनष्टेषु कृपकृतवर्माश्वत्थामसु तथा दारुणामपयुषितां प्रतिज्ञामुपलभ्य कुमारवृकोदरस्य न ज्ञायते क्वापि प्रत्नीनः स दुरात्मा कौरवाधमः ।

शब्दार्थः—हे प्रिये=हे प्रेयसि, क्षितिपतिसहस्रस्य=हजारों राजाओं के, गुरूणाम्=बड़े-बड़े के, बन्धूनाम्=भाई-पट्टीदारों के, पुरः=समक्ष, नृपसदसि=राजसभा में, अस्माकम्=हम लोगों का, यः=जो, अयम्=यह, परिभवः=अपमान, पुरा=पहले, अभूत्=हुआ था, तस्य=उसके, पारम्=पार, द्वितयम्=दोनों, अपि=ही, प्रायः, गमयति=पहुँचा देंगे; अद्य=आज, नः=हम लोगों के, प्राणानाम्=प्राणों का, क्षयः=विनाश, वा=अथवा, कुरुपतिपशोः=पशुतुल्य कुरुराज का, निधनम्=मरण ॥ ५ ॥

गुरूणामिति—हे प्रिये=हे प्रेयसि, गुरूणाम्=श्रेष्ठजनानाम्, बन्धूनाम्=दायादानाम्, स्वजनानामित्यर्थः, क्षितिपतिसहस्रस्य=राजसमवायस्येत्यर्थः, च=अपि, पुरः=समक्षम्, नृपसदसि=राजसभायाम्, अस्माकम्=पाण्डवानामित्यर्थः, यः=यादृशः, अयम्=एषः, परिभवः=तिरस्कारः, पुरा=पूर्वम्, अभूत्=जातम्, तस्य=तस्य परिभवस्येत्यर्थः, पारम्=परतटम्, द्वितयम्=द्वयम्, अपि=च, प्रायः, गमयति=प्रापयति, किं किमिति जिज्ञासायामुच्यते—अद्य=अधुना, नः=अस्माकम्, प्राणानाम्=जीवनानाम्, क्षयः=विनाशः, वा=अथवा, कुरुपतिपशोः—कुरुपतिः=कुरुराजो दुर्योधनः एव पशुः तस्य, निधनम्=मरणम् । पराजिते मृते च दुर्योधने अस्माकं दुःखहानिर्भवेद्दुःखवमयवा मृते च मोमेऽस्माकमपि मरणं सुनिश्चितमित्यर्थः दुःखहानिरुभयया सिद्धेति भावः । शिखरिणी छन्दः ॥ ५ ॥

अन्वयः—प्रतिज्ञाभङ्गभीरुणा, तेन, वीरेण, अद्य, ते, केशपाशः, च, अस्य, आकर्षणक्षमः, सः नूनम्, वध्यते ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—प्रतिज्ञाभङ्गभीरुणा=प्रतिज्ञा के भङ्ग से डरने वाले, तेन=उन, वीरेण=वीर के द्वारा, अद्य=आज, ते=तुम्हारा, केशपाशः=उत्तम केश-समूह, च=तथा, अस्य=इसको, आकर्षणक्षमः=खींचने वाला, सः=वह, नूनम्=निश्चय ही, वध्यते=संहारा जायगा ॥ ६ ॥

अथवा सन्देह करना व्यर्थ है । प्रतिज्ञा के मङ्ग से डरने वाले उन वीर (भीम) के द्वारा आज तुम्हारा केशपाश तथा इस (केशपाश) को खींचने वाला वह (दुर्योधन) निश्चय ही संहारा जायगा (अर्थात् तुम्हारा केश बाँधा जायगा) ॥ ६ ॥

पाञ्चालक, बतलाओ, बतलाओ, कैसे मिला वह दुरात्मा और किस स्थान पर तथा इस समय क्या हो रहा है ?

द्वैपदी—भलेमानस, बतलाओ, बतलाओ ।

पाञ्चालक—महाराज एवं महारानी सुनें । महाराज के द्वारा मद्रदेश के अधिपति शल्य के मार दिये जाने पर, गान्धार देश के राज-कुलरूपी फतिहों के सहदेव के शस्त्ररूपी आग में प्रविष्ट हो जाने पर, सेनापति के मर जाने पर अत्यन्त क्रन्दन करते हुये यत्र-तत्र स्थित (विरल) योद्धाओं के द्वारा युद्ध-भूमि के छोड़ दी जाने पर, धृष्टद्युम्न के द्वारा सञ्चालित आपकी सेना के शत्रु-सैन्य के पराजय के कारण उद्धत चालविशेष वाली तथा विचित्र पराक्रम से, मागती हुई शत्रु-सेना को भर-दबोचने पर (On overpowering), कृपाचार्य कृतवर्मा एवं अश्वत्थामा के कहीं चले जाने पर, कुमार भीमसेन की अत्यन्त कठोर तथा वासी न होने वाली (अर्थात् उसी दिन पूरी होने वाली) प्रतिज्ञा को जानकर वह दुष्टात्मा नीच कौरव न जाने कहीं छिप गया ।

विशेष—शल्य—कर्ण के मारे जाने पर शल्य कौरव-सेना का सेनापति बना या । इसका वध युधिष्ठिर के हाथों हुआ या ।

गान्धारकुलराजशल्यमे—गान्धार प्रदेश का अधिपति शकुनि या । शल्य के बाद यह भी कौरव-सेना का सेनापति बनाया गया या । इसका वध सहदेव ने किया या ।

कृप-कृतवर्मा-अश्वत्थामासु—कृपाचार्य तथा अश्वत्थामा मर रहे हैं । वे महाभारत में मारे नहीं गये थे । कृतवर्मा का वध बाद में अर्जुन के शिष्य 'सात्यकि' ने किया या ।

नूनमिति । प्रतिशामङ्गभीरुणा—प्रतिशयाः = प्रणस्य, मङ्गः = अपूर्तिः तस्मात् भीरुणा = भीतेन, तेन, वीरेण = शूरेण, वीरेण भीमेनेत्यर्थः, अद्य = अधुना, ते = तव, केशपाशः = प्रशस्तः केशसमूहः, च = तथा, अस्य = एतस्य केशपाशस्य, आकर्षणक्षमः—आकर्षणे = हरणे, क्षमः = शक्तः, सः = स दुर्योधनः इत्यर्थः, नूनम् = निश्चितम्, वध्यते = संहियते, केशपाशः संयम्यते दुर्योधनश्च वध्यते इति भावः । तुल्ययोगिताऽलङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ६ ॥

पाञ्चालक इति । गान्धारराजकुलशलमे—गान्धारराजस्य = शकुनेरित्यर्थः कुलम् = वंशः, एव शलमः = कीटविशेषः तस्मिन्, सहदेवशस्त्रानलम्—सहदेवस्य शस्त्रम् = प्रहरणम्, एव अनलः = अग्निः तस्मिन्, सेनापतीत्यादिः—सेनापतेः = सेनानायकस्य शल्यस्य शकुनेश्चेत्यर्थः निधनेन = मरणेन नितराम् आक्रन्दः = विलापः येषां ते तादृशाः, विरलाः = यत्र तत्रावस्थिताः, स्वल्पा इत्यर्थः, ये योधाः—भटाः तैः उज्जितासु = परित्यक्तासु, रिपुबलेत्यादिः—रिपुबलस्य = शत्रुसैन्यस्य पराजयेन, उद्धतम् = उद्दण्डम्, बलितम् = क्रन्दनेन गमनम् यासां ताः तादृश्यश्चताः, विचित्रपराक्रमेण = अद्भुत-शौर्येण, आसादितम् = वशीकृतम्, विमुखम् = युद्धं त्यक्त्वा पलायनपरायणम् अरातिचक्रम् = शत्रु-सैन्यम् याभिस्ताः तासु, धृष्टद्युम्नाधिष्ठातासु—धृष्टद्युम्नेन अधिष्ठातासु = सञ्चालितासु, प्रनष्टेषु = अदृश्यता-ज्ञतेषुः, अपर्युषिताम् = तद्दिने एव पूरयितुं योग्याम् ॥

युधिष्ठिरः—ततस्ततः ।

द्रौपदी—अयि, परतः कथय । [अयि, परतो कहेहि]

पाञ्चालकः—अवधत्तां देवो देवी च । ततश्च भगवता वासुदेवेनाधिष्ठितमेकरथमा-
रूढौ कुमारभीमार्जुनौ समन्तात्समन्तपञ्चकं पर्यटितुमारब्धौ तमनासादितवन्तौ च ।
अनन्तरं दैवमनुशोचति मादृशे भृत्यवर्गे दीर्घमुष्णं च निश्चसति कुमारे बीभत्सौ
जलधरसमयनिशासंचारितद्विप्रकरपिङ्गलैः कटाक्षैरादीपयति गदां वृकोदरे यत्किञ्चन-
कारितामधिक्षिपति विधेर्भगवति नारायणे कश्चित्संविदितः कुमारस्य मासूतेरुज्जितमां-
सभारः प्रत्यग्रविशसितमृगलोहितचरणनिवसनस्वरमाणोऽन्तिकमुपेत्य पुरुषः पश्य-
श्वासग्रस्तार्धश्रुतवर्णानुमेयपदया वाचा कथितवान्—देव कुमार, अस्मिन्महतोऽस्य
सरसस्तीरे द्वे पदपङ्क्तौ समवतीर्णप्रतिबिम्बे । तयोरेका स्थलमुत्तीर्णा न द्वितीया ।
परत्र कुमारः प्रमाणम् इति । ततः ससंभ्रमं प्रस्थिताः सर्वे वयं तमेव पुरस्कृत्य ।
गत्वा च सरस्तीरं परिज्ञायमानसुयोधनपदलाञ्छनां पदवीमासाद्य भगवता वासुदेवे-
नोक्तम्—सो वीर वृकोदर, जानाति किल सुयोधनः सलिलस्तस्मिन् विद्याम् । तन्नूनं
तेन त्वद्भ्यात्सरसीमेनामधिशयितेन भवितव्यम् । एतच्च वचनमुपश्रुत्य रामानुजस्य
सकलदिङ्निकुञ्जपूरितातिरिक्तमुद्भ्रान्तसलिलचरशकुन्तकुलं त्रासोद्धतनक्रग्रहमालोच्य
सरःसलिलं मैरवं च गर्जित्वा कुमारवृकोदरेणामिहितम्—अरे रे वृथाप्रख्यापितालीक-
पौरुषाभिमानिन्, पाञ्चालराजतनयाकेशम्बराकर्षणमहापातकिन्, धार्तराष्ट्रपसद,
जन्मेन्दोरमले कुले व्यपदिशस्यद्यापि धत्से गदां
मां दुःशासनकोष्णशोणितमधुक्षोबं रिपुं मन्यसे ।
दर्पान्धो मधुकैटभद्विषि हरावप्युद्धतं चेष्टसे
मत्त्रासान्नुपशो विहाय समरं पङ्क्तेऽधुना लीयसे ॥ ७ ॥

पाञ्चालक इति । बीभत्सौ = अर्जुने, जलधरेत्यादिः—जलधरसमयः = वर्षर्तुः तस्य या निशा =
रात्रिः तस्यां सञ्चारिताः = प्रकटाः याः तडितः = विधुदः तासां प्रकरः = समूह इव पिङ्गलैः = ईषद-
क्षपीतैः, कटाक्षैः = दृष्टिपातैः, यत्किञ्चनकारिताम्—यत्किञ्चन कर्तुं शीलं तस्य मावो यत्किञ्चनकारिता
तां स्वेच्छाचारितामित्यर्थः; उज्जितमांससंभारः—उज्जितः = दूरे स्थापितः मांसस्य = पिशितस्य
सम्भारः = समूहः येन तादृशः, प्रत्यग्रेत्यादिः—प्रत्यग्रविशसितैः = सद्यः मारितैः मृगैः = हरिणैः
लोहितानि = रक्तवर्णीकृतानि चरणनिवसनानि = चरणवस्त्राणि यस्य तादृशः, परुषेत्यादिः—पुरुषः =
कठिनः यः श्वासः = प्राणवायुः तेन ग्रस्ताः = अभिभूताः अतः अर्धश्रुताः = अस्पष्टश्रुताः ये वर्णाः =
अक्षराणि तैः अनुमेयानि = शातव्यानि पदानि = शब्दाः इति भावः यस्याः सा तथा, वाचा = वाण्या ।
समवतीर्णप्रतिबिम्बे—समवतीर्णः = उद्दिष्टः प्रतिबिम्बः = आकृतिः ययोरेते तथा । परिज्ञायमानेत्यादिः—
परिज्ञायमानानि = पूर्वतः परिचितानि यानि सुयोधनपदयोः लाञ्छितानि = पञ्चचक्रादिचिह्नानि, यस्यां

युधिष्ठिर—उसके बाद, उसके बाद ?

द्रौपदी—अजी, आगे कहो ।

पाञ्चालक—महाराज तथा महारानी ध्यान दें । तदनन्तर भगवान् वासुदेव (कृष्ण) के द्वारा सन्नालित एक रथ पर बैठे हुये कुमार भीम और अर्जुन समन्तपञ्चक (नामक विशाल तालाब) के चारों ओर घूमना आरम्भ किये, परन्तु उसे पान न सके । इसके बाद मेरे जैसे सेवक समूह के भाग्य के ऊपर अफसोस करने पर, कुमार अर्जुन के लम्बी तथा गरम उसोंसें लेने पर, भीम के वर्षाकालीन रात्रि में चमकने वाली बिजली के प्रवाह की तरह किञ्चित् रक्त कटाक्षों से (अपनी) गदा के प्रकाशित करने पर, भगवान् श्रीकृष्ण के भाग्य की स्वेच्छाचारिता को दोष देने पर; मांस की ढेर को एक ओर रख देने वाला, तत्काल मारे गये हरिण (के रक्त) से लाल पैर तथा वस्त्र वाला, जल्दी-जल्दी आता हुआ, पास में आकर कुमार भीमसेन का परिचित कोई पुरुष लम्बी-लम्बी श्वास से ग्रसित (अतः) आधे ही सुने गये वर्षों के द्वारा अन्दाज की गई वाक्यवाली वाणी में बोला—‘महाराज-कुमार, महान् इस जलाशय के इस तट पर दो पद-पदतियों (The two rows of footprints) पड़ी हुई हैं । उनमें एक (पुनः) स्थल की ओर लौट आई है (किन्तु) दूसरी नहीं । इसके बाद कुमार प्रमाण हैं (अर्थात् जैसा चाहें वैसा करें) ।’ तदनन्तर उसी (व्यक्ति) को आगे करके हम सभी चल पड़े । जलाशय के तट पर जाकर दुर्योधन के पैर के परिचित चिह्नों से युक्त पदपंक्ति को पाकर भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—‘हे वीर भीम, दुर्योधन जल को स्तम्भित करने वाला विद्या को जानता है । तो निश्चय ही वह तुम्हारे भय से इस जलाशय में सोया हुआ होगा ।’ बलराम के भाई (श्रीकृष्ण) के इस वचन को सुन कर (मथने के कारण) सब दिशाओं के गह्वरों को मर देने के बाद भी वचे हुए, घबड़ा गये हैं जलजारी पशु-गण जिस में ऐसे, ढर के मारे उड़ल रहे हैं मकर और ग्राह जिसमें ऐसे, जलाशय के जल को मथ कर तथा भीषण गर्जन करके कुमार भीमसेन ने कहा—‘अरे रे व्यर्थ प्रकट किये गये झूठे (अपने) गौरव पर अभिमान करने वाले, पाञ्चालराज कुमारी (द्रौपदी) के केश एवं वस्त्र को खींचने के कारण महान् पापी, धृतराष्ट्र के पुत्रों में नोच ।

निर्मल, चन्द्र के कुल में (अपना) जन्म बतलाते हो; आज भी गदा धारण करते हो; दुःशासन के किञ्चित् गरम खूनरूपी मदिरा से मतवाले मुझको शत्रु कहते हो; मधु एवं कैटभ (नामक राक्षसों) के शत्रु कृष्ण के विषय में भी घमण्ड से ग्रन्था (होकर) उद्विग्नतापूर्वक व्यवहार करते हो; (तो भी) हे मानव-पशु, अब मेरे भय से कीचड़ में छिप रहे हो ? ॥ ७ ॥

ताम् । रामानुजस्य = बलरामस्य लघुभ्रातुः श्रीकृष्णस्येत्यर्थः । सकलदिङ्निकुञ्जेत्यादिः—सकलदिशु ये निकुञ्जाः = गह्वराणि तेषु पूरितम् = भरितम् ततः अतिरिक्तञ्च = अधिकञ्च, सरःसलिलविशेषणमेतत्, क्रियाविशेषणे तु यथा तथेत्यपि योजनीयम्, उद्भ्रान्तेत्यादिः—उद्भ्रान्तम् = मयादितस्ततः पलायनपरम् सलिलचराणाम् = जलचराणाम् शकुन्तानाम् = गक्षिणाम् कुलम् = समूहः यत्र तत्, यस्मिन् कर्मणि तत्तथा वा, त्रासोद्वतनक्रयाहम्—त्रासेन = भयेन उद्वताः = उद्भ्रान्ताः नृक्रयाहाः यस्मिन् तत्, यस्मिन् कर्मणि तत्तथा वेति ॥

अन्वयः—अमले, इन्दोः, कुले, जन्म, व्यपदिशसि; अथ, अपि, गदाम्, धारसे; दुःशासनकोष्प-

अपि च मो । मानान्ध,

पाञ्चाल्या मन्युवह्निः स्फुटमुपशमितप्राय एव प्रसह्य
व्यासकैः केशपादौर्हतपतिषु मया कौरवान्तःपुरेषु ।

भ्रातुर्दुःशासनस्य स्रवदसृगुरसः पीयमानं निरीक्ष्य
क्रोधात्किं भीमसेने विहितमसमये यत्त्वयास्तोऽभिमानः ॥ ८ ॥

द्रौपदी—नाथ, अपनीतो मे मन्युर्यदि पुनरपि सुलभं दर्शनं भविष्यति ।

[गाह, श्रवणीदो मे मण्ण जइ पुणो वि सुलहं दंसणं भविरसदि ।]

युधिष्ठिरः—कृष्णे, नामङ्गलानि व्याहर्तुमर्हस्यस्मिन्काले । अद्र, ततस्ततः ।

पाञ्चालकः—देव, ततश्चैवं भाषमाणेन वृकोदरेणावतीर्य क्रोधोद्धतभ्रमितिभीषण
गदापाणिना सहसैवोत्कृष्टतत्परमुत्सन्नलिनीवनमपविद्धमूर्च्छितग्राहमुद्भ्रान्तमस्त
शकुन्तमतिभैरवारवभ्रमितवारिसंचयमायतमपि तत्सरः समन्तादालोडितम् ।

शोणितसुराक्षीवम्, माम्, रिपुम्, भाषसे; मधुकैटभद्रिपि, हरौ, अपि, दर्पान्धः (भूत्वा), उद्धतम्
चेष्टसे, (तथापि), हे नृपशो, अधुना, मत्वासात्, पङ्के, लीयसे ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—अमले=निर्मल, इन्दोः=चन्द्र के, कुले=कुल में, जन्म=जन्म, व्यपदिशसि=
बतलाते हो; अथ=आज, अपि=भी, गदाम्=गदा को, धत्से=धारण करते हो; दुःशासनकोष्ण
शोणितसुराक्षीवम्=दुःशासन के किञ्चिद् गरम खून रूपी मदिरा से मतवाले, माम्=मुझको, रिपु
=शत्रु, भाषसे=कहते हो, मधुकैटभद्रिपि=मधु एवं कैटभ के शत्रु, हरौ=कृष्ण के विषय
अपि=भी, दर्पान्धः=धमण्ड से अन्धा, (भूत्वा=होकर), उद्धतम्=उद्विग्नतापूर्वक, चेष्टसे=
व्यवहार करते हो; (तथापि=तो भी), हे नृपशो=हे मानवपशु, अधुना=अब, मत्वासात्=
मय से, पङ्के=कीचड़ में, लीयसे=छिप रहे हो ॥ ७ ॥

जन्मेन्दोः शिति—अमले=निर्मले, इन्दोः=चन्द्रस्य, कुले=वंशे, जन्म=उत्पत्तिम्, व्यपि
शसि=कथयसि; अथ=सम्प्रति, अपि=च; गदाम्, धत्से=धारयसि; दुःशासनकोष्णशोणितसुरा
क्षीवम्=दुःशासनस्य=तवानुजस्येत्यर्थः कोष्णम्=किञ्चिदुष्णम् यत् शोणितम्=रक्तम् तदेव सुरा
मदिरा तथा क्षीवम्=मत्तम्, माम्=वृकोदरम्, रिपुम्=शत्रुम्, भाषसे=कथयसि, मधुकैटभद्रिपि
मधुकैटभयोः=एतन्नामकयोः राक्षसयोः द्विद्=शत्रुः तस्मिन्, हरौ=श्रीकृष्णे, अपि=च, दर्पान्धः=
गर्वविह्वलः इत्यर्थः, भूत्वेति शेषः, उद्धतम्=उद्विग्नम्, चेष्टसे=व्यवहरसि; (तथापि), हे नृपशो=
हे मानवपशो, अधुना=सम्प्रति, मत्वासात्=मद्भयात्, पङ्के=कदमे; लीयसे=प्रच्छन्नो भवसि
पुराचरितमधुना चाक्षीकृतं तव कर्म न संवदतीति भावः । क्रुद्धो भूत्वा युद्धाय निःसरतु स इति भीमार्जुन
प्रायः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः । तल्लक्षणम्—‘सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्’ ।

अन्वयः—मया, प्रसह्य, कौरवान्तःपुरेषु, हतपतिषु, (विहितेषु), (अतः), व्यासकैः, केशपादौ
पाञ्चाल्याः, क्रोधवह्निः, उपशमितप्रायः, एव; भ्रातुः, दुःशासनस्य, उरसः, स्रवत्. असृक्, (मया)
पीयमानम्, निरीक्ष्य, क्रोधात्, त्वया, भीमसेने, किम्, विहितम्, यत्, असमये, अभिमान
अस्तः ॥ ८ ॥

और भी । हे अभिमान से अन्धे,

मेरे द्वारा जवर्दस्ती कौरवों के अन्तःपुर के, मार डाले गये हैं पति जिनके ऐसा, बना दिये जाने पर (और इसीलिए) बिखरे गये केशों के द्वारा द्रौपदी की कोपरूपी आग प्रायः बुझ चुकी है ही; भाई दुःशासन के वक्षःस्थल से बहते हुए रक्त को (मेरे द्वारा) पिया जाता हुआ देखकर क्रोधवश तुम्हारे द्वारा भीमसेन के विषय में क्या किया गया ? जो कि असमय में ही अभिमान समाप्त हो गया ॥ ८ ॥

विशेष—व्यासक्तः केशपाशैः—भारत के अतीत की प्रथा के अनुसार यहाँ की नारियाँ पति के मर जाने पर शृङ्गार नहीं करती थीं । उनके बाल बिखरे रहते थे । भीम के कहने का भाव यह है कि—मैंने तुम्हारे सभी माथों को मार डाला है । उनकी विधवाओं के बिखरे बालों को देखकर द्रौपदी को शान्तबना मिली है । उसका कोप प्रायः समाप्त हो चुका है ॥ ८ ॥

द्रौपदी—नाथ, दूर हो गया मेरा क्रोध यदि फिर से (आपका) दर्शन सुख हो जाय ।

युधिष्ठिर—द्रौपदी, इस इस समय अमङ्गल (वचन) कहना ठीक नहीं है । भले (व्यक्ति), उसके बाद, उसके बाद ?

पाञ्चालक—महाराज, तदनन्तर ऐसा कहते हुए भीमसेन ने, जो कि हाथ में क्रोधवश जोर से घुमाई गई भयंकर गदा लिये थे, उतर कर उस विशाल तालाब को चारों ओर से (ऐसा) मग डाला कि एकाएक (पानी) उसके तीर को लाँघ गया, कमललताओं का वन उजड़ गया, (गदा की टकराहट से) मूर्च्छित ग्राह बाहर फेंक दिये गये; मछली और पक्षी घबड़ा गये तथा जल-समूह अत्यन्त भीषण शब्द के साथ चक्कर खाने लगा ।

शब्दार्थः—मया=मेरे द्वारा, प्रसङ्ग=जवर्दस्ती, कौरवान्तःपुरेषु=कौरवों के अन्तःपुर के, हतपतिषु=मार डाले गये हैं पति जिनके ऐसा, (विहितेषु=बना दिये जाने पर), (अतः=इसी लिए), व्यासक्तैः=बिखरे गये, केशपाशैः=केशों के द्वारा, पाञ्चाल्याः=द्रौपद्याः, क्रोधवह्निः=क्रोधरूपी आग, उपशमितप्रायः=प्रायः बुझ चुकी है, एव=ही; भ्रातुः=भाई, दुःशासनस्य=दुःशासन के, उरसः=वक्षःस्थल से, स्रवतः=बहते हुये; अस्क्=रक्त को, (मया=मेरे द्वारा), पीयमानम्=पिया जाता हुआ, निरीक्ष्य=देख कर, क्रोधात्=क्रोध से, त्वया=तुम्हारे द्वारा; भीमसेने=भीमसेन के विषय में, किम्=क्या, विहितम्=किया गया, यत्=जो कि, असमये=असमय में ही, अभिमानः=अभिमान, अस्तः=समाप्त हो गया ॥ ८ ॥

पाञ्चाल्येति । मया=भीमेन, प्रसङ्ग=हठात्, कौरवान्तःपुरेषु=कौरवाणाम्, अन्तःपुरेषु=अवरोधस्त्रीष्वित्यर्थः, हतपतिषु=हताः=घातिताः पतयः=पुरुषाः येषां तादृशेषु, विहितेष्विति शेषः, अतः व्यासक्तैः=उन्मुक्तैः, केशपाशैः=शिरोरुहैः, पाञ्चाल्याः=द्रौपद्याः, क्रोधवह्निः—क्रोधः=कोपः एव वह्निः=अग्निः, उपशमितप्रायः=शान्ततुल्यः ('प्रायो बाहुल्यतुल्ययोः' इति विश्वः), एवेति निश्चये, प्रायः पदप्रयोगात्तत्र वध एवौकमवशिष्टमिति निदिष्टम्, भ्रातुः=अनुजस्य, दुःशासनस्य, उरसः=वक्षसः, स्रवतः=प्रवहमानम्, अस्क्=रक्तम्, पीयमानम्=आचम्यमानम्, मयेति शेषः, निरीक्ष्य अवलोक्य, क्रोधात्=क्रोधात्, त्वया=दुःशासनभ्रात्रा दुर्योधनेनेत्यर्थः, भीमसेने=अप-

युधिष्ठिरः—मद्र, तथापि किं नोत्थितः ।

पाञ्चालकः—देव, कथं नोत्थितः ।

त्यक्त्वोत्थितः समरभसं सरसः स मूल-

मुद्भूतकोपदहनोप्रविषस्फुलिङ्गः ।

आयस्तभीमभुजमन्दरवेल्लनाभिः

क्षीरोदधेः सुमथितादिव कालकूटः ॥ ९ ॥

युधिष्ठिरः—साधु, सुक्षत्रिय, साधु ।

द्रौपदी—प्रतिपन्नः समरो न वा । [पटिवण्णो समरो ण वा ।]

पाञ्चालकः—उत्थाय च तस्मात्सलिलाशयात्करयुगलोत्तम्भिततोरणीकृतभीमगा
कथयति स्म—‘अरे रे मारुते किं मथेन प्रलीनं दुर्योधनं मन्यते भवान् । मूढ, अनिह
पाण्डुपुत्रः प्रकाशं लज्जमानो विश्रमितुमध्यवसितवानस्मि पातालम् ।’ एवं चो
वासुदेवकिरीटिभ्यां द्वावप्यन्तःसलिले निषिद्धसमरसमारम्भौ स्थलमुत्तारितौ भीम
सुयोधनौ । आसीनश्च कौरवराजः क्षितितले गदां निक्षिप्य विशीर्णरथसहस्रं निहतकु
शतगजवाजिनरसहस्रकलेवरसंमर्दसंपतद्गृध्रकङ्कजम्बूकमुत्सन्नसुयोधमस्मद्वीरविमुक्त-
सिंहनादमपमित्रवान्धवमकौरव रणस्थानमवलोक्यायतमुष्ण च निःश्वसितवान् । तत
वृकोदरेणामिहितम्—अयि भोः कौरवराज, कृतं बन्धुनाशदर्शनमन्युना । मैवं विषा
कृथाः पर्याप्ताः पाण्डवाः समरायाहमसहाय इति ।

कारिणि मयि वृकोदरे इत्यर्थः, किं विहितम्=किं कृतम् ? यत्=यस्मात्, असमये=अनव
अभिमानः=तव गर्वः, अस्तः=समाप्तः । अपकारिणि मयि शत्रौ जीवति तथा तत्र किञ्चिदकृ
यत्तवामिमानो निरस्तस्तदनुचितमिति भावः । अत्र लुप्तोपमाऽलङ्कारः । स्रग्धरा छन्दः ॥ ८ ॥

पाञ्चालक इति । क्रोधोद्धतभ्रमितभीषणगदापाणिना—क्रोधेन=कोपेन, उद्धता=उत्तेजि
भ्रमिता=इतस्ततः सञ्चालिता भीषणा=भयङ्करी गदा पाणौ=हस्ते यस्य तेन, वृकोदरेण
आलोडितमित्यन्वयः । उल्लङ्घिततोरमित्यादि आलोडनक्रियायामन्वति । उल्लङ्घिततीरम्—उल्लङ्घितम्
अतिक्रान्तम् तीरम्=तटम् यस्मिन् तत्, उत्सन्ननलिनीवनम्—उत्सन्नम्=उच्छिन्नम् नलिनीवनम्
कमलनीवनम् यस्मिन् तत्, अपविद्धमूर्च्छितग्राहम्—अपविद्धाः=बहिः प्रक्षिप्ताः मूर्च्छिताः=प
घातेन विगतचेतनाः ग्राहाः यस्मिन् तत्, उदभ्रान्ताः=पर्याकुलाः मत्स्यशकुन्ताः=मीनपति
यस्मिन् तत्, अतिभैरवारवभ्रमितवारिसञ्चयम्—अतिभैरवेण=अतिभीषणेन आरवेण—शब्देन अ
वारिसञ्चयः=जलसमवायः यस्मिन् तथा तथा । इमानि पदानि शरसोऽपि विशेषणानि भवितुमर्हन्ति

अन्वयः—सरसः, मूलम्, सरभसम्, त्यक्त्वा, उद्भूतकोपदहनोप्रविषस्फुलिङ्गः, सः, आय
भीमभुजमन्दरवेल्लनाभिः, सुमथितात्, (सरसः), क्षीराम्बुधेः, कालकूटः, इव, उत्थितः ॥ ९ ॥

शब्दार्थः—सरसः=तालाव की, मूलम्=तलहटी की, त्यक्त्वा=छोडकर, उद्भूतकोप
नोप्रविषस्फुलिङ्गः=क्रोधाग्निरूपी भीषण विष के स्फुलिङ्ग जिससे निकल रहे थे ऐसा, सः=

युधिष्ठिर—मले (व्यक्ति), तो भी क्या नहीं उठा ?

पाञ्चालक—महाराज, क्यों नहीं उठा ।

तालाब की तलहटी को छोड़कर, काषाग्निरूपी भीषण विष के स्फुलिङ्ग जिससे निकल रहे थे (अर्थात् जिसकी आँखों से क्रोध की चिनगारियाँ बरस रही थीं) ऐसा वह, लम्बी भीम का भुजारूपी मन्दराचल के चलाने से खूब मथे गये (तालाब) से, क्षीरसागर से विष की तरह, ऊपर उठा ॥९॥

विशेष—क्षीरोद्धेः कालकूटः—प्राचीन समय में देवों और दैत्यों ने मिलकर एक बार क्षीरसागर को मथा था । उस समय उन लोगों ने 'मन्दर' नामक पर्वत को मथानी तथा वासुकि नाम को मथानी की रस्ती बनाया था । खूब मथने के बाद सागर से सर्वप्रथम विष निकला था ॥९॥

युधिष्ठिर—बाह, वीर क्षत्रिय, बाह ।

द्रौपदी—(दोनों में) युद्ध हुआ कि नहीं ?

पाञ्चालक—और उस तालाब से उठकर दोनों हाथों से उठाई गई तथा तोरण बनाई गई (Turned in to an arch) भीषण गदा वाला वह कहने लगा—अरे रे वायु-पुत्र (भीम), क्या आप दुर्योधन को मथ से छिया हुआ मानते हो ? मूर्ख, पाण्डु के पुत्रों को (अर्थात् पाण्डवों को) न मार सका (अतः) लोक में लज्जित होते हुए (मैंने) पाताल में विश्राम करने का निश्चय किया था । ' ऐसा कहने पर श्रीकृष्ण तथा अर्जुन के द्वारा जल के भीतर जिसका युद्ध-कार्य रोक दिया गया है ऐसे वे दोनों—भीम और दुर्योधन—स्थल में लाये गये । तब (अपनी) गदा को भूमि पर फेंक कर बैठते हुये कुरुराज (दुर्योधन) ने भग्न हजारों रथों से युक्त, मारे गये सैकड़ों कौरवों, हजारों हाथियों, घोड़ों तथा मनुष्यों के शवों के ढेरों पर झपटते हुए गोध, कंक तथा सियारों वाले, विनष्ट योद्धाओंवाले, हमारे वीरों के द्वारा किये गये सिंह-गर्जन से युक्त, मित्रों एवं बान्धवों से रहित, कौरवों से शून्य युद्ध स्थल को देखकर लम्बी गरम साँस ली । तदनन्तर भीम ने कहा—कौरवराज, बन्धुओं के विनाश का दुःख करना व्यर्थ है । ऐसा विषाद (भी) मत करा कि युद्ध में पाण्डव तो बहुत-से हैं और मैं अकेला हूँ ।

आयस्तभीमभुजमन्दरवल्लनामः—लम्बी भीम की भुजारूपी मन्दराचल के चलाने से, सुमयितात् = खूब मथे गये, (सरसः = तालाब से), क्षीराम्बुधेः = क्षीर सागर से, कालकूटः = विष की, इव = तरह, उत्थितः = ऊपर उठा ॥ ९ ॥

त्यक्वेति । सरसः = जलाशयस्य, मूलम् = अयोभागम्, त्यक्त्वा = विहाय; उदम् त्यादिः—कोपः = क्रोधः एव दहनः = वह्निः कोपदहनः उग्रविषम् = मोषणगरलम् इव तस्य स्फुलिङ्गाः = कणाः; उदभुताः = निःसृताः कोपदहनोप्रविषस्फुलिङ्गाः यस्मात् सः, सः = दुर्योधनः, आयस्तभीमेत्यादिः—आयस्तः = विस्तृतो विशालश्च भीमस्य = वृकोदरस्य भुजः = बाहुः एव मन्दरः = मन्दराचलः, भग्नन्-दावित्यर्थः, तस्य वेल्लनामिः = परिवर्तनैः, सुमयितात् = सुविछोडनात्, सरसः इति शेषः, क्षीराम्बुधेः = क्षीरसागरात्, कालकूटः = गरलः, इव = यथा, उत्थितः = वह्निर्निर्गतः । रूपकमुपमा चात्रालङ्कारौ । वसन्ततिलका छन्दः ॥ ९ ॥

पाञ्चालक इति । करयुगलोत्तमिततोरणीवृत्तमीमगदः—करयुगलेन = हस्तद्वयेन उत्तमिता =

पञ्चानां मन्यसेऽस्माकं यं सुयोधं सुयोधन ।

दंशितस्यात्तशस्त्रस्य तेन तेऽस्तु रणोत्सवः ॥ १० ॥

इत्थं च श्रुत्वासूयान्वितां दृष्टिं कुमारयोर्निक्षिप्योक्तवान्धार्तराष्ट्रः ।

कर्णदुःशासनवधात्तुल्यावेव युवां मम ।

अप्रियोऽपि प्रियो योद्धुं त्वमेव प्रियसाहसः ॥ ११ ॥

इत्युत्थाय परस्परक्रोधाधिक्षेपपरुषवाक्कलहप्रस्तावितघोरसङ्ग्रामौ विचित्र-
विभ्रस्रभ्रमितगदापरिमासुरभुजदण्डौ मण्डलैर्विचरितुमारुढौ भीमदुर्योधनौ । अहं च
देवेन चक्रपाणिना देवसकाशमनुप्रेषितः आह च देवो देवकीनन्दनः । अपर्युषितप्रति-
च आस्तौ प्रनष्टे कौरवराजे महानासीनो विषादः । सप्रति पुनर्भीमसेनेनासादि-
सुबोधने निष्कण्टकीभूतं भुवनतलं परिकलयतु भवान् । अभ्युदयोचिताश्चानवत-
प्रवर्त्यन्तां मङ्गलसमारम्भाः । कृतं संदेहेन ।

उत्तोलिता अत एव तोरणीकृता = तोरणसदृशीकृतेत्यर्थः । भीमा = भीषणा गदा येन सः । अनिहता
= न घातिताः पाण्डुपुत्राः = पाण्डवाः येन सः । निषिद्धसमरसमारम्भौ — निषिद्धः = निवारित-
समरस्य = युद्धस्य समारम्भः = उपक्रमः ययोस्तौ, उत्तारितौ = आनीतौ । विशोर्णरथसहस्रम् — विशो-
र्णम् = भग्नम् रथानाम् = स्यन्दनानाम् सहस्रम् यत्र तादृशम्, निहतैत्यादिः — निहतानि = घातितानि
यानि कुरुशतानि गजवाजिनरसहस्राणि च तेषां कलेवराणाम् = निर्जोषरीराणाम् सम्मर्दं = समवर्त-
सम्पन्नतः = वेगेनागच्छन्तः गृध्राः कङ्काः जम्बुकाः = शृगालाः यत्र तादृशम्, वरसन्नसुयोधम् —
वरसन्नाः = विनष्टाः सुयोधाः = श्रेष्ठवीराः यत्र तादृशम्, अस्मदीरविमुक्तसिंहनादम् — अस्मा-
दीरैः = शूरैः विमुक्तः = कृतः, सिंहनादः = सिंहगर्जनम् यत्र तादृशम्, अपमित्रवान्धवम् — अपगताः =
दूरीकृता मित्रवान्धवाः = सुहृत्स्वजनाः यत्र तादृशम्, रणस्थानम् = युद्धस्थलीम् । मन्युः = शोकः ॥

अन्वयः — हे सुयोधन, अस्माकम्, पञ्चानाम्, (मध्ये), यम्, सुयोधम्, मन्यसे, तेन
(सह), दंशितस्य, आत्तशस्त्रस्य, ते, रणोत्सवः, अस्तु ॥ १० ॥

शब्दार्थः — हे सुयोधन = हे दुर्योधन, अस्माकम् = हम, पञ्चानाम् = पाँचों के, (मध्ये = बीच
में), यम् = जिसको, सुयोधम् — आसानी से युद्ध करने के योग्य, मन्यसे = समझते हो, तेन = उसी
के, (सह = साथ), दंशितस्य = कवच पहने हुये, आत्तशस्त्रस्य — शस्त्र धारण किये हुये, ते =
तुम्हारा, रणोत्सवः = युद्धोत्सव, अस्तु = हो ॥ १० ॥

पञ्चानामिति । हे दुर्योधन = हे सुयोधन, अस्माकम्, पञ्चानाम् = युधिष्ठिरभीमार्जुननकुलसह-
देवानामित्यर्थः, मध्ये इति शेषः, यम् = यं जनम्, सुयोधम् = सुखेन योद्धुं योग्यम्, मन्यसे = जाना-
सीत्यर्थः, तेन = तेन, जनेन, (सह), दंशितस्य = वमितस्य ('संनद्धो वमितः सज्जो दंशितो व्यूढ-
कङ्कटः' इत्यमरः), कवचसज्जस्येत्यर्थः, आत्तशस्त्रस्य — आत्तम् = गृहीतम् शस्त्रम् = प्रहरणम् येन
तस्य, ते = तव, रणोत्सवः = युद्धोत्सवः, अस्तु = भवतु । अत्र पथ्यावकत्रं छन्दः । तल्लक्षणम् —
'युजोश्चतुर्थतो येन पथ्यावकत्रं प्रकीर्तितम्' ॥ १० ॥

हे दुर्योधन, हम पाँचों के (बीच में) जिसको आसानी से युद्ध करने के योग्य समझते हो उसी के साथ कवच पहने तथा शस्त्र धारण किये हुए तुम्हारा युद्धोत्सव हो ॥ १० ॥

इस बात को सुनकर डाह मरी दृष्टि दोनों कुमारों पर डाल कर धृतराष्ट्र के पुत्र (दुर्योधन) ने कहा ।

कर्ण एवं दुःशासन का वध करने से मेरे लिए तुम दोनों समान हो (हो, तो भी) अप्रिय भी साहसप्रिय (होने से) तुम्हीं युद्ध करने के लिए प्रिय हो ॥ ११ ॥

ऐसा कह कर तथा उठ कर परस्पर क्रोधवश निन्दा के कठोर वाक्यों के कलह से मोघण युद्ध आरम्भ कर देनेवाले, विचित्र विलास के साथ घुमाई गई गदा से उद्दोस्त गुजरण्ड वाले भीम और दुर्योधन मण्डल बना कर घूमने लगे (अर्थात् पैतरा काटने लगे) । (इसी समय) मैं महाराज श्रीकृष्ण के द्वारा महाराज (आप) के पास भेजा गया हूँ । महाराज, देवकीनन्दन (श्रीकृष्ण) ने कहा है—‘भीम के द्वारा एक हा (निश्चित) दिन में (दुर्योधन के मारने की) प्रतिज्ञा करने पर तथा कुशराज के छिप जाने पर हम लोगों को महान् विषाद था । किन्तु अब भीमसेन के द्वारा दुर्योधन के प्राप्त कर लिये जाने पर आप भूलतः को कण्टकहीन हुआ हो समझें । और अश्रुदय के अनुरूप अनवरत माझलिक कार्य चलाये जायें । (अब) सन्देह करना व्यर्थ है ।

इत्थमिति । अमृयान्विताम्—अमृया=परोक्षर्पासहिष्णुता तथा अन्वितम्=युक्तम्, कुमारयोः=भीमार्जुनयोः ॥

अन्वयः—कर्णदुःशासनवधात्, मम, युवाम्, तुल्यौ, एव, (तथापि), अप्रियः, अपि, प्रियसाहसः, त्वम्, एव, योद्धुम्, प्रियः ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—कर्णदुःशासनवधात्=कर्ण एवं दुःशासन का वध करने से, मम=मेरे लिए, युवाम्=तुम दोनों, तुल्यौ=समान, एव=हो (हो), (तथापि=तो भी), अप्रियः=अप्रिय, अपि=भी, प्रियसाहसः=साहसप्रिय (होने से), त्वम्=तुम, एव=ही, योद्धुम्=युद्ध करने के लिए, प्रियः=प्रिय हो ॥ ११ ॥

कर्णंति । कर्णदुःशासनवधात्—कर्णदुःशासनयोः वधात्=घातनात्, मम=महामित्यर्थः, युवाम्, तुल्यौ=समानौ, एव=च, (तथापि), अप्रियः=अहितः, अपि, प्रियसाहसः—प्रियम्=अमोघितम् साहसम्=बलकर्म यस्य सः, साहसप्रियः इत्यर्थः, त्वम्=भवान्, एवेत्यर्जुननिरासार्थम्, योद्धुम्=समराय, प्रियः=अभिलषितः । अत्र विरोधाभासोऽलङ्कारः । पथवाक्चक्रं छन्दः ॥ ११ ॥

इत्युत्थायेति । परस्परेत्यादिः—परस्परयोः—अन्योन्ययोः क्रोधेन=कोपेन यः अधिकारः=तिरस्कारः परिमन् तादृशः यः पुरुषः=कठोरः वाक्कलहः=वाणीविवादः तेन प्रस्तावितः=प्रस्तुतः धोरः=भीषणः संग्रामः=युद्धः याभ्यां तौ, विचित्रेत्यादिः—विचित्रेण=अद्भुतेन विघ्ननेण=विलम्बनेन भ्रमिता=सञ्चालिता या गदा तथा परिमासुरी=दीप्ती भुजदण्डौ=बाहुदण्डौ ययोः तौ ॥

पूर्यन्तां सलिलेन रत्नकलशा राज्याभिषेकाय ते
कृष्णात्यन्तचिरोज्झिते च कबरीबन्धे करोतु क्षणम् ।

रामे शातकुठारभासुरकरे क्षत्रदुमोच्छेदिनि

क्रोधान्धे च वृकोदरे परिपतत्याजौ कुतः संशयः ॥ १२ ॥

द्रौपदी—(सत्पापम्) यदेवस्त्रिभुवननाथो भणति तत्कथमन्यथा भविष्यति ।

[जं देवो त्तिद्वयणणाहो भणादि तं कहं अण्णहा भविस्सदि]

पाञ्चालकः—न केवलमियमाशीः । असुरनिपूदनस्यादेशोऽपि ।

युधिष्ठिरः—को हि नाम भगवता संदिष्ट विकल्पयति । कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

कञ्चुकी—आज्ञापयतु देवः ।

युधिष्ठिरः—देवस्य देवकीनन्दनस्य बहुमानाद्वत्सस्य मे विजयमङ्गलाय प्रवर्त्यन्तां तदुचिताः समारम्भाः ।

कञ्चुकी—यथाज्ञापयति देवः । (सोत्साहं परिक्रम्य) भो भोः संविधातॄणां पुरः सराः, यथाप्रधानमन्तर्वेदिमकाः, दौवारिकाश्च, एष खलु भुजबलपरिक्षेपोत्तीर्णकौरवपरिमवसागरस्य निर्व्यूढदुर्वहप्रतिज्ञामारस्य सुयोधनानुजशतोन्मूलनप्रमञ्जनसदुःशासनोरःस्थलविदलननरसिंहस्य दुर्योधनोरुस्तम्भमङ्गविनिश्चितविजयस्य बलिनः प्रामञ्जनेर्द्वकोदरस्य स्नेहपक्षपातिना मनसा मङ्गलानि कर्तुमाज्ञापयति देवो युधिष्ठिरः । (आकाशे) किं ब्रूथ—सर्वतोऽधिकतरमपि प्रवृत्तं किं नालाकयसि इति । साधु पुत्रकाः साधु । अनुकहितकारिता हि प्रकाशयति मनोगतां स्वामिमक्तिम् ।

अन्वयः—रत्नकलशाः, ते, राज्याभिषेकाय, सलिलेन, पूर्यन्ताम्; चिरोज्झिते, कबरीबन्धे, च कृष्णा, क्षणम्, करोतु; शातकुठारभासुरकरे, क्षत्रदुमोच्छेदिनि, रामे, च, क्रोधान्धे, वृकोदरे, आज्ञौ परिपतति, (सति), कुतः, संशयः ॥ १२ ॥

शब्दार्थः—रत्नकलशाः = रत्न के कलश, ते = आप के, राज्याभिषेकाय = राज्याभिषेक के लिए सलिलेन = जल से, पूर्यन्ताम् = भरे जायें, चिरोज्झिते = बहुत दिनों से छोड़े गये, कबरीबन्धे = जहाँ को बांधने के विषय में, कृष्णा = द्रौपदी, क्षणम् = उत्सव, करोतु = मनाये; शातकुठारभासुरकरे = कठोर परशु से शोभित कर वाले, रामे = परशुराम के, च = तथा, क्रोधान्धे = क्रोध से उन्मत्त वृकोदरे = भीम के, आज्ञौ = युद्ध में, परिपतति = उतरने, (सति = पर), कुतः = कहाँ से, संशयः = सन्देह (हो सकता है) ? ॥ १२ ॥

पूर्यन्तामिति । रत्नकलशाः = मणिघटाः, ते = तब, राज्याभिषेकाय = राज्याभिषेक के लिए अभिषेकाय = अभिसिञ्चनाय, सलिलेन = जलेन, पूर्यन्ताम् = भ्रियन्ताम्; चिरोज्झिते = चिरात् = बहो कालात्, उज्झिते = असंश्रुते, कबरीबन्धे = कबरी = केशवेशः तस्याः बन्धे = संयमने, च, कृष्णा = द्रौपदी, क्षणम् = उत्सवम् ('क्षणो मुहूर्तोऽसवयोः' इति शाश्वतः), करोतु = विदधातु, शातकुठारः

रत्न के कलश आपके राज्याभिषेक के लिए जल से भरे जाँय । बहुत दिनों से छोड़े गये जड़ा को बाँधने के विषय में द्रौपदी उत्सव मनाये । कठोर परशु से सुशोभित कर वाले परशुराम के तथा क्रोध से उन्मत्त भीम के युद्ध में उतरने पर (मला) कहाँ से सन्देह (हो सकता है) ? ॥ १२ ॥

द्रौपदी—(आँसु भर कर) जो (कुछ) भगवान् त्रिलोकीनाथ कह रहे हैं वह कैसे गलत होगा ।

पाञ्चालक—न केवल यह आशीर्वाचन है, (अपितु) असुर-निपूदन (श्रीकृष्ण) का आदेश भी है ।

युधिष्ठिर—कौन (व्यक्ति) भगवान् के सन्देश के प्रति सन्देह कर सकता है ? अजो, कौन, कौन है यहाँ ?

(प्रवेश करके)

कञ्चुकी—जैसी महाराज आज्ञा दे रहे हैं (वैसा ही किया जायगा) । (उत्साह के साथ घूम कर) हे हे विधि-विधानों के आचार्य, श्रेष्ठता के क्रम से अन्तःपुर के कर्मचारियों और द्वारपालों, यह महाराज युधिष्ठिर स्नेहपूरित हृदय से भुज-बल रूपी जलयान (जहाज) से कौरवों के अपमानरूपी सागर को पार करने वाले, अतिकठिन प्रतिष्ठा के भार को निभा चुकने वाले, दुर्योधन के सौ माश्यों को उखाड़ फेंकने में तूफान के सदृश, दुःशासन की छाती को फाड़ने में नृसिंह के समान, दुर्योधन के जाँघरूपी स्तम्भ को तोड़ने पर सुनिश्चित विजय वाले, बलशाली वायुपुत्र भीम के मङ्गल को मनाने की आज्ञा दे रहे हैं । (आकाश की ओर) क्या कह रहे हो, चारों ओर अत्यधिक किये गये भी (मङ्गल कर्म) को क्या नहीं देख रहे हो ? बाह ! पुत्रों बाह ! निश्चय ही, बिना कहे हित करना हृदय-स्थित स्वामि-भक्ति को प्रकट करता है ।

मासुरकरे—शातेन=तीक्ष्णेन, कठोरेणेत्यपि, कुठारेण=परशुना मासुरः=दीप्तियुक्तः करः=हस्तः यस्य तस्मिन्, क्षत्रद्रुमोच्छेदिनि—क्षत्राः=क्षत्रियाः एव द्रुमाः=वृक्षाः तान् छेत्तुं=कतितुं शीलमस्य तस्मिन्, रामे=परशुरामे, च=तथा, क्रोधान्धे—क्रोधेन=क्रोपेन अन्धे=मत्ते, वस्तुतः त्रिवेकविरहिते, वृकोदरे=भीमे, आजौ=युद्धे, परिपतति=प्रविष्टे वा अवतरति सति, कुतः=कस्मात्, संशयः=सन्देहः, विजये इति शेषः । जयः सुनिश्चितो भीमस्येति गूढाभिप्रायः । दीपकाढङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ १२ ॥

कञ्चुकीति । संविधातृष्णाम्=पुरोहितादीनाम्, अन्तर्वेश्मिकाः=अन्तःपुरचारिणः, दीवारिकाः=द्वारनियुक्ताः । भुजबलैत्यादिः—भुजबलम्=बाहुबलम् एव परिशिष्यते=सन्तीर्थतेऽनेनेति परिक्षेपः=जलयानम् तेन उत्तीर्णः=पारं कृतः कौरवैः परिभवः=अवमानना एव सागरः=समुद्रः येन सः तस्य, निर्व्यूढदुर्वहप्रतिष्ठाभारस्य—निर्व्यूढः=कृतः, सम्पादित इत्यर्थः, दुर्वहः=अतिकठिनः प्रतिष्ठाभारः=प्रणभारः येन तस्य, सुयोधनेत्यादिः—सुयोधनस्य अनुजानाम्=लघुभ्रातृणां शतस्य उन्मूलने=उत्पाटने प्रमञ्जनस्य=वायोः, तत्सदृशस्येत्यभिप्रायः, दुःशासनेत्यादिः—दुःशासनस्य उरःस्थलम्=वक्षःस्थलम् तस्य विदलने=विदारणे नरसिंहस्य=नृसिंहस्य, तत्सदृशस्येत्यर्थः, दुर्योधनेत्यादिः—दुर्योधनस्य=

युधिष्ठिरः—आर्यं जयंधर ।

कच्चकी—आज्ञापयतु देवः ।

युधिष्ठिरः—गच्छ प्रियख्यापकं पाञ्चालकं पारितोषिकेण परितोषय ।

कच्चकी—यदाज्ञापयति देवः । (इति पाञ्चालकेन सह निष्क्रान्तः)

द्रौपदी—महाराज, किंनिमित्तं पुनर्नाथभीमसेनेन स दुराचारो भणितः—पञ्चानासप्यस्माकं मध्ये येन ते रोचते तेन सह ते सङ्ग्रामो भवतु इति । यदि माद्रीसुतयोरेकतरेण सह सङ्ग्रामस्तेन प्रार्थितो भवेत्ततोऽप्याहितं भवेत् ।

[महाराज, किंनिमित्तं त्वं नाहभीमसेणेण सो दुराचारो भणितो—पञ्चानां मध्ये जेन ते रोचते तेन सह संगामो होदु त्ति । जई मदीसुदानं एकदरेण सह संगामो तेण पत्नियदो भवे तदो अच्चाहिदं भवे] ।

युधिष्ठिरः—कृष्णे, एवं मन्यते जरासंधवासी । हतसकलसुहृद्वन्धुवीरानुजराजन्यासु कृपकृतवर्माश्वत्थामशेषास्वेकादशस्वक्षौहिणीष्ववान्धवः शरीरमात्रविभवः कदाचिदुत्सृष्टानजामिमानो धार्तराष्ट्रः परित्यजेदायुधं तपोवनं वा व्रजेत्सन्धिं वा पितृमुखेन याचेत । एवं सति सुदूरमतिक्रान्तः प्रतिज्ञाभारो भवेत्सकलरिपुजयस्येति । समरं प्रतिपत्तुं पञ्चानामपि पाण्डवानामेकस्यापि नैव क्षमः सुयोधनः । शङ्के चाहं गदायुद्धं वृकोदरस्यैवानेन । अयि सुक्षत्रिये, पश्य—

क्रोधोद्गूर्णगदस्य नास्ति सदृशः सत्यं रणे मारुतेः

कौरव्ये कृतहस्तता पुनरियं देवे यथा सीरिणि ।

स्वस्यस्तूदतधार्तराष्ट्रनलिनीनागाय वत्साय मे

शङ्के तस्य सुयोधनेन समरं नैवेतरेषामहम् ॥ १३ ॥

सुयोधनस्य उरुत्तममङ्गन = जङ्घास्तम्भमङ्गनेन विनिश्चितः = सुनिश्चितः विजयः = जयः यस्य तस्य, प्रामञ्जनः = प्रमञ्जनस्य = बायोः अपत्यं पुमान् प्रामञ्जनिः तस्य, वायुपुत्रस्य भीमस्येत्यर्थः ॥

द्रौपदीति । दुराचारः = पापः । प्रार्थितः = याचितः, अत्याहितम् = महद्भयम् ॥

युधिष्ठिर इति । हतसकलेति—हताः = शत्रुभिः धातिताः सकलाः = समग्राः सुहृदः = मित्राणि, वन्धवाः = स्वजनाः, वीराः = शूराः, अ जाः = आतरः राजन्याः = राजपुत्राः यासां तासु, शरीरमात्रविभवः = शरीरमात्रम् = देहमात्रम् विभवः = सम्पत्तिः यस्य तादृशः ॥

अन्वयः—सत्यम्, रणे, क्रोधोद्गूर्णगदस्य, मारुतेः, सदृशः, (अन्यः), न, अस्ति; पुनः, देवे, सीरिणि, यथा, इयम्, कृतहस्तता, कौरव्ये, (वर्तते), उदतधार्तराष्ट्रनलिनीनागाय, मे, वत्साय, स्वस्ति, अस्तु, अहम्, सुयोधनेन, तस्य, समरम्, शङ्के, शत्रेणाम्, नैव ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—सत्यम् = वस्तुतः, रणे = युद्धे में क्रोधोद्गूर्णगदस्य = क्रोध से उठाई गई गदा वाले, मारुतेः = वायुपुत्र (भीम) के, सदृशः = तुल्य, (अन्यः = दूसरा), न = नहीं, अस्ति = है; पुनः = किन्तु, देवे = देव, सीरिणि = बलराम, यथा = जैसी, इयम् = यह, कृतहस्तता = (गदा चलाने की)

युधिष्ठिर—आदरणीय जयन्धर ।

कञ्चुकी—आशा दें महाराज ।

युधिष्ठिर—जाओ, प्रिय सन्देश देनेवाले पाञ्चालक को पुरस्कार देकर सन्तुष्ट करो ।

कञ्चुकी—महाराज की जैसी आशा (ऐसा कह कर पाञ्चालक के साथ निकल गया) ।

द्रौपदी—महाराज, अच्छा, किस कारण से स्वामी भीमसेन ने उस दुराचारी (दुर्योधन) को कहा—‘हम पाँचों के मध्य में जिससे तुम्हारी इच्छा हो उसी के साथ तुम्हारा युद्ध होगा ।’ यदि माद्री के पुत्रों (नकुल और सहदेव) में किसी एक के साथ उसने युद्ध की कामना की होती तो बड़ा गड़बड़ होता ।

युधिष्ठिर—द्रौपदी, जरासन्ध को मारने वाले (भीम) का ऐसा विचार होगा—‘स्वारह अश्वोहिणी सेनाओं के—जिन में सम्पूर्ण मित्र, वन्धु, बोर, भाई एवं राजसमूह मारे जा चुके हैं, केवल कृपाचार्य कृतवर्मा, अश्वत्थामा ही बाकी बचे हैं—विनष्ट कर दी जाने पर वन्धुओं से विहीन, शरीर-मात्र ही जिसका विभव है ऐसा धृतराष्ट्र का पुत्र (दुर्योधन) शायद अपने अभिमान को छोड़कर शस्त्र त्याग दे, अथवा तपोवन चला जाय, अथवा (अपने) पिता के मुख से सन्धि की प्रार्थना करे । ऐसा होने पर सम्पूर्ण शत्रुओं को जीतने की प्रतिज्ञा का निर्वाह बहुत दूर चला जायगा । (अर्थात् पूरा न हो सकेगा) दुर्योधन पाँचों पाण्डवों में एक के भी साथ युद्ध करने में समर्थ नहीं है । मैं भीम के ही साथ इसके गदा-युद्ध की आशङ्का करता हूँ । अरो सुकुलीन क्षत्रिये, देखो—

वस्तुतः युद्ध में क्रोध से उठाई गई गदावाले वायुपुत्र (भीम) के तुल्य (दूसरा) नहीं है । किन्तु देव बलराम जैसी यह (गदा चलाने की) प्रवीणता दुर्योधन में (है) । उद्दण्ड धृतराष्ट्र-पुत्र (दुर्योधन) रूपी कमल-लता के लिए गजराज के सदृश मेरे वत्स का कल्याण हो । मैं दुर्योधन के साथ उस (वत्स भीम) के युद्ध की आशङ्का करता हूँ, अन्य लोगों के (साथ) नहीं ॥ १३ ॥

प्रवीणता, कौरव्ये=दुर्योधन में, (वर्तते=है); उद्धतधार्तराष्ट्रनल्लिनीनागाय=उद्दण्ड धृतराष्ट्र पुत्र (दुर्योधन) रूपी कमलता के लिए गजराज के सदृश, मे=मेरे, वत्साय=वत्स का, स्वति=कल्याण, अस्तु=हो; अहम्=मैं, सुयोधनेन=दुर्योधन के साथ, तस्य=उसके, समरम्=युद्ध की, शङ्के=आशङ्का करता हूँ, इतरेषाम्=अन्य लोगों के, नैव=नहीं ॥ १३ ॥

क्रोधेति । सत्यम्=वस्तुतस्तु, क्रोधोद्गूर्णगदस्य=क्रोधेन=क्रोपेन उद्गूर्णा=उबमिता (‘उद्गूर्णोद्यते’ इत्यमरः) गदा येन तस्य, मारुतेः=वायुपुत्रस्य भीमस्य, सदृशः=समानः, (अन्यः=इतरः), न=नहि, अस्ति=वर्तते; पुनः=किन्तु, देवे=भगवति, सीरिणि=बलरामे, यथा=यादृशी, इयम्=एषा, गदाविषयिणीत्यर्थः, कृतहस्तता=अखसञ्चालनलाघवम्, कौरव्ये=दुर्योधने, वर्तते इति शेषः, उद्धतधार्तराष्ट्रनल्लिनीनागाय=उद्धतः=उद्दण्डः यः धार्तराष्ट्रः=धृतराष्ट्रपुत्रो दुर्योधनः एव नल्लिनी=कमललता तस्यै नागः=गजराजः तस्मै, मे=मम, वत्साय=प्रियाय भीमाय, स्वस्ति=कल्याणम्, अस्तु=भवतु; शङ्के=अनुमिनोमि, इतरेषाम्=अन्येषाम्, नैव=नहि । अत्र द्वितीये चरणे उपमा, तृतीये रूपकञ्चालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ १३ ॥

(नेपथ्ये)

तृषितोऽस्मि भोस्तृषितोऽस्मि । संभावयतु कश्चित्सलिलच्छायासंप्रदानेन माम् ।

युधिष्ठिरः—(आकर्ण्य) कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

कञ्चुकी—आज्ञापयतु देवः ।

युधिष्ठिरः—ज्ञायतां किमेतत् ।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य) देव क्षुन्मानतिथिरूपः स्थितः ।

युधिष्ठिरः—शीघ्रं प्रवेशय ।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति मुनिवेषधारी चार्वाको नाम राक्षसः)

राक्षसः—(आत्मगतम्) एषोऽस्मि चार्वाको नाम राक्षसः सुयोधनस्य मित्रं पाण्डवान्वञ्चयितुं भ्रमामि । (प्रकाशम्) तृषितोऽस्मि । संभावयतु मां कश्चिज्जलच्छायाप्रदानेन । (इति राक्षः समीपमुपसर्पति)

(सर्व उत्तिष्ठन्ति)

युधिष्ठिरः—मुने, अभिवादये ।

राक्षसः—अकालोऽयं समुदाचारस्य । जलप्रदानेन संभावयतु माम् ।

युधिष्ठिरः—मुने, इदमासनम् । उपविश्यताम् ।

राक्षसः—(उपविश्य) ननु भवतापि क्रियतामासनपरिग्रहः ।

युधिष्ठिरः—(उपविश्य) कः कोऽत्र भोः । सलिलमुपनय ।

(प्रविश्य गृहीतभृङ्गारः)

कञ्चुकी—(उपसृत्य) महाराज, शिशिरसुरभिसलिलसम्पूर्णोऽयं भृङ्गारः पानभाजनं चेदम् ।

युधिष्ठिरः—मुने निर्वर्त्यतामुदन्याप्रतिकारः ।

राक्षसः—(पादौ प्रक्षाल्योपसृशन्विचिन्त्य) भोः क्षत्रियस्त्वमिति मन्ये ।

युधिष्ठिरः—सम्यग्वेदी भवान् । क्षत्रिय एवास्मि ।

राक्षसः—सुलभश्च स्वजनविनाशः सङ्ग्रामेषु प्रतिदिनमतो नादेयं भवद्भयो जलादिकम् । भवतु । छायायैवानया सरस्वतीशिशिरतरङ्गस्पृशा मरुता चानेन विगत-क्लमो भविष्यामि ।

युधिष्ठिर इति । निर्वर्त्यताम् = क्रियताम्, उदन्याप्रतिकारः—उदन्या = उदकस्येच्छा, पिपासेति यावत्, ('उदन्या तु पिपासा तृट्' इत्यमरः) तस्याः प्रतिकारः = उपशमः ॥

राक्षस इति । सुलभः = स्वाभाविकः सरलो वा, स्वजनविनाशः = बन्धुनाशः । सरस्वतीशिशि-

(पदों के पीछे)

प्यासा हूँ, अरे प्यासा हूँ । कोई जल एवं छाया देकर मुझे अनुगृहीत करे ।

युधिष्ठिर—(सुनकर) कौन, कौन यहाँ (है) जी ?

(प्रवेश करके)

कञ्चुकी—आशा दें महाराज !

युधिष्ठिर—मालूम करो क्या (है) यह ?

कञ्चुकी—जैसी आशा दे रहे हैं महाराज । (ऐसा कह कर निकल कर और फिर प्रवेश करके) भूखा (वस्तुतः प्यासा) अतिथि आया है ।

युधिष्ठिर—शीघ्र भीतर लिवा आओ ।

कञ्चुकी—जैसी महाराज आशा दे रहे हैं । (ऐसा कह कर निकल गया)

(तदनन्तर मुनिवेश को धारण किये हुये चार्वाक नामक राक्षस प्रवेश करता है) ।

राक्षस—(अपने आप) यह (मैं) हूँ चार्वाक नामक राक्षस, सुयोधन का मित्र । पाण्डवों को डलने के लिए धूम रहा हूँ । (प्रकट रूप से) प्यासा हूँ । अनुगृहीत करे, मुझे कोई जल और छाया देकर । (ऐसा कह कर राजा के पास पहुँचता है) ।

(सभी उठ खड़े होते हैं)

युधिष्ठिर—मुने, प्रणाम कर रहा हूँ ।

राक्षस—यह शिष्टाचार का समय नहीं है । जल देकर मुझे संस्कृत करो ।

युधिष्ठिर—मुने यह आसन है । बैठ जाँय ।

राक्षस—(बैठ कर) अच्छा आपके द्वारा भी आसन स्वीकार किया जाय (अर्थात् आप भी आसन पर विराजमान हों) ।

युधिष्ठिर—(बैठ कर) कौन, कौन यहाँ है जी ? जल लाओ ।

(सुराही लिए हुये प्रवेश करके)

कञ्चुकी—(आगे बढ़ कर) महाराज, शीतल तथा सुगन्धित, जल से भरी हुई यह सुराही (है), और यह (है) पीने का पात्र ।

युधिष्ठिर—मुने, प्यास का प्रतिकार कीजिये (अर्थात् प्यास की शान्ति कीजिये) ।

राक्षस—(पैरों को धोकर, आचमन करते हुये, सोचकर) अरे, क्षत्रिय हो तुम—ऐसा मैं समझता हूँ ।

युधिष्ठिर—ठीक समझ रहे हैं आप क्षत्रिय ही हूँ ।

राक्षस—प्रतिदिन युद्ध में स्वजनों का मरण आसान है, अतः आप से जल आदि नहीं ग्रहण करना चाहिये । ठीक है । इस छाया से और सरस्वती (नदी) के शीतल तरङ्गों को स्पर्श करने वाले इस वायु से ही श्रम-विहीन होऊँगा ।

रतरङ्गस्पृशा—सरस्वत्याः शिशिराः=शीतलाः ये तरङ्गाः=लहर्यः तान् स्पृशतीति तेन, मस्ता=वायुवा, विगतकलमः—विगतः=दूरीभूतः कलमः=श्रमः यस्य तादृशः ॥

द्रौपदी—बुद्धिमतिके, वीजय महर्षिमनेन तालवृन्तेन ।

[बुद्धिमदिप, वीपहि महेसि इमिणा तालविन्तेण ।]

(चेटी तथा करोति)

राक्षसः—भवति, अनुचितोऽयमस्मासु समुदाचारः ।

युधिष्ठिरः—मुने, कथय कथमेवं भवान्परिश्रान्तः ।

राक्षसः—मुनिजनसुखभेन कौतूहलेन तत्र भवतां महाक्षत्रियाणां द्वन्द्वयुद्धमवलोकयितुं पर्यटामि समन्तपञ्चकम् । अद्य तु बलवत्तया दारदातपस्यापर्याप्तमेवावलोक्य गदायुद्धमर्जुनसुयोधनयोरागतोऽस्मि ।

(सर्वे त्रिषादं नाटयन्ति)

कञ्चुकी—मुने, न खल्वेवम् । भीमसुयोधनयोरिति कथय ।

राक्षसः—आः अविदितवृत्तान्त एव कथं सामाक्षिपसि ।

युधिष्ठिरः—महर्षे, कथय कथय ।

राक्षसः—क्षणमात्रं विश्रम्य सर्वं कथयामि भवतो न पुनरस्य वृद्धस्य ।

युधिष्ठिरः—कथय किमर्जुनसुयोधनयोरिति ।

राक्षसः—ननु पूर्वमेव कथितं मया प्रवृत्तं गदायुद्धमिति ।

युधिष्ठिरः—न भीमसुयोधनयोरिति ।

राक्षसः—वृत्तं तत् ।

(युधिष्ठिरो द्रौपदी च मोहमुपगतौ)

कञ्चुकी—(सलिलेनासिच्य) समाश्वसितु देवो देवो च ।

चेटी—समाश्वसितु समाश्वसितु देवी । [समस्तसदु समस्तसदु देवी ।]

(उभौ संशं लभेते)

युधिष्ठिरः—किं कथयसि मुने, वृत्तं भीमसुयोधनयोर्गदायुद्धमिति ।

द्रौपदी—मगवन्, कथय कथय किं वृत्तमिति ।

[मगवं कहेहि कहेहि किं वृत्तं त्ति ।]

राक्षसः—कञ्चुकिन्, कौ पुनरेतौ ।

कञ्चुकी—ब्रह्मन्, एव देवो युधिष्ठिर इयमपि पाञ्चालराजतनया ।

राक्षसः—आः, दारुणमुपक्रान्तं मया नृशंसेन ।

द्रौपदी—हा नाथ भीमसेन । (इति महमुपगता) [हा णाह भीमसेण ।]

कञ्चुकी—किं नाम कथितम् ।

चेटी—समाश्वसितु समाश्वसितु देवी । [समस्तसदु समस्तसदु देवी ।]

युधिष्ठिरः—(साक्षम्) ब्रह्मन्,

द्रौपदी—बुद्धिमतिके, हवा डुलाओ महर्षि को इस ताड़ के पंखे से ।

(चेटी बैसा करती है)

राक्षस—श्रीमती जी, अनुचित है यह हम लोगों के प्रति शिष्टाचार (यतः संन्यासी किसी स्त्री से सेवा नहीं लेता है) ।

युधिष्ठिर—मुने बतलायें क्यों इस तरह आप बक गये ?

राक्षस—मुनिव्रतों में स्वभावतः रहनेवाले कौतूहल से मान्य आप श्रेष्ठ सन्त्रियों का द्वाद-युद्ध देखने के लिए समन्तपञ्चक में घूम रहा था । आज तो शरद् ऋतु के वाम के अतिप्रबल होने के कारण अर्जुन और सुयोधन के गदायुद्ध को अपूरा ही देखकर चला आया हूँ ।

(सभी दुःख का अभिनय करते हैं)

कञ्चुकी—मुने ऐसा नहीं (है) । भीम और सुयोधन का (गदा-युद्ध) ऐसा कहिये ।

राक्षस—आह ! बिना वृत्तान्त जाने ही क्यों मुझे टोक रहे हो ।

युधिष्ठिर—महर्षे, कहिये, कहिये, ।

राक्षस—क्षणभर ठहरकर सब कहूँगा आपसे, न कि इस बुद्धे से ।

युधिष्ठिर—बतलाइये, अर्जुन और सुयोधन का क्या (हुआ) ?

राक्षस—अजी, पहले ही मैंने कह दिया कि (उन दोनों का) गदा-युद्ध चल रहा था ।

युधिष्ठिर—भीम और सुयोधन का नहीं ?

राक्षस—वह (तो) हो चुका ।

(युधिष्ठिर और द्रौपदी मूर्छित हो जाते हैं)

कञ्चुकी—(जल से सींच कर) धीरज धारण करें महाराज और महारानी ।

चेटी—धैर्य रखें, धैर्य रखें महारानी ।

(दोनों चेतना प्राप्त करते हैं)

युधिष्ठिर—क्या कह रहे हो मुनिजी कि भीम और सुयोधन का गदा-युद्ध समाप्त हो गया ?

द्रौपदी—भगवन्, बतलाइये, बतलाइये क्या हुआ ?

राक्षस—कञ्चुकिन्, अच्छा, ये दोनों कौन हैं ?

कञ्चुकी—ब्रह्मन्, यह महाराज युधिष्ठिर हैं, यह भी पाञ्चाल राजकुमारी (द्रौपदी) हैं ।

राक्षस—आह ! मुझ क्रूर ने हृदय-विदारक (प्रसङ्ग) प्रारम्भ कर दिया ।

द्रौपदी—हा नाथ भीमसेन, (ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाती है) ।

कञ्चुकी—(आपने) क्या कह डाला ?

चेटी—धीरज रखें, धीरज रखें स्वामिनी ।

युधिष्ठिर—(आँसु भर कर) ब्रह्मन्,

पदे सन्दिग्ध एवास्मिन्दुःखमास्ते युधिष्ठिरः ।

वत्सस्य निश्चिते तत्त्वे प्राणत्यागादयं सुखी ॥ १४ ॥

राक्षसः—(सानन्दमात्मगतम्) अत्रैव मे यत्नः । (प्रकाशम्) यदि त्ववश्यं कथनीयं तथा
संक्षेपतः कथयामि । न युक्तं बन्धुष्यसनं विस्तरेणावेदयितुम् ।

युधिष्ठिरः—(अश्रूणि मुञ्चन्)

सर्वथा कथय ब्रह्मसंक्षेपाद्विस्तरेण वा ।

वत्सस्य किमपि श्रोतुमेष दत्तः क्षणो मया ॥ १५ ॥

राक्षसः—श्रूयताम्,

तस्मिन् कौरवभोमयोर्गुरुगदाघोरध्वनी संयुगे

द्रौपदी—(सहसोत्थाय) ततस्ततः । [तदो तदो ।]

राक्षसः—(स्वगतम्) कथं पुनरनयोर्लब्धसंज्ञतामपनयामि ।

सीरी सत्वरमागतश्चिरमभूत्तस्याग्रतः सङ्गरः ।

आलम्ब्य प्रियशिष्यतां तु हलिना संज्ञा रहस्याहिता

यामासाद्य कुरुत्तमः प्रतिकृति दुःशासनारौ गतः ॥ १६ ॥

अन्वयः—अस्मिन्, सन्दिग्धे, पदे, एव, युधिष्ठिरः, दुःखम्, आस्ते; वत्सस्य, तत्त्वे, निश्चिते
(सति), अयम्, प्राणत्यागात्, सुखी, (मविष्यति) ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—अस्मिन्=इस, सन्दिग्धे=सन्देहास्पद, पदे=वचन पर, एव=ही, युधिष्ठिरः=
युधिष्ठिर, दुःखम्=कष्ट में, आस्ते=हैं; वत्सस्य=वत्स (भोम) के, तत्त्वे=यथार्थ (समाचार) के,
निश्चिते=निश्चित हो जाने, (सति=पर), अयम्=यह, प्राणत्यागात्=प्राणों को छोड़ देने से,
सुखी=सुखी, (मविष्यति=हो जायगा) ॥ १४ ॥

पद इति । अस्मिन्=तस्मिन्, सन्दिग्धे=सन्देहास्पदे, पदे=वचने, एव=हि, युधिष्ठिरः=
धर्मराजः, दुःखम्=कष्टम्, आस्ते=वर्तते । वत्सस्य=प्रियस्य भोमस्य, तत्त्वे=याथार्थ्यं, निश्चिते=
वृद्धे, सति, अयम्=एषः, युधिष्ठिर इत्यर्थः, प्राणत्यागात्=जीवनत्यागात्, सुखी=दुःखमुक्तः, मविष्य-
तीति क्रियालेशः । मृते भोमे नाहं जीवितुं शक्नोमीति भावः । पथावयवत्रं छन्दः ॥ १४ ॥

अन्वयः—हे ब्रह्मन्, संक्षेपात्, वा, विस्तरेण, सर्वथा, कथय; वत्सस्य, किमपि, श्रोतुम्, मया,
एषः, क्षणः, दत्तः, ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—हे ब्रह्मन्=हे ब्राह्मण, संक्षेपात्=संक्षेप से, वा=अथवा, विस्तरेण=विस्तार से,
सर्वथा=सब तरह से, कथय=कह डालिए; वत्सस्य=वत्स के सम्बन्ध में, किमपि=कुछ भी,
श्रोतुम्=सुनने के लिए, मया=मैंने, एषः=यह, क्षणः=क्षण, दत्तः=दे रक्खा है ॥ १५ ॥

सर्वथेति । हे ब्रह्मन्=हे ब्राह्मण (वेदस्तत्त्वं तपो ब्रह्म ब्रह्मा विप्रः प्रजापतिः इत्यमरः),
संक्षेपात्=स्वल्पात्, वा=अथवा, विस्तरेण=विस्तारेण, सर्वथा=सर्वप्रकारेण, कथय=ब्रूहि
वत्सस्य=स्नेहस्य भोमस्य, सम्बन्धे, किमपि=किञ्चिदपि, हितमहितं वेत्यर्थः, श्रोतुम्=आकणितुम्,
गतः=

इस सन्देहास्पद वचन पर ही युधिष्ठिर कष्ट में है। वत्स (भीम) के यथार्थ (समाचार) के निश्चित हो जाने पर यह पाषाणों को छोड़ देने से सुखी (हो जायगा) ॥ १४ ॥

राक्षस—(आनन्दपूर्वक अपने आप) इसी में मेरा प्रभूतन है (कि तुम अपना प्राण त्याग दो) । (प्रकट रूप से) अच्छा, यदि अवश्य कहना है तो संक्षेप में कहूँगा। माई की विपत्ति (मृत्यु) को विस्तार से नहीं कहना चाहिये।

युधिष्ठिर—(आँसू बहाता हुआ) ।

हे ब्राह्मण, संक्षेप से अथवा विस्तार से—सब तरह से—कह डालिये। वत्स के सम्बन्ध में कुछ भी सुनने के लिए मैंने यह क्षण दे रक्खा है ॥ १५ ॥

राक्षस—सुनिये,

दुर्योधन एवं भीम के, विशाल गदाओं की भीषण ध्वनिवाले उस युद्ध के होने पर—

द्रौपदी—(एकाएक उठकर) उसके बाद, उसने बाद ?

राक्षस—(अपने आप) क्या फिर इन लोगों की चेतना को दूर कर दूँ (अर्थात् क्या इन लोगों को पुनः बेहोस कर दूँ) ।

—बलराम शीघ्र हो आ गये। उनके समक्ष काफी देर तक युद्ध हुआ; किन्तु बलराम ने शिष्य-प्रियता का अवलम्बन कर चुपके-से (एक दाँव का) संकेत कर दिया, जिसे पाकर कुरुराज (दुर्योधन) ने दुःशासन के शत्रु (भीम) के ऊपर प्रतिशोध को प्राप्त कर लिया (अर्थात् भीम से बदला चुकाते हुए उनका वध कर डाला) ॥ १६ ॥

विशेष—शिष्यप्रियताम्—अपने जमाने में बलराम जी गदा-युद्ध के परमाचार्य थे। दुर्योधन ने उनसे गदा चलाने की विद्या सीखी थी। वह बलराम का योग्य शिष्य था। वे उसे प्यार करते थे। इसी ओर यहाँ संकेत है ॥ १६ ॥

मया = युधिष्ठिरेण, एषः = अयम्, क्षणः = कालः, दत्तः = समर्पितः। कठोरहृदयोऽहं शृणोमि ब्रूहि यदक्लृप्तमास्ते ॥ १५ ॥

अन्वयः—कौरवभीमयोः, गुरुगदाबोरध्वनौ, तस्मिन्, संयुगे, (सति), सीरी, सत्वरम्, आगतः, तस्य, अग्रतः, चिरम्, सङ्गरः, अमूर्त्तः, तु, हलिना, प्रियशिष्यताम्, आलम्ब्य, रहसि, संज्ञा, आहिता; याम्, आसाद्य, कुरुत्तमः, दुःशासनारौ, प्रतिकृतिम्, गतः ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—कौरवभीमयोः = दुर्योधन एवं भीम के, गुरुगदाबोरध्वनौ = विशाल गदाओं की भीषण ध्वनिवाले, तस्मिन् = उस, संयुगे = युद्ध के, (सति = होने पर), सीरी = बलराम, सत्वरम् = शीघ्र, आगतः = आ गये; तस्य = उनके, अग्रतः = समक्ष, चिरम् = काफी देर तक, सङ्गरः = युद्ध, अमूर्त्तः = हुआ; तु = किन्तु, हलिना = बलराम ने, प्रियशिष्यताम् = शिष्य की प्रियता का, आलम्ब्य = अवलम्बन कर, रहसि = चुपके से, संज्ञा = संकेत, आहिता = कर दिया; याम् = जिसे, आसाद्य = पाकर, कुरुत्तमः = कुरुराज ने, दुःशासनारौ = दुःशासन के शत्रु के ऊपर, प्रतिकृतिम् = प्रतिशोध को, गतः = प्राप्त कर लिया ॥ १६ ॥

युधिष्ठिरः—हा वत्स वृकोदर । (इति मोहमुपगतः)

द्रौपदी—हा नाथ भीमसेन, हा मम परिभवप्रतीकारपरित्यक्तजीवित, जटासुरवक्र-
हिडिम्बकिर्मीरकीचक्रजरासंधनिपूदन, सौगन्धिकाहरणचाटुकार, देहि मे प्रतिवचनम् ।
(इति मोहमुपगता) [हा णाह भोमसेन, हा मद् परिभवपटोआरपरित्यक्तजीवित, जटासुरवक्रहिडि-
किम्भीरकीचक्रजरासंधनिपूदन, सोअन्धिकाहरणचाटुआर, देहि मे पडिवअणम् ।]

कञ्चुकी—(साक्षम्) हा कुमार भीमसेन, धार्तराष्ट्रकुलकमलिनीप्राणैववर्ष । (ससंभ्रमम्)
समाश्वसितु महाराजः । भद्रे, समाश्वासय स्वामिनीम् । महर्षे, त्वमपि तावदाश्वासय
महाराजम् ।

राक्षसः—(स्वगतम्) आश्वासयामि प्राणान्परित्याजयितुम् । (प्रकाशम्) भो भीमा-
अग्र, क्षणमेकमाधीयतां समाश्वासः । कथाशेषोऽस्ति ।

युधिष्ठिरः—(समाश्वस्य) महर्षे, किमस्ति कथाशेषः ।

द्रौपदी—(प्रतिबुध्य) भगवन्, कथय कीदृशः कथाशेष इति ।

[भगवं कहेहि कीदिसो कहासेसो त्ति ।]

कञ्चुकी—कथय कथय ।

राक्षसः—ततश्च हते तस्मिन्सुक्षत्रिये वीरसुलभां गतिमुपगते समग्रसंगलितं
आतृवधशोकं वाष्पं प्रमृज्य आतृवधशोकादपहाय गाण्डीवं प्रत्यक्षतजच्छटाचर्चितां

तस्मिन्निति । कौरवभीमयोः = कौरवश्च = कुरुपुत्रो दुर्योधनश्च भीमश्चेति तयोः, गुरुगदाधोर-
ध्वनौ—गुर्योः = विशालयोः गदयोः धोरः = भयानकः ध्वनिः = शब्दः यस्मिन् तादृशे, अमृतपूर्वं
इत्यर्थः, संयुगे = युद्धे, (सति = सञ्जाते); सोरी = बलरामः, सत्वरम् = शीघ्रम्, आगतः = आयातः;
तस्य = बलरामस्येत्यर्थः, अग्रतः = समक्षम्, चिरम् = चिरकालम्, सङ्गरः = युद्धम्, अमृत = जातः,
तु = किन्तु, हलिना = हलधरेण, बलरामेणेत्यर्थः, प्रियशिष्यताम्—प्रियः शिष्यः यस्येति प्रियशिष्यः तस्य
भावः प्रियशिष्यता ताम्, शिष्ये या स्नेहभावना तामित्यर्थः, आलम्ब्य = स्वीकृत्य, दुर्योधनो बलरामस्य
गदाशिक्षणे शिष्य आसीदिति, रहसि = एकान्ते, संशा = संकेतः, प्रहारार्थं सङ्केतः इत्यर्थः, आहिता =
निर्दिष्टा, याम् = संज्ञामित्यर्थः, आसाद्य = प्राप्य कुरुक्षेत्रम् = कुरुराजः, दुःशासनारौ = भीमे इत्यर्थः,
प्रतिकृतिम् = प्रतीकारम्, गतः = यातः, दुःशासनवधस्येति शेषः । भीमो दुर्योधनेन हतः इति भावः ।
शार्दूलविक्रीडितं छन्दः । तल्लक्षणम्—‘सूर्याश्वैर्यदि मःसजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्’ ॥ १६ ॥

कञ्चुकीति । धार्तराष्ट्रकुलकमलिनीप्राणैववर्ष—धार्तराष्ट्रकुलम् = धृतराष्ट्रवंशः एव कमलिनी =
कमललता तत्र प्राणैवस्य = हिमस्य वर्षः = वृष्टिरूपतस्तस्म्युद्धौ ॥

राक्षस इति । वीरसुलभाम् = सुक्षत्रिययोग्याम्, युद्धमृत्युरूपामित्यर्थः, गतिम् = अवस्थाम्,
आगते = प्राप्ते, मृते इति यावत्, समग्रसंगलितम्—समग्रम् = सम्पूर्णम् संगलितम् = निःसृतम्, आतृ-
वधशोकम्—आतृः = सहोदरस्य भीमस्य वधः = वातनम् तेन यः शोकः = दुःखम् तस्मात् जातम्,
प्रत्यग्रम् = अभिनवम् यत् क्षतजम् = क्षतात् जातम्, रक्तमित्यर्थः, तस्य छटया = समुद्रेन चर्चिताम् =

युधिष्ठिर—हाय ! वत्स भीमसेन । (यह कहकर मूर्च्छित हो जाता है))

द्रौपदी—हा ! नाथ भीमसेन । हाय ! मेरे अमान के बदला लेने में जीवन को त्यागनेवाले ! जटासुर, बक, हिडिम्ब, किर्मीरक, कीचक एवं जरासन्ध का मारने वाले ! कमठ लाकर (मुझे) प्रसन्न करनेवाले ! मुझे उत्तर दो । (ऐसा कहकर मूर्च्छित हो गई) ।

विशेष—जटासुर—जटासुर एक राक्षस था । जब पाण्डव गन्धमादन पर्वत पर स्वर्ग से अर्जुन के लौटने की प्रतिज्ञा में थे उसी समय यह ब्राह्मण के वेश में उनका अतिथि बना । संयोग से भीम के भी वासस्थान से बाहर निकल जाने पर यह पाण्डवों के दिव्य आभूषणों एवं आयुधों को लेकर तथा युधिष्ठिर, नकुल एवं सहदेव और द्रौपदी को अपनी बाहुओं में लपेट कर वहाँ से भाग चला । रास्ते में दैवयोग से भीम मिल गये । उन्होंने उसे मारकर सबका उद्धार किया था ॥ म० भा० वन० अ० १५६ ॥

बकासुर—लाक्षागृह से वह निकलने के बाद पाण्डव एकचक्रा नगरी में एक वृद्धा विधवा के यहाँ कुछ समय रहे । वहाँ बकासुर नियमतः प्रतिदिन बारी-बारी से एक-एक घर के एक व्यक्ति को खा जाता था । एक दिन उस वृद्धा के एकमात्र पुत्र को बारी थी बकासुर के पास उसका भोजन बन जाने की । उस दुःखी वृद्धा के प्रत्युपकार में पाण्डवों की माँ कुन्ती ने भीम को बकासुर के पास भेजा । भीम ने उसका वध किया था ॥ म० भा० अ० १५६-१६६ ॥

हिडिम्ब—लाक्षागृह के गुप्तमार्ग से अपने सोते माईयाँ एवं जननी कुन्ती को लेकर भीम एक जंगल में गये । वहाँ हिडिम्ब राक्षस अपनी बहन हिडिम्बा के साथ रहता था । मनुष्यों की गन्ध पाकर उसने हिडिम्बा को आदेश दिया—‘इन्हें मारकर लाओ, ताकि मैं अपनी दुःसुप्ता शान्त कर सकूँ ।’ वहन वहाँ पहुँची, जहाँ वे थे । विधि का विधान विलक्षण होता है । वहाँ वह भीम के प्रेम में फँस गयी । देर होने पर हिडिम्ब स्वयं वहाँ पहुँचा । युद्ध में भीम ने इसका वध कर दिया ॥ म० भा० आदि, अ० १५४-१५६ ॥

किर्मीर—किर्मीर बकासुर का भाई था । यह भाई के हत्यारे की खोज में था । एक दिन रात्रि में काम्यक वन में पाण्डवों से इसकी भेंट हो गयी । युद्ध में भीम ने इसे मारा था ॥ म० भा० वन० अ० ११ ॥

काचक—यह विराट् का शाला था । पाण्डव छिपे रूप से विराट् के यहाँ अज्ञात वास कर रहे थे । यह द्रौपदी पर मुग्ध हो गया था । उसने अपनी बहन को बाध्य किया या द्रौपदी को अपने पास भेजने के लिए । भीम रात में द्रौपदी के वेश में इसके पास पहुँचे तथा इसका वध किया था ॥ म० भा० विराट्, अ० १४-२२ ॥

जरासन्ध—देखिये अङ्क १, श्लोक १० की टिप्पणी ॥

सौगन्धिकाहरण—वनवास के समय एक दिन द्रौपदी ने उत्तर-पूर्वी हवा के द्वारा बहा कर लाये गये अतिदिव्य सुगन्ध से भरपूर एक कमल को पाया । उन्होंने भीम से प्रार्थना की बहुत से बैसे फूलों के लिए । भीम हवा के रुख के सहारे बढ़े । अन्त में कुबेर का अलकापुरी की एक वासी से वे बहुत से बैसे कमलों को लाकर द्रौपदी को खुश किये थे ॥ म० भा० वन, अ० १४५-१५४ ॥

कञ्चुकी—(आँख भर कर) हा ! कुमार भीमसेन, धृतराष्ट्र के कुलरूपी कमललता के लिए हिमपात के सदृश ! (ध्वराहट के साथ) धीरज रखें महाराज । भली (चैटी) स्वामिनी को धीरज बँधाओ । महर्षि जी, जरा आप भी महाराज को दादस बँधावें ।

तामेव गदां भ्रातृहस्तादाकृत्य निवार्यमाणोऽपि सन्धित्सुना वासुदेवेन आगच्छागच्छेति सोपहासं भ्रमितगदाक्षङ्करमूर्च्छितगम्भीरवचनध्वनिनाहूयमान कौरवराजेन तृतीयोऽनुजस्ते किरीटी योद्धुमारब्धः । अकृतिनस्तस्य गदाघातान्निधनेमुत्प्रेक्षमाणेन कामपालेनार्जुनपक्षपाती देवकीसूनु रतिप्रयत्नात्स्वरथमारोप्य द्वारकां नीतः ।

युधिष्ठिरः—साधु, मो अर्जुन, तदैव प्रतिपन्ना वृकोदरपदवी गाण्डीवं परिस्थजता । अहं पुनः केनोपायेन प्राणापगममहोत्सवमुत्सहिष्ये ।

द्रौपदी—हा नाथ भीमसेन, न युक्तमिदानीं ते कनीयांसं भ्रातरमशिक्षितं गदाया दारुणस्य शत्रोरभिमुखं गच्छन्तमुपेक्षितम् । (मोहमुपगता) [हा पाह भीमसेन, ण जुहं दाणिं दे कपीअसं मादरं असिक्खिदं गदाए दारुणस्स सत्तुणो अहिमुहं गच्छन्तं उवेक्खिदुंम् ।]

राक्षसः—ततश्चाहं ।

युधिष्ठिरः—भवतु, मुने, किमतः परं श्रुतेन । हा तात भीमसेन, कान्तारव्यसन-बान्धव, हा मच्छरीरस्थिति-विच्छेदकातर, जतुगृहविपत्समुद्रतरणयानपात्र, हा किमौर-हिडिम्बासुरजरासंधविजयैकमल, हा कीचकसुयोधनानुजकमलिनीकुञ्जर, हा द्यूतपण-प्रणयिन्, हा मदाज्ञासम्पादक, हा कौरववनदावानल,

निलंज्जस्य दुरोदरव्यसनिनो वत्स त्वया सा तदा
भक्त्या मे समदद्विपायुतबलेनाङ्गीकृता दासता ।

किं नामापकृतं मयाऽधिकमतस्त्वय्यद्य यदगम्यते
त्यक्त्वाऽनाथमबान्धवं सपदि मां प्रीतिः क्व ते साऽधुना ॥ १७ ॥

चित्रिताम्, सन्धित्सुना = सन्धातुमिच्छुना, भ्रमितेत्यादिः—भ्रमिता या गदा तस्याः झङ्कारेण = ध्वनिना मूर्च्छितम् = अनभिस्पष्टम् यद् गम्भीरं वचनम् = वाक्यम् तस्य ध्वनिना = रवेण, किरीटी = अर्जुनः अकृतिनः = अकुशलस्य, गदा-युद्धे इति शेषः, निधनम् = मरणम्, उत्प्रेक्षमाणेन = सम्भावनां कुर्वन्, कामपालेन = बलरामेण (‘रेवतीरमणो रामः कामपालः’ इति हलायुधः) ॥

युधिष्ठिर इति । कान्तारव्यसनबान्धव—कान्तारे = अरण्ये, अरण्यवासे इत्यर्थः, यानि व्यसनानि = दुःखानि तेषु बान्धवः = सहायकः तत्सम्बुद्धौ, मच्छरीरस्थिति-विच्छेदकातर—मम शरीरस्य = देहस्य स्थितिः = अवस्थानम् तस्य विच्छेदः = विनाशः तस्मात् कातरः = दुःखी तत्सम्बुद्धौ शरीरस्थितिर्जीवनमित्यर्थः, जतुगृहे या विपत् = विपत्तिः सा एव समुद्रः = सागरः, दुस्तरत्वादिति भावः, तस्य तरणे = पारङ्गमने यानपात्रम् = पोतः, (‘यानपात्रं तु पोतः’ इत्यमरः) तत्सम्बुद्धौ किमौर-हिडिम्बासुरजरासन्धेषु विजये = जये एकः = अद्वितीयः मल्लः = मल्लयुद्धकर्ता तत्सम्बुद्धौ कीचकः = विराट्पालः, सुयोधनानुजः = दुःशासनः एव कमलिनी = कमलवल्लरी तस्यै कुञ्जरः = गजराजः तत्सम्बुद्धौ ॥

अन्वयः—हे वत्स, दुरोदरव्यसनिनः, मे, भक्त्या, समदद्विपायुत-बलेन, त्वया, तदा, सा, दासता, अङ्गीकृता, अद्य, मया, त्वयि, अतः, अधिकम्, किं नाम, अपकृतम्, यत्, माम्, अनाथम्, अबान्धवम्, सपदि, त्यक्त्वा, गम्यते; अधुना, ते, सा, प्रीतिः, क्व, (गता) ॥ १७ ॥

राक्षस—(अपने आप) प्राणों को त्याग कराने के लिए धीरज बैठाता हूँ । (प्रकट रूप में) हे भीम के बड़े भाई, एक क्षण तक धैर्य धारण करो । कहानी (अभी) बाकी है ।

द्रौपदी—(होश में आकर) भगवन्, बतलाइये, क्या कहानी बाकी है ?

युधिष्ठिर—(आश्चर्य होकर) महर्षे, कहिये कैसी कहानी बाकी है ?

कञ्चुकी—कहिये, कहिये ।

राक्षस—तब उस वीर क्षत्रिय के मारे जाने तथा वीरों के योग्य गति को प्राप्त करने पर, भाई के वध के शोक से उत्पन्न, पूर्णरूप से बहते हुये अश्रु को पोंछ कर, भाई के वध के दुःख के कारण (अपने धनुष) गाण्डीव को छोड़कर, तत्काल बड़े हुये रक्त की छटा से चित्रित, (भीम की) उसी गदा को भाई (भीम) के हाथ से खींच कर सन्धि कर लेने की इच्छा वाले श्रीकृष्ण के द्वारा रोका जाता हुआ भी, बुमायी गयी गदा को झकार से बड़े हुए गम्भीर वचन की ध्वनि से कौरवराज (दुर्योधन) के द्वारा—‘आओ-आओ’—ऐसा कहकर उपहास पूर्वक ललकारा गया तुम्हारा तीसरा भाई अर्जुन युद्ध करना प्रारम्भ किया । (गदा-युद्ध में) अनिपुण उस (अर्जुन) की गदा-प्रहार से मृत्यु की सम्भावना करनेवाले बलराम के द्वारा अर्जुन के पक्षपाती देवकीपुत्र (श्रीकृष्ण) अत्यन्त प्रयत्न-पूर्वक अपने रथ पर बैठा कर द्वारका ले जाये गये ।

विशेष—अप्रहाय गाण्डीवम्—गाण्डीव को फेंक कर । यदि राक्षस यह कहता कि अर्जुन ने गाण्डीव लेकर दुर्योधन से युद्ध किया, तो किसी को भी यह पूर्ण विश्वास हो जाता कि ‘गाण्डीव को हाथ में लिए हुये अर्जुन को हराना त्रिलोकी के किसी भी योद्धा के वश के बाहर की बात है । निश्चय ही अर्जुन की विजय हुई होगी ।’ यह विश्वास किसी के मन में जमने न पाये, वस इसीलिए गाण्डीव फेंकने की बात कही गई है ।

युधिष्ठिर—वाह ! अर्जुन गाण्डीव का परित्याग करते हुए (तूने) उसी समय (मर कर जाते हुए) भीम के मार्ग का अनुसरण किया । किन्तु मैं किस उपाय से प्राणों के परित्यागरूप महोत्सव के लिये उत्साह करूँगा ?

द्रौपदी—हाय ! नाथ भीमसेन, सम्प्रति गदा (—युद्ध) में अशिक्षित, दारुण शत्रु के समक्ष जाते हुये, अपने लघु भाई की (आपके द्वारा) उपेक्षा करना ठीक नहीं था ।

राक्षस—उसके बाद ।

युधिष्ठिर—वस, मुने, इसके बाद सुनने से क्या लाभ ? हाय ! तात भीमसेन वनवास के दुःख में सहायक, हाय ! मेरे शरीर-परित्याग से डरने वाले, लाक्षागृह की विपत्तिरूप सागर से पार कराने वाले जहाज, हाय ! किमोर, हिडिम्बासुर, जरासन्ध को जीतने में अद्वितीय योद्धा, हाय ! कीचक एवं दुर्योधन के भाई (दुःशासन) रूपी कमलिनो के गजराज, हाय ! जुआ में (मेरी) शर्त को स्वीकार कर लेने वाले, हाय ! मेरी आज्ञा को पूरी करने वाले, हाय ! कौरवरूपीवन के वनाग्नि ।

हे वत्स, जुआ खेलने की लत (Evil habit) वाले मुझ निर्लज्ज के प्रति श्रद्धा के कारण, मतवाले दस हजार हाथियों के बल से सम्पन्न तुम्हारे द्वारा उस समय वह (अपमान पूर्ण) दासभाव

द्रौपदी—(संशामुपलभ्योत्थाय च) महाराज, किमेतद्वर्तते ।

[महाराज, कि एवं बट्टे ।]

युधिष्ठिरः—कृष्णे, किमन्यत् ।

स कीचकनिपूदनो बकहिडिम्बकिर्मीरहा

मदान्धमगधाधिपद्विरदसन्धिभेदाशनिः ।

गदापरिघशोभिना भुजयुगेन तेनान्वितः

प्रियस्तव ममानुजोऽर्जुनगुरुर्गन्तोऽस्तं किल ॥ १८ ॥

द्रौपदी—नाथ भीमसेन, त्वया किल मे केशाः संयमितव्याः । न युक्तं वीरस्य क्षत्रियस्य प्रतिज्ञातं क्षिथिलयितुम् । तत्प्रतिपालय मां यावदुपसर्पामि । (पुनर्मोहमुपगता) [गाह भीमसेन, तूए किल मे केशा संजमिदव्या । ण जुत्तं वीरस्स खत्तिअस्स पडिण्णादं सिडिलेदुम् । ता पडिवालेहि मं जाव उवसप्पामि]

युधिष्ठिरः—(आकाशे) अस्व पृथे, श्रुतोऽयं तव पुत्रस्य समुदाचारः । मामेकमनाथं विलपन्तमुत्सृज्य क्वापि गतः । तात जरासंधश्चक्रो, किं नाम वैपरीत्यमेतावता कालेनाल्पायुषि त्वयि समालोकितं जनेन । अथवा मयैव बहूपलब्धम् ।

शब्दार्थः—हे वत्स = हे वत्स, दुरोदरव्यसनिनः = जुआ (खेलने) की लत (Evil habit) वाले, मे = मुझ, निर्लज्जस्य = निर्लज्ज के प्रति, भक्त्या = श्रद्धा के कारण; समद्विपायुतबलेन = मत-वाले दस हजार हाथियों के बल से सम्पन्न, त्वया = तुम्हारे द्वारा, तदा = उस समय, सा = वह, दासता = दास-भाव, अङ्गीकृता = स्वीकार कर लिया गया था; अद्य = आज, मया = मेरे द्वारा, त्वयि = तुम्हारे विषय में, अतः = इससे, अधिकम् = अधिक, किं नाम = कौन-सा, अपकृतम् = अपकार किश गया ? यत् = जो कि, माम् = मुझ, अनाथम् = अनाथ, अवान्धवम् = स्वजनविरहित को, सपदि = एकाएक, त्यक्त्वा = छोड़ कर, गम्यते = चले जा रहे हो; अधुना = सम्प्रति, ते = तुम्हारी, सा = वह, प्रीतिः = श्रद्धा, क्व = कहाँ, (गता = चली गयी) ? ॥ १७ ॥

निर्लज्जस्येति । हे वत्स = हे प्रियलघुबन्धु, दुरोदरव्यसनिनः—दुष्टमुदरं यस्य तत् दुरोदरम् = धूतम् ('पणे धूते दुरोदरम्' इत्यमरः) तद् व्यसनम् = अपशस्तासक्तिः यस्य विद्यते स तस्य, मे = मम, निर्लज्जस्य—निर्गता = दुरीभूता लज्जा = त्रापा यस्य तादृशस्य, भक्त्या = श्रद्धया, समद्विपायुतबलेन = समदाः = मदमत्ताः ये द्विपाः = हस्तिनः तेषाम् अयुतम् = दससहस्राणि तस्य यद्वलं तत्तुल्यं बल यस्य तेन, त्वया = भीमेनेत्यर्थः, तदा = तदानोम्, धूतपराजयकाले इत्यर्थः, सा = तादृशी, अपमानपूर्णा, अयोग्येति यावत्, दासता = दासभावः, अङ्गीकृता = स्वीकृता, अद्य = अस्मिन् दिने, मया = युधिष्ठिरेण, त्वयि = भीमे, तव विषये इत्यर्थः, अतः = अस्मात्, अधिकम् = प्रबलम्, किं नामेति जिज्ञासायाम्, अपकृतम् = विपरीतमाचरितम् ; यत् = यतः, माम् = युधिष्ठिरम्, अनाथम् = रक्षकविरहितम्, अवान्धवम् = स्वजनशून्यम्, युधिष्ठिरमिति शेषः, सपदि = झटिति, त्यक्त्वा = विहाय, गम्यते = व्रज्यते, परत्र त्वयेति शेषः; अधुना = सम्प्रति, ते = तव, सा = पूर्वानुभूता, अश्रुतपूर्वा चेत्यर्थः, प्रीतिः = श्रद्धा, क्व =

स्वीकार कर लिया गया था। आज मेरे द्वारा तुम्हारे विषय में इससे अधिक कौन-सा अपकार किया गया, जो कि मुझ अनाथ स्वजन-विरहित को एकाएक छोड़कर चले जा रहे हो। सम्प्रति तुम्हारी वह श्रद्धा कहाँ (चली गई) ? ॥ १७ ॥

विशेष—सा त्वया—युधिष्ठिर दुर्योधन के साथ जुआ (Gambling) खेल रहे थे। एक स्थल पर दोनों में बाजी लग गई—‘इस दौंव पर हारनेवाला जीतनेवाले का सपरिवार दास बनेगा।’ युधिष्ठिर दुष्ट दुर्योधन की चाल न समझ सके। परिणामतः उन्हें हार का मुख देखना पड़ा। मीम महाबलशाली थे। वे युधिष्ठिर की अवशा कर शत्रुओं का विनाश कर सकते थे। दास बनने से इनकार कर सकते थे। किन्तु उन्होंने ऐसा किया नहीं। वे बड़े भाई के प्रति श्रद्धालु थे। उनको अवशा को पाप समझते थे। इसी भाव की ओर यहाँ संकेत है ॥ १७ ॥

द्रौपदी—(चेतना में आकर तथा उठकर) महाराज, यह क्या है ?

युधिष्ठिर—द्रौपदि, दूसरा क्या—

कीचक को मारने वाला, बकासुर, हिडिम्बासुर तथा किमौरासुर का वधकर्ता, मतवाले मगधाधिप (जरासन्ध) रूपी गजराज की जोड़ (Joint) भेदने में (In breaking) वज्रतुल्य, परिघ-सदृश गदा से सुशोभित अद्वितीय बाहुयुगल से सुशोभित, वह तुम्हारा प्रिय, मेरा छोटा भाई, अर्जुन का ज्येष्ठ भ्राता, अस्त को प्राप्त हो गया (has departed)—ऐसा प्रवाद है ॥ १८ ॥

विशेष—परिघशोभिना—परिघ एक प्रकार का शस्त्र है, जो अतिमीषण माना जाता था ॥ १८ ॥

द्रौपदी—नाथ मीमसेन, आपको तो मेरे केश (अमो) बाँधने थे। वीर क्षत्रिय को प्रतिज्ञा करके (उसे) शिथिल करना ठीक नहीं। तो प्रतीज्ञा कीजिये मेरी जब तक (मैं आपके) पास पहुँचती हूँ।

युधिष्ठिर—(आकाश की ओर) माँ कुन्ती, अपने पुत्र का यह शिष्टाचार सुना ? विलाप करदे हुए मुझ अकेले अनाथ को छोड़कर कहीं चला गया। तात, जरासन्ध के शत्रु, लोगों ने इतने दिनों में थोड़ी अवस्थावाले तुममें कौन-सा विरोधीभाव (Altogether chenge) देखा था ? अथवा मैंने ही बहुत बार (विरोधीभावों को) देखा था।

कुत्र गतेति शेषः। अत्र विशेषणानां सामान्यकृत्वात्पारकरालङ्कारः। शार्दूलविकीर्णितं छन्दः ॥ १७ ॥

अन्वयः—कीचकनिपूदनः, बकहिडिम्बकिमौरहा, मदान्धमगधाधिपद्रिदसन्धिभेदाशनिः, गदा-परिघशोभिना, तेन, भुजयुगेन, अन्वितः, सः, तव, प्रियः, मम अनुजः, अर्जुनपुत्रः, अस्तम्, गतः, किल ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—कीचकनिपूदनः=कीचक को मारने वाला, बकहिडिम्बकिमौरहा=बकासुर, हिडिम्बासुर, किमौरासुर का वधकर्ता, मदान्धमगधाधिपद्रिदसन्धिभेदाशनिः=मतवाले मगधाधिप (जरासन्ध) रूपी गजराज का जोड़ भेदने में वज्रतुल्य, गदापरिघशोभिना=परिघ सदृश गदा से सुशोभित, तेन=उस, अद्वितीय, भुजयुगेन=बाहुयुगल से, अन्वितः=सुशोभित, सः=वह, तव=तुम्हारा, प्रियः=प्रिय, मम=मेरा, अनुजः=छोटा भाई, अर्जुनपुत्रः=अर्जुन का ज्येष्ठ भ्राता, अस्तम्=अस्तको, गतः=प्राप्त हो गया, किल=ऐसा प्रवाद है ॥ १८ ॥

स कीचकेति। कीचकनिपूदनः—कीचकस्य=एतन्नाम्नो राक्षसस्य निपूदनः=विनाशकः, बक-

दत्त्वा मे करदीकृताखिलनृपां यन्मेदिनीं लज्जसे
 द्यूते यच्च पणीकृतोऽपि हि मया न क्रुध्यसि प्रीयसे ।
 स्थित्यर्थं मम मत्स्यराजभवने प्राप्तोऽसि यत्सूदतां
 वत्सैतानि विनश्वरस्य सहसा दृष्टानि चिह्नानि ते ॥ १९ ॥

मुने, किं कथयसि । (तस्मिन्कौरवभीमयोः ६।१६ इत्यादि पठति)

राक्षसः—एवमेतत् ।

युधिष्ठिरः—धिगस्मद्भागधेयानि । भगवन्कामपाल, कृष्णाग्रज, सुभद्राभ्रातः,

ज्ञातिप्रोतिर्मनसि न कृता क्षत्रियाणां न धर्मो

रूढं सख्यं तदपि गणितं नानुजस्यार्जुनेन ।

तुल्यः कामं भवतु भवतः शिष्ययोः स्नेहबन्धः

कोऽयं पन्था यदसि विमुखो मन्दभाग्ये मयीत्यम् ॥ २० ॥

(द्रौपदीमुपगम्य) अथि पाञ्चालि, उत्तिष्ठ, समानदुःखावेवावां भवावः । मूर्च्छया किं
 मामेवमतिसंधत्से ।

हिडिम्बकिमीरहा—वकहिडिम्बकिमीरान् हन्तीति सः, मदन्धेत्यादिः—मदान्धः=मदमत्तः यः मग-
 धाधिपः=मगधदेशशासकः, जरासन्धः इत्यर्थः, स एव द्विरदः=गजराजः तस्य सन्धेः=सन्धानस्थलस्य
 भेदे=विदारणे अशनिः=वज्रतुल्यः, गदापरिघशोभिना—गदा परिघ इव तेन शोभिना=सुशोभितेन,
 तेन=अद्वितीयेनेत्यर्थः, भुजयुगेन=बाहुयुगलेन, अन्वितः=युक्तः, सः=स्वकर्मभिः प्रसिद्धः इत्यर्थः,
 तव=भवत्याः, प्रियः=अमोघसम्पादकत्वादमोघः, मम=युधिष्ठिरस्येत्यर्थः, अनुजः=लघुभ्राता,
 अर्जुनगुरुः=अर्जुनश्रेष्ठः, अस्तम्=अदर्शनम्, विनाशमिति यावत्, गतः=किलेति प्रवादे ('वार्ता-
 सम्भाव्ययोः किल' इत्यमरः) । अत्रोपमालङ्कारः । पृथ्वी लन्दः । तल्लक्षणम्—'जसौ जसयला वसु-
 ग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः ॥' १८ ॥

अन्वयः—करदीकृताखिलनृपाम्, मेदिनीम्, मे, दत्त्वा, यत्, लज्जसे; मया, द्यूते, पणीकृतः,
 अपि, यत्, च, न, क्रुध्यसि; हि, प्रीयसे; मम, स्थित्यर्थम्, मत्स्यराजभवने, यत्, सूदताम्, प्राप्तः,
 असि; एतानि, हे वत्स, विनश्वरस्य, ते, चिह्नानि, सहसा, दृष्टानि ॥ १९ ॥

शब्दार्थः—करदीकृताखिलनृपाम्=जिसके समस्त राजा कर देनेवाले (अर्थात् अधीन) बना
 दिये गये थे ऐसी, मेदिनीम्=पृथ्वी को, मे=मुझे, दत्त्वा=दे करके, समर्पित करके, यत्=जो कि,
 लज्जसे=लज्जित हो रहे थे; मया=मेरे द्वारा, द्यूते=जुए में, पणीकृतः=फड़ पर लगा दिये जाने
 पर, दौव पर रख दिये जाने पर, अपि=मो, यत्=जो कि, न=नहीं; क्रुध्यसि=कुपित हुए, हि=
 प्रत्युत्, प्रीयसे=प्रसन्न हुए थे; मम=मेरे, स्थित्यर्थम्=सम्मान के लिए, मत्स्यराजभवने=मत्स्य
 देश के अधिपति (विराट) के महल में, यत्=जो कि, सूदताम्=रसोश्चोपन को, प्राप्तः=प्राप्त
 किये, असि=थे; एतानि=ये सब, हे वत्स=हे प्रिय बन्धु, विनश्वरस्य=नष्ट होनेवाले, ते=
 तुम्हारे, चिह्नानि=लक्षण, सहसा=एकाएक, दृष्टानि=दिखाई पड़े थे ॥ १९ ॥

विशेष—वैपरीत्यम्—विरोधीभाव । व्यक्ति की मृत्यु जब नजदीक आ जाती है तो उसमें बहुत से परिवर्तन हो जाते हैं । बदमाश व्यक्ति सोधा बन जाता है और कर्कश दयालु आदि ।

जिसके समस्त राजा कर देनेवाले (Giver of tribute) (अर्थात् अधीन) बना दिये गये थे—ऐसी पृथिवी को मुझे देकर के (भी) जो कि लज्जित हो रहें थे; मेरे द्वारा जुर में दौब पर रख दिये जाने पर भी जो कि नहीं कुपित हुए, प्रत्युत प्रसन्न हुए थे, मेरे सम्मान के लिए (अर्थात् मेरे वचन को रखने के लिए) मत्स्य देश के अधिपति (विराट्) के महल में जो कि रसोद्घोषन को प्राप्त हुए थे (अर्थात् रसोद्घोषन बने थे),—ये सब, हे प्रिय बन्धु, नष्ट होने वाले तुम्हारे लक्षण सहसा देखे गये थे ॥ १६ ॥

मुने, क्या कह रहे हो ? ('दुर्योधन एवं भीम के उस' ६।१६ इत्यादि को पढ़ता है) ।

राक्षस—यह ऐसा ही है (अर्थात् यही बात है) ।

युधिष्ठिर—हमारे माग्य को धिक्कार है । भगवन् बलराम, कृष्ण के बड़े भाई, सुमद्रा के भ्राता !

विशेष—युधिष्ठिर ने बलराम के लिए इन विशेष शब्दों का प्रयोग कर यह सूचित किया है कि दुर्योधन की अपेक्षा में आपका अधिक नजदीकी (Related) हैं । अतः मेरे प्रति आपका यह व्यवहार उचित नहीं है ।

(आपके द्वारा) सम्बन्धियों का प्रेम चित्त में नहीं किया गया (अर्थात् सम्बन्धियों के प्रेम का मन में विचार नहीं किया गया); शत्रुओं का धर्म (चित्त में) नहीं (किया गया); छोटे भाई (श्रीकृष्ण) का अर्जुन के साथ बढ़ो हुई वह मित्रता भी नहीं गिनी गई (समझी गई); दोनों शिष्यों में स्नेहभाव मले ही समान हो, (किन्तु) यह कौन-सा मार्ग (तरीका) है, जो कि मुझ अमागे से इस तरह मुँह मोड़े हुए हो ? ॥ २० ॥

विशेष—ज्ञातिप्रीतिः—बलराम की बहन सुमद्रा का विवाह अर्जुन से हुआ था । इस तरह वे पाण्डवों के सगे-सम्बन्धी थे ।

शिष्ययोः—माम एवं दुर्योधन—दोनों ही बलराम से गदा चलाने की विद्या सीखें थे । वे दोनों ही उनके शिष्य थे ॥ २० ॥

(द्रौपदी के पास जाकर) अरो द्रौपदी, उठ । हम दोनों समान दुःखवाले होंगे । मूर्च्छा के द्वारा (अर्थात् मूर्च्छित होकर) क्यों मुझे इस तरह ठग रही हो ?

विशेष—अतिसन्धत्से—ठग रही हो, धोखा दे रही हो । भाव यह है कि जब तुम मूर्च्छित हो जाती हो तब चेतनाशून्य होने के कारण तुम तो दुःख मुक्त हो जाती हो । अतः चेतना में आओ । हम दोनों ही समान रूप से कष्ट का अनुभव करें ।

दवेति । करदीकृताः खलनृपाम्—न करदाः = न शुल्कदाः अकरदाः, अकरदाः करदाः संपद्यमाना कृताः इति करदीकृताः = अधीनोक्तताः इत्यर्थः अखिलाः = समग्राः नृपाः = राजानः यस्याः यस्यां वा ताम्, मेदिनीम् = पृथ्वीम्, मे = ममम्, दत्त्वा = समर्प्य, यत् लज्जसे = त्रपसे, श्रेष्ठभ्रात्रे न मया बहु समर्पितमिति मत्वा त्रपसे इति भावः; मया = युधिष्ठिरेण, द्यूते = अशक्रोढायाम्, पणीकृतः = मूल्यांकृतः, अपि = च, यत् न क्रुध्यसि = न कुप्यसि, हि = प्रत्युत, प्रीयसे = प्रीतो भवसि, वर्तमानसामाप्ये

द्रौपदी—(लब्धसंज्ञा) वधनातु नाथो दुर्योधनरुधिरार्द्रेण हस्तेन दुःशासनविमुक्तं मे केशहस्तम् । हञ्जे बुद्धिमतिके, तव प्रत्यक्षमेव नाथेन प्रतिज्ञातम् । (कञ्चुकिनमुपेत्य) आर्य, किं संदिष्टं तावन्मे देवेन देवकीनन्दनेन पुनरपि केशरचनामारभ्यतामिति । तदुपनय मे पुष्पदामानि । विरचय तावत्कवरीम् । कुरु भगवतो नारायणस्य वचनम् । न खलु सोऽलीकं संदिशति । अथवा किं मया संतप्तया भणितम् । अचिरगतमायं पुत्रमनुगमिष्यामि । (युधिष्ठिरमुपगम्य) महाराज, आदीपय मे चिताम् । त्वमपि क्षत्रधर्ममनुवर्तमान एव नाथस्य जीवितहरस्याभिमुखो भव । अथवा यत्ते रोचते ।

[वन्धेदु पाहो दुज्जोहणरुधिरार्द्रेण हस्तेण दुस्मासणविमुक्तं मे केशहस्तम् । हञ्जे बुद्धिमदिए, तव पच्चवखं एव पाणेण पडिण्णादम् । अज्ज, किं संदिट्ठं दाव मे देवेण देवकीनन्दणेण पुणो वि केशरअणा आरम्मीअदु त्ति । ता उवणेहि मे पुष्पदामाई । विरएहि दाव कवरीम् । करेहि भवदो पाराअणस्य वअणम् । ण खलु सो अलीअं संदिसदि । अहवा किं मए संतत्ताए भणितम् । अचिरगदं अज्जउत्तं अनुगमिस्सम् । महाराअ, आदीवज मे चिदाम् । तुमं वि खत्तधम्मं अनुवट्ठन्तो एव पाहस्स जीविदहरस्स अहिमुहो होहि । अहवा जं दे रोअदि ।]

युधिष्ठिरः—युक्तमाह पाञ्चाली । कञ्चुकिन्, क्रियतामियं तपस्विनी चिता-
संविभागेन सह्यवेदना । ममापि सज्जं धनुरुपनय । अलमथवा धनुषा ।

तस्यैव देहरुधिरोक्षितपाटलाङ्गी-

मादाय संयति गदामपविध्य चापम् ।

भ्रातृप्रियेण कृतमद्य यदर्जुनेन

श्रेयो ममापि हि तदेव कृतं जयेन ॥ २१ ॥ ५

लट् ; मम=मे युधिष्ठिरस्य, स्थित्यर्थम्=सम्मानार्थम् वासार्थं वा, मत्स्यराजभवने—मत्स्यराजस्य=मत्स्यदेशाधिपस्य विराजः इत्यर्थः, भवने=प्रासादे, गृहे इत्यर्थः, यत्, सूदताम्=सूपकरताम्, ('सूदस्तु सूपवत्सूपकारेऽपि व्यज्जनेऽपि च' इति विश्वः), प्राप्तः=यातः, असि; एतानि=श्मानि, हे वत्स=हे प्रिय, विनश्वरस्य=विनाशशीलस्य, ते=तव, अल्पायुस्तत्रेत्यर्थः, चिह्नानि=लक्षणाणि, सहसा=अटिति, दृष्टानि=अवलोकितानि । तथा च मम भाग्यदोषादुपुणा एव ते दोषा वृत्ता इति भावः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ २१ ॥

अन्वयः—ज्ञातिप्रीतिः, मनसि, न, कृता; क्षत्रियाणाम्, धर्मः, (मनसि), न, (कृतः); अनुजस्य, अर्जुनेन, रूढम्, तत्, सख्यम्, अपि, न, गणितम्; शिष्ययोः, स्नेहबन्धः, कामम्, तुल्यः भवतु; अयम्, कः, पन्थाः, यद्, मयि, मन्दभाग्ये, इत्यम्, विमुखः, असि ॥ २० ॥

शब्दार्थः—ज्ञातिप्रीतिः=सम्बन्धियों का प्रेम, मनसि=चित्त में, न=नहीं, कृता=किया गया, क्षत्रियाणाम्=क्षत्रियों का, धर्मः=धर्म, (मनसि=चित्त में), न=नहीं, (कृतः=किया गया); अनुजस्य=छोटे भाई का, अर्जुनेन=अर्जुन के साथ, रूढम्=बढी हुई, तत्=वह, सख्यम्=सखाभाव, मित्रता, अपि=भी, न=नहीं, गणितम्=गिनी गई, समक्षी गई, शिष्ययोः=दोनों

द्रौपदी—(होश में आकर) स्वामी, दुर्योधन के रक्त से गीले हाथ के द्वारा दुःशासन के द्वारा खोले गये हमारे केश को बाँधे । सखि बुद्धिमतिके, तुम्हारे सामने ही स्वामी (भीम) ने प्रतिज्ञा की थी । (कञ्चुकी के पास जाकर) आदरणीय, अच्छा, भगवान् देवकी-पुत्र (श्रीकृष्ण) ने मेरे लिये क्या सन्देश भेजा या कि फिर से केशों का प्रसाधन आरम्भ कर दिया जाय ? तो लाकर दो मुझे फूल की मालाओं को । रच कर बनाओ मेरा जुड़ा (Braid) । पूरा करो भगवान् नारायण का वचन । अवश्य ही वे झूठा सन्देश नहीं भेजते हैं । अथवा सन्तप्त मैंने क्या कह दिया ? अभी—अभी गये हुए आर्यपुत्र (भीमसेन) के पीछे-पीछे जाऊँगी । (युधिष्ठिर के पास जाकर) महाराज, जलाओ मेरी चिता । आप भी क्षत्रिय-धर्म का अनुसरण करते हुए ही स्वामी (भीम) के प्राणों के हरणकर्ता का मुकाबला कीजिये । अथवा जैसी आपकी रुचि (वैसा कीजिये) ।

युधिष्ठिर—ठीक कहा पाट्टालराजपुत्री (द्रौपदी) ने । कञ्चुकिन्, चिता देकर यह बेचारी (द्रौपदी) पीढा सहन करने के योग्य कर दो जाय (अर्थात् चिता देकर इसके दुःख को समाप्त करा दिया जाय) । मेरा भी धनुष तैयार करके लाओ । अथवा धनुष की आवश्यकता नहीं है ।

उस (भीम) के ही शरीर के रक्त से सिक्त (अतः) लाल अङ्गवाली गदा को लेकर, धनुष का परित्याग कर, भाई के प्रेम से युक्त अर्जुन ने संग्राम में जो आग्रह किया है वही मेरे लिये भी, अवश्य ही, कल्याणकर है, विजय से बस (अर्थात् अब विजय की आवश्यकता नहीं) ॥ २१ ॥

शिष्यो से, स्नेहबन्धः=स्नेहभाव, कामम्=भले ही, तुल्यः=समान, भवतु=हो; अथम्=यह, कः=कौन-सा, पन्थाः=मार्ग है, यत्=जो कि, मयि=मुझ, मन्दभाग्ये=अभागे से, इत्यम्=इस तरह, विमुखः=मुँह मोड़े हुए, असि=हो ॥ २० ॥

ज्ञातिप्रीतिरिति । ज्ञातिप्रीतिः—ज्ञातेः=स्वजनस्य, प्रीतिः=प्रेम, सुमद्राभ्रातृत्वेन विशेषणत् सुमद्राद्वारा ज्ञातिप्रीतिः प्रदर्शिता, मनसि=चेतसि, न कृता=न आनीता; अत्रियाणाम्=राजान्यानाम्, धर्मः=समोचीनाचारः, मनसि न कृतः; अनुजस्य=स्वभ्रातुः श्रीकृष्णस्य, अर्जुनेन=मम भ्रातुः किरिदिना, रूढम्=प्रबुद्धम्, तत्=तादृशम्, जगत्प्रसिद्धमित्यर्थः, सख्यम्=मित्रता, अपि=च, न=नहि, गणितम्=चिन्तितम्, विचारितमिति यावत्; शिष्ययोः=भीमसुयोधनयोरित्यर्थः, स्नेह-बन्धः=कृपाबन्धः, कामम्=यद्यपि, तुल्यः=समानः, भवतु=स्यात्; अथम्=एवः, कः=कोदृशः, पन्थाः=मार्गः, यत्=यस्मात्, मयि, कीदृशे इत्याह—मन्दभाग्ये=भाग्यहीने, युधिष्ठिरे इति ज्ञेयः, इत्यम्=अनेन प्रकारेण, विमुखः=विगरीत इत्यर्थः, असि=वर्तसे, अत्र मन्दः कान्ता छन्दः ॥ २० ॥

द्रौपदीति । दुर्योधनरुधिराद्रेण—दुर्योधनस्य रुधिरात्=रक्तेन आर्द्रः=विलज्जः तेन, वैशस्तम्=केशपाशम् । पुष्पदामानि=प्रसूनमालाः । कवरीम्=चूडाम्, अलीकम्=असत्यम् ॥

अन्वयः—तस्य, एव, देहरुधिरक्षितपाटलाङ्गीम्, गदाम्, आदाय, चापम्, अपविध्य, भ्रातृ-प्रियेण, अर्जुनेन, संयति, यत्, अथ, कृतम्, तत्, एव, मम, अपि, हि, श्रेयः, जयेन, कृतम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थः—तस्य=उस (भीम) के, एव=ही, देहरुधिरक्षितपाटलाङ्गीम्=शरीर के रक्त से सिक्त (अतः) लाल अङ्गवाली, गदाम्=गदा को, आदाय=लेकर, चापम्=धनुष को, अपविध्य=त्याग कर, भ्रातृप्रियेण=भाई के प्रेम से युक्त, अर्जुनेन=अर्जुन ने, संयति=संग्राम में, यत्=जो,

राक्षसः—राजन्, रिपुजयविमुखं ते यदि चेतस्तदा यत्र तत्र वा प्राणत्यागं कुरु ।
 बुधा तत्र गमनम् ।

कञ्चुकी—धिङ् मुने, राक्षसदृशं हृदयं भवतः ।

राक्षसः—(समयं स्वगतम्) किं ज्ञातोऽहमनेन । (प्रकाशम्) भोः कञ्चुकिन्, तयोर्ग-
 दया खलु युद्धं प्रवृत्तमर्जुनदुर्योधनयोः । जानामि च तयोर्गदायां भुजसारम् ।
 दुःखितस्य पुनरस्य राजर्षेपरमनिष्ठश्रवणं परिहरन्नेवं ब्रवीमि ।

युधिष्ठिरः—(वाष्पं विसृजन्) साधु महर्षे, साधु । सुस्निग्धमभिहितम् ।

कञ्चुकी—महाराज, किं नाम शोकान्धतया देवेन देवकल्पेनापि प्राकृतेनेव
 स्यत्यते क्षात्रधर्मः ।

युधिष्ठिरः—आर्य जयधर,

शक्ष्यामि नो परिघपीवरबाहुदण्डौ

वित्तेशशक्रपुरदर्शितवीर्यसारौ ।

भीमार्जुनौ क्षितितले प्रविचेष्टमानौ

द्रष्टुं तयोश्च निधनेन रिपुं कृतार्थम् ॥ २२ ॥

अद्य=आज, कृतम्=किया है, तत्=वह, एव=ही, मम=मेरे लिए, अपि=भी, हि=अवश्य
 ही, श्रेयः=कल्याणकर है, जयेन=विजय से, कृतम्=वस ॥ २१ ॥

तस्यैवेति । तस्य=मीमस्येत्यर्थः, एव, देहरिधरोक्षितपाटलाङ्गीम्—देहस्य=शरीरस्य रिधरेण=
 रक्तेन उक्षितम्=सिक्तम् अतः पाटलम्=रक्तवर्णम् अङ्गम्=अवयवः, शरीरमिति यावत्, यस्याः सा
 ताम्, गदाम्=भीमायुधमूर्ता गदामित्यर्थः, आदाय=गृहीत्वा, चापम्=धनुः, अपविध्य=परित्यज्य,
 भ्रातृप्रियेण—भ्राता=सहोदरः प्रियः=अमीप्सितः यस्य सः तेन, अर्जुनेन=किरीटिना, संयति=
 युद्ध, यत्=यदाचरणमिति भावः, अद्य=अधुना, कृतम्=विहितम्, तत्=तादृशाचरणम्, एवेति
 दाढ्यं, मम=श्रेष्ठभ्रातुः युधिष्ठिरस्य, अपि=च, होति निश्चये, श्रेयः=कल्याणकाम्, जयेन=
 विजयेन, कृतम्=अलम् । जयस्य न वर्तते आवश्यकताऽधुनेति भावः । अत्र काव्यलिङ्गमलङ्कारः ।
 वसन्ततिलका छन्दः ॥ २१ ॥

अन्वयः—परिघपीवरबाहुदण्डौ, वित्तेशशक्रपुरदर्शितवीर्यसारौ, क्षितितले, प्रविचेष्टमानौ, तौ,
 भीमार्जुनौ; च, तयोः, निधनेन, कृतार्थम्, रिपुम्, द्रष्टुम्, नो, शक्ष्यामि ॥ २२ ॥

शब्दार्थः—परिघपीवरबाहुदण्डौ=व्योढाके सदृश मोटे बाहुदण्ड वाले, वित्तेशशक्रपुरदर्शित-
 वीर्यसारौ=कुवेर तथा इन्द्र की नगरी में बल की विशिष्टता को प्रदर्शित कर चुके हुए, क्षितितले=
 मृतल पर, प्रविचेष्टमानौ=छटपटाते हुए, तौ=उन, भीमार्जुनौ=भीम एवं अर्जुन को, च=तथा,
 तयोः=उन दोनों को, निधनेन=मृत्यु से, कृतार्थम्=कृत-कृत्य, रिपुम्=शत्रुको, द्रष्टुम्=देखने में,
 नो=नहीं, शक्ष्यामि=समर्थ होऊँगा ॥ २२ ॥

शक्ष्यामीति । परिघपीवरबाहुदण्डौ--परिघवत्=अर्गलावत् पीवरी=पुष्टो बाहुदण्डौ=

पद्योऽङ्कः

२८५

राक्षस—राजन्, यदि जापका चित्त शत्रु के ऊपर विजय करने से विमुख है, तो जहाँ कहीं प्राण परित्याग कर लीजिये। वहाँ जाना व्यर्थ है।

कञ्चुकी—मुने, धिक्कार है, राक्षस के (वचन) सदृश आपका वचन है।

राक्षस—(भय के साथ, अपने आप) क्या इसने मुझे जान लिया ? (प्रकट रूप से) हे कञ्चुकिन्, उन अर्जुन एवं दुर्योधन का गदा-युद्ध तो प्रारम्भ हुआ था। उन दोनों के, गदा में, मुज-बल को जानता हूँ। अतः इस दुःखित राजर्षि को दूसरे अनिष्ट के श्रवण से बचाते हुए ही ऐसा कह रहा हूँ (श्रयात् गदा-युद्ध में निश्चय ही अर्जुन मारा जायगा। इन्हें अभी तक भीम का समाचार मिला है। वहाँ जाने पर अर्जुन की मृत्यु की खबर मिलेगी। वस, इसी दुःखद वृत्तान्त को बचाते हुए ही ऐसा कह रहा हूँ)।

युधिष्ठिर—(आँध्र बहाते हुए) बाह ! महर्षे, बाह ! हितकर (वचन) कहा गया है (आपके द्वारा)।

कञ्चुकी—महाराज, क्या देवतुल्य महाराज (आप) भी साधारण मनुष्यों की भाँति शोक से कितं व्यविमूढ़ होने के कारण क्षत्रिय धर्म का परित्याग करने जा रहे हैं ?

युधिष्ठिर—आर्य जयन्धर,

ब्योड़ा (Bolt, Staff) के सदृश मोटे बाहुदण्ड वाले, कुबेर तथा इन्द्र की नगरी में बल की विशिष्टता को प्रदर्शित कर चुके हुए, भूतल पर छटपटाते हुए, उन भीम एवं अर्जुन को तथा उन दोनों की मृत्यु से कृत-कृत्य (Obtained with goal, filled with joy) शत्रु को देखने में नहीं समर्थ हो सकूँगा ॥ २२ ॥

विशेष—परिघ—लोहे की छड़ या लकड़ी का मूसल जो किवाड़ बन्द करने के लिए भीतर की ओर से प्रयुक्त किया जाता है, उसे परिघ कहते हैं।

वित्तेशशक्रपुर—पीछे १७ वें श्लोक के पूर्व के गद्य के व्याख्यान के अवसर पर सौगन्धिका-हरण की चर्चा आई है। यह कमल द्रौपदी की प्रार्थना पर भीम कुबेर को अलकापुरी की वापी से लड़ कर जबर्दस्ती लाये थे। उसी की ओर यहाँ संकेत है। अर्जुन भगवान् ने शङ्कर को प्रसन्न कर तथा उनसे पाशुपतास्त्र पाकर लौटते समय स्वर्ग में अपने पिता इन्द्र से दिव्यास्त्रों की शिक्षा ली तथा दक्षिणा में उनके शत्रुओं—निवातकवच तथा कालकेय नामक राक्षसों—का वध किया था। यह कथा महाभारत, वनपर्व, अध्याय १५५-१७१ में आती है ॥ २२ ॥

भुजदण्डौ ययोस्तौ, वित्तेशेत्यादिः—वित्तेशः=कुबेरः शक्रः=इन्द्रः तयोः पुरे=नगर्याम्, दर्शितः=प्रदर्शितः वीर्यसारः=बलतत्त्वम् याभ्यां तौ, क्षितितले=भूतले, प्रविचेष्टमानौ=छुठन्तौ, तौ=प्रियौ विख्यातौ चेत्यर्थः, च=तथा, तयोः=भीमार्जुनयोः, निधनेन=मृत्युना, मृत्युपाश्वोपगमनेनेत्यर्थः, कृतार्थम्—कृतः=सम्पादितः अर्थः=प्रयोजनम्, येन सः तम्, कृतकृत्यमित्यर्थः, रिपुम्=शत्रुम्, द्रष्टुम्=अवलोकयितुम्, नो=नहि, शक्यामि=समर्थो भविष्यामि। अतः यत्र तत्र मरणेच्छा रोचते ममम्। अत्र यथासंख्यमलङ्कारः। वसन्ततिलका छन्दः ॥ २२ ॥

अयि पाञ्चालराजतनये मदुर्नयप्राप्तशोच्यदशे, यथा संदीप्यते पावकस्तथा सहितावेव बन्धुजनं संभावयावः ।

द्रौपदी—आर्य, कुरु दारुसंचयम् । प्रज्वाल्यतां चिता । त्वरते मे हृदयं नाथं प्रेक्षितुम् । (सर्वतोऽवलोक्य) कथं न कोऽपि महाराजस्य वचनं करोति । हा नाथ भीमसेन, तदेवेदं राजकुलं त्वया विरहितं परिजनोऽपि सांप्रत परिहरति ।

[अञ्ज, करोह. दारुसंचयम् । पञ्जलीअदु चिदा । तुवरदि मे हिअअं पाधं पेक्खिदुम् । कहं ण को वि महाराअस्स वअणं करोदि । हा णाह भीमसेण, तं एव पदं राअउल तुए विरहिदं पडिअणो वि संपदं परिहरदि ।]

युधिष्ठिरः—महर्षे, न कश्चिच्छृणोति तावदावयोर्वचनम् । तदिन्धप्रदानेन प्रसादः क्रियताम् ।

राक्षसः—मुनिजनविरुद्धमिदम् (स्वगतम्) पूर्णो मे मनोरथः । यावदनुपलक्षितः समिन्धयामि वह्निम् । (प्रकाशम्) राजन्, न शक्नुमो वयमिह स्थातुम् । (इति निष्क्रान्तः)

युधिष्ठिरः—कृष्णे, न कश्चिदस्मद्वचनं करोति । भवतु । स्वयमेवाहं दारुसंचयं कृत्वा चितामादीपयामि ।

द्रौपदी—त्वरतां त्वरतां महाराजः । [तुवरदु तुवरदु महाराओ ।]

(नेपथ्ये कलकलः)

द्रौपदी—(सभयमाकर्ण्य) महाराज, कस्याप्येष बलदर्पितस्य विषमः शङ्खनिर्घोषः श्रूयते । अपरमप्यप्रियं श्रोतुमस्ति निबन्धस्ततो विलम्ब्यते ।

[महाराज, कस्स वि एसो बलदाप्पदस्स विसमो सङ्खणिग्घोसो सुणोअदि । अवरं वि अप्पिअं सुणिदुं आत्थ णिव्वन्धो तदो विलम्बोअदि ।]

युधिष्ठिरः—न खलुः विलम्ब्यते । उत्तिष्ठ ।

(इति सर्वे परिक्रामन्ति)

युधिष्ठिरः—अयि पाञ्चालि, अम्बायाः सपत्नीजनस्य च किञ्चित्संदिश्य निवर्तय परिजनम् ।

द्रौपदी—महाराज, अम्बायै एवं संदेक्षयामि—यः स बकहिडिम्बकिर्मीरजटा-सुरजरासधविजयमल्लस्ते मध्यमपुत्रः स मम हताशायाः पक्षपातेन परलोकं गत इति । [महाराज, अम्बाए एव्वं संदिसिस्सं—‘जो सो वअहिडिम्बकिर्मीरजटासुर जरासंधविजय-मल्ला दे मज्झमपुत्तो सो मम हदासाए पक्खवादेण परलोअं गदो’ ति ।]

युधिष्ठिरः—भद्रे बुद्धिमतिके, उच्यतामस्मद्वचनादम्बा ।

येनासि तत्र जतुवेश्मनि दीप्यमाने

निर्वाहिता सह सुतैर्भुजयोर्बलेन ।

तस्य प्रियस्य बलिनस्तनयस्य पाप-

माख्यामि तेऽम्ब कथयेत्कथमोदगन्धः ॥ २३ ॥

पद्योऽङ्कः

२८७

मेरी दुर्नीति के कारण शोचनीय दशा को प्राप्त करने वाली, अग्नी पाञ्चाळ नरेश की पुत्री, ज्यों ही अग्नि-प्रज्वलित हो तभी (हम दोनों) साथ ही बन्धुजनों का (अनुगमन के द्वारा) सम्मान करें।
द्रौपदी—आर्य, लकड़ी इकट्ठी कीजिए। चिता जलाई जाय। स्वामी भीमसेन का देखने के लिए मेरा हृदय उतावला हो रहा है। (चारों ओर देखकर) क्या कोई भी महाराज के वचन को नहीं सुन रहा है ? हाय स्वामी भीमसेन। वही यह राजकुल है, (किन्तु) आज आप से रहित होने से इसको सेवकवर्ग भी छोड़ दे रहा है।

युधिष्ठिर—महर्षे, अब हम लोगों के वचन को कोई नहीं सुन रहा है। तो (आप ही) श्रवण देकर (हम लोगों पर) कृपा करें।

राक्षस—यह (कार्य) मुनिजनों के विपरीत है। (अपने आप) मेरी अमिठाषा पूरी हो गई। जब तक श्रद्धाश्रय होकर आग को खूब प्रज्वलित करता हूँ (प्रकट रूप में) राजन्, हम यहाँ नहीं ठहर सकते। (ऐसा कह कर निकल गया)।

युधिष्ठिर—द्रौपदी, कोई भी हम लोगों की बात नहीं पूरी कर रहा है। अच्छा, स्वयं ही मैं लकड़ी इकट्ठी करके चिता को प्रज्वलित करता हूँ।

द्रौपदी—जल्दी करें, जल्दी करें, महाराज।

(पदों के पीछे कोलाहल)

द्रौपदी—(मय पूर्वक सुनकर) महाराज, बल से गवाँले किसी की यह भीषण शंख-ध्वनि सुनाई पड़ रही है। (यदि) दूसरे भी श्रमिय को सुनने का हठ हो तो विलम्ब किया जाय।

विशेष—अपरमपि—यहाँ अर्जुन की मृत्यु की ओर संकेत है।

युधिष्ठिर—नहीं विलम्ब किया जा रहा है। उठो।

(इस तरह सभी घूमते हैं)

युधिष्ठिर—अर्य द्रौपदी, माँ (कुन्ती) तथा (अपने) सौतेल (Cowives) को कुछ सन्देश देकर सेवकों को लौटा दो।

द्रौपदी—महाराज, माताजी के लिए ऐसा सन्देश ढूँगी—‘बकासुर, हिल्मिवासुर, किमारासुर तथा जटासुर एवं जरासन्ध को (कुशती में) जोतने वाला जो आपका मझला पुत्र या वह मुझ आशामुख (अमागिनी) के प्रति पक्षपात करने के कारण परलोक चला गया।’

युधिष्ठिर—मझे बुद्धिमतिके, मेरी ओर से माँ (कुन्ती) को कहना—

जिसके द्वारा वहाँ लाह के घर के प्रज्वलित होने पर बाहुओं के बल से पुत्रों के साथ बाहर निकाली गयी थी, उस (तुम्हारे) प्रिय बलशाली पुत्र का मरण तुझे बतला रहा हूँ। (मेरे अतिरिक्त) दूसरा ऐसा कैसे कहेगा ? ॥ २३ ॥

अन्वयः—येन, तत्र, जनुवेशमनि, दीप्यमाने, (सति), भुजयोः, बलेन, सुतैः, सह, निर्वाहिता, असि, तस्य, (ते), प्रियस्य, बलिनः, तनयस्य, पापम्, ते, आख्यामि, अन्यः, ईदृक्, कथम् कथयेत् ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—येन मां निजके द्वारा जनुवेशमनि, दीप्यमाने, (सति), भुजयोः बलसे, बलशाली पुत्रों के साथ, सह, निर्वाहिता, असि, तस्य, (ते), प्रियस्य, बलिनः, तनयस्य, पापम्, ते, आख्यामि, अन्यः, ईदृक्, कथम् कथयेत् ॥ २३ ॥

आर्यं जयंधर, त्वयापि सहदेवसकाशं गन्तव्यम् । वक्तव्यश्च तत्रभवान्पादु-
कुलवृहस्पतिर्माद्रेयः कनीयानस्माकं सकलकुरुकुलकमलाकरदावानलो युधिष्ठिरः
परलोकमभिप्रस्थितः प्रियानुजमप्रतिकूलं सततमाशंसनीयमसंमूढं व्यसनेऽभ्युदये च
धृतिमन्तं भवन्तमविरलमालिङ्ग्य शिरसि चाग्रायेदं प्रार्थयते—

मम हि वयसा दूरेणाल्पः श्रुतेन समो भवा-
न्सहजकृतया बुद्ध्या ज्येष्ठो मनीषितया गुरुः ।

शिरसि मुकुलौ पाणी कृत्वा भवन्तमतोऽर्थये

मयि विरलतां नेयः स्नेहः पितुर्भव वारिदः ॥ २४ ॥

अपि च । बाल्ये संवर्धितस्य नित्याभिमानिनोऽस्मत्सदृशहृदयसारस्यापि
नकुलस्य ममाज्ञया वचने स्थातव्यम् । तदुच्यतां नकुलः । नानुगन्तव्यास्मत्प-
दवी । त्वया हि वत्स,

विस्मृत्यास्मान्श्रुतिविशदया प्रज्ञया सानुजांश्च

पिण्डान्पाण्डोरुदकपृषतानश्रुगर्भान्प्रदातुम् ।

दायादानामपि तु भवने यादवानां कुले वा

कान्तारे वा कृतवसतिना रक्षणीयं शरीरम् ॥ २५ ॥

प्रज्वलित होने, (सति=पर), भुजयोः=बाहुओं के, बलेन=बल से, सुतैः=पुत्रों के, सह=साथ,
निर्वाहिता=बाहर निकाली गई, असि=थी, तस्य=उस, (ते=तुम्हारे), प्रियस्य=प्रिय, बलिनः=
बलशाली, तनयस्य=पुत्र का, पापम्=पाप, मरण, ते=तुझे, आख्यामि=बतला रहा हूँ, अन्यः=
दूसरा, ईदृक्=ऐसा, कथम्=कैसे, कथयेत्=कहेगा ॥ २३ ॥

येनासीति । येन=येन स्वपुत्रेणेत्यर्थः, तत्र=वनवासे, जतुवेशमनि-जतुनः=लाक्षायाः वेशम=
गृहम् तस्मिन्, दीप्यमाने=अग्निना प्रज्वाल्यमाने सति, भुजयोः=बाह्वोः, बलेन=सारेण, सुतैः=
पुत्रैः, सह=साकम्, निर्वाहिता=बहिरानीता, रक्षितेति यावत्, असि; तस्य=तादृशस्य, (ते=
तव), प्रियस्य=प्रेमभाजनस्य, बलिनः=बलम् अस्ति अस्याति बलशालिन इत्यर्थः, तनयस्य=पुत्रस्य,
पापम्=मरणरूपं पापमित्यर्थः, ते=तुभ्यम्, आख्यामि=कथयामि; अन्यः=इतरः, मत्तः इति शेषः,
ईदृक्=इत्थम्, ईदृशं दुःखमिति यावत्, कथम्=केन प्रकारेण, कथयेत्=निवेदयेत्, किन्तु न
कोऽपीत्यर्थः । अत्र सामान्येन विशेषस्य कथनात् अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः । वसन्ततिलका छन्दः ॥ २३ ॥

आर्येति । माद्रेयः=माद्रीसुतः, कनीयान्=लघुः, सकलकुरुकुलकमलाकरदावानलः=सक-
लम्=समग्रम् कुरुकुलम्=कुरुवंश एव कमलाकरः=कमलपूर्ण सरः तस्य दावानलः=वनान्तिः,
व्यसने=विपत्तौ, अभ्युदये=उन्नतौ, धृतिमन्तम्=धैर्यशालिनम् ॥

अन्वयः—भवान्, हि, वयसा, मम, दूरेण, अल्पः; श्रुतेन, समः; सहजकृतया, बुद्ध्या, ज्येष्ठः;
मनीषितया, गुरुः, (अस्ति); अतः, पाणी, शिरसि, मुकुलौ, कृत्वा, भवन्तम्, अभ्यर्थये,—मयि,
स्नेहः, विरलताम्, नेयः; पितुः, वारिदः, भव ॥ २४ ॥

आर्य जयन्धर आप भी सहदेव के पास चले जाय और पाण्डु-कुलके बृहस्पति, माद्री के पुत्र, हम सब के छोटे भाई, उन आदरणीय (सहदेव) से कहें कि—“सम्पूर्ण कुरुवंशरूपी कमलों से मरपूर जलाशय (A lotus pond) के वनाग्नि, परलोक को प्रस्थान करनेवाले युधिष्ठिर, सर्वदा अनुकूल रहनेवाले, सतत प्रियपात्र, (कभी भी) किंकर्तव्य विमूढ़ न होनेवाले, अवनति एवं उन्नति के समय धैर्य धारण किये रहनेवाले, आप प्रिय बन्धु को गाढ आलिङ्गन करके तथा शिरपर सूँघकर यह प्रार्थना करते हैं—

आप तो अवस्था से मेरी अपेक्षा काफी छोटे, ज्ञान से बराबर और स्वामात्रिक (Netural) तथा अजित (Cultivated) बुद्धि से बड़े एवं विद्वत्ता से गुरु (हैं), अतः हाथों को शिर पर जुड़ा हुआ करके (अर्थात् शिर पर जुड़ा हुआ हाथ रख कर) आपसे प्रार्थना करता हूँ—मेरे ऊपर स्नेह काम कर दें तथा जीवित रहकर वंश के जलदाता बनें) ॥” २४॥

और भी, बचपन में (प्यार पूर्वक) पाले गये, सर्वदा अमिमानी, हमारे सदृश हृदय की वृद्धतावाले नकुल के कहने में भी, मेरी आशा से, सर्वदा रहना । अतः नकुल से कहना—हमारे मार्ग का अनुसरण मत करना । हे वत्स तुम्हारे द्वारा—

अध्ययन से निर्मल अपनी बुद्धि से भाइयों के सहित हम लोगों को मुला कर जल-विन्दुओं तथा औंसुओं से मिश्रित पिण्डों को पाण्डु को देने के लिये पट्टिदारों (Co-parceners or kinsmen) के भी घर में, यादवों के कुल में अथवा जङ्गल में निवास करने वाले (तुम्हारे द्वारा, अर्थात् निवास करके) शरीर बचाये रखनी है ॥ २५ ॥

विशेष-सानुजान्—भाइयों के सहित । यहाँ भाइयों का अर्थ है—भीम और अर्जुन ॥ २५॥

शब्दार्थः—भवान्=आप, हि=तो, वयसा=अवस्था से, मम=मेरी अपेक्षा, दूरेण=काफी, अल्पः=छोटे; श्रुतेन=ज्ञान से, समः=बराबर, सहजकृतया—स्वामात्रिक तथा अजित, बुद्ध्या=बुद्धि से, ज्येष्ठः=बड़े, मनोपितया=विद्वत्ता से, गुरुः=गुरु, श्रेष्ठ, (अस्ति=है); अतः=इसीलिए, पाणी=हाथों को, शिरसि=शिर पर, मुकुली=जुड़ा हुआ, कृत्वा=करके, भवन्तम्=आप से, अभ्यर्थये=प्रार्थना करता हूँ,—मयि=मेरे ऊपर, स्नेहः=स्नेह, विरलताम्=कमीपन को, स्वल्पता को, नेयः=प्राप्त करा देना, पितुः=पिता को, वारिदः=जल देने वाले, भव=होओ ॥ २४ ॥

मम हीति । भवान्=श्रीमान्, हो=तु, वयसा=अवस्थया, मम=युधिष्ठिरस्य, युधिष्ठिरा-पेक्षयेति भावः, दूरेण=अधिकेन, अल्पः=लघुः; श्रुतेन=अध्ययनेन ज्ञानेन वा, समः=तुल्यः, सहज-कृतया—सहजा=स्वामात्रिकी तथा कृता=अजिता तथा, बुद्ध्या=प्रज्ञया, ज्येष्ठः=श्रेष्ठः, मनोपि-तया=मनसः ईष्टे इति मनोपो तस्य भावः मनोपिता तथा, प्रज्ञया, विद्वत्तयेति भावः, गुरुः=विशिष्टः, गुरुसदृशः इत्यर्थः, अस्तीति क्रियाशेषः, अतः=एतस्मात्, पाणी=हस्तौ, शिरसि=मस्तके, मुकुली=कुटुमलाकारौ, कृत्वा=विधाय, भवन्तम्=आदरणीयं त्वाम्, अभ्यर्थये=याचे, मयि=स्वज्येष्ठे युधिष्ठिरे इत्यर्थः, स्नेहः=प्रेम, विरलताम्=कृशताम्, नेयः=प्रापणीयः, पितुः=जनकस्य, कुलस्येतदुपलक्षणम्, वारिदः=जलदाता, भव । अन्यथा पितृणामधोगतिः स्यात् । हरिणी छन्दः । तल्लक्षणम्—‘नसमरसला गः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता’ ॥ २४ ॥

साधु । हृदानीमध्यवसितं करणीयम् (कञ्चुकिनमवलोक्य) आर्यं जयन्धर, स्वशरीरेष
शापितोऽसि तथापि न गन्धते ।

कञ्चुकी—(साक्रन्दम्) हा देव पाण्डो, तव सुतानामजातशत्रुभीमाञ्जनककुलसदृ
देवानामयं दारुणः परिणामः । हा देवि कुन्ति, भोजराजभवनपताके,

भ्रातुस्ते तनयेन शौरिगुरुणा श्यालेन गाण्डीविन-
स्तस्यैवाखिलधार्तराष्ट्रनलिनीव्यालोलने दन्तिनः ।

आचार्येण वृकोदरस्य हलिनोन्मत्तेन मत्तेन वा
दग्धं त्वत्सुतकाननं ननु मही यस्याश्रयाच्छीतला ॥ २७ ॥

(इति रुद्रत्रिक्रान्तः)

युधिष्ठिरः—जयन्धर, जयन्धर ।

(प्रविश्य)

कञ्चुकी—आज्ञापयतु देवः ।

युधिष्ठिरः—वक्तव्यमिति ब्रवीमि । न पुनरेतावन्ति भागधेयानि नः । यदि
कदाचिद्विजयी स्याद्वत्सोऽञ्जनस्तद्वक्तव्योऽस्मद्वचनाद्भवता,

हली हेतुः सत्यं भवति मम वत्सस्य निधने
तथाप्येष भ्राता सहजसुहृदस्ते मधुरिपोः ।

अतः क्रोधः कार्यो न खलु मयि चेत्प्रेम भवतो

वनं गच्छेर्मा गाः पुनरकरुणां क्षात्रपदवीम् ॥ २८ ॥

अन्वयः—ते, भ्रातुः, तनयेन; शौरिगुरुणा; गाण्डीविनः, श्यालेन; अखिलधार्तराष्ट्रनलिनी-
व्यालोलने, दन्तिनः; तस्य, एव, वृकोदरस्य, आचार्येण; मत्तेन, वा, उन्मत्तेन, हलिना, यस्य,
आश्रयात्, ननु, मही, शीतला, (तत्), त्वत्सुतकाननम्, दग्धम् ॥ २७ ॥

शब्दार्थः—ते=तुम्हारे, भ्रातुः=भाई के, तनयेन=पुत्र; शौरिगुरुणा=कृष्ण के बड़े भाई;
गाण्डीविनः=अर्जुन के, श्यालेन=साले; अखिलधार्तराष्ट्रनलिनीव्यालोलने=समग्र धृतराष्ट्रकुलरूपी
कमललता को मथ डालने में, दन्तिनः=गजराज, तस्य=उस, एव=ही, वृकोदरस्य=भीम के,
आचार्येण=गुरु; मत्तेन=(मदिरा से) मतवाले, वा=अथवा, उन्मत्तेन=पागल, हलिना=
बलराम के द्वारा; यस्य=जिसके, आश्रयात्=आश्रय से, ननु=निश्चय ही, मही=पृथिवी, शीतला=
शीतल यो, (तत्=वह), त्वत्सुतकाननम्=तुम्हारा पुत्ररूपी वन, दग्धम्=जला डाला गया है ॥ २७ ॥

भ्रातुरिति । ते=तव, भ्रातुः=सहोदरस्य, वसुदेवस्येत्यर्थः, तनयेन=पुत्रेण; शौरिगुरुणा=
शौरिः=श्रीकृष्णः, अर्जुनसखः इति भावः, तस्य गुरुणा=उपेष्टेन; गाण्डीविनः=अर्जुनस्य,
श्यालेन=पत्न्याः भ्रात्रा; अखिलेत्यादिः—अखिलधार्तराष्ट्राः=निखिलधृतराष्ट्रसुताः एव नलिनी=
कमललिनी तस्याः व्यालोलने=मन्यने दन्तिनः=गजराजस्य, तस्य=युद्धं मृतस्येत्यर्थः, एव, वृको-
दरस्य=भीमस्य, आचार्येण=गुरुणा; मत्तेन=मदिराबिह्वलेनेत्यर्थः, वा=अथवा, उन्मत्तेन=
उन्मादिना, हलिना=बलरामेण, यस्य=सुतकाननस्येत्यर्थः, आश्रयात्=आश्रयणात्, नन्वि

ठीक है। अब सोचा हुआ कर्तव्य करना चाहिए। (कंचुकी को देखकर) आदरणीय जयन्धर, हमारी शरीर से सौगन्ध दिये गये हो, तो भी नहीं जा रहे हो ?

कंचुकी—(विलाप करते हुए) हा महाराज पाण्डु, आपके पुत्रों—युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव—का यह दारुण अन्त ! हा भोजराज के महल को पताकारूप महारानी कुन्ती, विशेष—भोजराज—कुन्ती भोजराज की प्यारी बेटी तथा वसुदेव की लाडली एवं बलराम तथा कृष्ण की माननीया बुआ (Paternal aunt) थी।

तुम्हारे माई के पुत्र, कृष्ण के बड़े भाई, अर्जुन के साले, सम्पूर्ण धृतराष्ट्रकुलरूपी कमलता को मय ढालने में गजराज, उसी भीम के पुत्र, (मादरा से) मतवाले अथवा पागल बलराम के द्वारा, जिसके आश्रय से निश्चय ही पृथिवी शीतल थी, (वह), तुम्हारा पुत्ररूपी वन जला डाला गया है ॥ २७ ॥

(ऐसा कह कर रोता हुआ निकल गया)

युधिष्ठिर—जयन्धर, जयन्धर,

(प्रवेश करके)

कंचुकी—आशा दें महाराज।

युधिष्ठिर—कहना उचित है, इसलिये कह रहा हूँ। यद्यपि हमारे इतने माय नहीं हैं। यदि शायद वह अर्जुन विजयी हो जाय तो आप मेरी ओर से (उसको) कहना।

यद्यपि मेरे वत्स (भीम) को मृत्यु में बलराम कारण होते हैं, तो भी यह तुम्हारे सहज (Natural) मित्र श्रीकृष्ण के भाई (हैं), अतः आप के द्वारा (उन पर) कोप नहीं ही करना चाहिये, तथा मेरे ऊपर प्रेम (नहीं करना चाहिये)। जङ्गल में चले जाना (किन्तु) निर्दय क्षत्रिय के मार्ग पर फिर से मत जाना (अर्थात् क्षत्रिय धर्म के अनुसार फिर युद्ध मत करना) ॥ २८ ॥

निश्चये, मही = पृथिवी, शीतला = अनुष्णा, सुखकरोति यावत्, तदिति शेषः, त्वत्सुकाननम्—तव = भवत्याः सुताः = पुत्राः एव काननम् = अरण्यम्, दग्धम् = भस्मीकृतम्। सर्वयाऽनुचितं तेन स्वजनेन कृतमिति भावः। अत्र विषमालङ्कारः शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ २७ ॥

अन्वयः—सत्यम्, मम, वत्सस्य, निधने, हली, हेतुः, भवति; तथा, अपि, एषः, ते, सहज-सुहृदः, मधुरिपोः, भ्राता; अतः, भवता, (तस्मिन्), क्रोधः, न खलु, कार्यः, च, मयि, प्रेम, (न, कार्यम्); वनम्, गच्छे, अकरुणाम्, क्षात्रपदवीम्, पुनः, मा गाः ॥ २८ ॥

शब्दार्थः—सत्यम् = यद्यपि, मम = मेरे, वत्सस्य = वत्स (भीम) की, निधने = मृत्यु में, हली = बलराम, हेतुः = कारण, भवति = होते हैं, तथा = तो, अपि = भी, एषः = यह, ते = तुम्हारे, सहजसुहृदः = सहज मित्र, मधुरिपोः = श्रीकृष्ण के, भ्राता = भाई (हैं); अतः = इसलिये, भवता = आप के द्वारा, (तस्मिन् = उन पर) क्रोधः = कोप, न खलु = नहीं ही, कार्यः = करना चाहिये, च = तथा, मयि = मेरे ऊपर, प्रेम = प्रेम, (न कार्यम् = नहीं करना चाहिये); वनम् = जङ्गल में, गच्छः = चले जाना, अकरुणाम् = निर्दय, क्षात्रपदवीम् = क्षत्रिय के मार्ग पर, पुनः = फिर से, मा गाः = मत जाना ॥ २८ ॥

कंचुकी—यथाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रान्तः)

युधिष्ठिरः—(अग्निं दृष्ट्वा सहर्षम्) कृष्णे, ननुद्धतशिखाहस्तास्मद्विधव्यसनिजनः समिद्धो भगवान्हुताशनस्तत्रेन्धनीकरोम्यात्मानम् ।

द्रौपदी—प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजो समानेनापश्चिमेन प्रणयेन । अहं तावदग्रतः प्रविशामि । [पसीदतु पसीदतु महाराजो मम श्मिणा अपाच्छमेण पणपण । अहं दाव अगदो पविसामि ।]

युधिष्ठिरः—यद्येवं सहितावेवाभ्युदयमुपभोक्ष्यावहे ।

चेटी—हा भगवन्तो लोकपालाः, परित्रायध्वं । एष खलु सोमवंशराजर्षी राजसूयसंतर्पितहव्यवाहः खाण्डवसंतर्पितहुतवहस्य किरीटिनो ज्येष्ठो भ्राता सुगृहीतनामधेयो महाराजयुधिष्ठिरः । एषापि पाञ्चालराजतनया देवी यज्ञवेदिमध्यसंभवा याज्ञसेनी । द्वावपि निष्करुणज्वलनस्य प्रवेशेनेन्धनीभवतः । तत्परित्रायध्वमार्याः, परित्रायध्वम् । कथं न कोऽपि परित्रायते । (तयोरग्रतः पतित्वा) किं व्यवसितं देव्या देवेन च ।

[हा भगवन्नो लोभवाला, परित्ताग्रह परित्ताग्रह । एसो क्खु सोमवंसराएसो राअसुअसंतप्पिदहव्ववाहो खण्डवसंतप्पिदहुदवहस्स किरीटिणो जेठो भादा सुग्गहीदणामहेओ महाराअजुहिट्ठो एसो वि वाञ्छालराअतणआ देवी जणवेदिमज्झसंभवा जणसेणी । दुवे वि णिक्करुणजलणस्स पवेसेण इन्धणीहोन्ति ता परित्ताग्रह अज्जा परित्ताग्रह । कथं ण को वि परित्ताग्रिद । किं ववसिदं देवी देवेण अ ।]

युधिष्ठिरः—अयि बुद्धिमतिके, यद्वत्सलेन प्रियानुजेन विना सदृशं तत् । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ, मदे, उदकमुपनय ।

(चेटी तथा करोति)

हलीति । सत्यम् = यद्यपि, मम = मे, युधिष्ठिरस्य, वत्सस्य = स्नेहस्य लघुभ्रातुः, भीमस्येत्यर्थः, निषने = मरणे, हली = बलरामः, हेतुः = कारणम्, भवति = जायते; तथापि, एषः = अयम्, ते = तव, सहजसुहृदः = स्वामाविकस्य मित्रस्य, मधुरिपोः = मधुनामकस्य राक्षसस्य शत्रोः, श्रीकृष्णस्येत्यर्थः, भ्राता = अग्रजन्मा, अस्तीति शेषः, अतः = अस्मात्, भवता = त्वया, (तस्मिन् = तत्र), क्रोधः = कोपः, न खलु = नहि, कार्यः = विधेयः, च = तथा, मयि = तवाग्रजे युधिष्ठिरे, प्रेम = प्रेम, न कार्यमिति शेषः, वनम् = अरण्यम्, तपस्यार्थं वासार्थं वेति शेषः, गच्छेः = व्रजेः, (किन्तु), अकरुणाम् = निर्दयाम्, क्षात्रपदवीम् = क्षत्रियपद्धतिम्, क्षत्रियोचितमाचरणमिति भावः, पुनः = मुहुः, मा गाः = न गमिष्यसि । अत्र काव्यलिङ्गमलङ्कारः । शिखरिणी छन्दः । लक्षणम्—‘रसै रुद्रैश्छिन्नयमनसभला गः शिखरिणी’ ॥ २८ ॥

युधिष्ठिर इति । उद्धतशिखाहस्ताहृतास्मद्विधव्यसनिजनः—शिखाः = ज्वालाः एव हस्ताः = कराः, उद्धताः = उत्थापिताः ये शिखाहस्ताः तैः आहृताः = आकारिताः अस्मद्विधाः = मादृश

कञ्चुकी—जैसी महाराज आशा दे रहे हैं (वैसा ही करूँगा)। (यह कहकर निकल गया)।

युधिष्ठिर—(अग्नि को देख कर प्रसन्नतापूर्वक) द्रौपदी, अहा! उठती हुई ज्वालारूपी हाथों से बलाये जा रहे हैं हम जैसे दुःखी लोग जिसके द्वारा ऐसे (यह) मगवान् अग्निदेव प्रज्वलित हो गये हैं। (अब) इनमें अपने आपको इंधन बनाता हूँ। (अर्थात् जलाता हूँ)।

द्रौपदी—प्रसन्न हों महाराज, प्रसन्न हों मेरी इस अन्तिम प्रार्थना से। अब मैं (अग्नि में) पहले प्रवेश करती हूँ (अर्थात् मुझे आग में पहले प्रवेश करने दें)।

युधिष्ठिर—यदि ऐसा है तो साथ ही अश्व्युदय का उपमोग करेंगे (अर्थात् साथ में ही अग्नि में कूद कर दुःख विनिर्मुक्त होंगे)।

चेटी—हाय! मगवान् लोकपालों, रक्षा कीजिये। चन्द्रवंश के राजर्षि, राजसूय (यज्ञ) से अग्नि को तृप्त करने वाले, खाण्डव वन से अनल को सन्तुष्ट करने वाले, अर्जुन के ज्येष्ठ भ्राता, प्रातःस्मरणीय नाम वाले, यह महाराज युधिष्ठिर (हैं)। यह भी पाञ्चाल नरेश को पुत्रो, यज्ञ की वेदी के बीच से पैदा हुई, महारानी द्रौपदी (हैं)। दोनों ही निर्दय अग्नि में प्रवेश करके मरम होने जा रहे हैं। तो वचाश्ये महानुभावों, वचाश्ये। क्या कोई भी नहीं बचा रहा है? (उन दोनों के आगे गिर कर) महाराज एवं महारानी के द्वारा (यह) क्या ठान लिया गया है?

खाण्डवसन्तर्पित०—खाण्डववन कुरुक्षेत्र प्रदेश में विद्यमान एक वन था। यह इन्द्र का मित्र कहा गया है। इस वन को अर्जुन एवं कृष्ण की सहायता से अग्नि ने जला दिया था। इससे अग्नि को पर्याप्त तृप्ति हुई थी। महाभारत, (आदि, २२४-२३०)।

यज्ञवेदिमध्यसम्भवा—आचार्य द्रोण के आदेश से अर्जुन ने द्रुपद को भीते जी बन्दी बनाकर उन्हें गुरुदक्षिणा के रूप में द्रोण के समक्ष ला उपस्थित किया। अपमानित करने के बाद द्रोण ने उन्हें छोड़ दिया। द्रुपद ने 'याज' एवं 'अनुयान' नामक ऋषियों की सहायता से, द्रोण के वधकर्ता एक पुत्र तथा अर्जुन को ब्याही जाने वाली एक पुत्री के लिए, यज्ञ किया। द्रोण की गर्दन काटने वाला 'धृष्टद्युम्न' अग्नि की लपटों से तथा द्रौपदी यज्ञ की वेदी के मध्यभाग से उत्पन्न हुई थी। (महाभारत, आदि पर्व, अ० १४०-१६९)॥

युधिष्ठिर—अरी बुद्धिमतिके, प्रेम करने वाले, प्रिय लघु भ्राता के बिना जो उचित है, वही (ठाना गया है)। उठो-उठो, मल्लोमानस, जल लाओ।

(चेटी वैसा ही करती है)

व्यसनिजनाः = दुःखिताः जनाः येन स तथोक्तः, हुताशनः = अग्निः, इन्धनोक्तोऽपि = मरमसात् करोमि।

चेटीति। सोमवंशस्य = चन्द्रवंशस्य राजा ऋषिः = मुनिः इवेति, राजसूयसन्तर्पितहव्यवाहः = राजसूयेन = राजसूययज्ञेन सन्तर्पितः = तृप्ति गमितः हव्यवाहः = अग्निः येन सः, खाण्डवसन्तर्पितद्रुतवहस्य = खाण्डवेन = खाण्डववनेन सन्तर्पितः द्रुतवहः = अग्निः येन तस्य, किरीटिनः = अर्जुनस्य, सुगृहीतनामधेयः = सुष्ठु गृहीतं नामधेयं यस्य सः, प्रातःस्मरणीयः इत्यर्थः। यज्ञवेदिमध्यसम्भवा = यज्ञस्य वेद्याः = चत्वरस्य मध्ये संभवः = उत्पत्तिः यस्याः सा, याज्ञसेनी = द्रौपदी॥

युधिष्ठिरः—(पादौ प्रक्षाल्योपस्पृश्य च) एष तावत्सलिलाञ्जलिर्गाङ्गेयाय भीमाय
गुरवे । अयं प्रपितामहाय शान्तनवे । अयमपि पितामहाय विचित्रवीर्याय (साल्म) ।
तातस्याधुनावसरः । अयमपि तत्रभवते सुगृहीतनाम्ने पित्रे पाण्डवे ।

अद्यप्रभृति वारीदमस्मत्तो दुर्लभं पुनः ।

तात माद्रथम्बया सार्धं मया दत्तं निपीयताम् ॥ २९ ॥

एतज्जलं जलजनीलविलोचनाय

भीमाय भोस्तव ममाप्यविभक्तमस्तु ।

एकं क्षणं विरम वत्स पिपासितोऽपि

पातुं त्वया सह जवादयमागतोऽस्मि ॥ ३० ॥

अथवा सुक्षत्रियाणां गतिमुपगतं वत्समहमुपगतोऽप्यकृती द्रष्टुम् । वत्स भीमसेन,

मया पीतं पीतं तदनु भवताम्बास्तनयुगं

मदुच्छिष्टैर्वृत्तिं जनयसि रसैर्वत्सलतया ।

वितानेष्वप्येवं तव मम च सोमे विधिरभू-

न्निवापाम्भः पूर्वं पिबसि कथमेवं त्वमधुना ॥ ३१ ॥

अन्वयः—हे तात, अस्मत्तः, अद्यप्रभृति, पुनः, दुर्लभम्, मया, दत्तम्, वारि, माद्रथम्बया, सार्धम्, निपीयताम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थः—हे तात=हे पिता जी, अस्मत्तः=हम से, अद्य प्रभृति=आज से, पुनः=फिर, दुर्लभम्=दुर्लभ, मया=मेरे द्वारा, दत्तम्=दिया गया, इदम्=यह, वारि=जल, माद्रथम्बया=माँ माद्री के, सार्धम्=साथ, निपीयताम्=पीजिये ॥ २९ ॥

अद्यप्रभृतीति । हे तात=हे पितः, अस्मत्तः=अस्मत्, 'पञ्चम्यास्तसिल्' इति तसिल्, अद्यप्रभृति=अद्यारभ्य, पुनः=मुहुः, दुर्लभम्=दुष्प्रापम्, मया=युधिष्ठिरेणेत्यर्थः, दत्तम्=समपितम्, इदम्=एतत्, वारि=जलम्, माद्रथम्बया=मात्रा मादया, सार्धम्=सह, निपीयताम्=पीयताम् । अत्र काव्यलिङ्गमलङ्कारः । पथ्यावकत्रं छन्दः । तल्लक्षणं—'युजोश्चतुर्थतो येन पथ्यावकत्रं प्रकीर्तितम् ॥' २९ ॥

अन्वयः—एतत्, जलम्, जलजनीलविलोचनाय, भीमाय; भोः, तव, मम, अपि, अविभक्तम्, अस्तु; हे वत्स, पिपासितः, अपि, (त्वम्), एकम्, क्षणम्, विरम, त्वया, सह, पातुम्, अयम्, (अहम्), जवात्, आगतः, अस्मि ॥ ३० ॥

शब्दार्थः—एतत्=यह, जलम्=जल, जलजनीलविलोचनाय=कमल की तरह नीले नेत्रवाले, भीमाय=भीम के लिये है; भाः=हे (भीम), तव=तुम्हारा, मम=मेरा, अविभक्तम्=सम्मिलित रूप से, अस्तु=हो; हे वत्स=हे प्रियबन्धु, पिपासितः=प्यासे, अपि=भी (त्वम्=तुम), एकम्=एक, क्षणम्=क्षण, विरम=रुको, त्वया=तुम्हारे, सह=साथ, पातुम्=पीने के लिए, अयम्=अभी, यह, (अहम्=मैं), जवात्=वेग से, आगतः=आ ही गया, अस्मि=हैं ॥ ३० ॥

एतज्जलमिति । एतत्=इदम्, मया दत्तमित्यर्थः, जलम्=सलिलम्, जलजनीलविलोच-

युधिष्ठिर—(पैरों को धोकर तथा आचमन करके) यह जलाञ्जलि तो गङ्गा के पुत्र, गुरु भीष्म के लिए है। यह प्रपितामह शान्तनु के लिए है। यह भी पितामह विचित्रवीर्य के लिए है। (और भर कर) अब पिता जी की पारी है। यह भी प्रातः स्मरणीय पिता पाण्डु के लिये है।

हे पिता जी, हम से आज से फिर दुर्लभ, मेरे द्वारा दिया गया यह जल माँ माद्री के साथ पीजिये ॥ २९ ॥

विशेष-माद्वयम्बया—पाण्डु की दो रानियाँ थीं—कुन्ती एवं माद्री। माद्री पाण्डु की चिन्ता में सती हुई थी। लोगों के समझाने पर कुन्ती छोटे बच्चों की देख-भाल के लिए रह गई थी। नकुल एवं सहदेव माद्री के बेटे थे ॥ २६ ॥

यह जल कमल की तरह नीले नेत्र वाले भीम के लिये (है) हे (भीम, यह जल) तुम्हारा एवं मेरा सम्मिलित रूप से हो। हे प्रियबन्धु, एक क्षण रुको, तुम्हारे साथ (इस जल को) पीने के लिये यह (मैं) वेग से आ ही गया हूँ ॥ ३० ॥

अथवा वीर क्षत्रियों की गति (Goal, Course) को प्राप्त हुए वत्स (भीम) को, पास जाने पर भी मैं, देखने में सफल नहीं होऊँगा। वत्स भीमसेन,

माँ के दोनों स्तन मेरे द्वारा पी लिये जाने पर, उसके बाद, आपके द्वारा पिये जाते थे। प्रेमभाव के कारण मेरे पीने से अवशिष्ट दुग्ध आदि (पेय पदार्थों) से (तुम) जीवन-यात्रा चलाते थे। यशों में भी तुम्हारा एवं मेरा सामपान में ऐसा ही क्रम रहा। सम्प्रति तुम तिलाञ्जलि को पहले कैसे पी रहे हो? ॥ ३१ ॥

नाय—जलजे=कमले इव नीले=श्यामवर्णं विलोचने=नेत्रे यस्य तस्मै भीमाय=वृकोदराय, अस्तीति क्रियाशेषः; भोः=हे भीम, एतज्जलमित्यध्याहार्यम्, तव=भवतः, मम=मे, अपि=च, अभिभक्तम्=सम्मिलितम्, अस्तु=भवतु, यथा लोके तथैव स्वर्गोऽपि सदैव मोक्षायः इति भावः। हे वत्स=हे प्रियानुज, पिपासितः=तृषार्तः, अपि=च, त्वमिति शेषः, एकम्, क्षणम्=सुहूर्तम्, विरम=विरक्तो मव; त्वया=भवता, सह=साकम्, पातुम्=पानं कर्तुम्, एतज्जलमिति शेषः, अयम्=एषः, (अहम्), जवात्=वेगात्, आगतः=आयातः, अस्मि=भवामि। इदिति चित्ताभि-रोहणं त्रिषाय तत्र पार्श्वोऽयं जवादागतोऽस्मीति भावः। वसन्ततिलका छन्दः ॥ ३० ॥

अन्वयः—अम्बास्तनयुगम्, मया, पीतम्, तदनु, भवता, पीतम्; वत्सलतया, मनुच्छिष्टैः, रसैः, वृत्तिम्, जनयसि; वितानेषु, अपि, तव, च, मम, सोमे, एवम्, विधिः, अमृतम्; अधुना, त्वम्, निवापाम्भः, पूर्वम्, कथम्, पिवसि ॥ ३१ ॥

शब्दार्थः—अम्बास्तनयुगम्=माता के दोनों स्तन, मया=मेरे द्वारा, पीतम्=पीलिये जाने पर, तदनु=उसके बाद, भवता=आपके द्वारा, पीतम्=पिया जाता था; वत्सलतया=प्रेमभाव के कारण, मनुच्छिष्टैः=मेरे पीने से अवशिष्ट, रसैः=दुग्ध आदि से, वृत्तिम्=जीवन-यात्रा को, जनयसि=चलाते थे; वितानेषु=यशों में, अपि=भी, तव=तुम्हारा, च=एवम्, मम=मेरा, सोमे=सोम-पान में, एवम्=ऐसा ही, विधिः=क्रम, अमृतम्=रहा; अधुना=सम्प्रति, त्वम्=तुम, निवापाम्भः=तिलाञ्जलि को, पूर्वम्=पहले, कथम्=कैसे, पिवसि=पी रहे हो ॥ ३१ ॥

कृष्णे, त्वमपि देहि सलिलाञ्जलिम् ।

द्रौपदी—हञ्जे बुद्धिमतिके, उपनय मे सलिलम् ।

[हञ्जे बुद्धिमदपि, उवणेहि मे सलिलम्]

(चेटी तथा करोति)

द्रौपदी—(उपसृत्य जलाञ्जलिं पूरयित्वा) महाराज, कस्मै सलिलं ददामि । [महाराज, कस्स सलिलं देहि ।]

युधिष्ठिरः—

तस्मै देहि जलं कृष्णे सहसा गच्छते दिवम् ।

अम्बापि येन गान्धार्या रुदितेन सखीकृता ॥ ३२ ॥

द्रौपदी—नाथ भीमसेन, परिजनोंपनीतमुदकं स्वर्गगतस्य ते पादोदकं भवतु ।

[णाह भीमसेण, परिजणोवणीदं उदकं सग्गगदस्स दे पादोदकं भोदु ।]

युधिष्ठिरः—फाल्गुनाग्रज,

असमाप्तप्रतिज्ञेऽपि याते त्वयि महाभुजे ।

मुक्तकेश्यैव दत्तस्ते प्रियया सलिलाञ्जलिः ॥ ३३ ॥

द्रौपदी—उत्तिष्ठ महाराज, दूरं गच्छति ते आता ।

[उट्ठेहि महाराज, दूरं गच्छति दे मादा ।]

युधिष्ठिरः—(दक्षिणाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा) पाञ्चालि, निमित्तानि मे कथयन्ति संभावयिष्यसि वृकोदरमिति ।

मयेति । अम्बास्तनयुगम्—अम्बायाः=मातुः स्तनयुगम्=पयोधरयुगलम्, मया=अग्रजेन युधिष्ठिरेणेत्यर्थः, पीतम्=आस्वादितम्, तदनु=तदनन्तरम्, भवता=अनुजेन त्वया, पीतम्=आस्वादितम्; वत्सलतया=प्रेमभावनया, मदुच्छिष्टैः=मद्भोजनपानावशिष्टैः, रसैः=दुग्धादिभिः, वृत्तिम्=वर्तनम्, जनयसि=अजनयः, वर्तमान-सामोप्ये लट्; वितानेषु=यशेषु ('ऋतुविस्तारयोरस्त्री वितानम्' इत्यमरः), अपि=च, तव=भवतः, च=तथा, मम=युधिष्ठिरस्येत्यर्थः, सोमे=सोमरसपाने इत्यर्थः, एवम्=इत्यम्, विधिः=प्रकारः, क्रम इति यावत्, अभूत्=जातम्, अधुना=सम्प्रति, त्वम्=मदनुवर्तनकर्ता अनुजः इत्यर्थः, निवापाम्भः=तिलमिश्रिताञ्जलिमित्यर्थः, पूर्वम्=प्रथमम्, कथम्=केन प्रकारेण, पिवसि=आचामसि ? । मम मरणानन्तरमेव तव मरणं समीचीनमासीदिति भावः । अत्र काव्यालिङ्गमलङ्कारः । शिखरिणी छन्दः ॥ ३१ ॥

अन्वयः—हे कृष्णे, सहसा, दिवम्, गच्छते, तस्मै, (भीमाय), जलम्, देहि, येन, अम्बा, अपि, रुदितेन, गान्धार्याः, सखी, कृता ॥ ३२ ॥

शब्दार्थः—हे कृष्णे=हे द्रौपदि, सहसा=एकाएक, दिवम्=स्वर्गं को, गच्छते=जानेवाले, तस्मै=उस, (भीमाय=भीम को), जलम्=जल, देहि=दो, येन=जिसके द्वारा, अम्बा=मैं (कुन्ती), अपि=भी, रुदितेन=रुदन के द्वारा, गान्धार्याः=गान्धारी की, सखी=सहेली, कृता=बना दी गई है ॥ ३२ ॥

द्रौपदी, तुम भी जलाजलि दो ।

द्रौपदी—सखि, बुद्धिमतिके, लाकर कर दो जल ।

(चेटी बैसा करती है)

द्रौपदी—(पास में जाकर, अजलि को जल से भर कर) महाराज किसको जल दूँ ?

युधिष्ठिर—हे द्रौपदि, एकाएक (Suddenly) स्वर्ग को जानेवाले उस (भीम) को जल दो, इसके द्वारा मैं (कुन्ती) भी, रुदन से, गान्धारी की सखी बना दी गई है (अर्थात् समान अवस्था को प्राप्त करा दी गई है) ॥ ३२ ॥

विशेष—सखीकृता—नित्यानवे पुत्रों के मर जाने पर गान्धारी विलाप करती है । अब भीम मर गये । अतः मैं कुन्ती भी रोवूँगी । इस तरह उनको रुठाकर भीम ने उन्हें गान्धारी को समानता को प्राप्त करा दिया ॥ ३२ ॥

द्रौपदी—नाथ भीमसेन, (मुझ) सेविका के द्वारा प्रदत्त यह जल स्वर्ग में गये हुए आपके पैर धोने के लिये हो ।

युधिष्ठिर—अर्जुन के बड़े भैया,

बिना प्रतिज्ञा समाप्त किये भी विशाल बाहुवाले आपके चले जाने पर, खुली हुई केशोंवाली हो आपकी प्रिया के द्वारा, (यह) जलाजलि दी गई है ॥ ३३ ॥

द्रौपदी—महाराज, उठिये, आपके माई दूर चले जा रहे हैं :

युधिष्ठिर—(दाहिनी आँख की फड़कन सूचित करके) द्रौपदी, मेरे शकुन बतला रहे हैं कि (तुम) भीम को प्राप्त करोगी ।

तस्मै इति । हे कृष्णे=हे द्रौपदि, सहसा=अदिति, दिवम्=स्वर्गम्, गच्छते=व्रजते, तस्मै=तस्मै, भीमायेति शेषः, जलम्=तिलमिश्रित सलिलमिति यावत्, देहि=अर्पय, येन=येन भीमेनेत्यर्थः, अम्बा=जननी कुन्ती, अपि=च, रुदितेन=विलापेन, पुत्रमरणजन्येन विलापेनेत्यर्थः, गान्धार्याः=दुर्बोधनमातुः, सखी=तुल्यावस्थेत्यर्थः, कृता=सम्पादिता, समीकृतेति तात्पर्यम् । पथ्यावकत्रं छन्दः ॥ ३२ ॥

अन्वयः—असमाप्तप्रतिज्ञे, अपि, महाभुजे, त्वयि, याते, मुक्तकेश्या, एव, ते, प्रियया, सलि-
लाजलिः, दत्तः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः—असमाप्तप्रतिज्ञे=बिना प्रतिज्ञा समाप्त किये, अपि=भी, महाभुजे=विशाल बाहु-
वाले, त्वयि=आपके, याते=चले जाने पर, मुक्तकेश्या=खुले हुये केशोंवाली, एव=ही, ते=
आपकी, प्रियया=प्रिया के द्वारा, सलिलाजलिः=जलाजलि, दत्तः=दी गई है ॥ ३३ ॥

असमाप्तेति । असमाप्तप्रतिज्ञे—असमाप्ता=अपूर्ण प्रतिज्ञा=प्रियावेणोसंहाररूपः प्रणः येन
तादृशे, अपि=च, महाभुजे—महान्तौ=विशाली भुजौ=बाहू यस्य स महाभुजः तस्मिन्, त्वयि=
भवति, याते=स्वर्गं गच्छते, मुक्ताः केशाः यस्याः सा मुक्तकेशी तथा मुक्तकेश्या=असंयमितवेण्या, एव=
च, ते=तव, प्रियया=प्रेयस्या, द्रौपद्येति यावत्, सलिलाजलिः=निवापाजलिः, दत्तः=समर्पितः ।
असमाप्तप्रतिज्ञस्य तव गमनमनुचितमिति भावः । पथ्यावकत्रं छन्दः ॥ ३३ ॥

द्रौपदी—महाराज, सुनिमित्तं भवतु । [महाराज, सुनिमित्तं भोदु ।]

(नेपथ्ये कलकलः)

(प्रविश्य संभ्रान्तः)

कञ्जुकी—परित्रायतां परित्रायतां महाराजः । एष खलु दुरात्मा कौरवापसदः
क्षतजामिषेकपाटलिताम्बरशरीरः समुच्छ्रितदिग्धभीषणगदापाणिरुद्यतकालदण्ड इव
कृतान्तोऽत्रभवती पाञ्चालराजतनयामितस्ततः परिमार्गमाण इत एवामिवर्तते ।

युधिष्ठिरः—हा दैव, ते निर्णयो जातः । हा गाण्डीवधन्वन्,

(इति मुह्यति)

द्रौपदी—हा आर्यपुत्र, हा मम स्वयंवरस्वयंग्राहदुर्लभित, प्रियं भ्रातरमनुगतोऽसि,
न पुनर्महाराजमिमं दासजनं च । (इति मोहमुपगता)

[हा अञ्जउत्त, हा मम सर्ववरसङ्गाहदुर्लभित, पित्रं मादुःखं अनुगतोऽसि । न उष महाराजं
इमं दासजनं च ।]

युधिष्ठिरः—हा वत्स सन्यसाचिन्, हा त्रिलोचनाङ्गनिष्पेषमल्ल, हा निवात-
कवचोद्धरणनिष्कण्टकीकृतामरलोक, हा वदर्याश्रममुनिद्वितीयतापस, हा द्रोणाचार्य-
प्रियशिष्य, हा अस्त्रशिक्षावलपरितोषितगाङ्गेय, हा राधेयकुलकमलिनीप्रालेयवर्ष, हा
गन्धर्वनिर्वासितदुर्योधन, हा पाण्डवकुलकमलिनीराजहंस,

तां वत्सलामनभिवाद्य विनीतमम्बां

गाढं च मामनुपगुह्य मयाप्यनुक्तः ।

एतां स्वयंवरवधूं दयितामदृष्ट्वा

दीर्घप्रवासमयि तात कथं गतोऽसि ॥ ३४ ॥

कञ्जुकीति । कौरवापसदः—कौरवेषु अपसदः=नीचः, क्षतजामिषेकपाटलिताम्बर-
शरीरः—क्षतात्=व्रणात् जातम्=उत्पन्नम्, रक्तमित्यर्थः, तस्य तेन वा यः अभिषेकः=स्नानम् तेन
पाटलितम्=रक्तोभूतम्, अम्बरम्=वस्त्रम्, शरीरम्=देहश्च यस्य सः, समुच्छ्रितादिग्धभीषणगदा-
पाणिः—समुच्छ्रिता=उत्थापिता दिग्धा=रक्तलिप्ता भीषणा=भयङ्करी गदा पाणौ=हस्ते येन सः
अतः उद्यतकालदण्डः—उद्यतः=उच्छ्रितः कालदण्डः=मृत्युदण्डः येन सः, कृतान्तः=यमः, इव=
यथा, परिमार्गमाणः=ग्रन्थेपयन्, इतः=अस्यां दिशि ॥

अन्वयः—अयि तात, ताम्, वत्सलाम्, अम्बाम्, विनीतम्, अनभिवाद्य; च, माम्, गाढम्,
अनुपगुह्य; मया, अपि, अनुक्तः, स्वयंवरवधून्, एताम्, दयिताम्, अदृष्ट्वा; दीर्घप्रवासम्, कथम्,
गतः, असि ? ॥ ३४ ॥

पण्डोऽङ्कः

३०३

विशेष—यहाँ युधिष्ठिर ने द्रौपदी एवं भीम के मिलन की जो बात कही है, उसका अर्थ है कि मर कर शीघ्र ही स्वर्ग में भीम से मिलोगे।

द्रौपदी—महाराज, (आपके शकुन) शुभ शकुन बनें।

(पदों के पीछे कोलाहल)

(प्रवेश करके घबड़ाया हुआ)

कञ्चुकी—वचाइये, वचाइये, महाराज ! रक्त-स्नान से लाल वस्त्र एवं शरीर वाला, (रथि से) सनी हुई भीषण गदा को हाथ में उठाये हुये, (अतः) कालदण्ड उठाये हुये यमराज की तरह, यही नीच अयम कोरव आदरणीया पाञ्चाल-पुत्रों (द्रौपदी) को श्वर-उपर खोजता हुआ इसी ओर ही आ रहा है।

युधिष्ठिर—हा देव; तेरा निर्णय हो गया ? हाय ! गाण्डीवधारी (अर्जुन),
(ऐसा कह कर मूर्च्छित हो जाता है)

हा गाण्डीवधन्वन्—युधिष्ठिर ने सोचा यह दुर्योधन आ रहा है। इसमें निश्चिन्त होता है कि अर्जुन भी युद्ध में मार डाले गये। यहाँ सोच कर वे मूर्च्छित होते हैं।

द्रौपदी—हाय आर्यपुत्र, हाय मेरे स्वयम्बर में स्वयं सम्मिलित होने के हठा ! प्रिय माई (भीम) के पीछे-पीछे चले गये ? न कि इन महाराज (युधिष्ठिर) और इस (सुन्न) दासी के (पीछे-पीछे) चले, अर्थात् इनका और मेरा कुछ भी ख्याल न किया) ?

विशेष—स्वयं ग्राहदुर्लभित—जिस समय द्रौपदी का स्वयम्बर हो रहा था उस समय पाण्डव वनवास कर रहे थे। स्वयम्बर में वे आमन्त्रित न थे। किन्तु बाणविद्या के जाने-माने व्यक्ति अर्जुन से रहा न गया। फलतः पाण्डव बिना निमन्त्रण के भी स्वयम्बर में जा धमके। इसी ओर यहाँ संकेत है।

युधिष्ठिर—हा ! प्रिय बन्धु सव्यसाचिन्, हा ! शङ्कर के अङ्गों को धरदबोचने में (In pounding) मल्ल (Wrestler), हा ! निवात एवं कवच (नामक राक्षसों) को उखाड़ फेंकने से देव-लोक को निष्कण्टक बना देने वाले, हा ! बदर्याश्रम के मुनियों में द्वितीय तपस्वी, हा ! द्रोणाचार्य के प्रिय शिष्य हा ! अन्न-विद्या के बल से गङ्गा-पुत्र (भीष्म) को प्रसन्न करने वाले, हा ! कर्ण के कुलरूपी कमललता के लिए हिमपात, हा ! गन्धर्व (की पकड़) से दुर्योधन को दुड़ाने वाले, हा ! पाण्डवों के कुलरूपी कमलिली के मराल !

विशेष—सव्यसाचिन्—सव्य = बायें हाथ, बायें हाथ से भी बाण छोड़ने के कारण अर्जुन को 'सव्यसाची' कहा जाता था।

त्रिलोचनाङ्गनिषेधमल्ल—अर्जुन शङ्कर को प्रसन्न कर उनसे आयुध-प्राप्ति के लिए तपस्या कर रहे थे। एक दिन परीक्षा के लिये पथारे हुए किरातवंशधारी शङ्कर एवं अर्जुन में मल्ल युद्ध हुआ। अन्ततः शङ्कर अर्जुन की बलपरीक्षा में सन्तुष्ट हो उनके मनोरथ की पूर्ति किये।

निवात कवच—इनकी चर्चा पीछे इसी अङ्क में आ चुकी है।

बदर्याश्रम—तापस—पूर्व जन्म में अर्जुन एवं श्रीकृष्ण ने बदरीकाश्रम में क्रमशः नर एवं नारायण के रूप में तपस्या की थी।

(मोहमुपगतः)

कञ्चुकी—मोः कष्टम् । एष दुरात्मा कौरवाधमो यथेष्टमित एवाभिवर्तते । सर्वथा प्रवेशकालः । चितासमीपमुपनयाम्यन्नभवतीं पाञ्चालराजतनयाम् । अहमप्येवमेवागु गच्छामि । (चेटी प्रति) मद्दे, त्वमपि देव्या आतरं दृष्टद्युम्नं नकुलसहदेशं चाऽवाप्नुहि । अथवा एवमवस्थिते महाराजेऽस्तमितयोर्मामार्जुनयोः कुतोऽपि परित्राणाशा ।

चेटी—परित्रायध्वं परित्रायध्वमार्याः । [परिताग्रह परिताग्रह अज्जा ।]

(नेपथ्ये कलकलानन्तरम्)

मो मोः समन्तपञ्चकसंचारिणः क्षतजासवमत्तयक्षराक्षसपिशाचभूतवेतालकृत् गृध्रजम्बुकोलूकवायसभूयिष्ठा विरलयोधपुरुषाः, कृतमस्मदर्शनत्रासेन । कथयत कस्मिन्नुद्देशे याज्ञसेनी संहितेति । कथयाम्युपलक्षणं तस्याः ।

ऊहं करेण परिघट्टयतः सलीलं

दुर्योधनस्य पुरतोऽपहृताम्बरा या ।

दुःशासनेन कचकर्षणभिन्नमौलिः

सा द्रौपदी कथयत क्व पुनः प्रदेशे ॥ ३५ ॥

शब्दार्थः—अयि तात्=हे प्रिय बन्धु, ताम्=उस, वत्सलाम्=स्नेहपूर्णा, अम्बाम्=मां को विनीतम्=नम्रतापूर्वक, अनभिवाद्य=विना प्रणाम किये, च=तथा, माम्=मुझको, गाढम्=कट कर, अनुपगुह्य=विना आलिङ्गन किये; मया=मेरे द्वारा, अपि=भी, अनुक्तः=विना कहे गये स्वयंवरवधूम्=स्वयंवर से लाई गई वधू, एताम्=इस, दयिताम्=प्रिया को, अदृष्ट्वा=विना देखे दोर्वप्रवासम्=चिर प्रवास के लिए, कथम्=कैसे, गतः=चले गये, असि=हो ॥ ३४ ॥

तां वत्सलामिति । अयि तात्=हे प्रियानुज, ताम्=तादृशीम्, अरण्यवासेऽप्यनुभूतः कृतमित्यर्थः, वत्सलाम्=स्नेहपूर्णाम्; अम्बाम्=जननीम्, विनीतम्=नम्रं यथा तथा, अनभिवाद्य=नमस्कारमकृत्वा, च=तथा, माम्=स्वाग्रजं युधिष्ठिरमिति भावः, गाढम्=दोर्ध्वम्, अनुपगुह्य=अनालिङ्ग्य, मया=अग्रजेन मया युधिष्ठिरेण, अपि=च, अनुक्तः=अनाशतः, अस्वीकृत इति यावत् स्वयंवरवधूम्=स्वयंवरेण आनीता वधूः स्वयंवरवधूः=स्वयंवरगृहीता पत्नी ताम्, एताम्=इयाम्, दयिताम्=प्रियाम्, अदृष्ट्वा=अनवलोक्य, अनुक्त्वेति यावत्, दोर्वप्रवासम्=चिरप्रवासम् मया मिति यावत्, कथम्=केन प्रकारेण, गतः=यातः, असि ? अत्र परिकरालङ्कारः वसन्तलल छन्दः ॥ ३४ ॥

अन्वयः—सलीलम्, करेण, ऊहम्, परिघट्टयतः, दुर्योधनस्य, पुरतः, या, अपहृताम्बरा (अमूत) ; दुःशासनेन, कचकर्षणभिन्नमौलिः, (आसीत्) ; सा, द्रौपदी, पुनः, क्व, प्रदेशे, (अस्ति) इति, कथयत ॥ ३५ ॥

शब्दार्थः—सलीलम्=लीलापूर्वक, करेण=हाथ से, ऊहम्=जाँव को, परिघट्टयतः=

षष्ठोऽङ्कः

३०३

सर्वथा
मेवानु-
सहदेवो
कुतोऽपि

हे प्रिय बन्धु, उस स्नेह पूर्णा माँ को नम्रतापूर्वक बिना प्रणाम किये तथा मुझको कसकर बिना आलिङ्गन किये, मेरे द्वारा भी बिना कहे गये, स्वयंवर से लायी गयी वधू इस प्रिया को बिना देखे ही, विरप्रवास के लिये कैसे चले गये ? ॥ ३४ ॥

(मूर्च्छित हो गया)

लक्ष्मण
कथय

कन्धुकी—अरे बड़ा दुःख है । यह दुष्ट अधम कारव स्वच्छन्दतापूर्वक इधर ही आ रहा है । सब तरह से (यही चिन्ता में) प्रवेश करने का उपयुक्त समय है । आदरणीया पाञ्चालराज-पुत्री (द्रौपदी) का चिता के पास ले चूँ । मैं भी इसी प्रकार (चिता में कूद कर इनका) अनुसरण करूँगा । (चेटी के प्रति) भलीमानस, तुम भी महारानी (द्रौपदी) के भाई धृष्टद्युम्न अथवा नकुल एवं सहदेव के पास चली जाओ । अथवा महाराज के ऐसी अवस्था में वर्तमान होने पर भीम और अर्जुन के अस्त हो जाने पर इस जगत् में रक्षा की आशा किससे की जा सकती है ? (अर्थात् किसी से नहीं) ।

चेटी—बचाइये, बचाइये, महानुभावों ।

(पदों के पीछे कोलाहल के बाद)

=माँ के
=कह
कहे गये
देखे हो
पुतदुःख
भवाव
पुण्य
याव
इमान

हे हे समन्तपञ्चक (प्रदेश) में घूमनेवाले, रक्तरुषी मदिरा से मतवाले यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत, वेताल, कङ्क, गृध्र, सियार, उल्लू और कौबों से परिब्याप्त, अल्पसंख्या में बचे हुये वीर पुरुषों, हमारे दर्शन से त्रस्त होने की आवश्यकता नहीं है । बतलाइये किस स्थान में द्रौपदी स्थित है ? (मैं) उसका लक्षण (Characteristic) बतला रहा हूँ ।

लौलापूर्वक हाथ से जाँव को ठोकते हुए दुर्योधन के सामने जो खींचे गये बन्धवाली (हुई थी । अर्थात् जिसके बन्ध खींचे गये थे) तथा दुःशासन के द्वारा बालों को खींचने से बिखरे हुए जूड़ावाली हुई थी । (अर्थात् जिसके जूड़ा के बाल बिखर गये थे) । वह द्रौपदी, अच्छा, किस स्थान में (है ? यह) बतलाओ (अर्थात् बैठाने के लिए जाँव को ठोकते हुये दुर्योधन के सामने जिसके बन्ध एवं बाल खींचे गये थे, वह द्रौपदी कहाँ है ? बतलाइये) ॥ ३५ ॥

पुतदुःख
भवाव
पुण्य
याव
इमान
मर
तितिक
इताम्
(अति
=ठ

हुये, दुर्योधनस्य=दुर्योधन के, पुरतः=सामने, या=जो, अपहृताम्बरा=खींचे गये बन्धवाली, (अमूत्=हुई थी); दुःशासनेन=दुःशासन के द्वारा, कचकर्षणमिन्नमौलिः=बालों को खींचने से बिखरे हुये जूड़ावाली, (आसीत्=हुई थी); सा=वह, द्रौपदी=द्रौपदी, पुनः=अच्छा, क्व=किस, प्रदेशे=स्थान में, (अस्ति=है, इति=यह), कथयत=बतलाओ ॥ ३५ ॥

ऊरुमिति । सलीलम्—लौला=बिलासेन सहितं यथा तथा इति सलीलम्=सविलासम्, करेण=हस्तेन, ऊरुम्=स्वकीयां जङ्घाम्, परिषद्वयतः=ताडयतः, दुर्योधनस्य=दुर्योधनस्य, पुरतः=समक्षम्, या, अपहृताम्बरा—अपहृतानि=आवृष्टानि अम्बराणि=बन्धवाणि यस्याः सा ताड्यशी, अमूदिति क्रियाशेषः; दुःशासनेन=दुर्योधनानुजेन, कचकर्षणमिन्नमौलिः—कचकर्षणेन=शिरोरुहाकर्षणेन मिन्नः=प्रकीर्णः मौलिः=धम्मिलः ('मौलिः किरीटे धम्मिल्ले' इति विश्वः), यस्याः सा, आसीदिति शेषः; सा=ताड्यशी, द्रौपदी=यागसेनी, पुनः, क्व=कस्मिन्, प्रदेशे=स्थाने, अस्तीति शेषः, कथयत=ब्रूत । वसन्ततिलका छन्दः ॥ ३५ ॥

कञ्चुकी— हा देवि यज्ञवेदिसंभवे, परिभूयसे संप्रत्यनाथा कुरुकुलकलङ्केन ।

युधिष्ठिरः—(सटसोत्थाय सावष्टम्भम्) पांचालि, न भेतव्यम् । (सतंभ्रम्) कोऽत्र भोः । सनिषङ्गं मे धनुरूपनय । दुरात्मन्दुर्योधनहतक, आगच्छागच्छ । अपनयामि ते गदाकौशलसंभृतं भुजदर्पं शिलीमुखसारणेन । अन्यच्च रे कुरुकुलाङ्गार,

प्रियमनुजमपश्यस्तं जरासन्धशत्रुं

कुपितहरकिरातद्वेषिणं तं च वत्सम् ।

त्वमिव कठिनचेताः प्राणितुं नास्मि शक्तो

ननु पुनरपहर्तुं वाणवर्षेस्तवासून् ॥ ३६ ॥

(ततः प्रविशति गदापाणिः क्षतजसक्तसर्वाङ्गो भीमसेनः)

भीमसेनः—(उद्धतं परिक्रामन्) भो भोः समन्तपञ्चकसंधारिणः सैनिकाः, कोऽयमावेगः

नाहं रक्षो न भूतो रिपुरुधिरजलप्लाविताङ्गः प्रकामं

निस्तोर्णोरुप्रतिज्ञाजलनिधिगहनः क्रोधनः क्षत्रियोऽस्मि ।

भो भो राजन्यवीराः समरशिखिशिखादग्धशेषाः कृतं व-

स्त्रासेनानेन लीनेहंतकरित्तरगान्तहितैरास्यते यत् ॥ ३७ ॥

युधिष्ठिर इति । सनिषङ्गम्—निषङ्गेन=तूणीरेण सहितं सनिषङ्गम् । गदाकौशलसम्भृतम्—गदायाम्=गदासञ्चालने इत्यर्थः यत् कौशलम्=नैपुण्यम् तेन सम्भृतम्=वृद्धिङ्गतम्, शिलीमुखासारणे—शिलीमुखानाम्=वाणानाम् आसारणे=अविरतवृष्ट्या ।

अन्वयः—जरासन्धशत्रुम्, प्रियम्, तम्, अनुजम्, च, कुपितहरकिरातद्वेषिणम्, तम्, वत्सम्, अपश्यन्, कठिनचेताः, त्वमिव, प्राणितुम्, शक्तः, न, अस्मि, पुनः, वाणवर्षैः, तव, असून्, अपहर्तुम्, ननु, शक्तः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थः—जरासन्धशत्रुम्=जरासन्ध के शत्रु, प्रियम्=प्रिय, तम्=उस, अनुजम्=लघु भ्राता को, च=तथा, कुपितहरकिरातद्वेषिणम्=क्रुद्ध किरातरूपधारी शङ्कर से स्पर्धा करने वाले, तम्=उस, वत्सम्=प्रिय अनुज को, अपश्यन्=न देखता हुआ, कठिनचेताः=कठोर हृदय वाले, त्वमिव=तुम्हारी तरह, प्राणितुम्=जीवित रहने में, शक्तः=समर्थ, न=नहीं, अस्मि=हैं, पुनः=लेकिन, वाणवर्षैः=वाणा की वर्षा से, तव=तुम्हारे, असून्=पाणों को, अपहर्तुम्=ले लेने में, ननु=निश्चय ही, शक्तः=समर्थ हूँ ॥ ३६ ॥

प्रियमिति । जरासन्धशत्रुम्—जरासन्धस्य=जरया राक्षस्या विहितसन्धानस्य राक्षसस्य शत्रुम्=रिपुम् प्रियम्=प्रेमयात्रम्, तम्=तादृशम्, अनुजम्=लघुभ्रातरम्, च=तथा, कुपितहरकिरातद्वेषिणम्—कुपितः=क्रुद्धः यः हरः=शिवः एव किरातः=व्याधः, आखेटकर्ता वन्यो मानवः, किरातरूपी हर इत्यर्थः, इमामेव कथामाश्रित्य किरातार्जुनीयस्य निमित्तिरिति, तस्य द्वेषिणम्=स्पर्धाकर्तारम्, तम्=तादृशम्, वत्सम्=प्रियमनुजमर्जुनमित्यर्थः, अपश्यन्=अनवलोक्यन्, कठिनचेताः—कठिनम्=कठोरम् चेतः=हृदयम् यस्य सः, त्वमिव=यथा त्वमित्यर्थः, अनुजशतनाशं दृष्ट्वापि कठि-

कञ्जुको—हाय महारानी यज्ञ की वेदी से उत्पन्न हुई (द्रौपदी), अब रक्षकविहीन (आप) बुरु-कुल में कलङ्क (दुर्योधन) के द्वारा अपमानित होओगी।

युधिष्ठिर—(एकाएक उठकर, गर्व के साथ) द्रौपदी, मत डरो। (जल्दी में) कौन, कौन है, यहाँ जो? तूणीर (Quiver) के सहित मेरा धनुष लाओ। दुष्ट, अमाने दुर्योधन आओ आओ। बाणों की वर्षा से गदा (चलाने) की प्रवीणता के कारण बड़े हुए तुम्हारे मुजाओं के अभिमान को दूर कर दूँ। और भी, रे बुरुकुल के अङ्गार!

जरासन्ध के शत्रु, प्रिय उस लघुभ्राता (भीम) को तथा क्रुद्ध किरातरूप शङ्कर से स्पर्धा करने वाले उस प्रिय अनुज (अर्जुन) को न देखता हुआ (मैं) कठोर हृदयवाले तुम्हारी तरह, जीवित रहने में समर्थ नहीं हूँ, लेकिन बाणों की वर्षा से तुम्हारे प्राणों को ले लेने में निश्चय ही समर्थ हूँ (अर्थात् मैं अपने प्राणों का त्याग तो करूँगा ही, किन्तु तुम्हें मार कर हो) ॥ ३६ ॥

विशेष—कुपितहरकिरातद्वेषियम्—इस प्रसङ्ग का विवरण इसी अङ्क में पीछे दिया जा चुका है। इसी वधा को लेकर मारवि ने 'किरातार्जुनीयम्' की रचना की है ॥ ३६ ॥

(तदनन्तर हाथ में गदा लिए हुए, रक्त से भीगी हुई समूची शरीरवाले भीमसेन प्रवेश करते हैं)

भीमसेन—(उद्धततापूर्वक धूमते हुए) समन्तपञ्चक में विचरण करने वाले हे हे सैनिकों, यह कैसी धवराहत है?

मैं न राक्षस (अथवा) मृत (ही हूँ)। शत्रु के रक्तरूपी जल से भीगे हुये अङ्गों वाला, भली-भाँति महान् प्रतिशारूपी गहन सागर को पार कर चुका हुआ, क्षीधी क्षत्रिय हूँ। संग्रामरूपी अग्नि को लपट से अवशिष्ट क्षत्रिय वीरों, आप लोगों के इस भय से बस (अर्थात् आप लोगों को डरने की आवश्यकता नहीं) जो कि (आप लोगों के द्वारा) मारे गये हाथियों एवं घोड़ों से आड़ करके छिप कर बैठा गया है ॥ ३७ ॥

चेताः सन् त्वमिव नाहम्, प्राणितुम्=जीवितुम्, शक्तः=समर्थः, न=नहि, अस्मि=वर्ते, पुनः=किन्तु, बाणवर्षैः=शरसम्पातैः, तव=दुष्टस्य दुर्योधनस्येत्यर्थः, असून्=प्राणान्, अपहतुम्=हरीकर्तुम्, नन्विति निश्चये, शक्तः=समर्थः। तव प्राणान् विनाश्य तदनु मरणं शरणं गमिष्यामीति भावः। अत्र रूपकालङ्कारः। मालिनो छन्दः। तल्लक्षणम्—“ननमयययुतेयं मालिनो भोगिलोकैः ॥” ३६ ॥

अन्वयः—अहम्, न, राक्षः, (वा), न, मृतः, (अस्मि), रिपुशिरजलप्लाविताङ्गः, प्रकामम्, निस्तीर्णोऽप्रतिज्ञाजलनिधिगहनः, क्रोधनः, क्षत्रियः, अस्मि, समरशिखिशिखादश्वशेषाः, भो भोः, राजन्यवीराः, वः, अनेन, व्राजेन, कृतम्; यत्, (युष्माभिः), हतकस्त्रितुरगान्तहिनेः, छानैः, आस्यते ॥ ३७ ॥

शब्दार्थः—अहम्=मैं, न=न, राक्षः=राक्षस, (वा=अथवा), न=न, मृतः=मृत, (अस्मि=हूँ), रिपुशिरजलप्लाविताङ्गः=शत्रु के रक्तरूपी जल से भीगे हुए अङ्गों वाला, प्रकामम्=महोमौति, निस्तीर्णोऽप्रतिज्ञाजलनिधिगहनः=महान् प्रतिशारूपी गहन सागर को पार कर

कथयन्तु भवन्तः कस्मिन्नुद्देशे पांचाङ्गी तिष्ठति ।

द्रौपदी—(लब्धसंज्ञा) परित्रायतां परित्रायतां महाराजः ।

[परित्राअदु परित्राअदु महाराजो ।]

कंचुकी—देवि पाण्डुस्नुपे, उत्तिष्ठोत्तिष्ठ । संप्रति झटिति चित्ताप्रवेश एव श्रेयान् ।

द्रौपदी—(सहस्रोत्थाय) कथं न संभावयाम्यद्यापि चित्तासमीपम् ।

[कहं ण संभावेमि अज्जवि चिदासमीवम् ।]

युधिष्ठिरः—कोऽत्र मोः । सनिषङ्गं धनुरूपनय । कथं न कश्चत्परिजनः । भवतु
आहुयुद्धेनैव दुरात्मानं गाढमालिङ्ग्य ज्वलनमभिपातयामि । (परिकरं बध्नाति)

कंचुकी—देवि पाण्डुस्नुपे, संयम्यन्तामिदानीं नयनोपरोधिनो दुःशासनावकृष्टा
मूर्धजाः । अस्तमिता संप्रति प्रतीकाराशा । चित्तासमीपमेव द्रुततरं संभावय ।

युधिष्ठिरः—कृष्णे, न खल्वनिहते तस्मिन्दुरात्मनि दुर्योधने संहर्तव्याः केशाः ।

भीमसेनः—पञ्चालि, न खलु मयि जीवति संहर्तव्या दुःशासनविलुलिता
वेणिरात्मपाणिभ्याम् । तिष्ठतु तिष्ठतु । स्वयमेवाहं सहरामि ।

(द्रौपदी भयादपसर्ति)

भीमसेनः—तिष्ठ, तिष्ठ । भीरु क्वापुना गम्यते । (इति वेशेषु ग्रहीतुमिच्छति) ।

युधिष्ठिरः—(वेगाद्भीममालिङ्ग्य) दुरात्मन् , भीमार्जुनशत्रो, सुयोधनहतक,

आरौशवादनुदिनं जनितापराधो

मत्तो बलेन भुजयोर्हतराजपुत्रः ।

आसाद्य मेऽन्तरमिदं भुजपञ्जरस्य

जीवन्प्रयासि न पदात्पदमद्य पाप ॥ ३८ ॥

चुका हुआ, क्रोधनः = क्रोधी, क्षत्रियः = क्षत्रिय, अस्मि = हूँ, समरशिखिशिखादग्धशेषाः = संग्राम रूपी
अग्नि की लपट से अवशिष्ट, मो मोः = हे हे, राजन्यवीराः = क्षत्रिय वीरों, वः = आप लोगों के,
अनेन = इस, त्रासेन = भय से, कृतम् = वस, यत् = जो कि, (युष्माभिः = आप लोगों के द्वारा),
हतकरितुरगान्तर्हितैः = मारे गये हाथियों एवं घोड़ों से आड़ कर के, लीनैः = छिप कर, आस्यते =
बैठा गया है ॥ ३७ ॥

नाहमिति । अहम् = भवतां भयहेतुरागच्छन्नहमित्यर्थः, न रक्षः = राक्षसः, (वेति विकल्पे),
न भूतः = न प्रेतः; अस्मीति क्रियाशेषः, रिपुरुधिरेति—रिपोः = शत्रोः दुर्योधनस्य रुधिरम् = रक्तम् एव
जलम् = सलिलम् तेन प्लावितानि = आद्राणि अङ्गानि = अवयवाः यस्य सः, रिपुरुधिरेण कृतस्तानः
इत्यर्थः, प्रकामम् = पर्याप्तम्, निस्तीर्णैति—निस्तीर्णम् = उत्तीर्णम्, उरुप्रतिशयाः = महत्याः प्रतिशयाः
एव जलनिधेः = सागरस्य गहनम् = गाम्भीर्यम् येन स तादृशः, अथवा निस्तीर्णा उरुप्रतिशया एव जल-

पद्योऽङ्कः

३०७

वतलायें आप लोग किस जगह पर द्रौपदी स्थित है ?

द्रौपदी—(चेतना में आकर) बचावें, बचावें महाराज ।

कच्यूकी—महारानी, पाण्डु की पुत्रवधू, उठिये उठिये । अब अतिशय चिन्ता में प्रवेश करना ही कल्याणकारी है ।

द्रौपदी—(एकाएक उठकर) क्यों नहीं अब भी चिन्ता के पार्श्व भाग का सेवन करूँगी ?

युधिष्ठिर—कौन-कौन यहाँ हैं जी ? तूणीर के सहित धनुष लाओ । क्या कोई सेवक (यहाँ) नहीं है । अच्छा, बाहुयुद्ध से ही (इस) दुरात्मा को कस कर पकड़ कर आग में गिरा दूँगा । (कमर कसकर बाँधता है) ।

कच्यूकी—महारानी, पाण्डु की पुत्रवधू, नेत्रों को ढकने वाले, दुःशासन के द्वारा खींचे गये केशों को अब समेट कर बाँध लें । अब वदला चुकाने की आशा समाप्त हो चुकी है । चिन्ता के पार्श्वभाग को ही अतिशय सम्भावित करें (अर्थात् चिन्ता के पास ही अतिशय चले) ।

युधिष्ठिर—द्रौपदी, उस दुरात्मा दुर्योधन के बिना मारे केश न बाँधे जाय ।

भीमसेन—पात्राल नरेश की पुत्री (द्रौपदी), दुःशासन के द्वारा छितराई गई चोटो मेरे जीते जी अपने हाथों से मत बाँधना । रुकिये रुकिये । स्वयं ही मैं संवार कर बाँधता हूँ (इस चोटो को) ।

(द्रौपदी डरकर दूर हटती है)

भीमसेन—रुको रुको ! डरपोक, अब कहाँ जा रही है ? (ऐसा कह कर केशों को पकड़ना चाहता है) ।

युधिष्ठिर—(जल्दी से भीम को दोनों बाहुओं में पकड़ कर) दुरात्मन्, भीम एवं अर्जुन के शत्रु, अभिमान दुर्योधन !

हे पापी, वचन से ही लेकर प्रतिदिन अपराधों को करने वाला, भुजाओं के बल से मतवाला, (अर्जुन एवं भीमरूप) राजपुत्रों का हन्ता (तू) आज मेरे भुजारूपी पिण्ड के इस मध्यभाग को पास कर (अर्थात् मेरी भुजाओं की पकड़ में आकर) जाते जी एक पग (भी) नहीं जा सकेगा ॥ ३८ ॥

निधिगहनः येन सः, अत्र गहनश्चासी जलनिधिश्चेति जलनिधिगहनः, अत्र, कडाराः कमधारये पा० २:२।३८ (कडारादयः शब्दाः कर्मधारये वा पूर्व प्रयोज्याः) इति पूर्वनिपातविधेरनित्यत्वेन समाधानम्, क्रोधनः=कापनः, क्षत्रियः=क्षत्रियत्वजातिविशिष्टः, अस्मि, समरशिखिशिखेति—समरः=संग्रामः एव शिखो=प्रज्वलितानिः तस्य शिखामिः=ज्वालामिः दग्धाः=मस्मीभूताः तेषां तेषु वा शेषाः=अवशिष्टाः, भो भोः=हे हे, राजन्यवीराः=क्षत्रियशूराः, वः=युष्माकम्, अनेन=एतेन, त्रासेन=भयेन, कृतम्=अलम्; यत्=यस्मात्; (युष्माभिः), हतकरितुरगान्तर्हितैः—हताः=घातिताः करिणः हस्तिनः तुरगाश्च तैः अन्तर्हिताः=आच्छन्नशरीराः तैः, छिन्नेः=प्रच्छन्नैः, स्योयते=ऊषविश्यते, त्रासफलमेतत् । अत्र तृतीये चरणे रूपकालङ्कारः । स्रग्धरा छन्दः ॥ ३७ ॥

अन्वयः—हे पाप, आशौशवात्, अनुदिनम्, जनितापराधः, भुजयोः, वलेन, मत्तः, हतराज-पुत्रः, (त्वम्), अद्य, मे, भुजपञ्जरस्य, इदम्, अन्तरम्, आसाद्य, जीवन्, पदात् पदम्, न, मयासि ॥ ३८ ॥

शब्दार्थः—हे पाप=हे पापी, आशौशवात्=वचन से ही लेकर, अनुदिनम्=प्रतिदिन,

भीमसेनः—अये कथमर्थः सुयोधनशङ्कया क्रोधाच्चिर्यं मामालिङ्गति ।

कंचुकी—(निरूप्य सहर्षम्) महाराज, वञ्च्यसे । अयं खल्वायुष्मान् भीमसेनः सुयोधन-
क्षतजारुणीकृतसकलशरीराम्बरो दुर्लक्ष्यव्यक्तिः अलमधुनासंदेहेन ।

चेटी—(द्रौपदीमालिङ्ग्य) देवि, निवर्त्यतां निवर्त्यताम् । एष खलु पूरितप्रतिज्ञाभारो
नाथस्ते वेणीसंहारं कर्तुं त्वामेवान्विवर्त्यति ।

[देवि, णिवट्टीअदु णिवट्टीअदु । एसां वखु पूरिदण्डिण्णाभारो णाहो दे वेणीसंहारं कादुं तुमं
एवञ् अण्णेसेदि ।]

द्रौपदी—हज्जे, किं मामलीकवचनराश्यासयसि ।

[हज्जे, किं मं अलीकवचणेहिं आसासेसि ।]

युधिष्ठिरः—जयंधर, किं कथयसि नायमनुजद्वेषी दुर्योधनहतकः ।

भीमसेनः—देव अजातशत्रो, भीमार्जुनगुरो, कुतोऽद्यापि दुर्योधनहतकः । मया
हि तस्य दुरात्मनः पाण्डुकुलपरिभाविनः—

भूमौ क्षिप्तं शरीरं निहितमिदमसूचचन्दनाभं निजाङ्गे
लक्ष्मीरार्ये निषण्णा चतुरदधिपयःसीमया सार्धमुर्व्या ।

भृत्या मित्राणि योधाः कुरुकुलमखिलं दग्धमेतद्गणाग्नौ
नामैकं यदब्रवीषि क्षितिप तदधुना धार्तराष्ट्रस्य शेषम् ॥ ३९ ॥

जनितापराधः=अपराधो को करने वाला, भुजयोः=भुजाओं के, बलेन=बल से, मत्तः=मतवाला,
हतराजपुत्रः=(अर्जुन एवं भीमरूप) राजपुत्रों को मारने वाला, (त्वम्=तू), अद्य=आज,
मे=मेरे, भुजपञ्जरस्य=भुजारूपी पिंजड़े के, इदम्=इस, अन्तरम्=मध्यभाग को, आसाद्य=प्राप्त
कर, जीवन्=जीते जी, पदात् पदम्=एक पग (भी), न=नहीं, प्रयासि=जा सकोगे ॥ ३८ ॥

आशौशवादिति । हेपाप=हे पापिन्, आशौशवात्=बाल्यादारभ्य, अनुदिनम्=प्रतिदिनम्,
जनितापराधः—जनितः=कृतः अपराधः=परस्याहितम्, निन्दितं कर्मेति यावत्, येन तादृशः,
भुजयोः=बाहोः, बलेन=सारेण, मत्तः=गर्हितः, हतराजपुत्रः—हतो=घातितौ राजपुत्रो=राजसुतो,
भीमाजुनाविति यावत्, येन तादृशः, त्वमिति शेषः, अद्य=अस्मिन् दिने, मे=मम, भुजपञ्जरस्य-
भुजयोः=बाहोः पञ्जरस्य=अयःशलाकानिर्मितस्य पक्षिवन्धनस्य, अन्तरम्=मध्यभागम्, आसाद्य=
प्राप्य, जीवन्=प्राणान् धारयन्, पदात्पदम्=एकमपि पदमित्यर्थः, न प्रयासि=न गच्छसि, गन्तुं न
शक्नोसीति भावः । अत्र भविष्यति लट् । रूपकमत्रालङ्कारः । वसन्ततिलका छन्दः ॥ ३८ ॥

कञ्चुकीति । सुयोधनक्षतजारुणीकृतसकलशरीराम्बरो—सुयोधनस्य = दुर्योधनस्य क्षतजेन = रक्तेन
अरुणीकृतानि = रक्तीकृतानि सकलानि = निखिलानि शरीराम्बराणि = शरीरवस्त्राणि यस्य तादृशः,
दुर्लक्ष्यव्यक्तिः—दुर्लक्ष्या = शत्रुं कठिना व्यक्तिः = मूर्तिः यस्य तादृशः ॥

चेटीति । पूरितप्रतिज्ञाभारः—पूरितः=निस्तीर्णः प्रतिज्ञायाः = प्रणस्य भारः=गुरुता येन सः

भीमसेन—अरे ! क्या आर्य दुर्योधन को आशङ्का से क्रोधवश निर्दयतापूर्वक मेरा आलिङ्गन कर रहे हैं ?

कंचुकी—(ध्यान से देखकर पसन्नतापूर्वक) महाराज, (आप) धोखा में पड़े हैं । दुर्योधन के रक्त से रञ्जित सकल शरीर एवं वस्त्रवाले (अतः) पहचानने में कठिन आकारवाले यह तो चिरञ्जीवी भीमसेन है । अब सन्देह करना व्यर्थ है ।

चेटी—(द्रौपदी से लिपट कर) महारानी, लौट आइये, लौट आइये । प्रतिष्ठा के मार को पूर्ण कर चुके हुये, यह आप के स्वामी (भीम) ही आपकी चोटी को बाँधने के लिये आपको ही खोज रहे हैं ।

द्रौपदी—सखि, क्यों मुझे झूठे वचनों से ढाढस बँधा रही हो ?

युधिष्ठिर—जयन्धर, क्या कह रहे हो, कि यह (मेरे) भाइयों का हन्ता नीच दुर्योधन नहीं है ?

भीमसेन—महाराज अज्ञातशत्रो, भीम एवं अर्जुन के जेष्ठ भ्राता, कहाँ (है) आज भी दुष्ट दुर्योधन ? पाण्डुकुल का तिरस्कार करने वाले उस दुरात्मा का मेरे द्वारा—

शरीर जमीन पर फेंक दिया गया है । यह (देवी) चन्दन के सट्टश रक्त अपने शरीर पर लगाया गया है । चारों समुद्रों के जल की सोमा वालों (अर्थात् चारों समुद्र हाँ हैं सोमा जिसकी ऐसी) पृथिवी के साथ (राज्य-) श्री आप में स्थित हुई । सेवक, मित्र, याद्धा (तथा) यह समूचा कुरुकुल युद्धाग्नि में भस्म हो चुका है । हे राजन्, जिसे बोल रहे हो (उस) धृतराष्ट्र के पुत्र (दुर्योधन) का एकमात्र नाम (ही) अब बचा हुआ (है) ॥ ३९ ॥

वेपीसंहारम्—वेण्याः संहारः=संयमनम् तम् ।

अन्वयः—शरीरम्, भूमौ, क्षिप्तम्, इदम्, चन्दनाभम्, अस्त्रम्, निजाङ्गे, निहितम्, चतुर्दशपथःसोमया, उर्व्या, साधेम्, लक्ष्माः, आर्यं, निषण्णाः, भृत्याः, मित्राणि, योधाः, पतत्, अखिलम्, कुरुकुलम्, रणाग्नौ, दग्धम्, हे क्षितिप, यत्, ब्रवापि, (तत्), धातराष्ट्रस्य, एकम्, नाम, अभुना, शेषम्, (आस्ति) ॥ ३९ ॥

शब्दार्थः—शरीरम्=शरीर, भूमौ=जमीन पर, क्षिप्तम्=फेंक दिया गया है, इदम्=यह, चन्दनाभम्=चन्दन के सट्टश, अस्त्रम्=रक्त, निजाङ्ग=अपने शरीर पर, निहितम्=लगाया गया है; चतुर्दशपथःसोमया=चारों समुद्रों के जल की सोमा वाला, उर्व्या=पृथिवी के, साधेम्=साथ, लक्ष्माः=(राज्य-) श्री, आर्यं=आप में, निषण्णा=स्थित हुई है, भृत्याः=सेवक, मित्राणि=मित्र; योधाः=योद्धा, पतत्=पड़, अखिलम्=समूचा, कुरुकुलम्=कुरुकुल, रणाग्नौ=युद्धाग्नि में, दग्धम्=भस्म हो चुका है, हे क्षितिप=हे राजन्, यत्=जिसे, ब्रवापि=बोल रहे हो, (तत्=वह), धातराष्ट्रस्य=धृतराष्ट्र के पुत्र (दुर्योधन) का, एकम्=एकमात्र, नाम=नाम, अभुना=अब, शेषम्=बचा हुआ (अस्ति=है) ॥ ३९ ॥

(युधिष्ठिरः स्वैरं मुक्त्वा भीममवलोकयन्नश्रुणि प्रमार्जयति)

भीमसेनः--(पादयोः पतित्वा) जयत्वार्यः ।

युधिष्ठिरः--वत्स, वाष्पजलान्तरितनयनत्वान्न पश्यामि ते सुखचन्द्रम् । तत्कथय कच्चिज्जीवति भवान्समं किरीटिना ।

भीमसेनः--निहतसकलरिपुपक्षे त्वयि नराधिपे, जीवति भीमोऽर्जुनश्च ।

युधिष्ठिरः--(पुनर्गण्डमालिङ्ग्य)

रिपोरास्तां तावन्निधनमिदमाख्याहि शतशः

प्रियो भ्राता सत्यं त्वमसि मम योऽसौ बकरिपुः ।

भीमसेनः--आर्यं सोऽहम् ।

युधिष्ठिरः--

जरासंधस्योरःसरसि रुधिरासारसलिले

तटाघातक्रीडाललितमकरः संयति भवान् ॥ ४० ॥

भीमसेनः--आर्य, स एवाहम् । तन्मुञ्चतु मामार्यः क्षणमेकम् ।

युधिष्ठिरः--किमपरमवशिष्टम् ।

भीमसेनः--आर्य, सुमहदवशिष्टम् । संयच्छामि तावदनेन सुयोधनशोणितो-
क्षितेन पाणिना पाञ्चाल्या दुःशासनावकृष्टं केशहस्तम् ।

युधिष्ठिरः--गच्छतु भवान् । अनुभवतु तपस्विनी वेणीसंहारमहोत्सवम् ।

भीमसेनः--(द्रौपदीमुपसृत्य) देवि पाञ्चालराजतनये, दिष्टया बध्ने हिपुकुलक्षयेण ।

द्रौपदी--(उपसृत्य) जयतु जयतु नाथः । (जेदु जेदु णाहो) ।

भीमसेनः--राजपुत्रि, अलमेवविधं मामालोक्य त्रासेन ।

भूमाविति । शरीरम्=देहः, भूमौ=पृथिव्याम्, क्षिप्तम्=प्रक्षिप्तम्, 'मया तस्य दुरात्मनः'
इति गद्यादध्याहार्यम्; इदम्=एतत्, चन्दनाभम्--चन्दनस्य=देवोचन्दनस्येति भावः आभा=कांतिः
इव आभा यस्य तत्, रक्तचन्दनसदृशमित्यर्थः, अस्क्=रक्तम्, निजाङ्गे=स्वशरीरे, निहितम्=
स्थापितम्; चतुरुदधिपयःसीमया--चत्वारः=चतुःसंख्याकाः उदधयः=सागराः तेषां पयसि=
जलानि, सीमा=मर्यादा यस्याः सा तथा, उर्व्यां=पृथिव्या, साधम्=साकम्, लक्ष्मीः=राजश्रीः,
आर्ये=श्रीमति त्वयि, निषण्णा=स्थिता, भृत्याः=सेवकाः, मित्राणि=सुहृदः, योधाः=वीराः,
एतत्=इदम्, अखिलम्=समग्रम्, कुरुकुलम्=कुरुवंशः, रणारणौ=युद्धवह्नौ, दग्धम्=भस्मी-
भूतम्, हे क्षितिप=हे राजन्, यत्=यन्नाम इत्यर्थः, ब्रवीषि=कथयसि, तादिति शेषः, धार्तराष्ट्रस्य=
धृतराष्ट्रपुत्रस्य, दुर्योधनस्येत्यर्थः, एकम्=केवलम्, नाम=संज्ञा, अधुना=सम्प्रति शेषम्=अव-
शिष्टम्, अस्तीति क्रियाशेषः । अत्र रूपकालङ्कारः । सग्वरा छन्दः ॥ ३६ ॥

भीमसेन इति । निहतसकलरिपुपक्षे--निहतः=घातितः, सकलः=समग्रः, रिपुपक्षः=शत्रु-
पक्षः यस्य स तस्मिन्, त्वयि=भवति, नराधिपे=भूमुनि सति ॥

(युधिष्ठिर धीरे से छोड़कर, भीम को देखते हुए आँसुओं को पोंछता है)

भीमसेन—(चरणों पर गिर कर) आर्य विजयी बनें ।

युधिष्ठिर—वत्स, नेत्रों के आँसुओं से ढके होने के कारण तुम्हारे मुखचन्द्र को नहीं देख पा रहा हूँ । तो बतलाइये—आप अर्जुन के साथ जीवित तो हैं ?

भीमसेन—मारा गया है सम्पूर्ण शत्रु-पक्ष जिसका ऐसे आपके नराधिन होने पर भीम और अर्जुन जीवित हैं ।

युधिष्ठिर—(फिर बाहुभर अलिङ्गन करके) ।

शत्रु का मरण क्षण भर दूर रहे (अर्थात् शत्रु के निधन की बात क्षण भर के लिए रहने दो) ।
(पहले) यह बार-बार बतलाओ कि—सचमुच तुम मेरे (वही) भाई हो ? जो बकासुर का हन्ता था ।

भीमसेन—आर्य वही हूँ मैं ।

युधिष्ठिर—आप युद्ध में जरासन्ध के रक्त की धारारूपी जलवाले वक्षःस्थलरूपी तालाब में तट-प्रहार की क्रीडा में सुन्दर (लगने वाले) मकर हो ॥ ४० ॥

भीमसेन—आर्य, वही हूँ मैं । तो छोड़ें आर्य मुझे एक क्षण के लिये ।

युधिष्ठिर—(अब) दूसरा क्या बाकी है (जिसके लिये आप जाना चाहते हैं) ?

भीमसेन—आर्य, बहुत महान् (कार्य) बाकी रह गया है । सर्वप्रथम दुर्योधन के रक्त से भीरे हुये इस (अपने) हाथ से दुःशासन के द्वारा खींचे गये द्रौपदी के वेशपाश को बाँधूंगा ।

युधिष्ठिर—जॉय आप । (वह) बेचारी चोटी सँवारने के आनन्द का अनुभव करे ।

भीमसेन—(द्रौपदी के पास जाकर) देवि, पाञ्चालराज की पुत्रि, सौभाग्य से (आप) शत्रु-कुल के नाश से बच रही हैं (अर्थात् शत्रु-कुल के नाश पर आपको बधाई है) ।

द्रौपदी—(पास में जाकर) विजयी बनें, विजयी बनें स्वामी ।

(ऐसा कह कर डर के मारे पीछे हटती है)

भीमसेन—राजसुते, इस अवस्था में मुझे देख कर भय करने की आवश्यकता नहीं है ।

अन्वयः—रिपोः, निधनम्; तावत्, आस्ताम्; इदम्, शतशः, आख्याहि—सत्यम्, त्वम्, मम, असौ, भ्राता, असि, यः, वकरिपुः । भवान्, संयति, जरासन्धस्य, रुधिरासारसलिले, उरःसरसि, तटाघातक्रीडाललितमकरः ? ॥ ४० ॥

शब्दार्थः—रिपोः=शत्रु का, निधनम्=मरण, तावत्=क्षण भर, आस्ताम्=दूर रहे, इदम्=यह, शतशः=बार-बार, आख्याहि=बतलाओ, सत्यम्=सचमुच, त्वम्=तुम्, मम=मेरे, भ्राता=भाई, असौ=वह, असि=हो, यः=जो, वकरिपुः=बकासुर का हन्ता था । भवान्=आप, संयति=युद्ध में, जरासन्धस्य=जरासन्ध के, रुधिरासारसलिले=रक्त की धारारूपी जलवाले, उरःसरसि=वक्षःस्थल रूपी तालाब में, तटाघातक्रीडाललितमकरः=तट-प्रहार की क्रीडा में सुन्दर (लगने वाले) मकर (हा) ? ॥ ४० ॥

रिपोरास्तामिति । रिपोः=शत्रोः, निधनम्=मरणम्, तावत्=क्षणम्, आस्ताम्=तिष्ठतु

कृष्टा येनासि राज्ञां सदसि नृपशुना तेन दुःशासनेन
 स्त्यानान्येतानि तस्य स्पृश मम करयोः पीतशेषाण्यसृज्जि ।
 कान्ते राज्ञः कुरूणामपि रुधिरमिदं मद्गदाचूर्णितोरो-
 रङ्गेऽङ्गे निषक्तं तव परिभवजस्यानलस्योपशान्त्यै ॥ ४१ ॥

बुद्धिमतिके, क्व सा संप्रति भानुमती योपहसति पाण्डवदारान् । भवति यज्ञवेदि-
 संभवे याज्ञसेनि ।

द्रौपदी—आज्ञापयतु नाथः । [आणवेदु पाहो ।]

भीमसेनः—स्मरति भवती यन्मयोक्तम् । ('चन्द्रदभुजेत्यादि' १-२१ पूर्वोक्तं पठति) ।

द्रौपदी—नाथ, न केवलं स्मरासि । अनुभवामि च नाथस्य प्रसादेन ।

[पाह, ण केवलं सुमरामि । अणुभवामि अ पाहस्त प्पसादेण ।]

भीमसेनः—(वेणीमवधूय) भवति, संयम्यतामिदानीं धातराष्ट्रकुलकालरात्रिदुःशासन-
 विलुलितेयं वेणी ।

द्रौपदी—नाथ, विस्मृताऽस्म्येत व्यापारम् । नाथस्य प्रसादेन पुनरपि शिक्षिष्ये ।
 (पाह, विसुमरिदहि एदं वावारम् । पाहस्त प्पसादेण पुणो वि सिखिरसम् ।]

(भीमसेनो वेणीं बध्नाति)
 (नेपथ्ये)

महासमरानलदग्धशेषाय स्वस्ति भवतु राजन्यकुलाय ।

इदम् = एतत्, शतशः = पीनः पुन्येन, आख्याहि = ब्रूहि, सत्यम् = यथार्थम्, त्वम्, मम् = युधिष्ठि-
 रस्य, असौ = सः; भ्राता = अनुजः, असि = वतें ? यः, बकरिपुः = बकासुरशत्रुः, अस्तीति शेषः ।
 भवान् = त्वम्, संयति = युद्धे, जरासन्धस्य = मगधाधिपस्य, रुधिरासारसलिले—रुधिरस्य = रक्तस्य,
 आसारः = धारामिनिःसरणम् एव सलिलम् = जलम् तस्मिन्, उरःसरसि—उरः = वक्षःस्थलम्
 एव सरः = जलाशयः तस्मिन्, तटाघातक्रोडाललितमकरः—तटे = तटयाम् आघातस्य = प्रहारस्य या
 क्रोडा = लीला तथा ललितः = सुन्दरः मकरः = ग्राहः, असीति शेषः । भवान् जरासन्धस्य हन्तेति
 प्रश्नाशयः । अत्र रूपकालङ्कारः । शिखारिणी हन्तः । तल्लक्षणम्—'रसै रुद्रेऽङ्गना यमनसमला गः
 शिखारिणी ॥ ४० ॥

भीमसेन इति । संयच्छामि = संहारामि, सुयोधनशोणितोक्षितेन—सुयोधनस्य = दुर्योधनस्य
 शोणितेन = रक्तेन उक्षितः = लिप्तस्तेन, दुःशासनावकृष्टम्—दुःशासनेन अवकृष्टम् = आकृष्टम्, केश-
 हस्तम् = केशपाशम् ॥

युधिष्ठिर इति । तपस्विनी = बराको, वेणीसंहारमहोत्सवः—वेण्याः = केशरचनायाः संहारः—
 संयमनम् एव महात्सवः = आनन्दः तम् ॥

अन्वयः—येन, तेन, नृपशुना, दुःशासनेन, राज्ञाम्, सदसि, कृष्टा, असि, तस्य, मम, करयोः,
 पीतशेषाणि, एतानि, स्त्यानानि, असृज्जि, स्पृश; हे कान्ते, मद्गदाचूर्णितोरोः, कुरूणाम्, राज्ञः,
 अपि, इदम्, रुधिरम्, तव, परिभवजस्य, अनलस्य, उपशान्त्यै, अङ्गे—अङ्गे, निषक्तम् ॥ ४१ ॥

जिस उस मानव-पशु दुःशासन के द्वारा (तुम) राजाओं की सभा में खींची गई थी, उसके, मेरे हाथों में (स्थित) पीने से बचे हुये, इन गाढ़े रक्तों को छुओ (अर्थात् इनका स्पर्श करो)। हे प्रिये, मेरी गदा से चूर-चूर की गई जाँघों वाले, कुरुओं के राजा (दुर्योधन) का भी यह रक्त तुम्हारे, अवमान से उत्पन्न सन्ताप की शान्ति के लिये (मेरे) समस्त अङ्गों में लिपटा हुआ है ॥ ४१ ॥

बुद्धिमतिके, कहाँ है अब वह मानुमती ? जो पाण्डवों की स्त्रियों की हँसी उड़ाती थी। हे श्रीमती, यश की वेदी से उत्पन्न याज्ञसेनां (द्वीपदो) !

द्रौपदी—आशा दें स्वामी !

भीमसेन—याद कर रही हैं आप जो मैंने कहा था ?

(‘चञ्चद्भुज’—१।२१ इत्यादि पढ़ता है)

द्रौपदी—स्वामिन्, न केवल याद (हो) कर रही हूँ, अपितु स्वामी की कृपा से (उसका) अनुभव (भी) कर रही हूँ।

भीमसेन—(चोटी अर्थात् केशों को हिलाकर) श्रीमती जी, धृतराष्ट्र के कुल के लिये काल-रात्रि “The night of universal dissolution” (सिद्ध हुई) दुःशासन के द्वारा छितरायी गई यह वेणा (चोटी) अब बाँध ली जाय।

द्रौपदी—स्वामिन्, मूल गई हूँ इस कार्य को। नाथ (आप) की कृपा से फिर से सीखूँगी।

(भीमसेन चोटी बाँधते हैं)

(पदों के पीछे)

महान् संग्रामरूपी अग्नि में जलने से बचे हुये क्षत्रिय-कुल का कल्याण हो।

शब्दार्थः—येन=जिस, तेन=उस, नृपशुना=मानव-पशु, दुःशासनेन=दुःशासन के द्वारा, राशाम्=राजाओं की, सदसि=सभामें, कृष्टा=खींची गई, असि=थी, तस्य=उसके, मम=मेरे, करयोः=हाथों में; पीतशेषाणि=पीने से बचे हुये, एतानि=इन, स्नानानि=गाढ़े, असृजि=रक्तों को, स्पृश=छुओ; हे कान्ते=हे प्रिये, मदगदाचूर्णितोरोः=मेरी गदा से चूर-चूर की गई जाँघों वाले, कुरूणाम्=कुरुओं के, राशः=राजा का, अपि=भी, इदम्=यह, राधरम्=रक्त, तव=तुम्हारे, परिभवजस्य=अपमान से उत्पन्न, अनलस्य=सन्ताप का, उपशान्त्यं=शान्ति के लिये, अङ्गे-अङ्गे=समस्त अङ्गों में, निषक्तम्=लिपटा हुआ है ॥ ४१ ॥

कृष्टेति। येन तेनेति पूर्वस्मृत्यर्थं प्रयोगः, नृपशुना—ना=मानवः पशुरिव=चतुष्पद इवेति तेन, दुःशासनन=दुर्योधनानुजेन, राशाम्=भूषाणानाम्, सदसि=सभायाम्, कृष्टा=आकृष्टा-असि=आसीः, तस्य, मम=मे, करयोः=हस्तयोः, पीतशेषाणि=पीतात्=पानात् शेषाणि=अवसितानि, एतानि=इमानि, स्नानानि=निविडानि, असृजि=रक्तानि, स्पृश, तापशान्त्यं इति भावः, हे कान्ते=हे प्रिये, मदगदाचूर्णितोरोः=मम=भीमस्य गदया चूर्णितो=भग्नो उरु=जङ्घे यस्य तस्य, कुरूणाम्=कौरवाणाम्, राशः=नृपस्य, दुर्योधनस्येत्यर्थः, अपि=च, इदम्=एतत्, राधरम्=रक्तम्, तव=भवत्याः, परिभवजस्य=परिभवात्=केशवस्त्राकषणरूपापमानात् जातस्य=उत्पन्नस्य, अनलस्य=सन्तापस्य, उपशान्त्यं=शमनाय, अङ्गे-अङ्गे=सर्वाङ्गित्वर्थः, निषक्तम्=अवसक्तमस्तीति

क्रोधान्धैर्यस्य मोक्षात्क्षतनरपतिभिः पाण्डुपुत्रैः कृतानि
 प्रत्याशं मुक्तकेशान्यतुलभुजबलैः पार्थिवान्तःपुराणि ।
 कृष्णायाः केशपाशः कुपितयमसखो धूमकेतुः कुरूणां
 सोऽयं बद्धः प्रजानां विरमतु निधनं स्वस्ति राज्ञां कुलेभ्यः ॥ ४२ ॥
 युधिष्ठिरः—देवि, एष ते वेणीसंहारोऽभिनन्द्यते नमस्तलसञ्चारिणा सिद्धजनेन ।
 (ततः प्रविशतः कृष्णार्जुनौ)

कृष्णः—(युधिष्ठिरमुपगम्य) विजयतां निहतसकलरातिमण्डलः सानुजो युधिष्ठिरः ।
 अर्जुनः—जयत्वार्यः ।

युधिष्ठिरः—(विलोक्य) अये भगवान्पुण्डरीकाक्षो वत्सश्च किरीटी । भगवन्, अभिवादेश
 (किरीटिनं प्रति) एह्येहि वत्स, परिष्वजस्व माम् ।
 (अर्जुनः प्रणमति)

युधिष्ठिरः—(बाधुदेवं प्रति) देव, कुतस्तस्य विजयादन्यद्यस्य भगवान् पुराणपुरुषो
 नारायणः स्वयं मङ्गलान्याशास्ते ।

कृतगुरुमहदादिक्षोभसंभूतमूर्तिं

गुणिनमुदयनाशस्थानहेतुं प्रजानाम् ।

अजममरमचिन्त्यं चिन्तयित्वाऽपि न त्वां

भवति जगति दुःखी किं पुनर्देव दृष्ट्वा ॥ ४३ ॥

क्रियाशिष्टिः । अतो मामलिङ्ग्य स्वकीयं सन्तापमुपशमयेति भावः । स्रग्धरा छन्दः । तल्लक्षणम्—
 ‘अभिनैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेभ्यः ॥’ ४१ ॥

भोमसेन इति । धार्तराष्ट्रकुलकालरात्रिः—धार्तराष्ट्रम् = धृतराष्ट्रसम्बन्धि यत् कुलम् = वंशः
 तस्य कालरात्रिः = प्रलयनिशा, विनाशो हेतुभूतत्वान्निशेति व्यवहारः, दुःशासनविलुलिता—दुःशासनेन
 विलुलिता = आकृष्य व्यस्तीकृता, वेणी = लोके ‘चोटी’ इति ख्याता केशरचना ॥

अन्वयः—यस्य, मोक्षात्, क्रोधान्धैः, क्षतनरपतिभिः, अतुलभुजबलैः, पाण्डुपुत्रैः, प्रत्याशम्,
 पार्थिवान्तःपुराणि, मुक्तकेशानि, कृतानि, सः, अयम्, कुपितयमसखः, कुरूणाम्, धूमकेतुः, कृष्णायाः,
 केशपाशः, बद्धः, प्रजानाम्, निधनम्, विरमतु, राज्ञाम्, कुलेभ्यः, स्वस्त ॥ ४२ ॥

शब्दार्थः—यस्य = जिसके, मोक्षात् = सुखने के कारण, क्रोधान्धैः = क्रोधान्ध, क्रोध से विवेक-
 शून्य, क्षतनरपतिभिः = राजाओं का विनाश करने वाले, अतुलभुजबलैः = अतुलित बाहु-बल वाले,
 पाण्डुपुत्रैः = पाण्डु के पुत्रों के द्वारा, प्रत्याशम् = प्रत्येक दिशा में, पार्थिवान्तःपुराणि = राजाओं के
 रनिवास, मुक्तकेशानि = खुले केशों वाले, कृतानि = कर दिये गये, सः = वह, अयम् = यह, कुपित-
 यमसखः = क्रुद्ध यमराज के सदृश, कुरूणाम् = कुरूओं के लिये, धूमकेतुः = पुच्छलतारा, कृष्णायाः =
 द्रौपदी का, केशपाशः = प्रशस्त केश, बद्धः = बाँध दिया गया है, प्रजानाम् = प्रजाओं का, निधनम् =

जिसके खुलने के कारण क्रोधान्ध, राजाओं का विनाश करने वाले, अतुलित बाहु-बलवाले, पाण्डु के पुत्रों के द्वारा प्रत्येक दिशा में राजाओं के निवास खुले केशों वाले (अर्थात् रनिवास की स्त्रियों के केश खुले हुये) कर दिये गये, वह यह क्रुद्ध यमराज के सदृश, कुराओं के लिए पुच्छल तारा (Comet) द्रौपदी का प्रशस्त केश बाँध दिया गया है, (अतः) प्रजाओं का विनाश बन्द किया जाय । राजाओं के कुलों का वल्याण हो ॥ ४२ ॥

विशेष—मुक्तकेशानि—पाण्डवों ने दुर्योधन का पक्षपात करने वाले राजाओं का विनाश कर डाला है । मारे गये राजाओं की विधवा स्त्रियाँ चोटी आदि प्रसाधन करना बन्द कर दी हैं, क्योंकि विधवाओं के लिए प्रसाधन (Makeup) वर्जित है । अतः अब उनके केश खुले हुए रहते हैं ।

कुपितयमसखः—यहाँ 'सखा' का अर्थ है—समान । क्रुद्ध यमराज भी मानवों का विनाशक है और द्रौपदी की खुली हुई यह चोटी भी । यही दोनों की समानता है ।

धूमकेतुः—जिस प्रदेश में पुच्छलतारा (Comet) का दर्शन होता है, वहाँ के निवासियों का मरण तथा उस प्रदेश में विविध-विध सङ्कटों का आगमन होता है ॥ ४२ ॥

युधिष्ठिर—महारानी, गगन-तल में विचरण करने वाले सिद्धों के द्वारा तुम्हारा यह वेणी-संहार चोटा का बाँधा जाना) अभिनन्दित किया जा रहा है (Is greeted) ।

(तदनन्तर कृष्ण और अर्जुन प्रवेश करते हैं)

कृष्ण—(युधिष्ठिर के पास जाकर) मारा गया है सम्पूर्ण शत्रु-समूह जिनका ऐसे युधिष्ठिर शरीरों के सहित विजयी वनें ।

अर्जुन—आर्य विजयी वने ।

युधिष्ठिर—(देख कर) अरे ! भगवान् कमल-नेत्र (श्रीकृष्ण) और प्रिय बन्धु अर्जुन आ गये ! भगवन्, प्रणाम कर रहा हूँ । (अर्जुन के प्रति) आओ आओ वत्स, मेरा शलिङ्गन करो ।

(अर्जुन प्रणाम करता है)

युधिष्ठिर—(श्रीकृष्ण के प्रति) देव, जिसके लिए स्वयं भगवान् सनातन पुत्र नारायण मङ्गल की कामना कर रहे हैं, उसका (मठा) विजय के अतिरिक्त क्या (हो सकता है) ?

महान् महत् तत्त्व आदि को उत्पन्न करने वाली (अर्थात् प्रकृति) के संक्षोभ (Agitation) से उत्पन्न पाञ्चभौतिक शरीर वाले (अथवा महत् तत्त्वाद में किये गये महान्, क्षोभ = डलबल से उत्पन्न पञ्चभूतमय शरीर वाले) सगुण, प्राणियों की उत्पत्ति विनाश एवं स्थिति (Maintenance) के कारण, अजन्मा, अमर, अचिन्त्य आपका ध्यान करके भी (कोई) दुःखी नहीं होता है; हे देव, देख कर फिर क्या (कहना) ? ॥ ४३ ॥

विनाश, विरमत्तु = बन्द किया जाय; राजान् = राजाओं के, कुलेभ्यः = कुलों का, स्वस्ति = कल्याण हो ॥ ४२ ॥

क्रोधान्धैरिति—यस्य = केशपाशस्थेत्यर्थः, मोक्षात् = मोचनात्, क्रोधान्धैः—क्रोधेन = कोपेन अन्धाः = विवेकशून्याः तैः, चतुररतिभिः = क्षताः = विनष्टाः, वातिता इति यावत्, नरपतयः = राजानः दैतैः, अतुलभुजबलैः—अतुलम् = अनुपमम् भुजबलम् = बाहुबलम् येषां तैः, पाण्डुपुत्रैः =

(अर्जुनमालिङ्ग्य) वत्स, परिष्वजस्व माम् ।

कृष्णः—महाराज युधिष्ठिर,

व्यासोऽयं भगवानमी च मुनयो वाल्मीकिरामादयो

धृष्टद्युम्नमुखाश्च सैन्यपतयो माद्रीसुताधिष्ठिताः ।

प्राप्ता मागधमत्स्ययादवकुलैराज्ञाविधेयैः समं

स्कन्धोत्तम्भततीर्थवारिकलशा राज्याभिषेकाय ते ॥ ४४ ॥

पाण्डवैः, प्रत्याशम्—आशायाम् आशायामिति प्रत्याशम् = प्रतिदिशम्, पायिवान्तःपुराणि—पायि-
नाम् = राशाम् अन्तःपुराणि = स्थागाराणि, मुक्तकेशानि—मुक्ताः = वेणीविरहिताः केशाः = मूषंशो
येषां तादृशानि, कृतानि = विह्वानि, सः = तादृशः, अयम् = एषः, कुपितयमसखः = कुपितः = क्रु-
यो यमः = मृत्युः तस्य सखा = मित्रमिति कुपितयमसखः, अत्र 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' इति समास-
एच्, कुरूणाम् = कौरवाणाम्, धूमकेतुः = उत्पातग्रहः ('धूमकेतुः स्मृतो बह्वावुत्पातग्रहमेदयो-
इति विश्वः), विनाशो हेतुत्वादत्र केशपाशे धूमकेतुत्वमिति, कृष्णायाः = द्रापद्याः, केशपाशः = प्रश-
शिरोरुहसमूहः, बद्धः = संयमितः, अतः प्रजानाम् = जनानाम्, निधनन् = मरणम्, विरमतु = शाम्य-
राशाम् = भूषालानाम्, कुलेभ्यः = वंशेभ्यः, स्वस्ति = कल्याणम्, अस्त्विति शेषः । युद्धशान्ति-
शान्तिश्च भवत्विति भावः । पर्यायोक्तमत्रालङ्कारः । स्रग्धरा छन्दः ॥ ४२ ॥

कृष्ण इति । निहतसकलारातिमण्डलः—निहतम् = नाशितम् सकलम् = समग्रम्, अराती-
नाम् = शत्रूणाम् मण्डलम् = समूहः येन तादृशः ॥

अन्वयः—कृतगुरुमहदादिक्षोभसंभूतमूर्तिम्, गुणिनम्, प्रजानाम्, उदयनाशस्थानहेतुम्, अजम्,
अमरम्, अचिन्त्यम्, त्वाम्, चिन्तयित्वा, अपि, (कश्चन), दुःखो, न, भवति, हे देव, दृष्ट्वा
पुनः, किम् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थः—कृतगुरुमहदादिक्षोभसंभूतमूर्तिम् = महान् महत् तत्त्वादि को उत्पन्न करने वाले,
(अर्थात् प्रकृति) के संक्षोभ से उत्पन्न पाञ्चभौतिक शरीर वाले, अथवा महत् तत्त्वादि में किये गये
महान् क्षोभ (हलचल) से उत्पन्न पञ्चभूतमय शरीर वाले, गुणिनम् = सगुण, प्रजानाम् = प्राणि-
को, उदयनाशस्थानहेतुम् = उत्पत्ति, विनाश एवं स्थिति के कारण, अजम् = अजन्मा, अमरम् = अमर,
अचिन्त्यम् = अचिन्त्य, त्वाम् = आप का, चिन्तयित्वा = ध्यान करके, अपि = भी, (कश्चन = कोई),
दुःखो = दुःखो, न = नहीं, भवति = होता है; हे देव = हे भगवन्, दृष्ट्वा = देखकर, पुनः = फिर, अमी-
किम् = क्या (कहना) ॥ ४३ ॥

कृतेत्यादिः—गुरुवः = महान्तश्च ते महदादयः = बुद्धयहङ्कारादयः, कृताः = परिणमिताः, ज्ञा-
इति यावत्, यथा सा कृतगुरुमहदादिः = प्रकृतिः तस्याः क्षोभात् = स्पन्दनात् सम्भूता = सञ्जाता
मूर्तिः = आकारः यस्य तादृशः तम्, अथवा कृतः = पुरुषसंयोगेन सञ्जातः गुरुः = महान् म. द्वादीनां
क्षोभः तेन सम्भूता मूर्तिः यस्य स तम्, गुणिनम्—गुणाः = सत्त्वरजस्तमांसि अस्य सन्तीति गुणो तम्,
सगुणमिति यावत्, प्रजानाम् = प्राणिनाम्, उदयनाशस्थानहेतुम्—उदयश्च = उत्पत्तिश्च नाशश्च =
मलयश्च स्थानञ्च = स्थितेश्चेति उदयनाशस्थानानि तेषां हेतुम् = कारणम् अत्रापि कथयति—'वर्त-

कृतगुरुमहदादि०—सांख्य सिद्धान्त के अनुसार प्रकृति त्रिगुण—सत्त्व, रज तथा तम-मय है। जब ये तीनों गुण समान अवस्था में रहते हैं, उस समय प्रलय की हालत रहती है और जब प्रकृति में हलचल पैदा होती है उस समय गुणों में कमी-वेशी आ जाती है। इसी समय सृष्टि का आरम्भ होता है। प्रकृति में हलचल उस समय आती है जब उस पर पुरुष का प्रतिबिम्ब पड़ता है। प्रकृति की सबसे प्रथम सृष्टि बुद्धि = महत् है ॥ ४३ ॥

(अर्जुन का आलिङ्गन करके) वत्स, मुझसे लिपट जाओ।

कृष्ण—महाराज युधिष्ठिर,

यह पूज्य व्यास तथा ये वाल्मीकि एवं परशुराम आदि मुनि-जन, आशा को मानने वाले, मगध एवं मत्स्य देश के शासक तथा यदुवंशियों के साथ कन्ये पर तीर्थों के जल से पूर्ण कलशों को उठाये हुये, माद्री के पुत्रों (नकुल एवं सहदेव) के द्वारा सञ्चालित, धृष्टद्युम्न आदि सेना-पति तुम्हारे राज्याभिषेक के लिये आये हैं ॥ ४४ ॥

वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रत्यभिसंविशन्ति तद्भिज्ज्ञासस्व तद्विद्येति' इति, अजम् = अजन्मानम्, अमरम् = मृत्युवर्जितम्, अविन्यम् = अमनोगोचरम्, त्वाम् = भवन्तम्, चिन्तयित्वा = शात्वा, अपि, करचनेति शेषः, दुःखी = दुःखभाक्, न भवति = न जायते, हे देव = हे मगवन्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, पुनः किम् भवति, अपि तु न भवतीति भावः। अत्र विरोधार्थापत्तौ अलङ्कारौ। मालिनी छन्दः। छन्दोत्तमिन्ततीर्थवारिकलशाः—'न न मय्यप्युतेयं मालिनी भोगिलोकैः' ॥ ४३ ॥

अन्वयः—अयम्, मगवान्, व्यासः, च, अमी, वाल्मीकिरामादयः, मुनयः, च, आशाविधेयैः, मागधमत्स्ययादवकुलैः, समम्, स्कन्धोत्तमिन्ततीर्थवारिकलशाः, माद्रीसुताधिष्ठिताः, धृष्टद्युम्नमुखाः, सैन्यपतयः, ते, राज्याभिषेकाय, प्राप्ताः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थः—अयम् = यह, मगवान् = पूज्य, व्यासः = व्यास, च = तथा, अमी = ये, वाल्मीकि-रामादयः = वाल्मीकि तथा परशुराम आदि, मुनयः = मुनिजन, आशाविधेयैः = आशा को मानने वाले, मागधमत्स्ययादवकुलैः = मगध एवं मत्स्यदेश के शासक तथा यदुवंशियों के, समम् = साथ, स्कन्धोत्तमिन्ततीर्थवारिकलशाः = कन्ये पर तीर्थों के जल से पूर्ण कलशों को उठाये हुये, माद्रीसुताधिष्ठिताः = माद्रीपुत्रों (नकुल एवं सहदेव) के द्वारा सञ्चालित, धृष्टद्युम्नमुखाः = धृष्टद्युम्न आदि, सैन्यपतयः = सेना-पति, ते = तुम्हारे, राज्याभिषेकाय = राज्याभिषेक के लिये, प्राप्ताः = आये हैं ॥ ४४ ॥

व्याख्येयमिति। अयम् = एषः, मगवान् = पूज्यः, व्यासः = वेदविभागकर्ता ऋषिः, च = तथा, अमी = एते, वाल्मीकिरामादयः = वाल्मीकिपरशुरामादयः, मुनयः = ऋषयः, कर्तृपदस्य प्राप्ताः स्वयन्वयः, च = तथा, आशाविधेयैः = आशावशम्भवे, मागधमत्स्ययादवकुलैः = मगधमत्स्यशासकैः यादवकुलैश्चेत्यर्थः, समम् = सह, स्कन्धोत्तमिन्ततीर्थवारिकलशाः—स्कन्धेषु = श्रोत्रामूलमागेषु उत्तमिताः = उत्थापिताः तीर्थवारोणाम् = तीर्थनलानाम् कलशाः = घटाः यैस्ते, माद्रीसुताभ्याम् = माद्रीपुत्राभ्याम्, नकुलसहदेवाभ्यामित्यर्थः, अधिष्ठिताः = सञ्चालिताः, धृष्टद्युम्नमुखाः = दुष्टपुत्र-प्रधानाः, सैन्यपतयः = सेनापतयः, ते = तत्र, राज्याभिषेकाय = राज्याभिषेकस्य अभिषेचनाय, प्राप्ताः = आयाताः सन्ति। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ ४४ ॥

अहं पुनर्दुरात्मना चार्वाकेण विप्रकृतं भवन्तमुपलभ्यार्जुनेन सह त्वरिततरमायातः ।
युधिष्ठिरः—कथं चार्वाकेण रक्षसा वयमेवं विप्रलब्धाः ।

भीमसेनः—(सरोषम्) क्वासौ धार्तराष्ट्रसखः पुण्यजनापसदो येनार्यस्य महो-
श्चित्तविभ्रमः कृतः ।

कृष्णः—निगृहीतः स दुरात्मा नकुलेन । तत्कथय महाराज, किमस्मात्परं समी-
हितं संपादयामि ।

युधिष्ठिरः—न किञ्चिन्न ददाति मगवान्प्रसन्नः । अहं तु पुरुषसाधारण्या बुद्ध्या
संतुष्यामि । न खल्वतः परमभ्यर्थयितुं क्षमः । पश्यतु देवः,

क्रोधान्धैः सकलं हतं रिपुकुलं पञ्चाक्षतास्ते वयं

पाञ्चाल्या मम दुर्नयोपजनितस्तीर्णो निकारार्णवः ।

त्वं देवः पुरुषोत्तमः सुकृतिनं मामादृतो भाषसे

किं नामान्यदतः परं भगवतो याचे प्रसन्नादहम् ॥ ४५ ॥

तथापि प्रीततरश्चेद्भगवांस्तदिदमस्तु ।

अकृपणमरुक्श्रान्तं जीव्याज्जनः पुरुषायुषं

भवतु भगवन्भक्तिद्वैतं विना पुरुषोत्तमे ।

दयितभुवनो विद्वद्बन्धुगुणेषु विशेषवि-

त्सतसुकृती भूयाद् भूपः प्रसाधितमण्डलः ॥ ४६ ॥

भीम इति । पुण्यजनापसदः—पुण्यजनेषु = राज्ञेसेषु ('पुण्यजनो नैऋतो यातुरासी' इत्यमरः)
अपसदः = नाचः, राज्ञसाधमः इत्यर्थः, चित्तविभ्रमः = बुद्धिव्यामोहः ॥

युधिष्ठिर इति । न किञ्चिन्न ददाति = सर्वं ददातीत्यर्थः । अभ्यर्थयितुम् = याचितुम्, क्षमः =
समर्थः ॥

अन्वयः—क्रोधान्धैः, (अस्माभिः), सकलम्, रिपुकुलम्, हतम् ; ते, वयम्, पञ्च, अक्षताः,
मम, दुर्नयोपजनितः, निकारार्णवः, पाञ्चाल्या, तीर्णः ; देवः, पुरुषोत्तमः, त्वम्, सुकृतिनम्, माम्,
आदृतः, (सन्) भाषसे, प्रसन्नात्, भगवतः, अतः, परम्, अन्यत्, किनाम, अहम्, याचे ॥ ४५ ॥

शब्दार्थः—क्रोधान्धैः = क्रोध से अन्धे, (अस्माभिः = हम लोगों के द्वारा), सकलम् = सम्पूर्ण,
रिपुकुलम् = शत्रुकुल, हतम् = मार डाला गया, ते = वे, वयम् = हम, पञ्च = पाँचों, अक्षताः =
सुकुशल, (हैं) ; मम = मेरी, दुर्नयोपजनितः = दुर्नोति से प्रादुर्भूत, निकारार्णवः = अपमान का सागर,
पाञ्चाल्याः = द्रौपदी के द्वारा, तीर्णः = पार कर लिया गया, देवः = देव, पुरुषोत्तमः = पुरुषोत्तम,
त्वम् = आप, सुकृतिनम् = पुण्यशाली, माम् = मुझसे, आदृतः = आदरयुक्त, (सन् = होते हुए),
भाषसे = बात कर रहे हैं, प्रसन्नात् = प्रसन्न हुए, भगवतः = भगवान् से, अतः = इससे, परम् =
अधिक, अन्यत् = अन्य, किं, नाम् = क्या, अहम् = मैं, याचे = माँगू ॥ ४५ ॥

क्रोधान्धैरिति । क्रोधान्धैः—क्रोधेन = क्रोधेन अन्धाः = विवेकशून्याः तैः, अस्माभिरिति शेषः,

पद्योऽङ्कः

३१९

मैं तो आपको दुष्ट चार्वाक के द्वारा ठगा गया सुन कर अजुन के साथ अति शीघ्र ही आ गया हूँ।
 युधिष्ठिर—क्या चार्वाक राजस के द्वारा हम लोग इस तरह ठगे गये हैं ?
 भीमसेन—(क्रोधपूर्वक) कहाँ है ? वह धृतराष्ट्र के पुत्र (दुर्योधन) का मित्र, अथम राजस
 जिसने आर्य को महान् बुद्धि-व्यामोह पैदा कर दिया था।

कृष्ण—वह दुरात्मा नकुल के द्वारा पकड़ लिया गया है। तो बतलाइये महाराज, इसके अति-
 रक्त और कौन सा अभीप्सित (Desired thing) पूर्ण करूँ।

युधिष्ठिर—प्रसन्न हुए भगवान् (अर्थात् आप) कुछ भी नहीं दे देते हैं ऐसी बात नहीं है
 अर्थात् प्रसन्न हुए भगवान् सब कुछ दे देते हैं)। किन्तु मैं पुरुषों की साधारण बुद्धि से ही
 संतुष्ट हूँ। इससे अधिक माँगने में (मैं) समर्थ नहीं हूँ। देखें आप,

क्रोध से अन्धे (हम लोगों के द्वारा), सम्पूर्ण शत्रु-कुल मार डाला गया। (और) वे हम
 जीवों अक्षत (हैं), नेरो दुर्नीति से प्रादुर्भूत अपमान का सागर द्रौपदी के द्वारा पार कर लिया गया।
 व पुरुषोत्तम आप पुण्यशाली मुझसे बात कर रहे हैं। प्रसन्न हुए भगवान् से (अर्थात् आप से)
 इससे अधिक अन्य क्या मैं माँगूँ ? ॥ ४५ ॥

फिर भी यदि आप अत्यधिक प्रसन्न हैं, तो यह हो—

हे भगवान्, प्रजा दीनतारहित, व्याधियों की पीड़ा से मुक्त, पुरुष की आयु (अर्थात् सौ वर्ष)
 जिये। (लोगों की) विष्णु में द्वैत-रहित (Without division) भक्ति हो। राजा जगत् को
 पार करनेवाला, विद्वानों का बन्धु, गुणों की विशेषता का शाता (A good judge of merits),
 सर्वदा पुण्यकर्ता एवं भू-मण्डल को व्यवस्थित करनेवाला हो ॥ ४६ ॥

कलम् = समग्रम्, रिपुकुलम् = शत्रुकुलम्, शत्रुसमूह इत्यर्थः, हतम् = वातितम्; ते = युद्धकर्तारः
 इत्यर्थः, वयं पञ्च = वयं पञ्चसंख्याकाः युधिष्ठिरादयः, अक्षताः = सकुशलाः स्म, इति शेषः, नन =
 युधिष्ठिरस्य दुर्नयोपजनितः—दुर्नयेन = दुष्टनोत्था, उपजनितः = आनीतः, निकाराणवः—निकारस्थ =
 निरस्कारस्य अर्णवः = सागरः, अत्रिस्तब्धः तिरस्कारः इत्यर्थः, पाञ्चाल्या = द्रौपद्या, तीर्णः = पारंकृतः,
 वः = द्योतनशालः, पुरुषोत्तमः = पुरुषश्रेष्ठः, त्वम् = श्रीकृष्णः, सुकृतिनम् = पुण्यशालिनम्, माम् =
 युधिष्ठिरम्, आदृतः = आदरयुक्तः, सन्, मावसे = ब्रवीषि, प्रसन्नात् = प्रसादयुक्तात्, भगवतः =
 भगवतः, अतः = अस्मात्, परम् = अधिकम्, अन्यत् = इतरत्, किं नामेति प्रश्ने, अहम् = युधिष्ठिरः,
 चचे = प्रार्थयामि। नातः परं किञ्चिदपि प्रार्थनीयं वस्वास्ते इति भावः। शाङ्खविक्रीडितं
 ॥ ४५ ॥

अन्वयः—हे भगवान्, जनः, अकृपणम्, अरुक्श्रान्तम्, पुरुषायुषम्, जीव्यात्, पुरुषोत्तमे,
 दैतम्, विना, भक्तिः, भवतु; भूपः, दयितभुवनः, विद्वद्वन्धुः, गुणेषु, विशेषवित्, सततसुकृती,
 साधितमण्डलः, भूयात् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थः—हे भगवान् = हे भगवान्, जनः = प्रजा, अकृपणम् = दीनतारहित, अरुक्श्रान्तम् =
 व्याधियों की पीड़ा से मुक्त, पुरुषायुषम् = पुरुष की आयु, जीव्यात् = जिये; पुरुषोत्तमे = भगवान् विष्णु
 में, दैतम् = द्वैत, विना = रहित, भक्तिः = भक्ति, भवतु = हो; भूपः = राजा, दयितभुवनः = जगत् को
 पार करनेवाला, विद्वद्वन्धुः = विद्वानों का बन्धु, गुणेषु = गुणों की, विशेषवित् = विशेषता का शाता,

कृष्ण. — एवमस्तु ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

❀ इति षष्ठोऽङ्कः ❀

॥ समाप्तमिदं वेणीसंहारं नाम नाटकम् ॥

—:०:—

सततसुकृती=सर्वदा पुण्य करने वाला, प्रसाधितमण्डलः=भू-मण्डल को व्यवस्थित करनेवाला, भूयात्=हो ॥ ४६ ॥

अकृपणमति :- हे भगवन्=हे ऐश्वर्यसम्पन्न देव, जनः=पजा ('प्रजा स्यात्सन्ततौ जने इत्यमरः), न कृपणं यथा तथा अकृपणम्—कार्पण्यरहितम्, भावप्रधानोऽत्र निर्देशः, दैन्यविहीनं यथा तथा, अरुक्श्रान्तम्—न रुजा=रोगेण श्रान्तम्=श्रमः, नपुंसके भावे क्तः, यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा, अव्याधिपरणमित्यर्थः, पुरुषायुषम्—पुरुषस्य आयुषम्=जीवनम्, जीव्यात्=जीवतु, 'शतायुर्गै पुरुष' इति श्रुत्या पुरुषः शरदां शतं जीव्यादित्यर्थः । पुरुषोत्तमे—पुरुषेभ्यः उत्तमः=श्रेष्ठः तत्र, विष्णाविति यावत्, पुरुषेषूत्तम इति न समासः । 'न निर्धारणे' इति निषेधात् । द्वैतम्—द्वयोर्भावः द्विता=द्वित्वम् द्वितैव द्वैतम्, प्रसादित्वाद्गुण, द्वैतं विना=अद्वैतमित्यर्थः, भक्तिः=श्रद्धा, भवतु=रहात्, जनानामिति शेषः । जनाः भगवतोऽद्वैतबुद्धयोपासनं कुर्वन्त्विति भावः । भूपः=भूमिपालः दयितभुवनः—दयितम्=प्रियम् भुवनम्=जगत् यस्य सः, प्रियप्रजः इति भावः, विद्वद्बन्धुः—विदुषाम्=विद्योपासकानाम्, विशजनानाम्, बन्धुः=सुहृत्, उपकारक इति यावत्, गुणेषु=वैशिष्ट्येषु विशेषवित्=माहात्म्यवित्, विवेचक इति यावत्, गुणग्राही इति भावः, सततसुकृती—सततम्=निरन्तरम् सुकृतम्=पुण्यम् अस्ति अस्येति, पुण्यकर्तृत्वार्थः, प्रसाधितमण्डलः—प्रसाधितम्=प्रकर्षण साधितम्=व्यवस्थापितम् मण्डलम्=भूवलयमित्यर्थः । येन तादृशः, मण्डलं पार्श्ववर्तिराजचक्रं वेति, भूयात्=स्यात् । भूपः सदा पुण्यवान् तथा प्रसाधित-भूमण्डलः प्रसाधितराजचक्रो वा भूयादित्याशीः हरिणी छन्दः । तल्लक्षणम्—'नसमरसञ्ज्ञा गः षट्वेदैर्हयैर्हरिणी मता' ॥ ४६ ॥

॥ इति रमाशङ्करत्रिपाठिकृतायां वेणीसंहारव्याख्यायां रमाख्यायां षष्ठोऽङ्कः ॥

विन्ध्यक्षेत्रान्तरे रम्ये मीरजापुरमण्डले ।

गम्भीरपुरनामास्ति ग्रामः ख्यातो महीतले ॥ १ ॥

तत्र रामप्रसादाख्यस्त्रिपाठी ब्राह्मणो ह्यभूत् ।

तस्यासीत् प्रबला भक्तिर्विष्णोश्चरणपङ्कजे ॥ २ ॥

पष्ठोऽङ्कः

३२१

कृष्ण--बेसा ही हो ।

(इस तरह सब निकल जाते हैं)

॥ पष्ठ अङ्क समाप्त ॥

॥ वेणीसंहार नामक नाटक समाप्त हुआ ॥

—:०:—

अतो नामापरं तस्य रामदासेति विश्रुतम् ।
 जातः परमहंसोऽयमन्तिमे समये महान् ॥ ३ ॥
 चत्वार आत्मज्ञास्तस्य वभूवुः कृतिनां वराः
 ज्येष्ठो गणपतिस्तेषु सोमदत्तोऽपरस्तथा ॥ ४ ॥
 तृतीयो देवदत्तश्च कृष्णदत्तश्चतुर्थकः ।
 कृष्णदत्तस्य तुर्थस्य द्वौ सुतौ प्रबभूवतुः ॥ ५ ॥
 दोनान्तः शीतलस्तत्र प्रथमः प्रथितोऽभवत् ।
 श्रीमान् रामदयालवाख्यो द्वितीयोऽभूत् परः कृत्तौ ॥ ६ ॥
 आद्यः शीतलदानो यश्चतुरः सुपुत्रे सुतान् ।
 चतुरान् कृतविद्यांश्च चतुरसागरानिव ॥ ७ ॥
 आदित्यरामस्तत्रैकः कर्मकाण्डो महायशः ।
 दिवाकरो भास्करश्च प्रमाकर इतीरिताः ॥ ८ ॥
 आदित्यरामस्यैकोऽभूज्येष्ठः पुत्रः सुधीवरः ।
 शिवप्रतापनाम्ना यः प्रसिद्धिं परमां गतः ॥ ९ ॥
 द्वितीयः शिवसम्पत्तिर्गुणशो गुणवान् मतः ।
 शिवप्रतापस्य पुत्रो द्वेषमात्सर्यवर्जितः ॥ १० ॥
 श्रीमान् रामसुमेरुर्हि पुण्यवान् भाग्यवांस्तथा ।
 तस्य भार्याऽञ्जनानाम्नी शङ्करस्य सती यया ॥ ११ ॥
 प्राप्त चतुरः पुत्रान् प्राणौम्येन संस्मृतान् ।
 तेषां ज्येष्ठो रामरूपो दयाधर्मान्वितः सुधीः ॥ १२ ॥
 त्रिवेणीशङ्करः ख्यातः पण्डितोऽस्ति द्वितीयकः ।
 रमाशङ्करनामाऽहं टीकाकृत्तु तृतीयकः ॥ १३ ॥
 वात्सल्यभाङ्गनः सततं चतुर्थो हरिशङ्करः ।
 सहायभूतः सर्वेषामेषां स्नेहानुवर्धितः ॥ १४ ॥
 सोऽहं सम्प्रार्थये मूलं परमात्मानमीश्वरम् ।
 हृदयग्राहिणी भूयत् कृतिः कान्ता विदां मम ॥ १५ ॥

॥ शम् ॥

परिशिष्ट—१

वेणिसंहारस्थश्लोकानां वर्णानुक्रमणी

श्लोकारम्भः	अक्षः	श्लो.क्र.	श्लोकारम्भः	अक्षः	श्लो.क्र.
अकलितमहिमानं	५	४०	इन्द्रप्रस्थं वृक्षप्रस्थं	इ	१
अकृपणमरुक्षान्तं	६	४६	इयमस्मदुपाश्रयैक-		२
अक्षतस्य गदाप.णेः	४	४		उ	
अत्रैव किं न विशिष्यं	५	३२	उद्धातवन्नितिविलो-		२
अद्यप्रभृति वारीदं	६	२९	उपेक्षितानां मन्दानां		३
अद्य मिथ्याप्रतिज्ञो-	३	४२		ऊ	
अथैवावां रणमुपगतौ	४	१५	ऊहं करेण परिघट्टयतः		६
अन्योऽनुभूतशत-	५	१३		ए	
अन्योन्यास्फालभित्त-	१	२७	एकस्य तावत्पाकोऽयं		३
अपि नाम भवेन्मृत्युः	४	९	एकेनापि त्रिनानुजेन		५
अप्रियाणि करोत्येषः	५	३१	एतज्जलं जलजनील-		६
अयि कर्ष कर्णसुखदां	५	१४	एतेऽपि तस्य कुपितस्य		३
अयं पापो यावन्न	३	४५	एह्यस्मदर्थहततात		३
अवसानेऽङ्गराजस्य	५	३९		क	
अश्वत्थामा हत इति	३	११	कथमपि न निषिद्धः		३
असमाप्तप्रतिज्ञेऽपि	६	३३	कर्णक्रोधेन युष्मद्विजयि		५
अस्त्रग्रामविधौ कृत्वा	४	१२	कर्णदुःशासनवधात्		६
अस्त्रज्वालाबलीढ-	३	७	कर्णात्तनेन्दुस्मरणत्		५
	आ		कर्णालिङ्गनदायी वा		५
आचार्यस्य त्रिभुवन-	३	२०	कर्णेन कर्णसुभगं		५
आजन्मनो न वितथं	३	१५	कर्ता द्यूतच्छलानां		५
आत्मरामा त्रिहित-	१	२३	कलितभुवना भुक्तै-		५
आ शस्त्रग्रहणादकुण्ठ-	२	२	कालिन्ध्याः पुलिनेषु		१
आशैशवादनुदिनं	६	३८	किं कण्ठे शिथिली-		२

वेणीसंहारस्थश्लोकानां वर्णानुक्रमणी

३२३

श्लोकारम्भः	अङ्कः	श्लो. क्र.	श्लोकारम्भः	अङ्कः	श्लो. क्र.
तो व्यासदिशां	२	१७	जम्भारम्भप्रव्रितत-	२	८
मीमादगुरुदक्षिणां	३	६	शातिप्रोतिर्मनसि न	६	२०
घनोरुपदानि	२	२१	शेया रहः शङ्कितं	३	३
तया सह युवामथ	५	४	जलनः शोकाज्जना	५	२०
तन्त्राप्ता हतानां	५	३६		त	
मुमाब्जलिपर इव	१	५	तथाभूतां दृष्ट्वा	१	११
गुरुमहदादि-	६	४३	तद्भारुत्वं तव मम पुरः	२	१०
मनुमतं दृष्टं वा	३	२४	तस्मिन्कीरवभीमयोः	६	१६
शेया केशेषु कृष्णा	५	२६	तस्मै देहि जलं कृष्णे	६	३२
शेया केशेषु मार्या	५	३०	तरयैव देहुरुधिरक्षित-	६	२१
या येनासि राशां	६	४१	तस्यैव पाण्डवशोः	४	८
दण्डज्याकिष्णाङ्गैः	२	२७	तातस्तव प्रणयवान्	३	३०
रव्यवंशदावेऽस्मिन्	१	१९	तातं शस्त्रग्रहणविमुखं	३	२३
धोधान्यैः सचलं हतं	६	४५	तां वत्सलामनभिवाद्य	६	३४
धोधान्यैरस्य मोक्षत्	६	४२	तीर्णे भीष्ममहोदधौ	६	१
धोदगुणंगदस्य नास्ति	६	१३	तेजस्वी रिपुहृदबन्धु-	३	२७
	ग		त्यक्तपाजनरश्मि-	५	१०
ते भीष्मे हते द्रोणे	५	२३	त्यक्त्वोत्थितः सरमसं	६	६
तो येनाद्य त्वं	३	१६	व्रस्तं विनापि विषयात्	६	४
स्या साक्षान्महानल्पः	२	३		द	
रुणां बन्धूनां	६	५	दग्धुं विश्वं दहन-	३	८
हीतं येनासोः	३	१९	दत्त्वा द्रोणेन पार्थाद-	४	२
रुणां चरितं स्वप्नो	२	१५	दत्त्वाभयं सोऽतिरथो	३	२८
	च		दत्त्वा मे करदीकृता-	६	१९
क्षुद्रभुजभ्रमितचण्ड-	१	२१	दायादा न ययोर्वलेन	५	५
क्षुत्वारो वयमृतिजः	१	२५	दिक्षु व्यूढाङ्घ्रिपाङ्गः	२	१६
क्षुण्णिताशेषकौरव्यः	५	२८	दिष्टयार्धभ्रुतविप्रलम्भ-	२	१३
	ज		दुःशासनस्य रुधिरं	३	४९
क्षमेन्दोरमले कुले	६	७	दुःशासनस्य हृदय-	२	२८
क्षत्या काममवधो-	३	४१	दृष्टः सप्रेम देव्या	१	३
क्षेत्रसु पाण्डुपुत्रेषु	१	१८	देशः सोऽयमराति-	३	३३
			द्रक्ष्यन्ति न विरासुप्तं	५	३४

श्लोकारम्भः	अङ्कः	श्लो.क्र.	श्लोकारम्भः	अङ्कः	श्लो.क्र.
ध					
धर्मात्मजं प्रति यमौ	२	२६	प्रत्यक्षं हतबन्धूनां	४	११
विकसानुजं कुरुषति	३	१३	प्रत्यक्षं हतबन्धवस्य	५	१२
क्षुतराष्ट्रस्य तनयान्	१	९	प्रत्यग्रहतानां मांसं	३	१३
धृतायुधो यावदहं	३	४६	प्रयत्नपरिवोधितः	३	१४
			प्रवृद्धं यद्वैरं मम	१	१५
न			प्राप्तावेकस्यारूढौ	५	१६
नाहं रक्षो न भूतो	६	३७	प्राप्त्येयमिश्रमकरन्द-	२	१७
निर्लज्जस्य दुरोदर-	६	१७	नियमनुजमपश्यंस्तं	६	१८
निर्वाणवैरदहनाः	१	७	प्रेमावद्धस्तिमित-	२	१९
निर्वीर्यं गुरुशप-	३	३५		ब	
निर्वीर्यं वा सर्वीर्यं वा	३	३६	वालस्य मे प्रकृति-	४	२०
निवापाञ्जलिदानेन	३	१८		म	
निषिद्धैरप्येभिर्लुलित-	१	१	भग्नं भीमेन भवतो	२	२१
नूनं तेनाथ वीरेण	६	६	भवति तनय लक्ष्मीः	५	२२
नोच्चैः सत्यपि	२	१	भवेदभीष्ममद्रोणं	३	२३
न्यस्ता न मृकुटिनं	२	२०	भीष्मे द्रोणे च निहते	५	२४
			भूमौ भित्तं शरीरं	६	२५
प			भूमौ निमग्नचक्रः	५	२६
पङ्के वा सैकवे वा	६	२	भूयः परिभवन्नान्ति-	१	२७
पञ्चानां मन्यसेऽस्माकं	६	१०	आतुस्ते तनयेन	६	२८
पदे संदिग्ध एवास्मिन्	६	१४		म	
परित्यक्ते देहे रण-	३	२२	मथनामि कौरवशतं	१	२९
पर्याप्तनेत्रमचिरोदित-	४	१०	मदकलितकरेणु-	४	३०
पर्यायेण हि दृश्यन्ते	२	१४	मद्रिधोगमयात्तातः	३	३१
पञ्चात्त्या मन्युवह्निः	६	८	मन्थायस्तार्णवाम्भः	१	३२
पापप्रियस्तव कथं	३	४४	मम पाणाधिके	५	३३
पापेन येन हृदयस्य	५	२२	मम हि वयसा	६	३४
पापोऽहमपतिकृता-	५	२	मया पीतं पीतं तदनु	६	३५
पितुर्मुद्दिनं स्पृष्टे	३	२५	मायि जीवति मत्तात्तः	३	३६
पीनाभ्यां मदभुजाभ्यां	५	३५	महाप्रलयमारुत-	३	३७
पूर्यन्तां सलिलेन	६	१२	मातः किमप्यसदृशं	५	३८
प्रत्यक्षमात्तधनुषां	३	२१	मासुद्दिश्य त्यजन्	५	३९

वेणीसंहारेस्थल्लोकानां वर्णानुक्रमणी

३२५

श्लो.क्र.	श्लोकारम्भः	अङ्कः	श्लो.क्र.	श्लोकारम्भः	अङ्कः	श्लो.क्र.
१	य		१	श		
१	यत्तद्विजितमत्युग्रं	१	१३	शक्ष्यामि नो परिघ-	६	२२
२	यत्तस्यैवमङ्गमीरु-	१	२४	शल्यानि व्यपनीय	५	१
३	यदि शस्त्रमुज्जितं	३	३६	शल्येन यया शल्येन	५	११
४	यदि समरमपास्य	३	६	शाखारोधस्यगित-	६	२६
५	यद्दुयोधनपक्षपात-	३	५	शोकैः स्त्रीवन्नयन-	५	३३
६	यद्दुधुतमिव ज्योतिः	१	१४	शोचामि शोच्यमपि	५	१६
७	यन्मोचितस्तव पिता	५	४२	श्रवणाञ्जलिपुटपेयं	१	४
८	यस्मिंश्चिरमणय-	२	१२	श्रुत्वा वधं मम मृषा	३	१२
९	युक्तो यथेष्टमुपमोग-	४	६			
१०	युष्मच्छासनलङ्घनां दसि	१	१२	सकलरिपुजयाशा	५	२७
११	युष्मान् हेषयति	१	१७	स कीचकनिपूदनो	६	१८
१२	येनासि तत्र जनु-	६	२३	सत्यज्ञा मधुरगिरः	१	६
१३	यो यः शस्त्रं विभति	३	३२	सत्यादप्यनृतं श्रेयो	३	४८
१४	र			स भीरुः शूरो वा	३	३८
१५	सणीयेन सततं	४	७	सर्वथा कथय ब्रह्मन्	६	१५
१६	सो नाहं न भूतः	६	३७	सहभृत्यगणं सवान्धवं	२	५
१७	सो मानधनस्य	४	१	सूतो वा सूतपुत्रो वा	३	३७
१८	रिपोरास्तां तावत्	६	४०	स्त्रीणां हि साहचर्यात्	१	२०
१९	रेणुर्बाधां विधत्ते	२	२२	स्पृष्टा येन शिरोरुहे	३	४७
२०	ल			स्मरति न भवान् पीतं	५	४१
२१	सकाशागृहानलविपात्र-	१	८			
२२	सहिलाशवपाणमत्तिप	३	३	ह		
२३	सोलांशुकस्य पवना-	२	२३	हतमानुष-	३	१
२४	व			हते जरति गाङ्गेये	२	४
२५	विकिर धवलदीर्घा-	२	१६	हत्वा पार्थान्सलिलम्	४	१३
२६	विस्तृतास्मान्श्रुति-६	६	२५	हलो हेतुः सत्यं	६	२८
२७	व्यासोऽयं भगवानमी	६	४४	हस्ताकृष्टविलोड-	२	२५
२८	वृषसेनो न ते पुत्रो	४	१४	हीयमानाः किल	५	६

परिशिष्ट--२

वेणीसंहारस्थानि सुभाषितानि*

- १ अकुशलदर्शनाः स्वप्ना देवतानां प्रशंसया कुशलपरिणामा भवन्ति । (५२)
- २ अनुकहितकारिता हि प्रकाशयति मनोगतां स्वामिभक्तिम् । (२६४)
- ३ अनुल्लङ्घनीयः समुदाचारः । (२३०)
- ४ अप्रमत्तसंचरणीयानि रिपुबलानि श्रूयन्ते । (४४)
- ५ अहो मुग्धत्वमवलानाम् । (८८)
- ६ आशा बलवती राजन् शल्यो जेष्यति पाण्डवान् । (२२४)
- ७ उपक्रियमाणामावे किमुपकरणेन । (२०४)
- ८ उपेक्षितानां मन्दानां धीरसत्त्वरवश्या ।
अत्रासितानां क्रोधान्धैर्भवत्येषा विवृत्यना ॥ (१५०)
- ९ कालानुरूपं प्रतिविधातव्यम् । (२१४)
- १० कुतस्तस्य विजयादन्यद् यस्य भगवान् पुराणपुरुषो नारायणः स्वयं
मङ्गलान्याशास्ते । (३१४)
- ११ को हि नाम भगवता सदृष्टं विकल्पयति । (२६४)
- १२ गुप्त्या साक्षान्महानल्पः स्वयमन्येन वा कृतः ।
करोति महतीं प्रीतिमपकारोऽपकारिणाम् ॥ (५४)
- १३ ग्रहाणां चरितं स्वप्नो निमित्तान्युपयाचितम् ॥
फलन्ति काकतालीयं तेभ्यः प्राज्ञा न विभ्यति ॥ (७०)
- १४ तेजस्वी रिपुहृतवन्धुदुःखपारं बाहुभ्यां व्रजति धृतायुधप्लवाभ्याम् । (१३२)
- १५ व्रतं विनापि विषयादुरुविक्रमस्य चेतो विवेकारिमन्थरतां प्रयाति । (२५२)
- १६ दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम् । (१४४)
- १७ न किञ्चित् ददाति भगवान् प्रसन्नः । (३१८)
- १८ न घटस्य कूपपाते रज्जुरपि तत्र प्रक्षेप्तव्या । (२०४)
- १९ न युक्तं मनमिवाय गुरुन् गन्तुम् । (२३०)
- २० न युक्तं पराक्रमवतां बाङ्मात्रेणापि त्रिरागमुत्तादयितुम् । (२४०)
- २१ न युक्तं बन्धुव्यसनं विस्तरेणावेदयितुम् । (२७२)

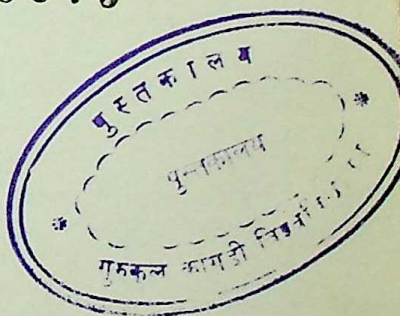
* ब्रैकेट के अन्दर का नम्बर पृष्ठ-संख्या का सूचक है ।

वेणीसंहारस्थानि सुमापितानि

३२७

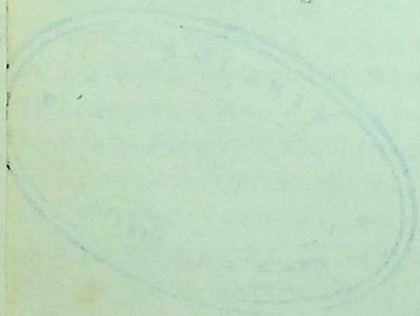
- २२ न युक्तं वीरस्य शत्रियस्य प्रतिज्ञातं शिथिलयितुम् । (२७८)
 २३ पुण्यवन्तो हि दुःखभाजो भवन्ति । (१९०)
 २४ प्रकृतिर्दुस्त्यजा । (१३४)
 २५ ब्राह्मणशोणितं खल्वेतत् । गलं दहद्दहत्प्रतिज्ञाति । (१०४)
 २६ यदि समरमपास्य नास्ति मृत्योर्भयमिति युक्तमितोऽन्यतः प्रयातुम् ।
 अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः किमिति मुधा मलिनं यशः कुरुध्वे ॥ (१०६)
 २७ यद्देवस्त्रिभुवननाथो मणति तत्कथमन्यथा भविष्यति । (२६४)
 २८ यावत्सत्रं तावत्समरविजयिनो जिता हताश्च वीराः । (२३२)
 २९ यावत्प्राणिनि तावदुपदेष्टव्यभूमिर्विजिगीषुः प्रज्ञावताम् । (२०६)
 ३० यावदयं संसारस्तावत्प्रसिद्धं वैयं लोकयात्रा यत्पुत्रैः पितरो लोकद्वयेऽप्यनुवर्तनीया इति । (१२०)
 ३१ वक्तुं सुकरमिदं दुष्करमध्यवसितुम् । (१४२)
 ३२ वन्दनीया गुरवः । (२३०)
 ३३ विश्राव्य नामकर्मणा वन्दनीया गुरवः । (२३०)
 ३४ स एव स्निग्धो जनो यः पृष्टः परुषमपि हितं मणति । (६८)
 ३५ स्त्रीणां हि साहचर्याद् भवन्ति चेतांसि भर्तृसदृशानि ।
 मधुराऽपि हि मूर्च्छयते विषविटपिसमाश्रिता वल्ली ॥ (३४)
 ३६ स्वपञ्जनः किं न खलु प्रलपति । (५२)
 ३७ हीयमानाः किल रिपोर्नृपाः संदधते परान् । (२०८)

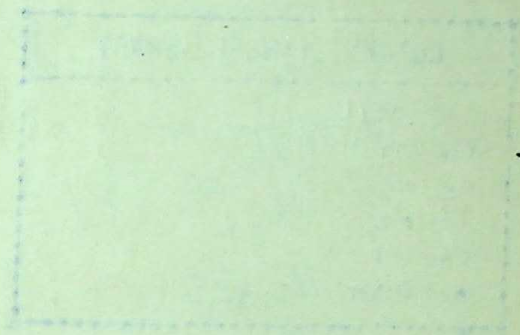
83875





69866





GURUKUL KANGRI LIBRARY

Access on 1/2

Class on 4-2-85

Call on 03

Tag etc. 20 4.85

Checked 6

Any Other 27-5-

EPR
3.6.85

Digitized by eGangotri Sampradaya Foundation, Chennai and eGangotri
 यजु० ११।१४—युजते मन उत युजते धियो विप्रा विप्रः
 ऋ० ८।५।५—यो नो दाता स नः पिता महं उग्र ईशान्
 यजु० २०।३२—यो भूतानामधिपतिर्यस्मिँल्लोका अधिश्ति
 यजु० ३२।१३—सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्य

इत्यादि हजारों मंत्रों को जीवेश्वर-भेद दिखाने के लिये उद्धृत
 सकता है ।



कभी मैं भारत थी !

—श्री बलभद्र कुमार हूजा

पूर्व कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

कभी मैं भारत थी

अब मैं ग़ारत हूँ

सोशलिज्म¹ तो क्या आया ?

अनार्की² आ गई

अब मेरे बच्चे कैनीबलिज्म³ की ओर

बढ़ रहे हैं

करोड़ों को पेट भर अन्न मुयस्सर नहीं

करोड़ों को दूध की बूँद नहीं मिलती

करोड़ों सड़कों पर, फुटपाथों पर सोते हैं

नसें काटने पर उतारू हैं

रयों⁴ को जीरा जीरा किया जा रहा है

यों और तीस हज़ारियों में युद्ध जारी है

और दस हज़ारी एक दूसरे के

हैं

हैं वनाट का कोई पुरसाने हाल नहीं

हम एक दिशा में चलें

एक वाणी बोलें

एक जैसा सोचें

एक जैसा खायें

एक जैसा पहनें

एक जैसा रहें

यह सपना कब पूरा होगा ?

तभी मैं भारत भारत हूँगी

Entered in Database

Signature with Date

सांस्कृतिक संकट और भारत

—डा० (कु०) छाय

रीडर, द
जबलपुर वि

आज भारत जिस भीषणतम संकट से गुजर रहा है, वह है संकट ! इसे अस्तित्व का संकट कहना अनुपयुक्त न होगा; क्योंकि अपनी सांस्कृतिक पहचान खो देता है, वह अपनी स्वायत्त सत्ता भी है। ऐसे देश का या तो अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है अथवा वह होकर जीता है। आज जो सांस्कृतिक संकट हमारे सम्मुख अपनी रालता के साथ उपस्थित हुआ है, उसके एक नहीं, अनेक कारण हैं। से एक प्रमुख कारण है—विज्ञान तथा तकनीकी का निरन्तर बढ़ता हुआ प्रभाव। आक्रामक इसलिये कि विज्ञान तथा तकनीकी ने भारतीय विगत दो शताब्दियों से इतनी प्रबलता से प्रभावित किया है सांस्कृतिक विशेषतायें प्रायः विलुप्त होती गई हैं। समकालीन भारतीय समाजशास्त्री एवं राजनैतिक चिंतक आदि सभी इस स्थिति से नि हैं और समय-समय पर समाज को इस संकट के प्रति सचेत कर सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री प्रोफेसर केवल मोटवानी अपनी पुस्तक “सिन्थीसिस ऑफ कल्चर्स” (पृ० ६६) में लिखते हैं कि विज्ञान और ने भारत की सम्पूर्ण संस्कृति को चीजों को गलाने वाले ऐसे पा पाँट) में फेंक दिया है कि उसकी संस्थाओं, आध्यात्मिक मूल्यों, री परम्पराओं और विश्वासों को ललकारा जा रहा है। अपनी (पृष्ठ ४७०) में जवाहरलाल नेहरू ने भी यही मत निम्नलिखित अभिव्यक्त किया है। वे लिखते हैं—“भारत में वास्तविक संघर्ष मुस्लिम संस्कृतियों के मध्य नहीं है। संघर्ष इनके तथा आधुनिक विजयी वैज्ञानिक संस्कृति के बीच है।” प्रबुद्ध क्षेत्र में गहराई से किया जा रहा है कि आज भारत की राष्ट्रीय प्रतिभा और वैज्ञानिक संस्कृति आमने-सामने खड़े होकर विजयी होने के हैं। यह सांस्कृतिक संघर्ष की स्थिति है। स्वदेशी और बाह्य संस्कृ

